महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य विरचित
श्रीभागवत विवृति

सुबोधिनी

हिन्दी भावानुवाद

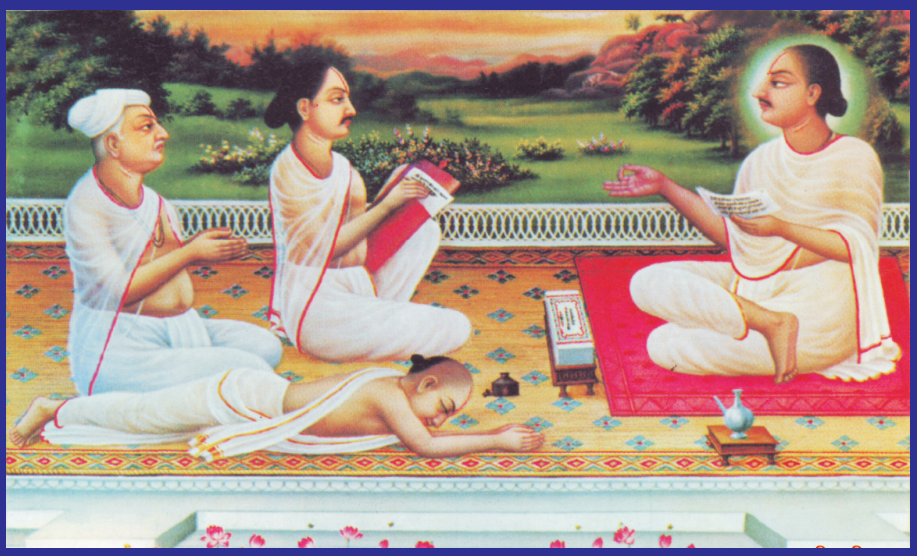

दशमस्कन्ध

तामस प्रमाण प्रकरण

(अध्याय ५–११)

खंड–७

जय श्रीकृष्ण

श्रीवल्लभाधीशो जयति

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य विरचित

श्रीभागवत विवृति

'सुबोधिनी' दशम स्कन्ध

तामस प्रमाण प्रकरण

(अध्याय ५-११)

हिन्दी भाषानुवाद

अनुवादकः

गो.वा.श्रीफतहचन्द वासु(पुष्करणा), जोधपुर

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य

... तब व्यासजीने भागवतपुराण प्रकट किया जिसके अभ्यास (श्रवण–स्मरण–कीर्तन) से लोग मुक्त हो सकते हैं, बशर्ते भागवतका आजीविकार्थ उपजीवन न किया जाय. यह श्रीमद्भागवत एक श्रेष्ठ साधन है. अतः प्रयत्नपूर्वक, किसी लौकिक हेतु या दम्भ के बिना, आदरके साथ इसका पठन करना चाहिये. भागवतका पाठ प्रयत्नपूर्वक किसी भी अन्य हेतुके बिना ही करना चाहिये. प्राण चाहे कण्ठमृ ही क्यृ न अटक जायें परन्तु आजीविकार्थ उसका उपयोग नहीं ही करना चाहिये. भागवतका आजीविकार्थ उपयोग न करके अन्य किसी भी उपायसे अपना निर्वाह चले चला लेना चाहिये

(तत्त्वार्थदीपनिबन्ध.२।६७, २४३, २५४).

जो लोग भगवद्गुणगानको अपनी आजीविकाका साधन बनाते हैं ऐसे गुणगानकर्ता गंदे जलको एकत्रित करनेकेलिये जमीनमृ खोदे गये गहरे गढ्ढेकी तरह होते हैं. (जलभेद.५)

मुंह–हाथ–पांव आदि धोनेमृ प्रयुक्त गंदे जलको एकत्रित करनेकेलिये भूमिमृ जो गढ्ढे खोदे जाते हैं उनके जैसे अधम होते हैं दक्षिणा लेकर कथा करनेवाले ...आशय यह है कि गढ्ढेमृ भरे हुवे प्रक्षालनोच्छिष्ट गंदे जलकी तरह इन गानोपजीविअृका भाव सत्पुरुषृकेलिये ग्राह्य नहिं होता ... पौराणिकृके भावृका निरूपण करनेके बाद जो गायकृका निरूपण किया गया है वह यह दिखलानेकेलिए कि (आजीविकार्थ पुराणृका उपयोग करनेवाले) पौराणिक भी ऐसे गायकृके तुल्य नीच ही होते हैं.

(श्रीकल्याणरायविरचित जलभेदविवृति ५).

।। प्रासंगिक ।।

यह ज्ञापित करते हुए अत्यन्त हर्ष हो रहा है कि महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यचरण विरचित श्रीभागवतकी विवृति 'सुबोधिनी'के हिन्दी अनुवादका पुनः प्रकाशन किया जा रहा है.

यह तो सुविदित है कि मूल संस्कृत सुबोधिनीका पुनः प्रकाशन पूज्य गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजीके सम्पादकत्वमें श्रीवल्लभविद्यापीठश्रीविट्ठलेश-प्रभुचरण आश्रम ट्रस्ट, कोल्हापुर द्वारा किया गया है.

सुबोधिनीके गो.वा.श्रीनानुलाल गांधी, गो.वा.श्रीमग्नलाल शास्त्री तथा गो.वा.श्रीव्रजलाल सांकळीया आदि विद्वानों द्वारा लिखित गुर्जरभाषानुवादका पुनः प्रकाशन श्रीवल्लभाचार्य ट्रस्ट, मांडवी द्वारा किया जा चुका है.

इसी तरह श्रीरामानुजमतानुयायी किन्तु सुबोधिनीके परम प्रेमी श्रीटी. रामनन्ने सुबोधिनीका अंग्रेजी अनुवाद करके उसे सद्गुरु पब्लिकेशन्स, दिल्ली द्वारा मूल संस्कृत सहित प्रसिद्ध करवाया है, जो २४ खंडोंमें उपलब्ध होता है. यह अंग्रेजी अनुवाद श्रीरामन्ने श्रीसुबोधिनी प्रकाशन मंडल, जोधपुर द्वारा प्रकाशित, सम्प्रति अनुपलब्ध, सुबोधिनीके हिन्दी अनुवादका ही किया है. वे लिखते हैं:

> "I owe a deep debt of gratitude to Sri Subodhini Parakashan Mandal (Jodhpur). My traslation is, to a very large extent, based on this book and I am, indeed, very grateful for this Mandal".

सुबोधिनीके हिन्दी अनुवादका प्रकाशन ''श्रीसुबोधिनी प्रकाशन मंडल''(जोधपुर) नामकी संस्थाको स्थापित करके उसके द्वारा गो.वा. श्रीनन्दलालजी मानधना,जोधपुर ने करवाया था. इनको इस भगीरथ कार्यमें गो.वा.श्रीरामचन्द्र(नन्ददास) वर्मा का साथ मिला. इन दोनों महानुभावोंकी निष्ठा प्रेरणा उत्साह और समर्पण से पुष्टिमार्गके अनेक विद्वानोंने मिल-जुलकर सुबोधिनीका अनुवाद तैयार किया. इनमें उल्लेखनीय हैं:

गो.वा.श्रीफतहचन्द वासु (जोधपुर)

दशमस्कन्धके नब्बे अध्यायोमेंसे चोहत्तर अध्याय;

तृतीय स्कन्धके १ से २१ अध्याय.

गो.वा.श्रीआनन्दीलालजी शास्त्री (श्रीनाथद्वारा)

प्रथम स्कन्धके १ से ९ अध्याय, दशमस्कन्धका चौथा अध्याय.

गो.वा.श्रीनारायणप्रसाद व्यास(कोटा)

प्रथमस्कन्धके १० से १९ अध्याय.

गो.वा.पं.गोरधनजी शास्त्री(कोटा)

दशमस्कन्धके चौदह अध्याय,

गो.वा.श्रीनारायणजी त्रिपाठी(नाथद्वारा)

द्वितीय स्कन्धके १ से ४ अध्याय. तृतीय स्कन्धके २२ से ३३ अध्याय .

गो.वा.श्रीरमानाथ शास्त्री(कांकरोली)

द्वितीय स्कन्धके ५ से १० अध्याय.

गो.वा.श्रीसबलकिशोर चतुर्वेदी (मथुरा)

दशमस्कन्धका तीसरा अध्याय.

इस अनुवादके संशोधन तथा सम्पादन कार्यमें पूज्य गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी (किशनगढ-पार्ला), गो.वा.श्रीनारायणजी त्रिपाठी (श्रीनाथद्वारा) तथा गो.वा.श्रीरणछोड कलाधर भट्ट(मुम्बई) का भी योगदान रहा है. पूज्य गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी (किशनगढ-पार्ला) तो ''श्रीसुबोधिनी प्रकाशन मंडल, जोधपुर'' के संरक्षक भी हैं.

इस श्रीभागवत-सुबोधिनीके हिन्दी अनुवादके पुनःप्रकाशनका एकमेव उद्देश्य यही है कि श्रीवल्लभवाङ्मय कभी भी किसी भी जिज्ञासुकेलिए अलभ्य न रहे. हमें विश्वास है कि इस पुनःप्रकाशनसे सुबोधिनीके अध्येताओंको अवश्य लाभ होगा.

अन्तमें सुबोधिनीके हिन्दी भाषानुवादके पूर्व प्रकाशक, अनुवादक, संशोधक, सम्पादक, द्रव्यसहायक आदि सभीके प्रति हम हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं तथा इस कार्यमें निःस्वार्थ भावसे सहयोग करनेवाले सभी वैष्णवोंका भी सादर स्मरण करते हैं.

सुबोधिनी स्वाध्याय मंडल

क्या आप पुष्टिमार्गी हैं?

एक बार श्रीवल्लभाचार्यके ये आदेश पढ़ें.

सोचें, क्या आप श्रीवल्लभके मार्ग पर चल रहे हैं?

परब्रह्म श्रीकृष्णको ही अपना आश्रय-रक्षक जानें. मन-वचन-कर्मसे अन्याश्रय कदापि न करें.

भगवानने पुष्टिजीवोंको अपनी स्वरूपसेवाकेलिये भूतल पर प्रकट किया है. कृष्णसेवा ही पुष्टिजीवका स्वधर्म है. अतः कृष्णसेवाको जो स्वधर्म समझता है वही पुष्टिजीव है और वही पुष्टमार्गमें प्रवेशके योग्य है.

भगवत् शास्त्रको अच्छी तरहसे समझकर, आत्मनिवेदित होकर अपने तन-धनसे अपने घरमें श्रीकृष्णकी सेवा करें.

घरमें बिराजते ठाकुरजीको ही अपना सर्वस्व समझें जो खास आप ही के उद्धारार्थ कृपा करके आपके घर पधारे हैं. उनको छोडकर अन्य ठाकुरजीके दर्शन-सेवा केलिये भटकना अपने सेव्यप्रभुका तिरस्कार है.

अपनी सभी वस्तु-व्यक्ति-व्यवहारका समर्पण अपने घरमें बिराजते ठाकुरजीकी सेवामें ही करें. वे ही उनके सच्चे स्वामी हैं.

अपने ठाकुरजीको सर्वस्व समर्पित करके उस समर्पित महाप्रसादसे ही खान-पान-दान आदि सभी लौकिक-शास्त्रीय कार्य करें. असमर्पित पदार्थके उपयोगका सर्वथा त्याग करें.

हवेली-मन्दिरोंमें भेंट-सामग्री देकर कराये जाते सेवा-मनोरथ पुष्टिसिद्धान्तके अनुसार सेवा-भक्ति है ही नहीं; वो न केवल सेवा-भक्तिके नामपर पाखंड है अपितु परम पवित्र भगवत्सेवाको धंधा बनानेवाले दुष्टोंको पोषित करना है.

भगवत्सेवा-मनोरथ-कीर्तनके निमित्त भेंट-सामग्री मांगना-स्वीकारना उनको व्यापार-धंधा बनाना है. ऐसा पाप करनेवालेका नर्कमें पात होता है.

अतः भगवत्सेवा–मनोरथ–कीर्तनके निमित्त किसीको कुछ भी न दृ.

अनजानेमें भी यदि कोई अवैष्णव सेव्य ठाकुरजीका दर्शन कर लेता है तो हमारी एक वर्षकी सेवा निष्फल हो जाती है. ऐसा हो जाने पर श्रीठाकुरजीको पञ्चामृत स्नान कराकर शुद्ध करना चाहिये.

भगवत्सेवा अपने ही घरमृ करृ. सार्वजनिक हवेली–मन्दिरमृ सेवा–मनोरथ करना पुष्टिसिद्धान्तके अत्यन्त विरुद्ध है.

दर्शनको कभी भक्ति न समझें. दर्शनका आग्रह उसीका रखें जो कृपा करके आपके घरमें आपकेलिये आपके माथेपर बिराज रहे हैं, जिनकी सेवा आप स्वयं कर रहे हैं.

मंदिर–हवेलियृमृ दिया जाता या वहांसे खरीदा जाता प्रसाद–पातल महापातकी देवद्रव्य होता है. ऐसा प्रसाद खानेवाला नर्कमृ ही जाता है.

प्रसादका नहीं किन्तु घरके ठाकुरजीने जो अङ्गीकार किया है उस समर्पित महाप्रसादको लेनेका आग्रह रखें.

भगवत्सेवाकी ही तरह भागवतका पाठ भी स्वयं ही करें. भक्तिभावकी वृद्धिके अलावा दूसरे किसी भी हेतुसे भागवतका पाठ न करें.

प्राण निकल जायें तो भले ही निकल जायें परन्तु दक्षिणा लेकर भागवतकी कथा–कीर्तन कभी भी न करें.

दक्षिणा लेकर कथा–कीर्तन करनेवालृके मुखसे कथा–कीर्तन सुनना गटरका पानी पीनेके समान हीन कृत्य है. व्यावसायिक कथावक्ताओृके संगको दुष्टसंग समझकर उनका त्याग करो.

।। श्रीकृष्णाय नमः ।।
।। श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ।।

भूमिका

पूज्य गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी

(किशनगढ-पार्ला)

जो भूमा है वही सच्चा सुख है, जो अल्प है उसमें सच्चा सुख नहीं है. भूमा ही सुख है अतः भूमा ही सच्चा जिज्ञास्य होना चाहिये... जिसे देख-सुन जान लेनेपर दूसरा कुछ भी दिखलाई देना-सुनाई पडना-जानना संभव न रह जाये उसे भूमा समझना चाहिये. जिसे अच्छी तरह देख-सुन-जान लेनेपर भी उससे अन्य कुछ दिखलाई सुनाई जान पड़ता हो उसे अल्प समझना चाहिये. जो भूमा है वही अमृत है और जो अल्प है वह तो मर्त्य है!

वह भूमा कहाँ प्रतिष्ठित है? स्वयंकी महिमा (आत्म-महिमा)में! अथवा इस भूमासुखको प्रतिष्ठित होनेकेलिये अन्य किसी भी महिमाकी अपेक्षा ही नहीं. अल्प सुख गाय-भैंस हाथी-सोना दास भार्या खेत महलों की महिमामें प्रतिष्ठित होता है. इन सभी उदाहरणोंमें अल्प सुख अपनेसे किसी भिन्न वस्तुमें प्रतिष्ठित होता है. ऐसी प्रतिष्ठा भूमाकी हम नहीं कहना चाहते!

जो कुछ उपर-नीचे आगे-पीछे दायें-बायें है वह सब कुछ भूमा है. ('वह' कहकर परोक्षतया उसका यह निरूपण हुआ किन्तु 'अहं' कहकर अपरोक्षतया भी उसे निरूपित किया जा सकता है कि) ऊपर-नीचे आगे-पीछे दायें-बायें जो कुछ है वह मैं ही हूं. (इसी तरह परोक्षापरोक्षके भेदको मिटाना हो तो 'आत्मा' कहकर भी उसे निरूपित किया जा सकता है कि) जो कुछ उपर-नीचे आगे-पीछे दायें-बायें है वह आत्मा ही है!

जो इस तथ्यको देख पाता है मान पाता है जान पाता है वह आत्मक्रीड आत्ममिथुन आत्मानन्द बनकर स्वराड्(स्वाधीन) बन जाता है. वह सभी लोकोंमें यथेष्ट संचार कर पाता है. परन्तु इसे अन्यथा समझनेवाले अन्यराड्(पराधीन) होकर क्षयिष्णु

लोकमें रहनेवाले बन जाते हैं. वे सभी जगह यथेष्ट संचार कर नहीं पाते!

(छान्दो. उप. ७।२३-२५).

उपनिषद्वर्णित इस भूमा तत्त्वकी सर्वात्मभावजन्य रसानुभूति या तन्मयता का ही लीलात्मक सुललित वर्णन श्रीमद्भागवतदशमस्कन्धका प्रमुख वर्ण्य विषय है. भगवान तथा भगवद्भक्तों के भक्तिरूप दिव्य सम्बन्धोंका वर्णन नवमस्कन्धका वर्ण्य विषय है. अतएव, महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यके अनुसार, भगवद्भक्तोंकी प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वक भगवदासक्ति ही दशमस्कन्धके वर्ण्य विषयीभूत 'निरोध'का प्रमुख अर्थ है. भक्त जब अपनी भगवद्भक्तिके कारण भगवानमें निरुद्ध हो पाता है, तब ब्रह्मज्ञानीको ब्रह्मज्ञानवश जैसे ब्रह्मोपादानक-ब्रह्मकर्तृक जगतकी दिव्य ब्रह्मात्मकताका भान होने लग जाता है, वैसे ही भगवद्भक्तको भी सर्वत्र भगवदनुभावकी प्रकट रसानुभूति होने लग जाती है.

मूलतः यही वह औपनिषदिक रहस्य है जो श्रीमद्भागवतमें

''मन-वाणी-काया-आत्मासे वे गोपिकायें भगवदात्मिका होकर भगवद्गुणगान करती हुई स्वयं अपनी और घर-बारकी सुध-बुध खो बैठी थी''

(भाग.१०।३०।४४)

''वृष्णिओंके चित्त श्रीकृष्णमें इतने तल्लीन हो गये कि सोते-जागते चलते बातें करते खेलते न्हाते आदि सभी कामोंको करते हुवे अपनी सुधबुध खो बैठे थे''

(भाग.१०।९०।४६)

आदि वचनोंसे कहा गया है.

अतएव दशमस्कन्धका वर्ण्य विषय सर्गविसर्गादि-नवलक्षणलक्ष्य आश्रय है या भूभारहरणरूप निरोध है –ऐसा महाप्रभुको स्वीकार्य नहीं है. क्योंकि आभास-निरोधरूप सृष्टि-प्रलय जिस आश्रयतत्त्वके कारण घटित होते हैं, वैसी श्रीकृष्णकी आश्रयरूपताका वर्णन दशमस्कन्धमें उपलब्ध नहीं होता है. बारहवें स्कन्धमें वह अवश्य दृष्टिगोचर होता है. इसके अलावा यह भी लक्ष्यमें रखने लायक बात है कि तृतीयस्कन्धसे प्रारंभ करके नवमस्कन्धपर्यन्त तो सर्गादि नवलक्षणोंमेंसे केवल सात लक्षण निरूपित हुए हैं. इस बीच अकस्मात् लक्ष्यका

निरूपण करने लग जाना और बादमें अवशिष्ट मुक्ति और निरोध रूप दो लक्षणोंका निरूपण करना –यह तो बडी असमंजस निरूपणशैली बन जायेगी. किसी भी कथाके चरमोत्कर्षके वर्णनके बाद कथाका अग्रसर होना भी वैसे तो प्रायः विरसता प्रकट करनेवाला ही होता है. इसके अलावा कृष्णलीलाका वर्णन तो ग्यारहवें स्कन्धमें भी है ही. अतः उसे भी आश्रयलीलावर्णनपरक स्वीकारना पडेगा, जहां तक भूभारहरणरूप निरोधके वर्णनका प्रश्न है तो उसे भी ग्यारहवें स्कन्धमें भी खोजा जा सकता है.

अतएव भक्तियोगवितानार्थ भगवत्प्राकट्यका कुन्तीके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त(द्र.भाग.१।८।२०) महाप्रभुको मान्य है. तदनुसार प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वक भगवदासक्तिरूप फलनिरोधका तथा उसे सम्पन्न करनेको ऐसे भक्तोंके बीच भूतलपर भगवत्प्राकट्यरूप साधननिरोधका वर्णन ही दशमस्कन्धका मुख्य स्वरूप है.

इस दृष्टिकोणको अपनानेपर नवमस्कन्ध और दशमस्कन्ध की पूर्वोत्तरभावसंगति भी सुबोध हो जाती है. क्योंकि नवमस्कन्धका वर्ण्य विषय भगवान और भक्तोंके बीच भक्तिमय सम्बन्धोंका निरूपण है. भक्तात्मा और परमात्मा के बीच भक्तिमय सम्बन्ध स्थापित हो जानेपर कैसे वह सम्बन्ध भक्तको विषयानुसन्धानरहित बनाकर भगवानमें अनन्यासक्त बना देता है –यही तो दशमस्कन्धका मुख्य वर्ण्य विषय है. अतएव प्रपञ्चको भूलकर भगवानमें अनन्यासक्त हो जाना ही निरोधकी सच्ची व्याख्या है. स्पष्ट है कि यहां नवमस्कन्धवर्ण्य भक्ति कारण बनती है दशमस्कन्धवर्ण्य प्रपञ्च विस्मृति पूर्वक भगवदासक्तिका. अतः नवम–दशम स्कन्धोंकी कारण–कार्यतारूप पूर्वोत्तर–भावसंगति भी सुवाच्य बन जाती है.

स्वयं श्रीभागवत निरोधका निरूपण इन शब्दोंमें करता है:

''आत्मशक्तिओंके साथ भगवानका अनुशयन निरोध है''

(भाग.२।१०।६).

तदनुसार इस पाञ्चभौतिक जगतमें श्रीकृष्णका अपनी समग्र दिव्य शक्तिओंके साथ प्रकट होना ही निरोध है. इस दृष्टिकोणसे दशमस्कन्धकी लीलाओंका अवगाहन किया जाये तो यथापरिभाषित अर्थमें दशमस्कन्धको यथाक्रम निरोधलीलाके वर्णनार्थ प्रवृत्त मानना ही सुसंगत है.

अग्रिम एकादशस्कन्धका वर्ण्य विषय जो मुक्तिलीला स्वीकारी गई है वह भी प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वकभगवदासक्तिरूप निरोधसे कार्यकारणभावात्मना संगत हो जाती है. क्योंकि निरुद्ध जीव मुक्तिके सच्चे अधिकारी होते हैं.

इसी तरह मुक्तजीव ही सर्गादि नवलक्षणलक्ष्य आश्रयरूप परमात्मामें स्वरूपात्मना अवस्थित हो सकते हैं. अतः एकादश-द्वादश स्कन्धोंकी पूर्वोत्तरभावसंगति भी सिद्ध हो जाती है. जहां तक आश्रयभावापत्तिका प्रश्न है वहां भी इतनी बात ध्यान रखनी नितान्त आवश्यक है कि सच्चिदानन्द सकलाश्रयरूप परब्रह्म परमात्मा भगवान अपने आनन्दांश या चिदंश के धर्मरूपेण या धर्मिरूपेण तिरोभावद्वारा ही सर्ग-विसर्ग-स्थान-पोषण-ऊति-मन्वन्तर-ईशानुकथा-निरोध-मुक्तिरूप नवविध लीला करते हैं. अतः जड-जीवात्मक जगतका आश्रयभावापन्न हो जाना भी इसी अर्थमें समझना चाहिये कि वह लीलार्थ परिगृहीत देव-मानव-दानव-पशु-पक्षी-पृथ्वी-जल-तेज आदि सभी जड़-चेतनरूपोंमें चिदानन्दांशका पुनः प्रादुर्भाव हो जाना है. एतावता इन लीलार्थ परिगृहीत रूपोंमें जगत्कर्तृत्वादि अनन्यसाधारण गुण-धर्म-सामर्थ्यका प्रादुर्भाव विवक्षित नहीं है. क्योंकि इन लीलार्थ परिगृहीत अनन्त रूपोंका पार्थक्य चिदंश या आनन्दांश के तिरोधानवश ही निरूपणार्ह या पृथक् अर्थक्रियार्थ समर्थ बन पाता है. अतः आनन्दांशके पुनः प्रादुर्भाव होते ही न तो वह पार्थक्य स्वतंत्र अर्थक्रियाकरणकी सामर्थ्यका वाहक रह पाता है और न पृथक्तया निरूपणार्ह ही. अतः जब पृथक् होते हैं तब परमात्मा के असाधारण गुणधर्मसामर्थ्य आनन्दांशके तिरोधानवश तिरोहित ही हो जाते हैं और जब आनन्दांशका प्राकट्य हो जाता है तो पार्थक्य लुप्त हो जाता है. अतः परमात्माके जगतकर्तृत्वादि असाधारण गुणधर्मसामर्थ्यकी असाधारणताको कोई आंच नहीं आती. अतएव द्वादशस्कन्ध वर्ण्य विषयीभूत ब्रह्मभावापत्ति या आश्रयभावापत्ति का कुल तात्पर्य महाप्रलय-कालीन लीलार्थ प्रकट अनन्तानन्त नाम-रूप-कर्मके ऐच्छिक द्वैतमें सच्चिदानन्दस्वरूपके स्वाभाविक अद्वैतकी पुनरभिव्यक्ति है. अस्तु.

इस तरह पूर्वोत्तरभावसंगतिके विचारवश भी महाप्रभुको अभिप्रेत अर्थ उपपन्नतर है कि निरोधलीला भगवानकी इस भूतलपर प्रकट हुई वे लीलायें हैं जिनके कारण भक्त प्रापञ्चिक विषयोंको भूलकर भगवानमें अनन्यासक्त हो जाते हैं.

अतएव 'निरोध' पदकी चार आकांक्षायें हैं:

आकांक्षा	पूर्ति
१.किसका निरोध ?	लीलान्तःपाती भूतलस्थित भक्तोंका.
२.कहां निरोध ?	लीलाविहारार्थ भूतलपर प्रकट भगवानमें.
३.किस साधनसे निरोध ?	प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वक भगवदासक्तिद्वारा.
४.किससे निरोध ?	प्रापञ्चिक विषयोंसे.

यह वही अवस्था है जिसका वर्णन श्रीभागवतके पूर्वोदाहृत दो श्लोकोंमें किया गया.

इस पारस्परिक तन्मयतामें प्रकट अन्यानुसन्धानरहित अनन्यासक्तिको ''नायं सर्पः रज्जुरियं'' रूप बाधज्ञानोत्तर तत्त्वज्ञान अथवा उपासनार्थ आरोपित द्वैतका आहार्य ज्ञान भी नहीं कहा जा सकता है. सर्वप्रथम तो यह भगवदितर प्रापञ्चिक विषयोंके अभान या बाधितार्थानुवृत्तिसे घटित नहीं होती. क्योंकि जिस प्रापञ्चिक विषयका भान होता है वह भगवल्लीलासे संबद्धतया ही. अतः अभान नहीं कहा जा सकता. इसे बाधितार्थानुवृत्ति भी नहीं स्वीकारी जा सकती क्योंकि भगवत्स्वरूप या भगवल्लीला से असंबद्ध प्रापञ्चिक विषयोंकी स्फूर्ति या स्मृति या अपेक्षा नहीं रह जाती.

पूर्वोदाहृत छान्दोग्योपनिषद्वचनमें भूमाकी अनुभूतिमें तदादेश अहंकारादेश और आत्मादेश की क्रमिकता जो वर्णित हुई है, वहां 'तत्' पदवाच्य परोक्षता एवं 'अहं' पदवाच्य अपरोक्षता को एकनीड करनेवाली आत्मानुभूति होती है. ईशावास्योपनिषद् इसे ही–

''यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते
यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद् विजानतः
तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः''(६-७).

अनेक नाम-रूप-कर्मोंका 'एकमेवाद्वितीय' ब्रह्मत्वेन तत्त्वानुदर्शन कहता है. इसी तरह 'एकमेवाद्वितीय' ब्रह्मतत्त्वका अनेक नामरूपकर्मत्वेन लीलानुभावन है. भगवद्गीता भी इसी तथ्यका समर्थन करती है.

''यदा भूतपृथग्भावमेकस्थम् अनुपश्यति
ततएव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तथा'' (भग.गीता १३।३०).

इस भूतपृथग्भावके ब्राह्मिक विस्तारको एकस्थत्वानुदर्शन या एकत्वानुदर्शन के रूपमें पहचान लेना अतीव गूढ आध्यात्मिक रहस्य है. अन्यथा इसे अनेकत्वके बाधज्ञानतया स्वीकार लेनेकी आध्यात्मिक धांधल हो ही जाती है. बाधज्ञानमें सच्चिदानन्दरूप ब्रह्मकी अपने चिदंश या आनन्दांश को तिरोहित कर पानेकी शक्ति तथा विविध नाम-रूप-कर्मोंको आविर्भूत करनेकी शक्तिके कारण जो पार्थक्य या संकोच प्रकट हुवा है, उसका पुनर्विस्तार नहीं हो पाता किन्तु निरास हो जाता है. यह ईशावास्योपनिषद्वर्णित विजुगुप्साका निराकरण नहीं कर पाता; अपितु बाधित नाम-रूप-कर्मोंकी अनेकताके प्रति उनके बाधित होनेके कारण मिथ्या, मिथ्या होनेके कारण भ्रम-अज्ञानजन्य, भ्रम-अज्ञानजन्य होनेके कारण दुःखरूप होनेकी जुगुप्साको और गहरा देता है. ईशावास्योपनिषद्, जबकि, सर्वभूतोंको आत्मामें और आत्माको सर्वभूतोंमें दर्शन कर पानेके प्रकारमें सभी तरहकी जुगुप्साओंके निरस्त होनेकी बात समझाता है.

बाधज्ञानमें विषयोंकी बाधितत्वेन स्मृति तथा अधिष्ठान के केवलाद्वैतकी अनुभूति होती है, ''ऐतदात्म्यम् इदं सर्वम्'' श्रुतिवर्णित तादात्म्य या शुद्धाद्वैत की नहीं. तादात्म्य एक और लंबी छलांग है जहां नाम-रूप-कर्मगत द्वैत और ब्रह्मगत अद्वैत के बीचमें रही द्वैतबुद्धिको भी लांघना पडता है. अर्थात् एकत्वात्यन्ताभाव और द्वित्वात्यन्ताभाव रूप द्वैत और अद्वैत के बीच रहा द्वैत भी विलुप्त हो जाता है.

''ब्रह्मैतद्धि सर्वाणि नामानि रूपाणि कर्माणि बिभर्ति एतत्
त्रय सद् एकम् अयमात्मा. अयमात्मा एकः सन् एतत् त्रयम्''.
(बृहद्.उप.१।६।१-३).

सब कुछ आत्मामें है तथा सबमें आत्माके होनेकी सरसता इस अनुभूतिकी विशिष्टता है. अतएव 'ऐतदात्म्यं सर्वम्'के सिद्धान्तको स्वीकारनेपर 'तत्त्वमसि' श्रुतिवर्णित 'त्वम्' पदनिर्दिष्टका 'तत्' पदनिर्दिष्टत्वेन ब्राह्मिक विस्तार घटित हो पाता है. यह दोनोंके बीच रहे स्वाभाविक तादात्म्यवश होता होनेसे 'त्वं'पद या 'तत्' पदके वाच्यार्थोंकी भागत्यागपूर्विका लक्षणाका सहारा लेना यहां आवश्यक नहीं. क्योंकि एकमेवाद्वितीय सच्चिदानन्द ब्रह्ममें अनेकानेक

नाम–रूप–कर्मोंका पार्थक्य जो आनन्दांश या चिदंश के तिरोधानवश प्रकट हुआ है, वहां भी सदंशके अतिरोहित ही रहनेसे सत्तया अनन्त नाम–रूप–कर्मोंका एक उस परमसत्ताके साथ स्वाभाविक तादात्म्य अक्षुण्ण ही है. इसे ही अनुलक्षित करके 'त्वं पदनिर्दिष्टका 'तत्' पदनिर्दिष्टतया ब्राह्मिक विस्तार सुनिरूप्य बन जाता है.

इसे ही महाप्रभु इन शब्दोंमें कहते हैं–

''आनन्दांशाभिव्यक्तौ तु तत्र ब्रह्माण्डकोटयः
प्रतीयेरन् परिच्छेदो व्यापकत्वं च तस्य तत्''

(नि.शास्त्रार्थ.५४)

माँ यशोदाकी गोदमें खेलता हुआ बालकृष्ण स्वरूप अखिल ब्रह्माण्डका आधार बना ही रहता है. इससे सिद्ध होता है कि ब्रह्म अणुरूपतया प्रकट होनेपर भी व्यापकता छोड़ता नहीं. अतएव जीवात्माको जब ज्ञान या भक्ति की पराकाष्ठामें अपने ब्रह्मतादात्म्यकी स्फूर्ति होने लगती है तब उस जीवात्माके परिच्छिन्न रहनेपर भी कोटि ब्रह्माण्डोंकी निजमें प्रतीतिको संभव बनानेवाली व्यापकता भी अनुभूत होने लग जाती है. स्वयं ब्रह्मके विरुद्धधर्माश्रय होनेसे अणुत्व व्यापकत्वरूप धर्मोंके विरोध ब्रह्ममें एकनीड बन जाते हैं. ऐसे ही स्वब्रह्मतादात्म्यकी अनुभूति होनेपर जीवमें भी विरुद्धधर्माश्रयता प्रकट हो जाती है.

यह ब्रह्मतादात्म्य ही नश्वरता जडता दुःखरूप विरुद्धधर्मासहिष्णुभिन्नता जैसे जुगुप्साजनक धर्मोंकी स्फूर्तिका विलोपक होता है : ''ततो न विजुप्सते''.

ब्रह्मतादात्म्यके अनुदर्शनको केवल अनुभवके अर्थमें नहीं समझना चाहिये, क्योंकि 'अनु' निपात जैसे 'अनुभव'पदमें ज्ञानार्थक होता है, वैसे ही 'अनुसार–अनुचर' पदोंमें 'पश्चात्'के अर्थमें प्रयुक्त होता है. 'अनुकम्पा' 'अनुनय' 'अनुरोध'–'अनुकरण'–'अनुष्ठान'–'अनुमोदन'–'अनुकूल' जैसे पदोंमें क्रमशः कृपा–सान्त्वन–इच्छा–सादृश्य–आचरण–अंगीकार–आनुकूल्य अर्थोंमें भी प्रयुक्त होता उपलब्ध होता है. अतः 'अनुवाद'में जैसे पूर्वकथित बातका निरसन या बाध किये बिना, उसी बातको किसी दूसरी भाषा या निरूपणशैली में कहे जानेका बोध होता है, वैसे ही पूर्वदृष्ट द्वैतके बाध किये बिना ही उस द्वैतका अद्वैतनिष्ठतया अनुदर्शन ही विवक्षित है. अतः एकत्वानुदर्शन

एकमेवाद्वितीय ब्रह्मरूप अधिष्ठानमें आरोपित द्वैतका बाधज्ञान या दर्शन नहीं है. यह तो सुवर्णानभिज्ञ कुण्डलदर्शीको कुण्डलकी सुवर्णात्मकताके उपदेशद्वारा पैदा होनेवाला कुण्डलकी सुवर्णात्मकताका अनुदर्शन है. जो बात ''ऐतदात्म्यमिदं सर्वं तत्त्वमसि''के अर्थघटनमें ध्यान रखनी आवश्यक है वही ''अहं ब्रह्मास्मि'' या ''सर्वं खलु इदं ब्रह्म'' जैसे वचनोंका भी निगूढाभिप्राय है. इसे हम इस बृहदारण्यकवचनसे भलीभांति समझ सकते हैं–

> ''पहले यह पुरुषविध आत्मा ही केवल था. किन्तु चारों ओर अन्वीक्षण करनेपर अपने–आपसे अलावा अन्य किसीका वह अनुभव कर न पाया... (क्योंकि) ब्रह्म ही तो केवल पहले था. उसने अपने–आपको 'मैं ब्रह्म हूं'के रूपमें पहचाना और वह सब कुछ बन गया. अतः जो भी देव ऋषि या मनुष्य 'अहं ब्रह्मास्मि' के तथ्यको जान लेता है वह सर्वरूप हो जाता है''.
>
> (बृहद, १।४।१–१०).

इसी औपनिषदिक रहस्यको व्रजकी गोपिकाओंने भी बड़ी गहराईसे अनुभव करके कहा है– ''प्रेष्ठो भवान् तनुभृतां किल बन्धुः आत्मा'' (भाग. १०।२९।३२).

व्रजमें माता यशोदाके समक्ष निजमुखमें ब्रह्माण्डभासकी क्रीडा हो, या वृन्दावनमें गोपिकाओंके साथ रासक्रीडा हो, या मथुराकी रंगभूमिमें दर्शकोंके भावानुरूप अनुभावोंको प्रकट करनेकी लीला हो, या द्वारकामें रनिवासक्रीडा हो; इन सभी लीलाओंका प्रमुख वर्णनाभिप्राय एक श्रीकृष्णकी अनेकरूपताके सामर्थ्यका निरूपण है. अतएव स्पष्ट शब्दोंमें श्रीभागवतकी यह घोषणा है कि

> ''गोपिकाओं, उनके पतिओं और सभी देहधारिओंके भीतर बिराजमान ही परमात्मा अपने दिव्य विग्रहको श्रीकृष्णके स्वरूपमें प्रकट कर क्रीडा कर रहा है''.
>
> (द्र. भाग. १०।३३।३६).

क्रीडार्थ प्रकटित 'तत्–त्वम्' 'अहं ब्रह्म' या 'इदं सर्वं–ब्रह्म' रूप ऐच्छिक पारमार्थिक पार्थक्यमें उस स्वाभाविक सत्तादात्म्यके ही उद्बोधनार्थ

''अस्तीत्येवोपलब्धव्यः तत्त्वभावेन चोभयोः
अस्तीत्येवोपलब्धस्य तत्त्वभावः प्रसीदति''

(कठोप.२।३।१३) कहा गया है.

जो एकमेवाद्वितीय परमसत्ता है उसीमें सत्यसंकल्प तथा सर्वभवन-सामर्थ्य के वश 'तत्'-'इदं'-'त्वम्'-'अहम्'की लीला प्रकट हुई है. अतएव 'तदस्ति' 'इदमस्ति' 'त्वमसि' 'अहमस्मि' जैसी अनुभूतिओंमें सत्तादात्म्यकी प्रतीति अक्षुण्ण ही रहती है. जिस आत्मैक्य या आत्मतादात्म्य की अनुभूतिके वश सारी जुगुप्सायें खतम हो जाती हैं उसकी 'उपलब्धि' कहो या 'तत्त्वभावप्रसाद' कहो उसे पानेका भगवद्गीताके द्वारा उपदिष्ट प्रकार है

''बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दन्त्यात्मनि यत् सुखं
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखम् अक्षयम् अश्नुते''

(भग.गीता ५।२१).

बाह्यस्पर्शोंमें इस अनासक्तिपूर्वक आत्मासक्तिके ज्ञानमार्गीय वर्णनको ही दूसरे भक्तिमार्गीय शब्दोंमें प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वक भगवदासक्ति कहा जा रहा है जो दशमस्कन्धका प्रमुख वर्ण्य विषय है. यह हम देख ही चुके हैं.

पुनः ज्ञानमार्गीय साधनाके सन्दर्भ में बाह्यस्पर्शानासक्तिपूर्वक आत्मासक्ति या भक्तिमार्गीय साधनाके सन्दर्भमें प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वक भगवदासक्ति जैसे हम कहते हैं, वैसे ही लीलाके सन्दर्भमें इसे प्रपञ्चाधिकरणिका स्वासक्ति-प्रदायिनी भगवत्क्रीडाके रूपमें परिभाषित किया जाता है. यहां 'स्वासक्तिदायिनी' विशेषण अतिशय महत्त्वपूर्ण है. क्योंकि भगवानकी प्रपञ्चाधिकरणिका लीलाओंमें भक्तिके बजाय काम-क्रोध-द्वेष-भय जैसी विपरीत मनोवृत्तिओंके कारण भी भगवत्तन्मयता और तद्वारा मुक्तिप्रदानके प्रसंग भी अनेकानेक वर्णित हुवे ही हैं. इन्हें भगवल्लीलामें प्रकटित भगवत्सामर्थ्यके रूपमें तो सोचा-समझा जा सकता है परन्तु वह तो भक्तिके माहात्म्यातिशयके प्रतिपादनार्थ लीला है. क्योंकि ऐसी निषिद्ध मनोवृत्तिवाले अधिकारिओंको भी भगवानने मुक्तिदान तो किया ही है; तो जिन भक्तोंकी प्रपञ्चासक्ति दूर करके भगवानने निजस्वरूपमें जिन्हें आसक्तिका दान किया हो तो ऐसी भगवदासक्तिका मुक्तिसे उत्कृष्टतर होना तो स्वतःसिद्ध बात हो जाती है.

एतदर्थ नवमस्कन्धकी वर्ण्य विषय भक्तिके अधिकारियोंके साथ जो निरोधलीला सम्पन्न की गई, निरोधलीलाका वह प्रकार प्रकरणोपात्त प्रमुख प्रकार है. जबकि अभक्तोंको उनकी भय-द्वेष आदि वृत्तिओंको प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वक

भगवद्भय अथवा प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वक भगवद्द्वेष की अवस्थाओंमें पहुँचानेवाली निरोधलीलाका प्रकार प्रकरणोपात्त प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वक भगवदासक्तिरूप निरोध–लीलाके केवल उत्कर्षसाधनार्थ है. अतः उसकी प्राकरणिक महत्ता उतनी नहीं है. लीलामाहात्म्य तथा स्वरूपमाहात्म्य का बोध जगाकर भक्तिके उत्कर्षका निरूपण अथवा पूर्वनिर्दिष्ट भक्तियोगवितान ही उन लीलावर्णनोंका प्रमुख प्रयोजन है.

लीलासन्दर्भमें प्रपञ्चविस्मृतिका वही उपयोग है जो साधनासन्दर्भ में माहात्म्यज्ञानपूर्वक सुदृढ सर्वतोधिक स्नेहतया परिभाषित भक्तिमें माहात्म्यज्ञानका उपयोग है. प्रापञ्चिक विषय ब्रह्मात्मक हैं यह माहात्म्य प्रापञ्चिक नाम–रूप–कर्मात्मक विषयोंका नहीं प्रत्युत ब्रह्मका ही है. अतः नामरूपकर्मोंमें आसक्ति छोडकर उन्हें विस्मृत कर नाम रूप–कर्मधारी ब्रह्ममें आसक्त होना चाहिये. अतः ''प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वक = माहात्म्यज्ञानपूर्वक'' तथा ''भगवदासक्ति = सुदृढ सर्वतोधिक स्नेह'' के समीकरणोंको सर्वदा हृद्गत रखना चाहिये.

ब्रह्मप्राप्तिके ज्ञानभक्त्यादि उपायोंके भगवत्कृपया सफल होनेपर परमात्मप्राकट्य होता है –यह तो औत्सर्गिकी मर्यादा है. अपवादरूपेण कभी निजेच्छया या कृपया सर्वजनसाधारणगम्यतया अथवा भक्तविशेषगम्यतया, जब जीवकृतसाधननिरपेक्ष भगवत्प्राकट्य हो जाता हो, तब साधनफल–भावमें व्युत्क्रम या साधनवैयर्थ्य भी हो जाता है, तब भगवत्प्राप्तिके असाधन भी साधन बन जाते हैं, तब ज्ञानभक्तिकी तरह अज्ञान–भय–द्वेष–कामादि किसी भी मनोवृत्तिवाली भगवदभिमुखता भी केवल कारगर हो जाती है. यहां किन्तु अवधेय यह है कि जिन लीलाओंके द्वारा निरोधका भक्तिसन्दर्भोपात्त ''प्रपञ्च–विस्मृतिपूर्वक भगवदासक्ति'' स्वरूप घटित नहीं होता किन्तु प्रपञ्चविस्मृति पूर्वक भगवद्भीति या प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वक भगवदसूया स्वरूप सम्पन्न किया गया है. उस निरोधके अधिकारिओंके मुक्त होनेका उल्लेख उन्हें मूलतः एकादशस्कन्धीय लीलाके अधिकारी होना सिद्ध करता है. जैसे जिन्हें मुक्तिदान नहीं परन्तु मृत्युदान दिया गया वे विगत सर्गादिलीला या आगामी आश्रयलीला के अधिकारी जीव हैं. दशमस्कन्धीय निरोधलीलामें इन मुक्तियोग्य अधिकारिओंका निरूपण वर्ण्यमान लीलाके प्रमुखपात्रतया नहीं किन्तु लीलाके उत्कर्षाधायक सहकारीपात्रतया हुआ

है. क्योंकि मुख्य प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वक भगवदासक्तिसे सम्पन्न अधिकारिओंकेलिये मुक्ति या मृत्यु इकसार ही होते हैं: ''**स्वर्गापवर्गनरकेष्वपि तुल्यार्थदर्शिनः**'' (भाग.पुरा.६।१७।२८). अतएव भागवती भक्तिके अधिकारिओंकेलिये यह बात कही गई है:

> ''सालोक्य सार्ष्टि सामीप्य सारूप्य एकत्व जैसी मुक्तिओंमेंसे किसी भी प्रकारकी मुक्ति भगवद्भक्त तो स्वीकारना नहीं चाहते, क्योंकि भक्तको तो भगवानकी भक्तिमयी सेवा ही अधिक रुचती है'' (भाग.पुरा.३।२९।१३).

निरोधलीलाके वास्तविक या प्रमुख पात्र या अधिकारिओंके बारेमें श्रीभागवतकारके ये उद्गार नितान्त मननीय है:

> ''न तो ब्रह्मा न भव और न स्वयं श्रीलक्ष्मी को भी मुक्तिदाता भगवानका वैसा प्रसाद अनुग्रह मिल पाया जैसा व्रजगोपीको मिला था''(भाग.पुरा.१०।९।२०).
>
> ''इस पृथ्वीपर केवल इन गोपिकाओंका ही देहधारण करना श्रेष्ठ है तथा फलरूप है. क्योंकि निखिलात्मा गोविन्दमें ही केवल इनका भाव रूढ हो गया है, संसारभयसे भीत मुनिगण और हम भी इस भावको पाना चाहते हैं क्योंकि भगवानकी इन दिव्य लीलाओं में यदि किसीकी रुचि नहीं पनप पाती तो उस व्यक्तिका ब्रह्माके रूपमें जन्मग्रहण भी व्यर्थ ही होता है'' (भाग.पुरा.१०।४७।५८).

भोगमोक्षातिशायिनी भगवानकी इस निरोधलीलाके उपक्रमतया दशमस्कन्धके प्रारम्भके चार अध्याय जन्मप्रकरण हैं, पश्चात् तामसभक्त राजसभक्त सात्त्विकभक्त तथा निर्गुणभक्तों के साथ भगवानकी निरोधलीलाके वर्णनार्थ चार प्रकरण हैं :

१. तामसप्रकरण (५–३५ अध्याय)
२. राजसप्रकरण (३६–६३ अध्याय)
३. सात्त्विकप्रकरण (६४–८४ अध्याय)
४. निर्गुणप्रकरण (८५–९० अध्याय)

एतदन्तर्गत प्रस्तुत खण्ड तामसप्रकरणान्तर्गत प्रमाणप्रकरण है. यह ५वें अध्यायसे प्रारम्भ कर ११वें अध्याय तक अर्थात् सप्ताध्यायात्मक है.

महाप्रभुके अनुसार आदिके चार अध्याय जन्मप्रकरण हैं, क्योंकि भक्तियोगवितानार्थ (अर्थात् प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वक भगवदासक्तिरूप निरोधजननार्थ) भूतलपर भगवत्प्राकट्य है. भगवद्भक्ति करनेवालोंके कालादिकृत भयका निवारण, दैत्यमारण, वंशस्थापन, मोक्षदान आदिकी लीलायें पुरुषोत्तम अपने चार व्यूहोंद्वारा सम्पन्न करते हैं. अतः चार व्यूहोंकी जन्मलीलाके द्योतनार्थ चार अध्याय हैं. स्वयं पुरुषोत्तम तो अपने व्यूहोंके जन्मद्वारा अजन्मा होनेसे स्वतः ही प्रकट हो जाते हैं. पुरुषोत्तमप्राकटयका प्रयोजन भक्तियोगवितान अर्थात् निरोधलीला ही है. इस निरोधलीलाके अंगतया भयनिवारण, असुरमारण, वंशस्थापन या मुक्तिदान आदिरूप जो लीलायें हैं वह व्यूहविशिष्ट पुरुषोत्तमकी लीला, अर्थात् लीलार्थ प्रकट पुरुषोत्तमके तत्तद् व्यूहद्वारा सम्पन्न लीला है.

क्योंकि जिन भक्तोंका निरोध करना है उनकी प्राथमिकी अवस्था अज्ञानजन्य भ्रमपूर्ण हठयुक्त स्वभाववाले स्नेहभावकी होती है. अतः प्रथम तामसप्रकरण है. यह तामसभाव ही प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वक भगवदासक्तिवशात् क्रमशः राजसभाव, सात्त्विकभाव और पर्यवसानमें निर्गुणभावरूप प्रपञ्चविस्मृति पूर्वक भगवदासक्तितया सम्पन्न हो जाता है. इस लीलामें लौकिकदृष्टिसे अथवा साधनाके दृष्टिकोणसे भगवद्भक्ति करनेवाले भक्त निम्नकक्षाके होते हैं परन्तु भक्तनिरोधार्थ भगवानके भक्तसाधारणीभवनकी पुष्टिकी परमकाष्ठापन्न मधुरताको लक्ष्यमें लानेपर वही उत्तमोत्तम कक्षा बन जाती है. इस साधारणीकरणकी प्रक्रियामें तामसभावसे राजसभाव सात्त्विकभाव और अन्तमें निर्गुणभावापन्न निरुद्ध भक्तोंका भगवानके साथ साधारणीभवन परमकाष्ठापन्न हो जाता है, जिससे आगे चलकर सालोक्यादि मुक्ति और आश्रयभावापत्ति की ओर भक्त भक्ति तथा भगवान अग्रसर होते जाते हैं, यही एकादश-द्वादशस्कन्धकी लीलाओंका स्वरूप है.

जो भक्त राजसभाव या सात्त्विकभाव वाले हैं उन्हें, उनके धरातलपर उनके साथ साधारणीकरणकी प्रक्रियाके द्वारा भगवान राजसलीला या सात्त्विकलीलाओं द्वारा निरुद्ध करते हैं. इसे स्थूलतया व्रजलीला मथुरालीला द्वारकालीला और वैकुण्ठलीला के निरूपणद्वारा समझा जा सकता है, क्रमशः तामसलीला राजसलीला सात्त्विकलीला और निर्गुणलीला के सन्दर्भमें ही.

एतदन्तर्गत प्रस्तुत तामसप्रकरणके वर्ण्य विषयका स्वरूप इस तरह है.

क्योंकि स्कन्धार्थ निरोधलीला है अतः इस पृष्ठमूमिमें तामसप्रकरण, तामसभक्तोंके बीच प्रकट पुरुषोत्तमकी अपने तामस भक्तोंकी प्रपञ्चासक्ति छुडाकर निजासक्ति प्रदान करनेवाली लीला, तामसनिरोधलीलाके वर्णनपरक है.

यह तामस व्रजभक्तोंका निरोध व्रजमें साधारणीकरणकी प्रक्रियाके द्वारा उन्हींकी तरह बालगोपाल बनकर भगवानने सम्पन्न किया है. क्योंकि प्रमाणतया अथवा प्रमेयतया अथवा साधनतया या फलतया तामस भक्तोंको अपनेमें निरुद्ध करना है, अतः प्रमाणका स्वरूप, प्रमेयका स्वरूप, साधनका स्वरूप और फलका स्वरूप भी ऐसा ही होना चाहिये कि तामस भक्त प्रापञ्चिक विषयोंको भूलकर भगवानमें समासक्त हो जायें!

एतदर्थ महाप्रभु समझाते हैं कि तामस भक्तोंके पास प्रारम्भसे तो भगवानको पहचान पानेके राजस या सात्त्विक प्रमाण हो नहीं सकते. न वैसे राजस या सात्त्विक रूपोंको धारण करनेवाले राजस या सात्त्विक प्रमेयमें तामस भक्त निरुद्ध ही हो पायेंगे. अतः उनके निरोधका प्रमेयीभूत भगवत्स्वरूप भी साधारणीकरणकी प्रक्रियाद्वारा तामस ही होगा; अर्थात् तामसनिरोधावलम्बनरूप तामसप्रमेय ऐसे प्रमेयको पाने के साधन भी राजस या सात्त्विक होनेके बजाय तामस ही होंगे; तथा उन तामस साधनोंसे लभ्य फलका स्वरूप भी तामस ही होगा, अर्थात् ऐसा फल कि जिससे तामस भक्त परमानन्दित हो पायें!

इन आशयोंसे व्रजमें भगवानकी बाललीला तथा कुमारलीला का वर्णन प्रमाणप्रकरणमें, पौगण्डलीलाका वर्णन प्रमेयप्रकरण तथा साधनप्रकरणमें हुआ है; और किशोरलीलाका वर्णन फलप्रकरणके रूपमें किया गया है (जन्मसे लेकर अपने चरणोंसे चल पानेसे पहले बाल्यावस्था, पश्चात् कौमार्यावस्था पंचवर्षपर्यन्त रहती है. तत्पश्चात् दशवर्षपर्यन्त पौगंडावस्था रहती है. तत्पश्चात् षोडशवर्षपर्यन्त किशोरावस्था मानी जाती है).

तदनुसार तामसप्रकरणान्तर्गत प्रथम प्रमाणप्रकरणमें अपने बीचमें प्रकट हुए बालभावापन्न पुरुषोत्तमको पहचानकर प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वक भगवानकी बाललीलाओंमें तल्लीन हो जाना प्रमाणनिरोध है. स्पष्ट ही है इस तरहके निरोधकी दोहरी मांग है: एक मांग तो यह कि भगवानका अन्य गोपबालकोंकी तरह ही गोपबालक होना. दूसरी यह कि अन्य गोपबालकों जैसे ही गोपबालक होनेपर भी किसी तरह उनका असाधारण होना. अतः सम्पूर्ण प्रमाणप्रकरणकी लीलाओंमें

यह विरुद्धधर्माश्रयता ही वर्णित हुई है कि श्रीकृष्ण कैसे साधारण गोपबालक जैसे होनेपर भी असाधारण हैं और सर्वथा असाधारण होनेपर भी कैसे साधारण गोपबालकों जैसी चेष्टायें करते हैं.

इसमें इतरविस्मारणार्थ असाधारणता स्वासक्तिजननार्थ साधारणताकी अपेक्षा है. तभी प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वक भगवदासक्तिरूप निरोध बालभावापन्न श्रीकृष्ण में सम्पन्न हो पायेगा.

अतएव प्रकट भगवानके बालरूपके बारेमें भक्तिप्रयुक्त अज्ञान एवं अन्यथाज्ञान ही तामसप्रमाण बन जाते हैं. एतदर्थ अपने व्यूहसामर्थ्यवशात् प्रकट बालस्वरूपके द्वारा की गई लीलायें भगवानके उस बालरूपके अनितरसाधारण-माहात्म्यशाली होनेका संकेत देती रहती हैं. साथ ही साथ अन्य गोपबालकोंके जैसी साधारणीभूत-पुरुषोत्तमकी बाललीलायें सुदृढ सर्वतोधिक स्नेहकी जनिका बन जाती हैं. फलरूपेण इतने असाधारण कार्योंको करनेवाला बालक साधारण बालक कैसे हो सकता है जैसे तर्क उठ-उठकर भी बाललीलाके लावण्यवश पुनः-पुनः स्वतः उपशमित हो जाते हैं! और इस तरह सर्वविध कुतर्कोपशामिका भगवदासक्तिद्वारा प्रसूत अज्ञान कि यह असाधारण बालक भगवान नहीं हो सकता है; और तथाप्रसूत अन्यथाज्ञान कि यह तो अपना ही कोई बालक है –ऐसी अज्ञान तथा अन्यथाज्ञान की मनःस्थितिके वश व्रजभक्त सब कुछ भूलकर उस बालरूपमें अनन्यासक्त हो जाते हैं! यहाँ आकर अज्ञान-अन्यथाज्ञान तामसप्रमाण होनेकी दिव्य पदवी इस दिव्य लीलामें धारण कर लेते हैं.

पूर्वनिरूपणानुसार 'निरोध' पद एक साकांक्ष पद होनेसे इस सोपानपर भी इसकी चार आकांक्षायें क्या हैं यह जान लेना उचित होगा:

आकांक्षा	**पूर्ति**
१.किसका निरोध?	व्रजभक्तोंका कि जिनके बीच भगवान बालरूप धारण कर प्रकट हुए.
२.किसमें निरोध?	साधारण बालक होनेपर भी असाधारण और असाधारण होनेपर भी साधारण बालचेष्टा करनेवाले भगवानके बालस्वरूपमें.
३.किस साधनसे निरोध?	अनन्यसाधारण स्नेहजनिका बाललीलाओं द्वारा कि

	जिन्हें जान पानेका साधन भक्तिप्रसूत अज्ञान
	अन्यथाज्ञान ही हैं.
४.कहांसे निरोध ?	प्रापञ्चिक विषयोंसे.

इस तरह हमने देखा कि तामसप्रमाणनिरोधलीलाका गूढ रहस्य क्या है.

इसके बाद इस तामसप्रमाणप्रकरणके जो सात अध्याय हैं इन अध्यायोंमें वर्णित लीलायें ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान वैराग्य रूप छह गुणधर्मोसे युक्त सातवें धर्मिस्वरूप व्यूहविशिष्ट पुरुषोत्तमकी लीलायें हैं यह निरूपण होना है. तदनुसार–

अध्याय ५

तामसप्रमाण प्रकरणके प्रथम अर्थात् आदिसे पांचवे अध्यायमें भगवानने अपने ऐश्वर्य गुणके द्वारा व्रजभक्तोंको सर्वविस्मारक परमानन्दजनक नन्दमहोत्सवमें निरुद्ध किया है. पितृगृहसे गोकुलमें पहुंच जानेपर भी उत्सवका ही होना श्रीकृष्णके ऐश्वर्यका द्योतक है. यहीं वसुदेवजी नन्दको अपने पुत्रकी सुरक्षामें तत्पर होनेका सुझाव जो देते हैं उससे प्रबलीभूत अन्यथाज्ञानवश श्रीकृष्णके लालन–पालनमें विघ्नबाहुल्य प्रतीत होता है.

अध्याय ६

द्वितीय अर्थात् छठे अध्यायमें तामसभावप्रसूत अविद्यारूप पूतनाके मारणकी लीला वीर्यगुणका निरूपण है. साथ ही साथ मारी गई अविद्यारूप पूतनाकी भक्तिप्रसूत अज्ञानगंध श्रीनन्दको अनुभूत होती है, जो भगवानके बालरूपमें स्नेहभावकी वर्धिका है.

अध्याय ७

तृतीय अर्थात् सातवें अध्यायमें शकटासुर–तृणावर्तका भंग, साथ ही साथ श्रीकृष्णका पुत्रभावसे लालन करनेवाली माता यशोदाद्वारा पुत्रभारसे मोहित होना है कि जिसे तृणावर्त भी उठाकर ले जा सकता है –यह भगवानके विरुद्धधर्माश्रयरूप यशोगुणका निरूपण है.

अध्याय ८

चौथे अर्थात् आठवें अध्यायमें नामकरणलीला तथा मृत्तिकाभक्षणके व्याजसे मुखारविंदमें ब्रह्मांडप्रदर्शनलीला द्वारा भगवानके श्रीगुणका वर्णन हुआ है.

अध्याय ९

पांचवें अर्थात् नौवें अध्यायमें कुमारभावापन्न भगवानने अपने स्वरूपका कुछ ज्ञान दिया है कि अनन्तर अबाहय सर्वव्यापी परमात्मा भी स्नेहवश बंध सकता है. अतः यहां ज्ञानरूप गुणसे अपने दिव्य कुमाररूपकी कुछ पहचान भगवानने दी है.

अध्याय १०

छठे अर्थात् दसवें अध्यायमें यमलार्जुनको मुक्तिप्रदान द्वारा भक्तेतरमें अनासक्तिरूप वैराग्यगुणको प्रकट किया है– इन असाधारण कृत्योंको देखकर भी व्रजभक्तोंका स्नेह खण्डित नहीं होता और न वे ठीक तर्क करके की जाती लीलासे अन्यथा किसी रूपको ही समझ पाते हैं. अतः स्नेह बढ़ता ही चला जाता है.

अध्याय ११

सातवें अर्थात् ग्यारहवें अध्यायमें गोपजनोंका गोकुल छोड़कर वृन्दावनमें बसने जाना और वहां भगवानद्वारा वत्सासुर बकासुरका वध –यह धर्मिरूप भगवानके वर्णनपरक है. इस तरह भगवानकी कौमार्यलीलाका वर्णन हुआ है.

इस तरह तामसप्रमाणप्रकरणान्तर्गत सात अध्यायोंके वर्ण्य विषयका स्वरूप हमने समझनेका प्रयास किया.

(श्रीवल्लभविद्यापीठ–श्रीविट्ठलेशप्रभुचरणाश्रम टस्ट, कोल्हापुर द्वारा प्रकाशित की गई मूल संस्कृत श्रीसुबोधिनीकी पूज्य गो.श्रीश्याम मनोहरजी द्वारा लिखित भूमिकाका यहां प्रकाशन किया गया है.)

।। अनुक्रमणिका ।।

भागवतार्थ निबन्ध दशमस्कन्धान्तर्गत तामसप्रमाणप्रकरण(अ.५-११) ०१

श्रीपुरुषोत्तमनामसहस्रस्तोत्र (तामसप्रमाणप्रकरणके नाम) ११

दशम स्कन्ध

(तामस प्रमाण प्रकरण)

अध्याय ५. श्रीनन्दरायजीने श्रीकृष्णके प्राकट्यके उपलक्ष्यमृ उत्सव किया. १

अध्याय ६. पूतनाका मोक्ष. ४९

अध्याय ७. शकटभंजन, तृणावर्तका वध तथा श्रीकृष्णके मुखमृ विश्वदर्शन ९८

अध्याय ८. गर्गाचार्यने नामकरण संस्कार किया. १५२

अध्याय ९. दामोदरलीला यशोदाजीको भगवन्माहात्म्यज्ञान २४१

अध्याय १०. नलकुबर-मणिग्रीवको नारदका शाप तथा यमलार्जुनोद्धार २८०

अध्याय ११. नन्दादिका वृन्दावन बसना, वत्सासुर-बकासुरका उद्धार ३२८

अनुवादक

गो.वा.श्रीफतहचन्द वासु, जोधपुर

भहाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यचरण विरचित तत्वार्थदीपनिबन्धका

।। भागवतार्थ प्रकरण ।।

दशम स्कन्ध (निरोधलीला)

तामस प्रमाण प्रकरण (अध्याय ५-११)

अतस्तामसभक्तानाम् अष्टाविंशतिभिः क्रमात् ।।४०।।
मानमेयैः साधनैश्च फलैश्चापि पृथक् पृथक् ।।
भगवान् सप्तधा लीलां कुर्वन् उद्धारकः परः ।।४१।।
पुरुषोत्तमरूपेण यत् कार तद् उच्यते ।।

१.प्रमाण २.प्रमेय ३.साधन और ४.फल (इन चार उपप्रकरणों)से सात प्रकारकी पृथक्-पृथक् लीला करते हुए तामस भक्तोंका उत्तम उद्धार करनेके लिये भगवानने पुरुषोत्तम स्वरूपसे जो लीलाएं की वे अब क्रमसे अट्ठाईश अध्यायोंसे कही जाती है ।।४०-४१।।

तत्र प्रमाणभावेन सप्ताध्यायी निरूप्यते ।।४२।।

उन (ऊपर कहे हुए चार प्रकरणोंमेंसे तामस प्रमाण उपप्रकरणमें) प्रमाण भावसे सात अध्यायोंमें कही हुई लीलाका वर्णन किया जाता है ।।४२।।

भगवच्चरिते यस्मात् प्रमाणम् इह मृग्यते ।।
अज्ञानम् अन्यथाज्ञानं प्रमाणं भक्तिहेतुकम् ।।४३।।

यहाँ (उन सात अध्यायोंमें) कहा हुआ चरित्र भगवानका ही चरित्र है ऐसा (भगवान् चरित्र सम्बन्धि) प्रमाण यहीं देखनेमें आता है. भगवानके विषयमें अज्ञान और अन्यथा ज्ञान (यह भगवान् नहीं, कोई दूसरा बालक है) देखनेमें आता है इसलिए अज्ञान और अन्यथा ज्ञानसे भक्ति उत्पन्न होती है, इसलिए वह भी प्रमाण है।।४३।।

पुरुषाणाम् अत्र निष्ठा स्त्रीणां मेये ततः परे ।।
साधनं सकलानां च फलं स्त्रीषु प्रतिष्ठितम् ।।४४।।

यहां (तामस प्रकरणके प्रथम प्रमाण उप प्रकरण अध्याय ५-११में) पुरुषोंकी भगवानमें आसक्ति कही गई है, उसके पश्चात् (द्वितीय प्रमेय प्रकरण अध्याय १२-१८में) स्त्रियोंकी भगवानमें आसक्ति कही गई है. (तीसरे साधन उप प्रकरण अध्याय १५-२५)में सब (भक्तों)के साधन भगवान् होते हैं और

(चौथे तामस उप प्रकरण अध्याय २६ से ३२) फल स्त्रियोंमें प्रतिष्ठित हुआ है (अर्थात् फल मुख्यतया स्त्रियोंको प्राप्त हुआ है) ऐसा कहा गया है।।४४।।

अन्यथापि गतः कृष्ण उत्सवान् कुरुतेऽखिलान् ।।
अत ऐश्वर्यभावोऽत्र प्रथमे विनिरूपितः ।।४५।।

दूसरी प्रकारसे पधारे हुए श्रीकृष्ण भी सब प्रकारके उत्सवोंको करते हैं. इसलिए (तामस प्रमाण उप प्रकरणको) प्रथम मूलतः पंचम अध्यायमें भगवानके (छ गुणोंसे प्रथम) ऐश्वर्य भावका निरूपण हुआ है।।४५।।

पूतनामारणं वीर्यं यशस्तु शकटादिनुत् ।।
शकटं तामसं प्रोक्तं तृणावर्त्तस्तु राजसः ।।४६।।
लालनं पुत्रभावेन सात्विकं मोहनं तथा ।।

भगवानके दूसरे 'गुण' वीर्य और तीसरे 'यश'को दिखाते हुए कहते हैं पूतनाका वध (अध्याय छमें) भगवानका वीर्य दिखाता है और 'शकट आदि'का नाश किया (अध्याय ७ में) वह 'यश' दिखाता है. सातवें अध्यायमें भगवानका 'यश' गुण किस प्रकारसे दिखाते हैं तो कहते हैं कि शकट तो (भारी होनेसे) तामस था, तृणावर्त (चंचल होनेसे) राजस था और यशोदाने भगवानका पुत्र भावसे लालन (लाड़ प्यार) किया, तथा (भगवानके मुखमें विश्वको देखकर विस्मित हुई और फिर) भगवानने उसको मोहित किया, यह (उसको ज्ञान उत्पन्न करनेवाला होनेसे) सात्विक है।।४६।।

श्रीस्तु लीला नामयुक्ता ज्ञानं बन्धनबोधनम् ।।४७।।
यमलार्जुनयोर्मुक्तिः वैराग्यं भगवान् परः ।।
सप्ताध्यायास्तु यत्रैव तत्रैवं बुध्यतां क्रमः ।।४८।।

अब भगवानके शेष तीन गुणों 'श्री' 'ज्ञान' और 'वैराग्य'का तथा 'धर्मी'का वर्णन करते हुए कहते हैं. नामसे सम्बन्ध रखनेवाली लीला (अध्याय ८में गर्गजी द्वारा नामकरण संस्कार) (तथा उससे पहिले आई हुई रिंगणादि लीला) 'श्री'का वर्णन किया गया है (वह श्री इसलिए है कि उससे सबका दुःख दूर होता है) भगवानके बन्धन बतानेवाली लीला (अध्याय ९में वर्णित यशोदा द्वारा लाई हुई अनेकों रस्सियोंसे नहीं बन्धे परन्तु माता पर कृपा कर स्वयं बंधनसे आ गये) 'ज्ञानका वर्णन है', (दशवें अध्यायमें) दो जोड़के अर्जुन वृक्षोंकी मुक्तिका वर्णन कर भगवानके 'वैराग्य'का निरूपण किया गया है और (अध्याय ग्यारहमें) धर्मी भगवानका निरूपण किया गया है (इसमें भगवानकी स्वतन्त्र

लीलाका वर्णन है) जिस प्रकरणमें सात अध्याय हों वहां ऐसा ही क्रम समझना चाहिये (अर्थात् प्रथम छः अध्यायोंमें क्रमशः भगवानके ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान, वैराग्य –छः गुण और सातवें अध्याय धर्मी भगवानका वर्णन)

अमेये मेयबुद्धिर्हि प्रमाणम् इति केचन ।।

कुछ लोगोंका मत है कि जिस भगवानको जाना नहीं जा सकता उसके विषयमें ऐसी बुद्धि रखना कि वह जाना जा सकता है इसको प्रमाण कहते हैं (परन्तु श्रीमहाप्रभुजीको यह मत मान्य नहीं) ।।

अष्टावत्र प्रमाणानि द्वयम् एकत्र रूपितम् ।।४९।।

यहां (इस प्रमाण उप प्रकरणमें) आठ प्रमाण हैं. सात अध्यायोंमें सात और सप्तमाध्यायमें दो का वर्णन एक साथ है (स्त्रियों और बालकोंको ऐसा ज्ञान प्राप्त करनेवाला कहा गया है) ।।४९।।

विशेष: भाग.२।८।२५की सुबोधिनीमें यह बताया गया है कि कैसे ज्ञानको प्रमाण माना गया है.

प्रथमो वसुदेवो हि द्वितीयो नन्द उच्यते ।।
बालास्त्रियस्तृतीया हि चतुर्थो गर्ग उच्यते ।।५०।।
यशोदा पञ्चमी प्रोक्ता षष्ठरूपाविहाऽर्जुनौ ।।
उपनन्दस्तु निर्दिष्टः सप्तमो धर्मिबोधकः ।।५१।।

(अब उन आठोंको बताते हैं) प्रथम (पांच अध्यायमें) तो वसुदेवजीको कहे गये हैं (नंदजी वसुदेवजीकी वार्तासे विदित हो गये कि नन्दजीको वसुदेवजीका भगवानको लेकर व्रजमें आना विदित नहीं था तथा नन्दजी श्रीकृष्ण को अपना ही पुत्र मान रहे हैं), दूसरे (षष्ठ अध्यायमें) नन्दजीको कहे गये हैं (वे भगवानको अपना पुत्र मानते हैं) तीसरे (सप्तम अध्यायमें शकट भंगसे बालकोंको (तृणावर्तके सम्बन्धमें) तथा स्त्रियोंको, चौथे (अष्टम अध्यायमें) गर्गजीको (नन्दजीको भगवान् सम्बन्धि अज्ञान), पांचवे यशोदाजीको, छठ्ठे (प्रमाणके) स्वरूप दो अर्जुन वृक्ष और सातवां धर्मी बोध करानेवाला उपनन्द (जिसने श्रीकृष्णको लौकिक बालक ही जाना)को कहा गया है. (भगवान् सम्बन्धि अज्ञान अथवा अन्यथा ज्ञान भी भक्ति करानेवाले होनेसे वे प्रमाण हैं) (देखो कारिका ४३ ऊपर) ।।५०–५१।।

देशदोषभ्रमं कृष्णो वारयामास चित्रधा ।।
आद्येन भगवन्मार्गे बाधकानि बहूनि हि ।।५२।।

सात प्रकारसे लीलाको करनेका प्रयोजन बताते हुए तामस प्रमाण उपप्रकरणके पहिले अध्यायमें भगवान् कृष्णने देशमें दोष होनेकी भ्रांति (घोषमें रहनेवाले अज्ञानी और आचार– हीन होते हुए भी भगवान् श्रीकृष्णके पधारने पर इतना बड़ा उत्सव किया जिससे देशके दोषकी भ्रांति)का निवारण हो गया. निश्चय ही भगवानके मार्गमें बहुत विघ्न होते हैं।।५२।।

द्वितीये तदभावो हि कृष्णेनैव भवेद् इति ।।
साधकः सकलार्थानां तृतीये विनिरूपितः ।।५३।।

इसलिए (दूसरे अध्यायमें) भगवानसे ही देशके दोषका अभाव होता है ऐसा कहा गया है और तीसरे अध्यायमें कहा गया है कि भगवान् श्रीकृष्ण ही सब प्रकारके अर्थ करानेवाले हैं।।५३।।

भक्तिप्रदश्चतुर्थे हि भक्तिवश्यस्ततः परः ।।
सर्वोद्धारप्रयत्नस्तु सर्वेषां सर्वदोषनुत् ।।५४।।

चौथे अध्यायमें बताया गया है कि भगवान् ही भक्ति देनेवाले हैं (नामके माहात्म्य और बाल लीलासे) उसके पश्चात् (पांचवें अध्यायमें) बताया गया है कि भगवान् भक्तिसे वशमें होते हैं (घरकी सब रस्सियें एकत्र कर लेने पर भी यशोदा उनको नहीं बांध सकी परन्तु कृपा करके स्वयं ही बन्धनमें आ गये) इसके पश्चात् छट्ठे अध्यायमें बताया गया है कि सबके उद्धारका प्रयत्न करनेवाले भगवान् सभी दोष दूर करते हैं (नलकूबर और मणिग्रीवका उद्धार करते हैं और उनके शापके दाषको दूर करते हैं) ।।५४।।

ततोऽपि परमानन्ददायी सप्तम ईर्यते ।।
प्रपञ्चविस्मृतिः सर्वा तदासक्तिः स्फुटैव हि ।।५५।।
प्रमाणबलम् आसाद्य सर्वेषां गोकुले ह्यभूत् ।।

इसके पश्चात् सातवें अध्यायमें बताया गया हैं कि भगवान् परमानन्द देनेवाले हैं क्योंकि प्रमाण बल प्राप्त कराके गोकुलमें सब (भक्तों)के प्रपंचोकी सम्पूर्ण विस्मृति और अपनेमें आसक्ति कराना स्पष्ट बताया गया है ।।

(इस प्रकरणमें प्रत्येक अध्यायमें प्रायः पुरुषोंकी ही क्रिया बताई गई है इसलिए इस प्रकरणमें पुरुषोंकी ही भगवानमें निष्ठा होना कहा गया है.)

इति श्रीमद्वल्लभाचार्य विरचित तत्त्वार्थदीपनिबन्धके अन्तर्गत भागवतार्थ प्रकरणके तामस प्रमाण उप प्रकरणकी कारिकाएं हिन्दी अनुवाद सहित समाप्त.

।। श्रीपुरुषोत्तमनामसहस्रं स्तोत्रम् ।।

दशमस्कन्धके तामस प्रमाण प्रकरणके नाम

(७६६)प्रपंचास्मृतिकारणम्

यशोदाजीको (अपने पुत्र उत्पन्न हुआ कि पुत्री इस प्रकारका ज्ञान न रहे इस प्रकारकी) विस्मृतिमें कारणरूप भगवान् श्रीकृष्ण.

प्रभुने यशोदाजीको भान न रहे वैसी विस्मृति देनेके कारण वसुदेवजी पुत्रीको लेकर पुत्र स्थापन कर गये हैं, ऐसा भान नहीं रहा. अतएव प्रपंचमें विस्मृति होनेमें कारणरूप प्रभु ऐसे कहा गया है.

(७६७)यशोदानन्दनः. यशोदाजीको आनन्द देनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण.

(७६८)नन्दभाग्यभूगोकुलोत्सवः

श्रीनन्दरायजीके भाग्यरूप भूमि श्रीगोकुलमें आनन्दरूप अथवा नन्दरायजीके भाग्य निमित्त पृथ्वीमें तथा श्रीगोकुलमें जिनके द्वारा आनन्दोत्सव हो रहा है ऐसे भगवान् श्रीकृष्ण.

नन्दप्रियो नन्दसूनुर्यशोदायाः स्तनंधयः ।
पूतनासुपयःपाता मुग्धभावातिसुन्दरः ।।१५९।।

(७६९)नन्दप्रियः

नन्दरायजीको अत्यन्त प्रिय अथवा नन्दरायजीकी अनेक भावनाओंको परिपूर्ण करनेवाले .

(७७०)नन्दसूनुः. नन्दरायजीके पुत्र.

(७७१)यशोदायाः स्तनंधयः. यशोदाजीके स्तनोंका पान करनेवाले.

(७७२)पूतनासुपयःपाता. पूतना राक्षसीके प्राण और दूधका पान करनेवाले.

(७७३)मुग्धभावातिसुन्दरः

मुग्धभाव बाल्यभाव द्वारा अत्यन्त सुंदर अर्थात् सुशोभित.

(पयपान करते हुये पूतनाके प्राणोंका आकर्षण करके उसके भयंकर शरीरपर क्रीडा करते समय भय एवं आल्हादजनक चित्रको उद्देशित करके यह नाम बताया गया है.)

सुन्दरीहृदयानन्दो गोपीमन्त्राभिमन्त्रितः ।
गोपालाश्चर्यरसकृत् शकटासुरखण्डनः ।।१६०।।

(७७४) सुन्दरीहृदयानन्दः. व्रजसुन्दरियोंके हृदयोंमें आनन्दरूप.

जबसे भगवत्प्रादुर्भाव प्रभुका श्रीगोकुलमें हुआ है तबसे व्रजाङ्गनाओंके अंतःकरणमें आनन्दका महा उदधि–सुखका सागर उछलित हो रहा है. यह स्पष्ट भागवतके इस स्कन्धमें बताया गया है.

(७७५) गोपीमन्त्राभिमन्त्रितः.

गोपी सम्बन्धी उच्चारित मन्त्रोंके द्वारा सब प्रकारसे सुरक्षित.

पूतनाके वध पश्चात् सब गोपीजनोंने एकत्र होकर भगवान्की रक्षा 'अव्याद् अजोंघ्रिमणिमान्' इत्यादि मंत्रोंसे करी है. उसको उद्देशित करके गोपीजनों द्वारा रक्षित प्रभु ऐसा कहा गया है.

(७७६) गोपालाश्चर्यरसकृत्

सब गोपबालकोंमें आश्चर्यजनक अद्भुतरस उत्पन्न करनेवाले.

शकटके नीचे सोये हुये शिशुरूपमें आपने अपने एक चरणको ऊंचा करके शकटको ओंधा कर दिया. उस शकटरूपमें रहा हुआ शकटासुरनामके दैत्यका वध भी कर दिया. बालक होते हुये भी अद्भुत कर्म करनेसे सब नंदादि गोपोंको बहुत आश्चर्य हुआ. अतएव यहां सब गोपोंको आश्चर्यकारक रस उत्पन्न करनेवाले ऐसे श्रीकृष्ण, ऐसे कहा गया है.

(७७७)शकटासुरखंडनः. शकटके रूपमें स्थित मायावी दैत्यका नाश करनेवाले.

शकटके रूपमें दैत्य ही था. यदि ऐसा न हो तो श्रीनंदरायजीकी समृद्धिमें वृद्धि करनेवाले पधराये हुये प्रभु शकटमें रहे हुये दूध, दही, माखन इत्यादिका नाश नहीं करते. क्योंकि नंदरायजीकी समृद्धि बढ़ानेके बदले उलटी घटाई गई है. अतएव यहां शकटरूपमें रहे हुये दैत्यका नाश करनेवाले ऐसा सत्य प्रतिपादन किया गया है.

नन्दव्रजजनानन्दी नन्दभाग्यमहोदयः।
तृणावर्तवधोत्साहो यशोदाज्ञानविग्रहः ।।१६१।।

(७७८)नन्दव्रजजनानन्दी. नन्दरायजी तथा व्रजवासीजनोंको आनन्द देनेवाले.

(७७९) नन्दभाग्यमहोदयः. नन्दरायजीके भाग्यके महान् उदयरूप श्रीकृष्ण.

भगवान्का भली प्रकारसे सम्बन्ध हुये बिना इस प्रकारका महान भाग्य उदय किसीका हो नहीं सकता. पूर्णपुरुषोत्तम श्रीकृष्णको गोदीमें खिलानेवाले, उनका लालन पालन करनेवाले व्रजराज नंदरायजी भूरि भाग्यवान होंय तो इसमें

आश्चर्यकी क्या बात है? अनेक जन्मोंकी संसिद्धिसे भगवत्कृपा होनेपर ऐसा उत्तम फल प्राप्त होता है.

(७८०) तृणावर्तवधोत्साहः

आंधीके रूपमें आये हुए तृणावर्त दैत्यका वध करनेमें उत्साह युक्त.

(७८१) यशोदाज्ञानविग्रहः

यशोदाजीको ज्ञान उत्पन्न करानेके लिये जम्हाई लेते हुए अपने विश्वमय विराट् स्वरूपको प्रकट करनेवाले.

आपने जम्हाई लेते हुए श्रीयशोदाजीको अपने मुखकमलमें सकल विश्वमय विराट स्वरूपके दर्शन कराये. जिससे श्रीयशोदाजीको भगवत्स्वरूपका ज्ञान हुआ है ऐसा इस स्कन्धके पूर्वार्धमें स्पष्ट किया गया है. अतएव यशोदाजीके ज्ञानके लिये अपने स्वरूपको दर्शानेवाले प्रभु ऐसा कहा गया है. आपने जम्हाई लेते हुए श्रीयशोदाजीको अपने मुखकमलमें सकल विश्वमय विराट स्वरूपके दर्शन कराये. जिससे श्रीयशोदाजीको भगवत्स्वरूपका ज्ञान हुआ है ऐसा इस स्कन्धके पूर्वार्धमें स्पष्ट किया गया है. अतएव यशोदाजीके ज्ञानके लिये अपने स्वरूपको दर्शानेवाले प्रभु ऐसा कहा गया है.

बलभद्रप्रियः कृष्णः संकर्षणसहायवान्।
रामानुजो वासुदेवो गोष्ठांगणगतिप्रियः ।।१६२।।

(७८२) बलभद्रप्रियः. बलभद्रजीको प्रिय ऐसे भगवान् श्रीकृष्ण.

(७८३) कृष्णः

१.घनश्याम वर्ण होनेसे तथा सदानन्दस्वरूप होनेसे कृष्ण नाम सुप्रसिद्ध है. २.शत्रुओंको रणरंगभूमिमें आकर्षण करनेवाले. ३.गोपबालकों के साथ खेलते हुये खिरकमें गायोंके बछड़ोंकी पूंछको पकड़कर खेंचनेवाले.

(७८४) संकर्षणसहायवान्

संकर्षण अर्थात् बलदेवजीको सहायता करनेवाले अथवा संकर्षण द्वारा जिनको दैत्योंके संहार करनेमें सहायता प्राप्त है ऐसे प्रभु.

(७८५) रामानुजः. बलरामजीके छोटे भाई.

(७८६) वासुदेवः

१.वसुदेवजीके पुत्र. २.अखिल ब्रह्माण्डमें सर्वत्र व्याप्त होकर रहनेवाले. ३.सर्वको निवासस्थान प्रदान करके अन्न वस्त्रादिक द्वारा उनका भरणपोषण

करनेवाले. ४.स्वयं सर्वभूत मात्रके हृदयमें निवास करके शोभित, क्रीडा करनेवाले, विजय प्राप्त करनेवाले, व्यवहार करनेवाले, सर्वको प्रकाशमें लानेवाले, स्तुति पानेवाले, गति करवानेवाले और शिक्षा देनेवाले वो वासुदेव.

श्रीकृष्णका नाम 'वासुदेव' होनेके कारणको एक स्मृति बताती है कि ''सर्वभूताधिवासश्च वासुदवस्ततः स्मृतः'' (सर्वप्राणीमात्रके अंतरमें निवास करनेके कारण प्रभुको वासुदेव कहा गया है.) तथा विष्णुपुराणमें ''सर्वाणि तत्र भूतानि वसंति परमात्मनि भूतेषु च स सर्वात्मा वासुदेव इतिस्मृतः'' (सकल भूत प्राणीमात्र उस परमात्मामें निवास करते हैं और परमात्मा उन सबमें निवास करता है जिससे सर्वात्मा परमात्माको यह सब लोकमें वासुदेव कह कर स्मरण करते हैं. ऐसा महाभारत तथा अनेक स्थलोंमें वासुदेव संज्ञाके कारणको समझाया गया है.

(७८७) गोष्ठांगणगतिप्रियः

गोष्ठ अर्थात् गौशालाके आंगनमें गति करना अर्थात् चलना जिनको अत्यन्त प्रिय है ऐसे गोकुलचन्द्र प्रभु.

किंकिणीरवभावज्ञो वत्सपुच्छावलम्बनः ।
नवनीतप्रियो गोपीमोहसंसारनाशकः ।।१६३।।

(७८८)किंकिणीरवभावज्ञः

किंकिणी–चरणके अलंकारमें होनेवाले शब्दके भावको जाननेवाले.

यहां यह भाव समझना चाहिये कि जैसे वाद्यके अनुसार नृत्यकार नृत्य करता है वैसे परमात्मा किंकिणीकी आवाजको सुनकर स्वयं नृत्य करते हैं. अर्थात् किंकिणीमें होते भावमय सप्त सुरोंको अनुसरके आप नृत्य करते हैं. ऐसे ही बाल्यावस्थामें भी आप सब निजजनोंको अद्भुत चातुर्य दिखाकर उनको बालभावका आनन्द प्रदान करते हैं. ये ही तो ब्रजवासियोंके अहोभाग्य हैं.

(७८९) वत्सपुच्छावलम्बनः

वत्स अर्थात् बछड़ोंके पूंछका अवलम्बनकर उनके पीछे पीछे अनुगमन करनेवाले भगवान् बालकृष्ण.

(७९०) नवनीतप्रियः नवनीत=मक्खन जिनको अत्यन्त प्रिय है ऐसे श्रीकृष्ण.

(७९१)गोपीमोहसंसारनाशकः

गोपीजनोंको बाललीलाके दर्शनसे आपके स्वरूपमें जो मोह उत्पन्न हुआ है उस कारण उनके अहंता ममतात्मक संसारके भावको नष्ट करनेवाले.

गोपबालकभावज्ञश्चौर्यविद्याविशारदः ।

मृत्स्नाभक्षणलीलास्यमाहात्म्यज्ञानदायकः ।।१६४।।

(७९२)गोपबालकभावज्ञः. गोपबालकोंके भावको जाननेवाले.

आज अमुकके घर चोरी करके माखन खायें तो अच्छा. ऐसे सर्व गोपबालकोंके अंतरमें उद्भवित होन भाव-विचारोंकी इच्छाओंको आप भली प्रकार जानते थे एवं फिर उसी प्रकार गोपबालकोंके साथ रमण करते थे. अतएव उनके भावोंको जाननेवाले भगवान् ऐसा कहा गया है.

(७९३)चौर्यविद्याविशारदः. चोरी करनेकी विद्यामें निपुण भगवान् श्रीकृष्ण.

(७९४) मृत्स्नाभक्षणलीलास्यमाहात्म्यज्ञानदायकः

मृतिका भक्षणरूप लीलायुक्त मुखारविन्दको खोलकर यशोदाजीको अपने मुखमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड दिखाकर यशोदाजीको अपने माहात्म्यका ज्ञान देनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण.

धराद्रोणप्रीतिकर्ता दधिभाण्डविभेदनः ।

दामोदरो भक्तवश्यो यमलार्जुनभञ्जनः ।।१६५।।

(७९५)धराद्रोणप्रीतिकर्ता

धरारूप यशोदाजी और वसुओंमें मुख्य द्रोणरूप नन्दरायजी इन दोनोंमें प्रीति उत्पन्न करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण.

(७९६)दधिभाण्डविभेदनः. दधिमंथनके पात्रको विशेषरूपसे नष्ट करनेवाले.

(७९७)दामोदरः

१.दाम=रस्सी जिनके उदरपर बिराजमान है ऐसे भगवान् श्रीकृष्ण. २.दम=इन्द्रियोंका दमन करना इत्यादि साधनोंसे उदार सर्वोत्कृष्ट-श्रेष्ठ बनी निर्मल बुद्धिके द्वारा प्राप्त हो सकें ऐसे श्रीकृष्ण भगवान्.

जब दधिमंथनको न छोड़कर यशोदाजीने प्रभुको स्तनपान नहीं कराया तो उसकी रिसमें आपने दधिभाण्डको ही फोड़ डाला. तब कुपित होकर यशोदाजीने रस्सीसे आपको बांधनेका प्रयत्न किया. इस कथाको ध्यानमें रखकर इस नामको कहा गया है.

ब्रह्मपुराणमें कहा गया है कि ''उस बालक श्रीकृष्णके मध्य भागमें बंधन आनेके कारण एवं उदरमें सकल भांति रस्सीसे बंधनेके कारण, आपके रस्सीके बंधनसे बंधे होनेके कारण आपको दामोदर कहा जाता है''. व्यासजी आज्ञा करते

हैं कि ''चौदह लोक संज्ञक दाम–रस्सी जिसके उदरमें बिराजती है, उस कारण दामोदर प्रभु ऐसा कहनेमें आता है''. इत्यादि प्रमाणोंसे श्रीकृष्णका दामोदरपनासिद्ध होता है.

(७९८)भक्तवश्यः. भक्तोंके वश–आधीन ऐसे भगवान् श्रीकृष्ण.

श्रीयशोदाजीके बार बार बांधनेसे भी प्रभु बंधे नहीं. इस कारण यशोदाजी बहुत श्रमित हो गईं. उनको श्रमित जानकर प्रभु तत्काल बंध गये. जिन पूर्णपुरुषोत्तम प्रभुकी ब्रह्मादि स्तुति करते हैं वो प्रभु यशोदाजीके बांधनेसे बंध गये. ये अन्य कुछ भी नहीं परन्तु ''अहं भक्त पराधीनः'' दुर्वासाजीको कहे गये वचनको आपने सिद्ध करके बताया है.

(७९९) यमलार्जुनभञ्जनः

साथ साथमें खड़े हुए दो अर्जुन वृक्षोंको तोड़नेवाले श्रीकृष्ण भगवान्.

बृहद्वनमाश्चर्यो वृन्दावनगतिप्रियः ।
वत्सघाती बालकेलिर्बकासुरनिषूदनः ।।१६६।।

(८००) बृहद्वनमहाश्चर्यः. महावनमें महान् आश्चर्यजनक कार्य करनेवाले.

महावन–व्रजभूमिमें पूतनावध, शकटभंजन, तृणावर्तनाश, यमलार्जुन भंजनादि अनेक आश्चर्यजनक कार्य बाल्यावस्थामें ही आपने किये हैं. यह इस स्कन्धके पूर्वार्धमें स्पष्ट दर्शाया गया है. इस कारण यहां महान् विस्मयकारक जिनसे ब्रजवासियोंको बहुत आश्चर्य हुआ, ऐसे कार्य करनेवाले प्रभु, ऐसा कहा गया है.

(८०१)वृन्दावनगतिप्रियः

वृन्दावनमें भ्रमण करना अथवा क्रीड़ा करना जिनको अत्यन्त प्रिय है ऐसे वृन्दावनके चन्द्ररूप प्रभु.

(८०२) वत्सघाती. वत्सरूप धारी असुरका बलदेवजीके द्वारा घात करानेवाले.

(८०३) बालकेलिः. गोपबालकोंके साथ क्रीड़ा करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण.

(८०४) बकासुरनिषूदनः

बगुलेके स्वरूपको धारण करनेवाले बकासुर दैत्यका भली भांति नाश करनेवाले.

श्रीभागवत सुबोधिनी

दशम स्कन्ध

(निरोध लीला)

तामस 'प्रमाण' अवान्तर प्रकरण

अध्याय ५

एवं चतुर्भिरध्यायैर्जन्म विष्णोर्निरूपितम् ।।
हेतूद्यमोत्तराङ्गैश्च राजसादि गुणैर्युतम् ।।का.१।।

कारिकार्थ: इस प्रकार दशम स्कन्धके पूर्वार्धके प्रथम चार अध्यायोंमें हेतु, उद्यम और उत्तरांगसे, राजसादि गुणोंसे युक्त, विष्णुके जन्मका निरूपण हुआ.

व्याख्यार्थ: जन्म प्रकरणके चार अध्यायोंको सम्पूर्ण करनेके बाद दूसरा तामस प्रकरण प्रारम्भ करते हैं. इस तामस प्रकरणके साथ जन्म प्रकरणकी संगति बतलानेकेलिए यह 'एवं चतुर्भिः' कारिका कही गई है.

सप्त सप्ततिभिः कृत्यं हरेरत्र निरूप्यते ।।
भगवान् स्वेन धर्मैश्च सप्तधैका दशेन्द्रियैः ।।का.२।।
कृत्यं चकार यस्माद्धि ततस्तावद्भिरुच्यते ।।
त्रिविधानि च कर्माणि त्रिविधानां हिताय च ।।का.३।।

कारिकार्थ : यहां जन्म प्रकरण कहकर अब भगवान्की लीला सतहत्तर अध्यायोंमें वर्णन की जाती है.

भगवान्ने अपने स्वरूप एवं धर्मोंसे सात प्रकारसे भक्तोंकी एकादश इन्द्रियोंसे लीलाएं कीं, इससे सतहत्तर अध्यायोंसे लीलाका वर्णन किया जाता है.

तामस, राजस और सात्त्विक तीन प्रकारके भक्त हैं उनके हितकेलिए भगवान्ने तीन प्रकारसे लीलाएं की हैं.

व्याख्यार्थ: इन कारिकाओंमें श्रीमहाप्रभुजीने सतहत्तर अध्यायोंका कारण व भावार्थ बताया है कि भगवान्ने भक्तोंकी प्रत्येक [१]इन्द्रियसे [२]सात प्रकारसे लीला की है इसलिए [३]सतहत्तर अध्याय हैं .

१.भक्तोंकी ग्यारह इन्द्रियोंसे. २.एक भगवान्का स्वरूप और छ भगवान्के धर्म इस

प्रकार सात प्रकारसे. ३.ग्यारहको सातसे गुणा करनेपर गुणनफल सतहत्तर होते हैं.

प्रकाश: शंका: जब भगवान्का जन्म तीसरे अध्यायमें हुआ है तो अब तीन अध्यायोंमें जन्म निरूपण कहना संगत नहीं है.

समाधान: इस शंकाके समाधानार्थ कहते हैं कि यद्यपि भगवान्के प्राकट्यका तीसरे अध्यायमें वर्णन है, तो भी शेष(पहला दूसरा और चौथा) अध्याय भी जन्म प्रकरणके हैं. क्योंकि पहले और दूसरे अध्यायोंमे जन्मके कारण 'हेतु' एवं 'उद्यम'का वर्णन है और चौथे अध्यायमें मायाका कार्य भगवत्प्राकट्यमें सहायक है; अतः 'हेतु' और 'उद्यम' ये दोनों जन्मके पूर्वांग हैं और मायाका कार्य उत्तरांग है. इसलिए पूर्वांग एवं उत्तरांग सहित प्राकट्यका वर्णन एक ही प्रकरणका विषय होनेसे चार अध्याय जन्म प्रकरणके माननेमें कोई असंगति नहीं है. अथवा ''राजसादिगुणैः युतं जन्म'' इस पंक्तिसे राजस, तामस और सात्त्विक भक्तोंसे लीला कारणार्थ स्वरूपभूत व्यूहोंकी आवश्यकता होगी और वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध का एक-एक अध्यायमें पृथक्-पृथक् वर्णन होनेसे चार अध्याय जन्म प्रकरणके हैं. इस प्रकारसे भी असंगति मिट जाती है.

शंका: यदि यह कहा जाय कि चारों अध्यायोंमें वासुदेवादि चार स्वरूपोंका प्राकट्य है, इसलिए चार अध्याय जन्म प्रकरणके हैं तो इसका अर्थ हुआ कि पूर्ण पुरुषोत्तमका जन्म हुआ ही नहीं?

समाधान: पुरुषोत्तम स्वरूप तो अजन्मा है किन्तु 'अजन्मा ब्रह्म अनेक प्रकारसे प्रकट होता है' इस श्रुतिके अनुसार वासुदेवादि व्यूहात्मक स्वरूपोंके जन्मसे ही 'पुरुषोत्तम'का जन्म माना जाता है. इसलिए कारिकामें 'विष्णोः जन्म' पद दिया है.(जिस व्यापक सर्वात्म स्वरूपमें व्यूहादि स्वरूप भी स्थित हैं उस पूर्ण पुरुषोत्तम स्वरूपका प्राकट्य हुआ है)

लेख: पूर्वांग १.भगवान्के जन्मका हेतु भक्तका दुःख है यह पहले अध्यायका अर्थ है.

२.भगवान्के जन्मका हेतु उद्यम(मायाको आज्ञा देना आदि है) यह दूसरे अध्यायका अर्थ है.

३. रूपान्तर स्वीकरण(द्विभुज बाल रूप होना) तीसरे अध्यायका अर्थ है. कारिकामें 'च' दिया है, इसका आशय है कि द्विभुज रूपमें यह चतुर्भुज स्वरूप भी विराजमान है.

उत्तरांग ४.'हेतूद्यमोत्तरांगैः' यह समासान्त पद इसलिए दिया है कि तीनों साक्षात् भगवान्ने किये हैं. माया द्वारा किए हुए कार्योंका वर्णन चतुर्थ अध्यायमें है.

५. 'राजसादिगुणैः युतं जन्म' राजसादि गुणोंका जन्म हुआ. इसका आशय बताते हैं कि चतुर्थ अध्यायमें मायाके कार्य 'व्यामोह'को सिद्ध करनेकेलिए यह पंक्ति दी है क्योंकि 'व्यामोह' करना रजोगुणका कार्य है जो मायाके द्वारा हुआ है. इसलिए 'मायाका कार्य व्यामोह' चौथे अध्यायका अर्थ है.

यद्यपि पहले तामस प्रकरणीय लीलाओंसे प्रारम्भ होनेसे यहां(कारिकामें) 'तामसादिगुणैः' कहना चाहिए था वह न कहकर आपने 'राजसादिगुणैः' कहा है. उसका आशय लेखकार बताते हैं कि सृष्टि उत्पत्ति आदि लीलामें, प्रथम रजोगुणका कार्य-उत्पत्ति होता है. उस क्रमको लेकर 'राजसादिगुणैः' कहा है और प्रथम कारिकाके चतुर्थ पदका द्वितीय कारिकाके पहले आधे भागके साथ अन्वय करते हैं जैसे कि 'अत्र राजसादिगुणैः युतं हरेः कृत्यं सप्त-सप्ततिभिः निरूप्यते'. यहां सतहत्तर अध्यायोंमें राजसादि गुणोंसे युक्त हरिकी लीलाओंका वर्णन किया जाता है.

दशम स्कन्धमें ९० अध्याय हैं उनमें तीन प्रक्षिप्त निकालनेसे शेष सतासी बचते हैं. छः अध्यायोंमें भगवान्ने केवल ऐश्वर्यादि छः गुणोंसे लीलाएं की हैं, उन छःको एवं चार 'जन्म प्रकरण'के अध्यायोंको पृथक् करनेसे शेष सतहत्तर रहते हैं. उनमें भगवान्ने उपर्युक्त प्रकारसे लीलाएं की हैं.

योजनाशय: जैसे कि जब निरोध्य(भगवान्) भक्तके नेत्रोंका विषय स्वयं बन जाते हैं तब भक्तके नेत्रोंमें भगवान्का आनन्दमय स्वरूप एवं आनन्दमय लीलाओंका ही दर्शन होता रहता है जिससे वह भक्त प्रपञ्च भूल जाता है और उस आनन्दमें लीन होकर आनन्दी हो जाता है. ''रसं लब्ध्वा आनन्दी भवति'' श्रुतिके अनुसार जीव अपने मूल रस स्वरूपको पाकर स्वयं भी आनन्द रूप हो जाता है.

इसी प्रकार भगवान् अपने ऐश्वर्यादि छः धर्म एवं सातवें धर्मी स्वरूपसे(सात प्रकारके स्वरूपोंसे) भक्तोंकी ग्यारह इन्द्रियों द्वारा भक्तोंको आनन्ददान(रसदान) करते हैं. इसका अनुभव(पान)कर व्रजभक्तोंने कहा है कि ''अक्षण्वतां फलमिदं'' इन्द्रिय धारियोंका यही फल है. इस प्रकार सतहत्तर प्रकारकी लीलाओंके कारण सतहत्तर अध्याय हैं.

तत्त्वातिक्रमणे रोधः तामसे राजसे भवेत् ।।
कालातिक्रमणे शिष्टे कालस्तत्रैकविंशतिः ।।का.४।।

कारिकार्थ: अट्ठाईस तत्त्वोंका अतिक्रमणकर, तामस एवं राजस प्रकरणमें, तामस तथा राजस भक्तोंका निरोध किया है. इक्कीस प्रकारके कालका अतिक्रमणकर, सात्त्विक प्रकरणमें, सात्त्विक भक्तोंका निरोध किया है.

व्याख्यार्थः तामस प्रकरणमें निरोध करने योग्य तामस भक्तोंका अट्ठाईस अध्यायोंमें की हुई लीलाओं द्वारा निरोध(प्रपञ्च विस्मृति और भगवान्मे आसक्ति) हुआ है. एक एक अध्यायकी लीलासे एक एक तत्त्वका अतिक्रमण(तत्त्वों एवं कालके धर्मोंका लोप) भगवान्ने किया है, इसलिए अट्ठाईस तत्त्वोंका अतिक्रमण अट्ठाईस अध्यायोंमें हो जानेसे तामस भक्तोंका निरोध सिद्ध किया है. ऐसे ही राजस प्रकरणके अट्ठाईस अध्यायोंसे राजस भक्तोंका निरोध सिद्ध किया. सात्त्विक भक्तोंका निरोध इक्कीस अध्यायोंकी लीला द्वारा हुआ. कारण कि वहां भगवान्ने एक विंशति प्रकारके कालका* इक्कीस अध्यायोंमें की हुई लीलाओं द्वारा अतिक्रमण किया है. कालातिक्रमणसे सात्त्विक भक्तोंका निरोध सिद्ध किया है.

सात्त्विक भक्तोंको प्रमाणकी आवश्यकता नहीं होती है. इसलिए इस सात्त्विक प्रकरणमें प्रमेयके साथ साधनके सात और फलके सात अध्याय हैं. तीनों मिलाकर समग्र सात्त्विक प्रकरणमें इक्कीस अध्याय हैं.

*. काल इक्कीस प्रकारका है. जैसा कि श्रुति कहती है ''द्वादश इमे मासाः पञ्चऋतवः त्रय इमे लोकाः असौ आदित्यः'' बारह मास, पांच ऋतु, तीन लोक और एक सूर्य यों काल २१ प्रकारका है. ऋतु छः हैं, यहां जो पांच लिखी हैं सो हेमन्त और शिशिरको एक करके लिखा है.

लौकिकेषु तु धर्मेषु यत्रैव हरिवेशनम् ।।
निवर्तते तदेवात्र वह्नेर्दारुमयं यथा ।।का.५।।

कारिकार्थ : श्रुति कहती है कि बारह मास, पांच ऋतुएं, तीन लोक, एक आदित्य ऐसे काल इक्कीस प्रकारका है. जहां भी लौकिक धर्मों(देह इन्द्रियादि रूप तत्त्वों)में भगवान् विराजमान(प्रविष्ट) होते हैं वहां उन तत्त्वोंके प्राकृत (लौकिक) धर्मत्व नष्ट हो जाते हैं और वे भगवद्रूप हो जाते हैं; जैसे कि लकडीमें आग प्रविष्ट होती है तो लकडीका लकडीपन लुप्त हो जाता है और वह अग्निरूप हो जाती है.

व्याख्यार्थः अट्ठाईस तत्त्वों एवं इक्कीस प्रकारके कालके अतिक्रमणका प्रकार बताते हैं. अतिक्रमणका तात्पर्य है उन तत्त्वों तथा कालके धर्म उनमेंसे लुप्त हो जावें और उनमें भगवद्धर्म प्रविष्ट हो जाय, जिससे भक्तोंपर 'तत्त्वों' एवं 'काल'के लौकिक धर्मोंका प्रभाव न हो, किन्तु भगवद्धर्मका प्रभाव हो जिससे

उनकी प्रपञ्चकी आसक्ति छूट जावे और भगवदासक्ति हो जावे. इसको दृष्टान्त देकर समझाते हैं कि काष्ठमें जब अग्निका प्रवेश होता है तब काष्ठसे काष्ठके धर्म लुप्त होकर, अग्निके धर्म काष्ठमें आ जाते हैं उस समय उसपर हाथ रखनेसे हाथमें उष्णता प्रवेश करती है. तत्त्व एवं कालमें भगवद्धर्म प्रविष्ट होनेसे वे(तत्त्व एवं काल) भी भगवद्रूप होकर भक्तोंके निरोधमें सहायक होते हैं. अर्थात् भक्तोंके तत्त्वरूप देहेन्द्रियादिमें भगवान्के प्रविष्ट होनेसे उनकी लौकिकता नष्ट होकर, उनमें अलौकिकत्व आ जाता है. जिससे प्रपञ्च विस्मृति होकर अलौकिक भगवद्रूपमें आसक्ति होती है. इसी प्रकार सात्त्विक प्रकरणमें कालका प्रभाव नष्ट हो जाता है. जिससे उन भक्तोंका भी निरोध सिद्ध होता है.

स्वभावस्यान्यथा भावो न वै शक्यः कथञ्चन ।।
अतिस्त्रिविधजीवेषु त्रिविधा भगवत्कृतिः ।।का.६।।

कारिकार्थ : स्वभाव किसी भी प्रकार बदल नहीं सकता है, इसलिए तीन प्रकारके जीवोंके साथ भगवान्ने तीन प्रकारसे लीला की है.

व्याख्यार्थ: जीव स्वयं तो अपने स्वभाव बदल नहीं सकते हैं, यदि वे स्वभावको बदलकर लीला करते तो लीला तो हो सकती थी; किन्तु उसमें एक ओर तो भगवान्को परिश्रम होता व दूसरी ओर लीलामें रसालता न आती एवं विविधता भी न होती. अतः भगवान्ने सर्वकरण समर्थ एवं निर्गुण स्वरूप होते हुए भी, भक्तके स्वभावानुकूल लीलाएं कीं. जिससे इस कार्यमें भगवान्की भक्तवत्सलता, परम दयालुता तथा भक्ति मार्गकी उत्तमता सिद्ध होती है.

प्रपञ्चमें गुणानुसार तीन प्रकारके मनुष्य होते हैं कोई सात्त्विक, कोई राजस तो कोई तामस. इससे उनके स्वभाव भी एक प्रकारके नहीं होते हैं. भगवान् परमोत्तम शिक्षक, दयालु, एवं उद्धारक हैं, इसलिए ''स्थितस्य गतिः चिन्तनीया'' इस न्यायानुसार भक्तका मानदण्ड विचार स्वयं भक्त स्वभावानुकूल बन, उस प्रकारकी लीलाएंकर, सबका उद्धार करते हैं.

लौकिकं तामसे मुख्यं कामान्ता च कृतिः स्फुटा ।।
कामोद्भूते तथा प्रीतिस्तेनादौ तन्निरूप्यते ।।का.७।।

कारिकार्थ : तामसमें लौकिक मुख्य है. इसलिए इस तामस प्रकरणमें कामलीलाका स्पष्ट वर्णन है. तामसमें जब काम उत्पन्न होता है तब ही प्रीति होती है. इसलिए तामस प्रकरणका पहले वर्णन किया है.

व्याख्यार्थः भक्ति मार्गमें पुरुषोत्तम स्वरूप ही परमोत्तम मुख्य फल है, अन्य मोक्षादि फल तो पुरुषोत्तमके सम्बन्धसे ही फल माने जाते हैं. भगवान्को पूर्ण निरोध करना है, वह उन भक्तोंमें हो सकता है, जो स्थिरमति गूढ आग्रही हों. जिन जीवोंकी बुद्धि ऐसी होती है कि जिसको वे एक बार अपना लेते हैं, उसका वे कदापि त्याग नहीं करते; वे होते हैं तामसी बुद्धिवाले. सात्त्विक बुद्धिवाले शास्त्रीय सिद्धान्तमें रुचिवाले होते हैं; उनको जैसा कोई मार्ग बताता है, उसमें उनकी प्रवृत्ति हो जाती है, वे लोग प्रायः चंचल विचारवाले होते हैं. राजस गुणवाले विक्षिप्त चितवाले होते हैं, जिससे लौकिक तथा अलौकिकमें आसक्त होनेसे उनको स्वरूप विस्मृति हो जाती है. अतः इन दोनोंका पूर्ण निरोध उस प्रकारसे नहीं हो सकता है जैसा कि तमोगुणवालोंका होता है. तमोगुणवालोंमें लौकिक मुख्य है. व्रज भक्तोंमें तमोगुणके कारण मूढता थी, इसलिए जिसमें भी उनका आग्रह हो गया उसे उन्होंने कभी छोडा नहीं. लौकिकमें भी यही सर्वत्र देखा जाता है. व्रजवासियोंका प्रकट पूर्णानन्द श्रीकृष्ण स्वरूपमें ऐसा दृढ स्नेह हो गया था, जो वे उस स्वरूपके अतिरिक्त कुछ नहीं चाहते थे. उन्होंने भगवान्के उपदिष्ट धर्म एवं उद्धवके द्वारा मिले हुए ब्रह्मज्ञानको भी तिलांजलि दे दी. इन कारणोंसे सर्वात्मभावसे पूर्ण निरोध इन व्रजभक्तोंको ही सिद्ध हुआ है. इसलिए पुष्टिमार्गकी गति, मर्यादा मार्गसे विपरीत है. इसको समझानेकेलिए ही इस प्रकरणको तामस प्रकरण कहते हैं. वास्तवमें तो यह प्रकरण निर्गुण ही है. ''इस भक्ति मार्गमें ज्ञान एवं वैराग्य भी श्रेय देनेवाले नहीं हैं'' क्योंकि ऐसे भक्त तो भगवत्स्वरूपानन्दके अतिरिक्त नरक, स्वर्ग एवं मोक्षको भी एक समान समझते हैं. इसलिए यह भक्ति, ज्ञानादि सर्व मार्गोंसे उच्च कोटिकी मानी जाती है. भगवान्में ही एकनिष्ठ विशुद्ध भाववाले भक्त ही सबसे उत्तम हैं, यह शास्त्रसिद्ध सिद्धान्त है. प्रेमस्वरूप परमात्मामें प्रेम भाव ही लौकिक है; यह तामस प्रकरणमें मुख्य, जैसा कि कहा है कि ''गोपियोंका प्रेम ही लोकमें काम नामसे प्रसिद्ध हुआ''.

व्रजभक्तोंने ब्रह्मको सर्वव्यापक, सर्वका अन्तरात्मा जानकर भी, उसके उस स्वरूपसे बाहर प्रकट स्वरूप व्रजविहारी श्यामको ही अपना विशेष प्रेमास्पद बनाया और वे उस निश्चयसे रञ्च मात्र भी न हटे.

मर्यादा मार्गसे इस पुष्टिभक्ति मार्गकी विशेषता यह है कि जो 'काम'

मर्यादा मार्गमें मुक्तिका प्रतिबन्धक है, वही 'काम' यहां गणित ब्रह्मानन्दसे विशेष, अगणित आनन्दरूप, अन्तिम फलका दाता है. इस विषयमें असम्भावना नहीं समझनी चाहिए क्योंकि आगे लीलासे यह स्पष्ट सिद्ध होगा.

मर्यादा मार्गमें, मर्यादा, भक्ति अथवा ज्ञानसे, भगवान्का प्राकट्य होता है. पुष्टि भक्तिमें 'काम'से, अर्थात् प्रभु प्राप्तिकी आन्तरिक अनवच्छिन्न चाहसे भक्तमें दीनता आती है, जिस दीनतासे प्रभु प्रकट होते हैं. उस स्वयं प्रकट आनन्द स्वरूपमें, भक्तका गाढ स्नेह होता है न कि मर्यादानुसारी स्नेह होता है. इस प्रकरणमें भगवान्ने निःसाधन दीन भक्तोंको, वह भजनानन्द दिया, जो साधनोंसे अप्राप्य एवं ब्रह्मादिकोंको भी दुर्लभ है. भगवान्ने व्रजभक्तोंकी अधीनता स्वीकार की किन्तु स्वयं भगवान्में भी भक्तोंकेलिए काम या चाहना होती है. इसी प्रकार भक्त एवं भगवान् दोनोंमें परस्पर मिलनेकी चाहसे दोनोंमें गाढ स्नेह उत्पन्न होता है. उस उत्पन्न अलौकिक स्नेहसे ही लीलाएं हुई हैं.

बाललीला मध्यलीला प्रौढलीला तथैव च ।।
कामलीलेति लोके वै चतस्रः सुखदाः स्मृताः ।।का.८।।

कारिकार्थ: लोकमें निश्चयसे चार प्रकारकी लीलाएं(बाल लीला, मध्य लीला, प्रौढ लीला और काम लीला) सुख देनेवाली होती हैं.

व्याख्यार्थ: तामस प्रकरणमें चार अवान्तर प्रकरण हैं, जिनके नाम प्रमाण, प्रमेय, साधन और फल हैं. इस श्लोकमें जिस प्रकरणमें जो-जो लीला की है, वह बतलाते हैं. पहले प्रमाण प्रकरणमें बाललीला की है. दूसरे प्रमेय प्रकरणमें मध्य लीला(पौगंड=पांच वर्षसे ग्यारह वर्षकी आयुमें की हुई लीला), तीसरे साधन प्रकरणमें प्रौढ लीला और चौथे प्रकरणमें कामलीला(कलात्मक लीला) की हैं. ये भगवान्की चारों लीलाएं भक्तोंको सुख देनेवाली हैं.

एकं भगवतः कार्यं बह्वर्थानां च साधकम् ।।
प्रपञ्चविस्मृतिः सर्वा तदासक्तिश्च वर्ण्यते ।।का.९।।

कारिकार्थ: भगवान्की एक लीला बहुत अर्थों(कार्यों)को सिद्ध करती है. समग्र प्रपञ्चकी विस्मृति और भगवान्में पूर्ण आसक्तिका वर्णन है.

व्याख्यार्थ: उपर्युक्त बाल, मध्य, प्रौढ एवं कामलीला चारों लीलाएं भगवान्ने मनुष्यरूप तथा लौकिक रीतिसे दिखाई हैं. तब भगवान्को मनुष्य समझनेसे उनका निरोध कैसे सिद्ध हुवा होगा? इस शंकाकी निवृत्ति इस

कारिकासे करते हैं कि भगवान्‌की एक लीला बहुत कार्य सिद्ध करती है. जैसे कि पूतनाके दूधको पीते हुए उसके प्राण लेनेकी एक ही लीलासे अनेक कार्य सिद्ध किये: १. अपना वीर्य प्रकट किया, २.पूतनाकी मुक्ति, ३.लोक और वेदमें अपने प्रमेय बलकी विशेषता, ४.पूतनाने जिन बालकोंका भक्षण किया था उनका उद्धार, ५.दूसरों(बचे हुए बालकों)की रक्षा, ६.माहात्म्य ज्ञानसे व्रजवासियोंका श्रीकृष्णमें स्नेह होना, ७.लीला सुननेसे विस्मय आदि अनेक कार्य हुए. वैसे ही अन्य लीलाओंसे भी अनेक कार्य हुए.

येनैव त्रिविधा भक्ता न स्मरन्ति जगत् क्वचित् ।।
कृष्णे च सन्नतात्मानस्तत्कार्यं भगवत्कृतम् ।।का.१०।।

कारिकार्थ: प्रपञ्चकी विस्मृति और भगवदासक्तिके कारण ही तीनों प्रकारके भक्त कभी भी जगत्‌का स्मरण नहीं करते हैं और सर्वदा कृष्णमें ही मनवाले(यह समझकर) होते हैं कि यह कार्य भगवान्‌ने किया है.

व्याख्यार्थ: बलदेवजीने भी लीलाएं की हैं तो इससे सब चरित्र श्रीकृष्ण चरित्र कैसे माना जाए? इसके उत्तरमें कहते हैं कि फलितार्थसे जाना जाता है कि सम्पूर्ण लीलाएं भगवान्‌की ही हुई हैं. इसलिए सब भक्त श्रीकृष्ण स्वरूपमें ही नतात्मा(आसक्त) हैं. बलदेव चरित्र भी पुरुषोत्तमका ही चरित्र है. क्योंकि वे लीलाएं श्रीकृष्ण स्वरूपादिष्ट बलदेवजीने की हैं. अर्थात् वे लीलाएं, उन बलदेवजीने की हैं, जिनमें भगवान् श्रीकृष्णका स्वरूप प्रवेश कर चुका था, न कि केवल बलरामजीने की हैं, इसलिए, मुख्य स्वरूप लीलाकर्ता, श्रीकृष्ण ही थे; अतः सबोंका निरोधादि श्रीकृष्णमें ही हुआ है. इसलिए ब्रह्माजीने कहा है कि ''बलराम, अर्जुन, भीष्मादिकके तो केवल नाम मात्र हैं वास्तवमें सब कुछ आपने ही किया है''.

बाललीला सप्तविधा प्रथमं सा निरूप्यते ।।
बालभाव रता ये हि तेषां रोधस्ततो भवेत् ।।का.११।।

कारिकार्थ : सात प्रकारकी बाललीला है. बालभावके प्रेमी भक्तोंका बाललीलासे निरोध होता है. इसलिए प्रथम उनका निरूपण है.

व्याख्यार्थ: तामस प्रकरणमें बाल लीलाका वर्णन प्रमाण उप-प्रकरणके सात अध्यायोंमें किया गया है. सात अध्याय इसलिए हैं कि भगवान्‌ने बाललीला सात प्रकारसे करके, जो जो भक्त जिस जिस बाल भावका प्रेमी था उसका

उस उस लीला द्वारा निरोध सिद्ध किया है.

उत्सवाविष्टचित्ता ये ह्याश्चर्याभिनिवेशिनः ।।
अलौकिकरता ये च ये चोपद्रवणोत्सुकाः ।।का.१२।।
स्त्रीस्वभावरता ये वै ये च तत्त्वे च लौकिके ।।
सर्वोद्योगपरा ये च तेषां रोधो निरूप्यते ।।का.१३।।

कारिकार्थ : १.उत्सवमें आविष्ट चित्तवाले, २.आश्चर्ययुक्त मनवाले, ३.अलौकिकके प्रेमी, ४.उपद्रव देखनेकी इच्छा रखनेवाले, ५.स्त्री स्वभाववाले, ६.लौकिकत्वके चाहनेवाले, ७.सर्व प्रकारके उद्यमशील. इन सात प्रकारके भक्तोंके निरोधका वर्णन किया है.

जन्मोत्सवो हरेरत्र पञ्चमे विनिरूप्यते ।।
आवश्यकं परित्यज्य कृतं तदिति चोच्यते ।।का.१४।।
अन्यथा ज्ञानशंकाच तेनैव विनिवार्यते ।।
उत्सवस्त्वन्यथा न स्यात् द्रव्यानयनमेव च ।।का.१५।।
आसक्ति बोधनार्थाय तस्यान्ते भयवर्णनम् ।।

पांचवे अध्यायमें भगवान्के प्रकट होनेके उत्सवका वर्णन किया गया है वह उत्सव नन्दरायजीने आवश्यक कार्य छोडकर किया है.

इससे अर्थात् आवश्यक कार्य जन्मोत्सव करनेसे ही अन्यथा ज्ञानकी शंका(यह बालक दूसरेका पुत्र है)को मिटाया गया है. यदि यह शंका न मिटी होती तो उत्सव होता ही नहीं और न भगवान्के उत्सवकेलिए इतने उत्तम सामान मंगाए जाते.

नन्दरायजीकी आसक्तिको जतानेकेलिए राजा कंसको कर देनेके बाद भयका वर्णन है.

व्याख्यार्थ: तामस प्रकरणके प्रथम 'प्रमाण अवान्तर प्रकरण'में सात अध्याय इसीलिए हैं कि इसमें की हुई बाल लीलाके अधिकारी सात प्रकारके हैं. उन सात प्रकारके अधिकारियोंके स्वभावका वर्णन बारहवें तथा तेरहवें श्लोकमें करते हैं. भगवान्में आसक्त चित्तवाले भक्तोंके हृदयमें भगवान्के सम्बन्ध मात्रसे सकल लीलाएं स्फुरित हो जाती हैं.

पांचवे अध्यायमें नन्दरायजी द्वारा किये हुए भगवान्के प्रकट होनेके उत्सवसे 'उत्सव'में आविष्ट चित्तवाले भक्तोंका निरोध सिद्ध हुआ.

छठे अध्यायमें हरिके शरण जानेसे ही भय-निवृत्ति हो सकती है, ऐसा बतानेवाली लीला ही तत्त्व है तथा अनधिकारी जीवकी मुक्तिसे प्रमेय बलका तत्त्वपना बताया गया है. नारदोक्तिके द्वारा लोक तत्त्व जताया है इत्यादि. लौकिक एवं परमार्थ तत्त्वोंकी लीलासे शरणागत हीन तत्त्वसे प्रेमी भक्तोंका निरोध सिद्ध किया गया है.

सातवें अध्यायके 'शकटभञ्जनादि' लीलासे भगवान्ने आश्चर्ययुक्त मनवाले, भक्तोंका निरोध सिद्ध किया है.

आठवें अध्यायमें, भगवान् पुरुषोत्तमके, गर्गजीसे कहे गए, कृष्ण वासुदेव आदि नामोंको, अलौकिक ही समझनेवाले प्रेमी भक्तका, रिंगण लीला भी, दैत्यनाशपूर्वक भक्तोंका, इष्ट साधनवाली अलौकिक है. यों समझनेवाले, आश्चर्ययुक्त प्रेमी भक्तोंका, लोकमें निन्दित, चौर्य, मृत्स्ना भक्षण, मुखारविन्दमें विश्वदर्शन आदि लीलाओंसे आश्चर्य-चकित भक्तोंका निरोध सिद्ध किया है.

नवम अध्यायमें दधिभाण्डादि तोडनेके उपद्रवोंको भी अलौकिक समझनेवाले उपद्रव-प्रिय भक्तोंका निरोध सिद्ध किया है. दशवें अध्यायमें नलकूबर, मणिग्रीवकी लीलासे, स्त्रीभाव(राजस और तामस भाव)में, प्रेमवाले (स्त्री स्वभाव-रत) भक्तोंका निरोध सिद्ध किया गया है.

सात प्रकारकी लीलाओंसे इस तरह सात अध्यायोंमें सात प्रकारके अधिकारियोंका निरोध सिद्ध किया गया है.

श्रीशुकः उवाच

नन्दस्त्वात्मज उत्पन्ने जाताह्लादो महामनाः ।।
आहूय विप्रान् वेदज्ञान् स्नातः शुचिरलङ्कृतः।।१।।
वाचयित्वा स्वस्त्ययनं जातकर्मात्मजस्य वै ।।
कारयामास विधिवत् पितृदेवार्चनं तथा ।।२।।

श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि नन्दरायजी पुत्रके जन्म होनेपर, अत्यन्त प्रसन्न हुए और पुत्रका जातकर्म संस्कार कराने लगे. पहले स्वयं स्नानसे पवित्र होकर एवं अनेक प्रकारके आभूषण पहनकर तैयार हुए. तत्पश्चात् उदार मनसे निमन्त्रण देकर, बुलाए गए, वेद जाननेवाले ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन पढवाकर, पुत्रका जात कर्म संस्कार तथा पितर और देवताओंका विधिवत् पूजन कराया ।।१-२।।

सुबोधिनी:वसुदेवजी यशोदाजीकी शय्यापर अपने पुत्रको विराजमान कर उनकी कन्याको लेकर घर गए. पहले यशोदाजीने जाना कि मेरे कुछ उत्पन्न हुआ है. इसके अनन्तर मायाके जानेपर यशोदा जागी और उनको पता चला कि मेरे पुत्र उत्पन्न हुआ है. ऐसा जाननेपर जो कुछ हुआ वह 'नन्दस्त्वात्मज'से शुकदेवजी वर्णन करते हैं.

''पुत्र वह है जो पितासे उत्पन्न होकर उसको 'पुन्नाम' नरकसे बचावे''. यह पुत्र नन्दजीसे उत्पन्न हुआ है इसीसे पुत्र होनेके कारण नन्दजी उसका जातकर्म संस्कार कराने लगे. मूल श्लोकमें जो 'तु' शब्द दिया है वह पूर्व कथा अर्थात् वसुदेवजीके गृहकी कथासे उसका भेद दिखलाता है. इसीलिए यह कहा गया है कि 'नन्दस्त्वात्मज' इति. यह बालक मेरी आत्मासे उत्पन्न होनेसे मेरा पुत्र है. जिसको जैसी प्रतीति होती है शुकदेवजी वैसा ही कहते हैं; क्योंकि भगवान्ने उनकी बुद्धि वैसी ही बना दी है. यदि भगवान् ऐसी बुद्धि न बनाते, तो न भगवान्की लीला ही हो सकती थी और न भगवान्को, जो जो चरित्र करने थे, वे ही हो पाते, इसलिए यह पुत्र मुझसे ही उत्पन्न हुआ है, ऐसी नन्दजीकी बुद्धि हो गई. इसलिए कहा है, कि 'आत्मज उत्पन्न इति'(पुत्र प्रकट हुआ). वासुदेव (व्यूह)का प्राकट्य यहां ही हुआ है, यह सिद्धान्त है. यदि ऐसा न होता और केवल माया ही प्रकट होती तो, मायाकेलिये उत्पन्न हुए दूधको, भगवान् कैसे पीते? अर्थात् नहीं पीते और न निश्चयात्मक रूपसे, शुकदेवजी ही ऐसा कहते. अन्तःकरणकी प्रतीतिसे भी 'यह मेरा पुत्र है' इस निश्चयको बतानेकेलिये, नन्दरायजीको अपूर्व आह्लाद(आनन्द) हुआ, जिससे शुकदेवजीने कहा है कि 'जाताह्लादः'. श्रीनन्दरायजीके आह्लादका कारण पुत्र जन्म ही था. क्योंकि यह कहा गया है कि नन्दरायजीको अन्यथाज्ञान नहीं था कि यह पुत्र कहींसे आया है या किसीसे सुना है कि तुम्हारे पुत्र हुआ है; किन्तु उनको सच्चा और पक्का ज्ञान था कि मेरी आत्मासे ही यह पुत्र उत्पन्न हुआ है. इस दृढ सत्य(निश्चयात्मक बुद्धि)के कारण आह्लाद होते ही. प्राकृत नन्दजी भी महामना, अर्थात् बड़े उदार मनवाले हो गए. ग्रामवासियोंका मन अल्प होता है, इसलिए वे सब कार्य अल्प ही करते हैं, किन्तु श्रीनन्दरायजीने बड़े मनसे महोत्सवकी तैयारी की. वह महोत्सव केवल लौकिक रीतिसे ही नहीं मनाया; किन्तु शास्त्र विधिके अनुसार कार्य करनेकेलिये वेदोंको जाननेवाले विप्रों(ब्रह्मर्षियों)को बुलाया, जिससे कार्य

व्यर्थ और निन्दित न हों. वेद जाननेवालोंको इसीलिए बुलाया कि उन ब्राह्मणोंमें सब देवता रहते हैं. सर्व देवताओंके सान्निध्यमें ही महान् उत्सव होते हैं. उत्सवमें वेद और लोकके अनुसार सब कर्तव्य किये. 'स्वतः' स्नानकर देहकी शुद्धि की. जनना-शौचमें वैदिक कर्म कैसे किया, इस शंकाके निवारणकेलिये कहते हैं कि वे 'शुचिः'(पवित्र) हुए. आप तो शुद्ध हुए ही किन्तु दूसरी भी शुद्धि करने लगे. उत्सवादि शुभ कार्योंमें अलंकार अवश्य पहनने चाहिए, इसलिए 'अलंकृत' कहा है. यदि उत्सवकर्ता अलंकार न पहने तो उत्सवकी शोभा ही न हो. इसलिए कहा है कि ''विशिष्टालङ्कार उत्सवः'' जब वस्त्र आभूषणादिकोंसे सब सुसज्जित होते हैं तब वह उत्सव कहा जाता है या समझा जाता है।।१।।

प्रकाश: १०।५।१ 'पितुः पुत्रः'. श्रीनन्दरायजी अपने पितादिको, 'पुन्नाम' नरकसे बचानेके कारण, अपने पिताके पुत्र हैं, अर्थात् पुत्र इसीलिए उत्पन्न किया जाता है कि पितरोंका ऋण उस व्यक्तिके सिरसे उतरे, तो अब श्रीनन्दरायजी भी पुत्र उत्पन्न करनेसे, उस पितृ ऋणसे उन्मुक्त हुए और समझने लगे कि मेरा भी उद्धार होगा.

शंका: शुकदेवजीने सर्वज्ञ होते हुए भी, अजन्मा भगवान्केलिये 'आत्मज' शब्द कैसे कहा? इस शंकाको मिटानेकेलिये सुबोधिनीमें कहा है, कि शुकदेवजी आत्मविद् भक्तोंमें श्रेष्ठ होनेसे, सर्वज्ञ थे, इसलिए यह जानते थे कि भगवान्की यह लीला है कि उन्होंने अपनेमें नन्दजीकी पुत्र बुद्धि करा दी है, अतः वे भगवान्को निश्चित रूपसे पुत्र ही जानते हैं, इनको ऐसी ही प्रतीति हो रही है. इस कारण शुकदेवजीने 'आत्मज' शब्द दिया है.

शंका: अजन्मा भगवान्केलिये, 'उत्पन्न' शब्द, जिसका अर्थ है 'जन्म लिया' क्यों कहा? इस शंकाके निवारणकेलिये, सुबोधिनीमें उत्पन्न शब्दका भावार्थ कहा है कि यह शब्द ''वासुदेवोऽत्रैवाविर्भूतः'' वासुदेव(व्यूह) यहां(नन्दरायजीके गृहमें) हुआ अर्थात् शुकदेवजीने जो 'उत्पन्न' शब्द श्लोकमें कहा है वह अजन्मा पुरुषोत्तमकेलिये नहीं दिया है, किन्तु वासुदेव व्यूह जो नन्दरायजीके घरमें प्रकट हुआ है उसकेलिये दिया है.

शंका: 'निबन्ध'में, वासुदेवका प्रादुर्भाव वसुदेवजीके हृदयमें कहा है, फिर यहां(सुबोधिनीमें) नन्दरायजीके घर उसका प्राकट्य कैसे कहा गया?

समाधान: इस शंकाको मिटानेकेलिये, सुबोधिनीमें कहते हैं कि यहां तो बाहर प्रकट हुए और यदि बाहर प्रकट न होते तो, मायाकेलिये उत्पन्न दूधको भगवान् कैसे अरोगते? तथा वासुदेवके कार्य-मोक्ष, भक्ति, पद, चरित्र जो व्रजमें करने थे, वे कार्य कौन करता? इसलिए वासुदेव यहां ही प्रादुर्भूत हुए, यह सिद्धान्त है.

श्लोककमें दिये हुए 'शुचिः'का भावार्थ बताते हैं कि नालच्छेदनके अनन्तर 'जनना' शौच होता है. जातकर्म, नालच्छेदनसे पहिले किया जाता है, इसलिए जातकर्म करनेके समय, 'जनना' शौच न होनेसे नन्दरायजी पवित्र थे अर्थात् उनको 'जनना' शौच नहीं था.

योजना: १०।५।१ 'पितुः पुत्रः'का आशय देते हुए लालूभट्टजी लिखते हैं कि मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह के समान यहां भगवान्का प्राकट्य नहीं हुआ किन्तु नन्दके पुत्र बनकर हुआ है. नन्दजीको भगवान्के पिता होनेके नाते उनका जातकर्म कराना योग्य ही था इसलिए कहा है कि 'पितुः पुत्रः'.

शंका: भगवान्में नन्दजीकी पुत्रत्व बुद्धि वास्तविक नहीं थी तो की हुई लीलाएं भी वास्तविक नहीं होंगी?

समाधान: इसके उत्तरमें नन्दजीकी पुत्रत्व बुद्धिका आशय बताते हैं कि उनकी पुत्रत्व बुद्धि, मायिकी नहीं थी और न लीलाएं ही मायिकी थीं, किन्तु नन्दजीका यह समझना कि यह मेरा पुत्र मेरी देहसे लौकिक पुत्रवत् उत्पन्न हुआ है, ऐसी जो नन्दजीकी बुद्धि थी वह भ्रान्त(झूठी) थी. शेष पुत्रत्व बुद्धि सत्य थी, क्योंकि भगवान् वहां अलौकिक रीतिसे प्रकट तो हुए ही थे और पुत्र भावसे, रमणकेलिये उन्होंने नंदरायजीके हृदयमें, अपनेमें पुत्र भावकी बुद्धि उत्पन्न कर दी थी.

लेख: १०।५।१ लेखकार श्री वल्लभलालजी महाराज ''तु शब्दः पूर्वकथां व्यावर्तयति शंकां च व्यावर्तयति''इस सुबोधिनीजीकी पंक्तिका भावार्थ स्पष्ट करते हैं.

शंका: जैसे वसुदेवजीने जातकर्म न कराके स्तुति ही की थी, वैसे ही यहां नन्दरायजीको भी स्तुति ही करनी चाहिये थी न कि जातकर्म और यह अलौकिक बालक है, वसुदेवजीके आनेकी सम्भावनासे, यह मेरा पुत्र है या नहीं, ऐसी शंका होती तो, जातकर्ममें नन्दजीकी प्रवृत्ति नहीं होती.

समाधान: इन दोनों विचारोंके निवारणकेलिये 'तु' शब्दकी व्याख्या ''वसुदेवजीके समान स्तुति, कथा और यह कैसा अद्भुत रूप बालक है, इसका निवारण करते हैं''. वसुदेवजीके वहां तो भगवान्ने पूर्व जन्म स्मरणार्थ, चतुर्भुज रूपसे दर्शन दिये थे इसलिए वहांपर वसुदेवजीने स्तुति की; परन्तु यहां(नन्दजीके गृहमें) तो लौकिक बालवत् दर्शन देनेसे पूर्व कथासे इसकी पृथक्ता दिखा दी और नाल सहित बालक रूपमें दर्शन देनेसे अलौकिकताकी शंका भी मिटा दी.

लेख: १०।५।१. श्रीसुबोधिनीजीका ''केवल माया जनितं स्तन्यं भगवान् न पिबेत्'' इस पंक्तिका भावार्थ बताते हैं कि: यशोदाजीके स्तन्य पानका कारण अन्तःस्थित बालकोंका पोषण है. यदि मात्र, माया जनित स्तन्य होता तो, वे बालक मुग्ध होनेसे,

लीला रस पान नहीं कर सकते थे इसलिए मायाके दोषकी निवृत्तिकेलिये, 'वासुदेव'का सम्बन्ध यहां आवश्यक था. यदि मात्र 'वासुदेव' जनित स्तन्य होता तो, बालक मुक्त हो जाते, तो भी लीला रस ले नहीं सकते थे. इसलिए 'केवल' शब्द देकर समझाया है कि, 'माया' और 'वासुदेव' दोनों साथ थे, दोनोंका प्राकट्य नन्दरायजीके यहां हुआ है. ऐसे स्तन्य पानसे, बालक न मुग्ध हुए और न मुक्त हुए परन्तु स्तन्यसे पुष्ट होकर लीला रस पान करने लगे.

सुबोधिनी: सर्व वैदिक कर्मोंमें पहले 'स्वस्तिवाचन' पढ़ा जाता है. अतः नन्दरायजीने भी स्वस्तिवाचन पढ़वाया. जन्मके समय किये जानेवाले, वैदिक संस्कारका नाम 'जातकर्म' है तथा क्षत्रिय व वैश्योंका यह वैदिक कर्म ब्राह्मण द्वारा होता है. कर्म(संस्कार)की विधि उनके पुरोहितकी शाखानुसार होती है. उत्पन्न हुए पुत्रका विध्यनुसार संस्कार हुआ क्योंकि भगवान्ने अपनेमें पुत्र भाव प्रकट किया था, इसलिए वैदिक कर्मकी सार्थकता एवं गार्भिक बैजिक दोषोंका भी, अभाव हुआ. यह जात कर्म संस्कार, नैमित्तिक था. वास्तवमें यह सब भगवान्की लीला ही थी. यह सिद्धान्त है कि पितृदेवार्चनका तात्पर्य 'नान्दी' श्राद्ध है. नन्दरायजी एवं यशोदाजीने मिलकर शास्त्रानुसार यह जात कर्म, प्रवृत्ति मार्ग(वैदिक मार्ग)में अपनी निष्ठा दिखानेकेलिये किया।।२।।

प्रकाश: १०।५।२. 'सार्थकत्वं'का आशय बताते हैं कि यदि भगवत्प्राकट्य पर, जातकर्म वेदविधिपूर्वक न होता तो ''सर्वे वेदाः यत् पदम्'' यह श्रुति सार्थक न होती, अर्थात् कुपित होती इसलिए नन्दजीने कर्म द्वारा श्रुतिकी सार्थकता सिद्ध की. यों तो अजन्मा भगवान् किसीके आत्मज नहीं होते हैं किन्तु लीलाके कारण ही, भगवान्ने नन्दरायजीके मनमें, अपनेमें, पुत्रकी भावनाको उत्पन्न की है.

शंका: यदि भगवान्में, गर्भ और बीजादि, दोष मिटानेकेलिये, संस्कार किया यों मानेंगे तो, पहले, जो उनका अलौकिक स्वरूप और प्राकट्य माना गया है, उसका विरोध होगा और भगवान्में गर्भादि दोष मानना, ये शब्द कानोंको कडुए लगते हैं. इस शंकाको मिटानेकेलिये 'नैमित्तिकः' शब्द सुबोधिनीजीमें दिया है. यह जात-कर्म संस्कार गर्भादि दोषोंके मिटानेकेलिये नहीं किया गया था, किन्तु प्राकट्यके निमित्त किया गया था. भगवान्में तो गर्भादि दोष लेश मात्र भी नहीं हैं. केवल नन्दरायजीको पुत्र भाव स्थिर करानेकेलिये ऐसी प्रतीति हुई है.

शंका: यदि ऐसा माना जायगा तो कर्मोंकी सार्थकता हुई माननी पड़ेगी.

समाधान: यह सब भगवच्चरित्र है. यह सब भगवान्ने अपनी माया अर्थात् इच्छासे किया है. नहीं तो परमार्थ स्वरूप भगवान्में वैदिक मर्यादादिकी कौनसी

आवश्यकता है ?

लेख: १०।५।२: श्रीसुबोधिनीजीके 'भगवच्चरित्र'में 'वेदमिति सिद्धान्तः' इसका भाव बताते हैं कि यद्यपि भगवान्में गार्भिकादि(गर्भ और बीजसे होनेवाले) कोई दोष नहीं, जन्म निमित्त है जातकर्म संस्कार हुआ, किन्तु उन दोषोंके न होते हुए भी उन गार्भिकादि दोषोंके अभावकेलिये किया हुआ संस्कार भी, एक प्रकारसे भगवत्सेवा ही है. ऐसा करनेसे बालरूपी भगवान्को प्रसन्नता होगी. जैसे पुष्पादि समर्पणके उपचारोंसे भगवान्को आनन्द आता है वैसे ही इससे भी आनन्द प्राप्त हुआ. इस विषयकी विशेष जानकारी पूतना प्रसंगकी टिप्पणीमें देखिये।।२।।

धेनूनां नियुते प्रादाद् विप्रेभ्यः समलङ्कृते ।।
तिलाद्रीन् सप्तरत्नौघान् शातकौम्भाम्बरावृतान् ।।३।।

ब्राह्मणोंको अलंकृत दो लाख गौ रत्न समूह सहित जरीके वस्त्रोंसे वेष्टित सात तिलोंके पर्वत दिए ।।३।।

नन्दरायजीके महामना होनेसे उनने जो कुछ उदारतासे किया वह बताते हैं. अलंकृत दो लाख गौ देनेका केवल संकल्प नहीं किया, किन्तु दे दी. इसे बतानेकेलिये श्लोकमें 'प्रादात्' शब्द दिया है. भगवत् सान्निध्य होनेके कारण द्रव्य एवं क्रियाओंमें कमी नहीं हुई. विप्रों(विशेष रीतिसे पूरक होनेसे)के कारण गोधनकी भी कमी न हुई. गौके अतिरिक्त रत्नोंके समूह, सोने और वस्त्रोंसे आवृत तिलके पर्वतोंका दान किया. अन्नोंमें तिल मुख्य है. 'गौ, हिरण्य, वस्त्र, तिल, रत्न' इन पांचोंका दान किया. ये सब देव सम्बन्धी हैं।।३।।

लेख: १०।५।३. 'द्रव्यक्रियाणां' इसका आशय बताते हुए लिखते हैं कि 'द्रव्य' सुवर्णादि पदार्थ और गौओंके सजानेकी क्रियामें कमी आई नहीं. एक ही गौको सजानेमें सब गौ सज गईं. एक एकको सजानेमें समय बहुत लगता.

कालेन स्नानशौचाभ्यां संस्कारैस्तपसेज्यया ।।
शुध्यन्ति दानैः सन्तुष्ट्या द्रव्याण्यात्मात्मविद्यया ।।४।।

काल, स्नान, शौच, संस्कार, तप और यज्ञसे प्राणी शुद्ध होते हैं. दानसे द्रव्य और संतोषसे अन्तःकरण तथा आत्म(ब्रह्म) विद्यासे आत्मा(जीव)की शुद्धि होती है ।।४।।

नन्दरायजीने बहुत दान दिया. इस शंकाको मिटानेकेलिये कहते हैं कि इनके इतना दान देनेके अनन्तर भी अभी बहुत है. यह बतानेकेलिये कहते हैं कि शुद्धिकेलिये भी नन्दजीको इतना देना चाहिये. यह बताते हुए दूसरोंके समान

कालादिके साथ द्रव्य(पदार्थ) निरूपण करते हैं. 'कालेन'इति. कालादिसे प्राणी और सब शुद्ध होते हैं. नौ पदार्थ शुद्धि करनेवाले हैं. उनमें काल मुख्य है, क्योंकि सब काल द्वारा उत्पन्न होते हैं. उत्पन्न हुआ पुत्र सौ वर्ष तक जीता है, अर्थात् शास्त्र मनुष्यकी आयु सौ वर्ष बताते हैं. सौ वर्षके प्रत्येक छत्तीस सौ दिनोंपर एक भाग अर्थात् एक दिन अशुद्ध माना गया है. इस प्रकार सारी आयुमें दस दिनका काल अशुद्ध गिना जाता है, इसी प्रकार द्रव्योंका भी भाग अशुद्ध होता है. इन सबकी अशुद्धि कैसे मिटाई जा सकती है उसको बताते हैं. जनना–शौचकी शुद्धि स्नान मात्रसे नहीं, किन्तु कालसे होती है. वंशकी शुद्धि काल करता है. सम्पूर्ण देहकी शुद्धि स्नानसे होती है और शौचसे एक अंगकी शुद्धि होती है. लौकिक व्यवहारकेलिये, यह तीन प्रकारकी शुद्धि कही. अब अदृष्ट आदिकसे हुई अशुद्धि भी तीन प्रकारसे मिटाई जाती है: १.जातकर्मादि संस्कारोंसे गर्भादि दोष युक्त देह शुद्ध हो, वैदिक कर्मके योग्य बनता है. इनको भूत संस्कारत्व कहते हैं. २.तपस्यासे अन्तःकरणकी शुद्धि होती है. कितने ही अदृष्टोत्पत्ति द्वारा अन्तःकरणकी शुद्धि कहते हैं. ३.यज्ञसे भगवान् प्रसन्न होते हैं. इसी प्रकार आधिभौतिक, आध्यात्मिक और आधिदैविकके तीन संस्कार(शुद्धि) बताए.

इसी प्रकार छः प्रकारसे सब अन्तःशुद्धि कही. अब बाहिरकी शुद्धि बताते हैं. दानसे द्रव्य शुद्ध होता है(दानके बिना दूसरी प्रकारसे द्रव्यकी शुद्धि नहीं होती है), अपने वित्तके अनुसार ही दान होता है, इसीलिए गौकी शुद्धिकेलिये ही नन्दजीने दो लाख गौ दान की. जो कुछ थोड़ासा प्राप्त हो, तो उसकी शुद्धि सन्तोषसे होती है. द्रव्यकी शुद्धिकेलिये दान और सन्तोष दो बताये हैं. 'आत्मा'(जीव) तो ब्रह्म विद्यासे 'मैं ब्रह्म हूं' इस प्रकारके ज्ञानसे जीव शुद्ध होता है, अर्थात् अविद्या मिटानेसे स्वरूपको समझ अपने कर्त्तव्यके योग्य होता है.

महामना नन्दरायजी, आनन्द पूर्वक उत्साहसे पुत्रजन्म–महोत्सव मनाकर, अन्य आवश्यक सर्व कार्य छोड़कर, शीघ्र ही कंसको कर देनेकेलिये मथुरा गए. इससे सिद्ध है कि नन्दजीके मनमें दृढ़ निश्चय था कि यह बालक मुझसे उत्पन्न हुआ है और मेरा ही पुत्र है. यदि उनके मनमें कुछ भी शंका होती, तो इस प्रकार उदार होकर, पुत्रकेलिये बहुमूल्य वस्तुएं न मंगाते और न पुत्रको प्यारसे उठाकर गोदीमें लेते. ये सब बातें सिद्ध करती हैं कि नन्दजीकी निश्चित बुद्धि थी कि यह मेरा पुत्र है. महान् पुरुषोंका ऐसा पवित्र अन्तःकरण होता है कि वे

पराई वस्तुको अपनी कभी नहीं समझते हैं. इसलिए 'प्रमाणम् अन्तःकरण-प्रवृत्तयः' यह प्रसिद्ध है ।।४।।

प्रकाश: १०।५।४. 'समानैः'का आशय बताते हैं कि यह दान नन्दरायजीके माहात्म्यका ख्यापक और शोधक होनेसे उचित है और वैसे ही अन्य शोधकोंके सामान्याधिकरण (समान भाव) बताता है कि, यह इस द्रव्यका शोधक है, किन्तु आनेवाले द्रव्यकी शुद्धिकेलिये दानका चिह्न है.

सौ वर्ष की आयुमें दस दिन अशुद्ध हैं. इसका स्पष्टीकरण करते हुए कहते हैं कि शत वर्षका दसवां भाग दस वर्ष होता है. प्रत्येक दस वर्षका पहला एक दिन अशुद्ध है, इसीसे एक साथ तो दस दिन अशुद्ध नहीं होते हैं तो आप जन्मके समय एक साथ दस दिन अशुद्ध क्यों मानते हो? इस शंकाका निवारण करते हैं कि दस-दस वर्षमें पहला एक दिन साधारण मनुष्य नहीं गिन सकेगा क्योंकि वैसे अव्यवस्था हो जायगी और कोई वह अशौच पालन नहीं कर सकेगा, अतः सबकी सुविधाकेलिये ऋषियोंने जन्म समयके साथमें ही दस दिनके अशौचकी व्यवस्था की, जिससे सबको सुविधा हो गई. इसी प्रकार द्रव्यकी भी व्यवस्था समझनी, अर्थात् छत्तीस सौ रुपयेपर एक रुपया अशुद्ध समझना चाहिये, उसकी शुद्धि स्नानसे नहीं किन्तु दानसे होती है.

नन्दरायजीने गौएं और द्रव्यका इतना महादान किया, जिससे नन्दरायजीके पासकी महती(बड़ी) समृद्धिका पता लगता है.

लेख: १।५।४. ''एतेषां भूतसंस्कारत्वमेव''का स्पष्टीकरण करते हैं. जातकर्मादि संस्कारसे देहकी शुद्धि होती है, न कि अन्तःकरण और अन्तर्यामी की शुद्धि होती है. (तपस्यासे अन्तःकरणकी शुद्धि और यज्ञसे अन्तर्यामीकी शुद्धि होती है). अन्तर्यामीकी शुद्धिका तात्पर्य है कि, यज्ञ करनेसे, अन्तर्यामी प्रसन्न होता है. ''परमात्मा मे शुद्ध्यन्ताम्'' इससे जाना जाता है कि श्रुति(वेद)में भी, यही शुद्धिका स्वरूप है. इसका विस्तार तृतीय स्कन्धके पांचवे अध्यायमें ''हृदिस्थितो यच्छति भक्तिपूते'' इस श्लोककी टीकामें किया गया है.

सौमङ्गल्यगिरो विप्राः सूतमागधबन्दिनः ।।
गायकाश्च जगुर्नेदुर्भेर्योदुन्दुभयो मुहुः ।।५।।

विप्र, सूत[१], मागध[२], बंदी[३], ये सब मांगलिक वचन कहने लगे और भेरियां[४] तथा दुंदुभि[५] भी बारंबार मांगलिक ध्वनि करने लगीं ।।५।।

(१. पुराणोंकी कथा कहनेवाले. २. भाट: जो वंश चरित्र सुनाते हैं. ३. चारण. ४. बडी ढक्काएं. ५. नगाडे व नोबतें.)

इस प्रसंगमें नन्दरायजीका माहात्म्य कहकर कहे जानेवाले उत्सवको 'उपपत्ति'से निरूपण करके उत्सवके अनेक प्रकार बताते हैं. 'सौमङ्गल्य' आदि दश श्लोकोंमें विद्यासे हुए उत्सवका वर्णन किया जाता है. 'सौमंगल्यं' सुमंगल कारक वेद, पुराण और काव्य की वाणीको निरन्तर उच्चारण करनेवाले विप्र (ब्राह्मण) सूत, मागध, बन्दीगण, ये मंगलमय वाक्य बोलने लगे. इनकी वाणी सफल हुई क्योंकि मंगल पाठमें 'विप्र' थे एवं सूत मागध बन्दीगणकी भी वाणी विप्र संसर्गसे मंगलमय हुई. मागध बन्दीगणसे पृथक् दो प्रकारके गायक थे: १.केवल गान करनेवाले, २.नाच आदिके साथ गानकर्ता. गानेवालोंमें स्त्री गायिकाएं थीं. वाद्य(मृदंगादि) बजानेवाले भी थे. भेरियां उत्सवकी सूचक थीं और दुन्दुभि मंगल वाद्य शुभ कर्ममें ही बजाये जाते हैं. भेरी और दुन्दुभि बजाते बजाते थक जाते तो कुछ विश्रामकर फिर बजाते. यह वाद्य भी संगीत शास्त्रमें प्रसिद्ध है. इससे विद्याका सब कार्य बताया ।।५।।

प्रकाश: १।५।५. 'उपपत्ति'का भाव बताते हैं कि जहां उपर्युक्त रीतिसे दानकी बहुलता बताई गई है, वहां अवश्य विशेष उत्सव हुआ होगा.

लेख: १।५।५. 'माहात्म्य'का भावार्थ बताते हैं कि नन्दरायजीका 'धेनूनाम्' इस गौ आदि पदार्थोंके दान बाहुल्यसे बताया हुआ महामनस्त्व(मनकी उदारता) ही उनका माहात्म्य सूचक है.

व्रजः सम्मृष्टसंसिक्तद्वाराजिरगृहान्तरः ।।
चित्रध्वजपताकास्त्रक्चैलपल्लवतोरणैः ।।६।।

व्रजमें द्वार, आंगन, घरोंके भीतरके भाग और रास्ते आदि सब झाडें और छिडके गए. विचित्र ध्वजाओं एवं पताकाओंकी मालाएं लगाई गईं. वस्त्र और पत्रोंकी बन्दनवारोंसे द्वार सुशोभित किये गए ।।६।।

अनेक प्रकारसे किये हुए पृथ्वीके संस्कारोंका वर्णन करते हैं. 'व्रजः इति' व्रजमें पहले रास्तोंके एवं गृहके ऊपरके भाग आदि, बाहरके और भीतरके द्वार, आंगन, इनके भीतरी भागकी धूलिको दूरकर स्वच्छ किया, बादमें सुगन्धित जलसे सिञ्चन किया. गरुड़ादि चिह्नोंवाली ध्वजाओंसे, जय पत्रोंसे अंकित पताकाओंसे, ध्वजा पताकाएं विचित्र बनी हुई थीं. पुष्पोंकी मालाओंसे एवं वस्त्र और पत्तोंके तोरणोंसे, सारी भूमि सुसज्जित की गई थी. वस्त्रोंसे, जितनी भी नाना प्रकारकी सजानेवाली वस्तुएं बन सकती हैं, वे सब वहां बनाई गई थीं जिससे अभूतपूर्व शोभावाला ब्रज हो गया था।।६।।

गावो वृषाश्च वत्साश्च हरिद्रातैलरूषिताः ।।

विचित्रधातुबर्हस्रग्–वस्त्रकांचनमालिनः ।।७।।

गाय, बैल और बछडों को हल्दीयुत तैलसे रंगे, विचित्र धातु(गेरू खडिया आदि) लगाये, मोरपंख लगाई, झूलें ओंढाई, और सुवर्णकी मालाएं पहनाईं. इससे इनकी अपूर्व शोभा हुई ।।७।।

गौओंकी शोभाका, वर्णन करते हैं. 'गाव इति' गौ और बैल[१] 'वत्सा'से बछड़े और 'च'से बहुत छोटी बछड़ियां भी थीं. ये सब हल्दी मिश्रित तैलसे रंगे गये थे, रंग बिरंगे गेरू आदि धातुएं उनपर लगाई थीं एवं मयूर पिच्छ(मोर पंख), झूलें और सुवर्णकी मालाएं पहनाई गई थीं. हल्दीसे मिलाया तैल मंगलसूचक[२] है. गेरू आदि धातुएं शोभाकेलिये लगाई गई थीं।।७।।

१.'वृषः'से जिनका कंधा और शरीर बहुत बड़ा था ऐसे बैल और 'च'से बूढे बैल भी थे. २.ये मंगल सूचक एवं शोभाजनक कार्य उत्सवके चिह्न हैं.

महार्हवस्त्राभरणकञ्चुकोष्णीषभूषिताः ।।

गोपाः समाययू राजन् नानोपायनपाणयः ।।८।।

हे राजन्! बडे बडे मूल्यवान् ऊंचे वस्त्र एवं आभूषण पहन, अंगरखे, पगडी आदिसे भूषित होकर सब गोप अनेक प्रकारकी भेटें हाथोंमें लेकर आए ।।८।।

गोपोंकी शोभा वर्णन करते हैं: 'महार्हेति' ऊंचे मूल्यवाले सुन्दर वस्त्र जो जो गोपोंने अपने यहां रखे थे, वे उसी दिन पहने क्योंकि आज ऐसे आनन्दप्रद महोत्सवमें तो ऐसे ही उत्तम कपड़े और आभूषण पहनने चाहिए. ऊपरसे पगड़ी तथा अंगरखे पहने और कटिबन्ध कमरमें बांधे. (उत्सवके आनन्दरसमें आसक्तिके कारण कमरमें बंधे हुए कटिबन्धका वर्णन करना भूल गये) इसी प्रकार व्रजके तथा व्रजसे बाहर रहनेवाले भी गोप अनेक प्रकारकी भेटें(वस्त्र) आभरण दूध दही आदि लेकर आए. इन भेटोंके लानेका कारण यह था कि किसीके यहां उत्सवमें खाली हाथ नहीं जाना चाहिए. इसलिए नहीं कि नन्दजीके यहां कोई कमी थी. इन भेटोंसे नन्दजीकी कोई समृद्धि नहीं हुई ।।८।।

गोप्यश्चाकर्ण्य मुदिता यशोदायाः सुतोद्भवम् ।।

आत्मानं भूषयाञ्चक्रुः वस्त्राकल्पाञ्जनादिभिः ।।९।।

यशोदाके पुत्रका जन्म सुनकर, प्रसन्न मन गोपियोंने वस्त्र आभूषण और

अंजन आदिसे अपने आपको अलंकृत किया ।।९।।

गोपियोंके उत्सव(आनन्द)का वर्णन भी चौदह श्लोकोंसे करते हैं. सम्बद्ध(नन्दरायजीके कुल और देहसे सम्बन्धवाली) गोपियां चार प्रकारकी थीं और असम्बद्ध(नन्दरायजीके कुल और देहसे बिना सम्बन्धवाली) भी चार प्रकारकी थीं. दोनों प्रकारकी सम्बद्ध एवं असम्बद्ध गोपियां संगत(भगवद्भोग्या, भगवत्सेवामें अंगीकृत) और असंगत(क.भगवान्की परिचर्यामें विशेष प्रकारसे नियुक्त 'संगताः'. ख.समान कक्षावाली अनाश्रित 'असंगताः'. योजना) होनेसे दो प्रकारकी थीं . 'च'का आशय बताते हुए कहते हैं कि जहां तहां छिपी हुई गोपियोंके अतिरिक्त ब्राह्मणोंकी स्त्रियां तथा दूसरोंकी स्त्रियां भी आईं, जिनके ऊपर नन्दजीका कोई अधिकार नहीं था. जिससे सन्तान उत्पत्तिकी आशा नहीं थी, ऐसी यशोदाको अचानक पुत्र उत्पन्न हुआ सुनकर गोपियोंके अन्तःकरणमें भी सन्तोष हुआ. क्योंकि अब गोपियोंका चतुर्विध पुरुषार्थ सिद्ध होगा; इससे सुनते ही उनके मनमें मोद(आनन्द) हुआ. जिससे गोपियोंने पुत्र प्राकट्यके निश्चयकी भी अपेक्षा नहीं की और आत्माको सुभूषित करने लगीं. आत्माको इसीलिए भूषित करने लगीं कि उन्हें आत्मा ही भगवान्को अर्पण करनी थी. 'आत्मा' शब्दका प्रयोग वहां भी किया जाता है जहां शरीर अविकारी होता है. ऐसे अविकारी शरीरोंमें ब्रह्मानन्दका अनुभव किया जाता है न कि पुरुषोत्तमके भजनानन्दका. उन्होंने उत्तम वस्त्र पहनकर तथा आभूषणोंसे सुसज्जित हो, कज्जल लगाके, पुष्प मालाएं गलेमें डाल, और भालमें सुन्दर तिलककी बिन्दी लगाकर अपने आपको अलंकृत किया।।९।।

लेख: १०।५।९. संगत असंगत आदि संख्याके तात्पर्य बतानेकेलिये कहा गया है. प्रत्येक श्लोकमें यह विभाग नहीं समझना चाहिए. पहले, जन्मप्रकरणमें श्रीकृष्ण भगवान्को वसुदेवपुत्र कहा, यहां यशोदापुत्र कहा, उसका भाव बतानेकेलिये लिखते हैं कि, ''तासां चतुर्विधपुरुषार्थः विशेषाकारेण सेत्स्यति'' गोपियोंके चतुर्विध पुरुषार्थ सिद्धि, विशेष रूपसे, यहां ही होगी. इसलिए यशोदापुत्र कहकर जताया कि यह सिद्धि इस स्वरूपसे ही होगी. पुष्टिमार्गीय चतुर्विध पुरुषार्थ, ''पुष्टिमार्गे हरेर्दास्यं धर्मोऽर्थो हरिरेव च, कामो हरिर्दिदृक्षैव मोक्षः कृष्णस्थलेद्ध्रुवं'' पुष्टिमार्गमें १.धर्म भगवान्का दास्य है, २.'अर्थ' हरि ही है. ३.कामना हरिके दर्शनोंकी अभिलाषा और ४.कृष्णकी प्राप्ति ही मोक्ष है. ये चार पुरुषार्थ यशोदा पुत्र स्वरूपसे ही होंगे. 'आकर्ण्य' पदमें 'आ' उपसर्ग अल्प अर्थमें है, न कि निश्चयार्थमें.

गोपियां कानोंसे लेकर पैरों तक जितनी हो सकीं उतनी आत्माकी शोभा कर नन्दजीके घर गईं. इसका वर्णन 'नवकुङ्कुम' श्लोकसे करते हैं.

नवकुङ्कुमकिञ्जल्कमुखपंकजभूतयः ।।
बलिभिस्त्वरितं जग्मुः पृथुश्रोण्यश्चलत्कुचाः ।।१०।।

पिसी हुई नवीन केसरके तिलक एवं बिंदियोंसे जिनके मुखकमल सुशोभित हो रहे हैं, ऐसी पुष्ट नितम्बवाली एवं चलनेसे जिनके स्तन चलायमान हो रहे हैं ऐसी गोपियां भेटें लेकर शीघ्र ही भगवान्के दर्शनकेलिए नन्दरायजीके घर जाने लगीं ।।१०।।

वे सब देवतारूप थीं इसलिए भगवान्के सम्मुख जाते हुए प्रफुल्लित मुखवाली हो गईं. उनके इस अलौकिक विकासका वर्णन करते हैं. जैसे कि तांबूल चबानेसे लाल मुखवाली अथवा पद्मिनी आदि सुलक्षण होनेके कारण, आरक्त रेखायुक्त मुखवाली, नवीन केसरकी उत्तम लाल केसराओंको तिलक आदिसे मिला दिया है अथवा केसरकी केसराओंको पीसकर उनसे मुखपर रेखा कर ली है या नवीन केसरकी केसराएं ओष्ठपर स्वाभाविक लाल रेखाओंके सदृश शोभित हो रही हैं. उनसे सुशोभित मुखारविन्दसे विभूतिवाली गोपियोंको सर्वस्व ले जाना था, किन्तु शीघ्रताके कारण केवल पूजाकी सामग्री, पुष्पादि लेकर गईं. यद्यपि शीघ्र जानेमें गोपियोंके स्थूल नितम्ब एवं अति उन्नत चलायमान स्तन प्रतिबन्धक होते थे तो भी शीघ्र गईं. वे जहां अशक्यको शक्य कर सकती हैं वहां शक्यको शक्य करनेमें कौनसा सन्देह है. शीघ्रतासे जानेके कारण जैसे तैसे बांधी हुई मालाओंके बन्धन शिथिल होनेसे रास्तेमें गिरने लगे इसका वर्णन आगेके वाक्यमें होगा ।।१०।।

प्रकाश: सुबोधिनीमें दिये हुए 'यावता'का भावार्थ दो प्रकार से है. यावता 'नाटक हंस नूपुरादिना' नूपुर आदिसे जितना बन सका उतना आत्माको सजाया. २.'यावता कालेन' जन्म सुनते ही आनन्दित हुईं तो जानेमें विलम्ब क्यों? इसपर कहा है कि आत्मा सुशोभित करनेमें जितना समय लगा उतना आवश्यक विलम्ब हुआ. 'ता सर्व देवताः' कहा. गोपियोंका इस तरह वर्णन क्यों किया? क्योंकि गोपियां साधारण स्त्रियां नहीं थीं किन्तु वह देवताओंकी स्त्रियां थीं, इसलिए श्रीशुकदेवजीने इस प्रकार वर्णन किया.

लेख: १०।५।१०. 'ता सर्वा देवता रूपाः'का भावार्थ बताते हैं कि गोपियोंके देहको 'आत्मा' शब्दसे कहा गया है, इससे वह देह अविकृत होनेसे अलौकिक थी,

इसलिए गोपियोंको देवता रूप कहा है. नवकिञ्जल्क आदिसे उनकी शोभा या उत्तमताका वर्णन गौण है. मुख्य तो उनकी शोभा मुखारविन्दका विकास आदि अलौकिक था. इसलिए अलौकिक विकासादिको भगवान् ही जानते थे. अलौकिकताके कारण उसका ज्ञान ध्वनिसे ही मालूम होता है. 'आरक्त रेखा युक्ता'का आशय कहते हैं कि 'अधरस्थित रेखाएं ही किञ्जल्क हैं अथवा किञ्जल्क अधरके समान है, और इसी प्रकार नवीन केसरके समान किञ्जल्क जिनमें नवीन केसरकी किञ्जल्क जिनमें ऐसे सुन्दर विकसित मुखकमलोंसे शोभावाली गोपिकाएं.

योजना: १०।५।१०. 'नवकिञ्जल्क'श्लोकसे शुकदेवजीने यह बताया है कि गोपियोंमें गन्ध, रूप, स्पर्श, शब्द एवं रस ये सबसे उत्तम पांचों विषय भगवद् भोग्य हैं. इसका वर्णन आचार्यश्रीने कारिकामें किया है. मूल श्लोकके 'नवकुङ्कुम'से सुगन्ध 'किञ्जल्क'से रूप(सौन्दर्य युक्त), 'मुखपंकज'से स्पर्श, शब्द एवं रस बताये है. कमलका स्पर्श सुखकारक है. इससे इनके स्पर्शकी आनन्दप्रदता सूचित की. कमलपर भ्रमर गुंजार करते ही हैं इससे गोपियोंमें 'सु' शब्द बताया. कमलमें मकरन्द रहता है इससे गोपियोंको रसवती कही. यों कहनेका भाव यह है कि भगवान्के नासिका नयनादि से भोग्य पांचो विषय गोपियोंके अलौकिक अंगोंमें विराजते हैं.

गन्धो रूपं तथा स्पर्शः कटाक्षभ्रमरोक्तयः ।।
ताभिश्चतुष्टयं ज्ञेयं रसं ज्ञास्यति माधवः ।।का.११।।

कारिकार्थ: गन्ध, रूप, स्पर्श, शब्द और रस इन पांचोंमेंसे गन्ध, रूप, स्पर्श और शब्द ये चार उन गोपी जनोंके द्वारा जाने जाएंगे, रस तो माधव प्रभु आप ही जानेंगे.

गोप्यः सुमृष्टमणिकुण्डलनिष्ककण्ठ्यः
चित्राम्बराः पथि शिखाच्युतमाल्यवर्षाः ।।
नन्दालयं सवलया व्रजतीर्विरेजुः
व्यालोलकुण्डल–पयोधर–हार–शोभाः ।।११।।

गोपियां कानोंमें उज्ज्वल मणियोंकी जडाऊ कुण्डल पहिने हैं, गलेमें पदकोंके हार धारण किये हैं. हाथोंकी कलाईयोंमें कंकण पहिने हैं एवं विविध, विचित्र वस्त्र पहिने हैं, जिनकी वेणियोंमेंसे, मार्गमें फूलोंकी वृष्टि हो रही है. स्तन कुण्डल और हार हिल रहे हैं. ऐसी गोपियोंकी नन्दजीके घरमें प्रवेश करते समय विशेष शोभा हुई ।।११।।

इस प्रकार उपर्युक्त नवमें एवं दशवें श्लोकमें जाती हुई गोपियोंके स्वरूपका वर्णनकर, अब नन्दगृहमें प्रवेश करती हुई गोपियोंके स्वरूपका वर्णन करते हैं. 'गोप्यः इति' दूर दूरसे आई हुई गोपियां जैसे तैसे किसी प्रकार वे समीप आकर आपसमें मिलीं. तब उन सबके साथ मिलनेसे शोभा विशेष बढ़ी. दुबारा 'गोप्यः' इसलिए कहा है कि गोपियां सब एक स्थानसे नहीं आई थीं, किन्तु कोई कहींसे, और कोई कहींसे आकर सब नन्दरायजीके घरके निकट मिलके इकट्ठी हुईं और नन्दजीके घरमें, साथ ही प्रविष्ट हुईं.

आभूषणादि तो, वे लोग पहले ही पहने हुए थीं, किन्तु वे वस्त्रोंके भीतर ढके हुए थे, इसलिए उनकी शोभा घरमें आनेपर, खुले होनेसे दिखाई देने लगी, जिससे सबोंने जाना कि ऐसे ऐसे इतने इतने और ये ये आभूषण, इन्होंने धारण किये हैं. ऐसे ही वस्त्रोंकी शोभा भी घरमें आनेपर ज्ञात हुई. रास्तेमें शिखासे गिरते हुए पुष्पोंकी वर्षा गोपियोंकी शीघ्र गति एवं जानेके मार्गकी सूचना दे रही थी. कंकणोंने भी रूप और शब्दसे अपना प्राकट्य अर्थात् दूसरे आभूषणोंके समान हम भी हैं, ऐसा बताया गोपियां हिलते हुए कुण्डल, पयोधर और हारोंसे सुशोभित देखनेमें आईं. इन आभूषणोंमें कुण्डल राजस, पयोधर तामस, और हार सात्त्विकताके प्रतीक थे. उनमें चंचलता आ जानेसे सब प्रकारकी गोपियोंकी उत्सवमें आसक्ति बताई. जिनके कानोंमें उज्ज्वल मणियुक्त कुण्डल, कण्ठमें पदकोंके हार और विचित्र वस्त्र हैं तथा जिनकी मालाओंके फूलोंने रास्तेमें वर्षा की है, ऐसी गोपियोंने नन्दरायजीके घरमें प्रवेश किया. जिस प्रकार गोपियां आभूषणोंसे सुशोभित थीं उसी प्रकार कंकण सहित चलायमान कुण्डल, स्तन और हार भी गोपियोंके कारण सुशोभित हो रहे थे ।।११।।

लेखः (१०।५।११). दशम श्लोकमें 'गमन'का मुख्य रूपसे वर्णन है इसलिए इस ग्यारहवें श्लोकमें 'प्रवेश'का मुख्यरूप वर्णन करना चाहिए, वह न करके शोभाकी मुख्यताका वर्णन क्यों किया? इस शंकाका निवारण करनेकेलिये कहा गया है कि 'दूरादागत्य' दूर दूरसे आकर एक स्थानपर सब मिलीं. तब दोनों(गोपियों एवं आभूषणों)की परस्पर अत्यन्त शोभा हुई, अर्थात् गोपियोंकी आभूषणोंसे और आभूषणोंकी गोपियोंसे. इसलिए ''व्यालोलकुण्डल-पयोधर-हारशोभाः'' इस संस्कृत पदके दो प्रकारके विग्रह करके दो भाव बताये हैं. इसलिए प्रवेशकी मुख्यता न बताकर शोभाकी मुख्यता बताई गई है.

ता आशिषः प्रयुञ्जानाश्चिरं पाहीति बालके ।।
हरिद्राचूर्णतैलाद्भिः सिञ्चन्त्योजनमुज्जगुः ।।१२।।

गोपियां बालकको आशीर्वाद देती हुईं तथा यों कहती हुईं कि आप हमारी बहुत समय तक रक्षा करो, हलदी, चूना, तैल और पानी मिलाके परस्पर एक दूसरेपर डालती हुईं उस बालक(भगवान्)का जोरसे यश गाने लगीं ।।१२।।

नन्दगृहमें आई हुईं गोपियोंके कार्यका वर्णन करते हैं कि वे गोपियां इस प्रकार बहुत स्नेहसे आशीर्वाद देने लगीं. उनके आशीर्वाद सत्य थे क्योंकि गोपियोंमें भगवदावेश था. इसलिए उन्होंने कहा कि 'बहुत समय तक हमारी रक्षा करो' आशीर्वाद भगवान्को परोक्ष समझकर नहीं दिया किन्तु प्रत्यक्ष आंखोंके सामने दृष्टिगोचर हो रहा है, ऐसा समझकर 'पाहि' यह मध्यम पुरुषका रूप दिया. गोपियोंका सर्वभावसे भगवान् पालन थोड़े समय तक ही करेंगे. यह समझकर ही बहुत काल तक रक्षाकेलिये उन्होंने प्रार्थना की. यह प्रार्थना किसी एक गोपीने नहीं की किन्तु प्रत्येक गोपी पृथक्-पृथक् अपने मुखसे अपने-अपनेलिये प्रार्थना करते 'चिरं पाहि'का उच्चारण किया, क्योंकि प्रत्येक गोपीमें भगवत्स्फूर्ति थी. इस प्रकार आशीर्वाद देती हुई भगवद्भावसे अत्यन्त मत्त हो गईं. प्रेमावेशमें मग्न हो गईं. इससे हल्दी, चूना, तैल और पानी मिलाकर आपसमें छिड़कती हुई भगवान्के गीत गाने लगीं. हल्दी और चूना मिलनेसे उनका रंग लाल हो जाता है, उसमें तैल मिलाकर किसीके लगानेसे वह रंग मिटता नहीं, बहुत समय तक लगा रहता है और जलमें मिलनेसे वह रंग फैल जाता है. यों करनेका आशय यह है कि भगवान्के प्रति हमारा प्रेम बहुत समय तक अधिकाधिक होता रहे मिटे नहीं. कुलीन स्त्रियोंमें ऐसा भाव(पर) पुरुषमें कैसे हुआ? इस शंकाको मिटानेकेलिये 'अजन' पदसे बताया. 'अजन' पद भगवद्भावका ज्ञापक है. गोपियोंने यह जान लिया था कि नन्दजीके यहां साधारण मानवका जन्म नहीं हुआ है, किन्तु उस अजन्माका यहां प्राकट्य हुआ है. इसलिए भगवान्के[१] मिलनेपर अन्य सबकी अपेक्षा जाती रहती है अर्थात् उनके मनमें भगवत्प्रेमके अतिरिक्त लौकिक आदिका उद्भव ही नहीं होता है. इससे प्रेममत्त हो सिञ्चन करती हुईं वे गोपियां भगवान्का जोर जोरसे यश गान करने लगीं ।।१२।।

१.यहां 'भगवान्' शब्दसे पुरुषोत्तम समझना चाहिये. 'पुरुषोत्तम' जिनको मिले हैं उनको लोकवेदकी अपेक्षा नहीं रहती है क्योंकि श्रुति कहती हैं कि ''न बिभेति ब्रह्मज्ञा''

किसीसे डरता नहीं.

प्रकाश: (१।५।१२). गोपियोंको आशीर्वादमें तो 'चिरं जीव' बहुत समय तक आप रहो, इतना कहना था इसके साथ ''हमारी रक्षा करो'' ऐसा क्यों कहा? इसका भाव बताते हुए सुबोधिनीमें कहा है कि गोपियोंका यह कहना सत्य है क्योंकि उनमें भगवदावेश होनेसे वे जानती थीं कि भगवान् मथुरा पधारेंगे और हमारी रक्षा थोड़े समय तक ही करेंगे. इसलिए पाहि(रक्षा करो) ये शब्द साथमें कहे. अथवा भगवान् मथुराजी भी जायं तो भी रात्रिके समय हमारा रक्षण करेंगे, दिनको नहीं करेंगे, इसलिए दिनके समय भी रक्षण करें. इसलिए 'चिरं पाहि' बहुत समय तक रक्षण करो अर्थात् 'दिन रात्रि'में हमारी रक्षा करो इस प्रकार कहा यह आशिष सत्य हुई क्योंकि ''स्त्रीषु रेमे ह्यहर्निशं'' कहा है. यदि ऐसी ही इच्छा थी तो 'चिरं'(बहुत समय तक) न कहकर 'सदा' रक्षा करो कहना था. 'सदा' इसलिए गोपियोंने नहीं कहा कि वे जानती थीं कि यदि हम सदा रक्षणकी प्रार्थना करेंगी तो प्राप्त रसका अनुभव न कर सकेंगी. इससे 'सदा' न कहकर 'चिरं' कहा.

२.इस प्रकार वाणीसे प्रार्थनाकर क्रियासे भी उस आशयको बताती हैं. हल्दी व चूना आदि मिलाकर सिंचन करनेसे यह कहा कि जैसे लाल रंग व्यापक होकर मिटता नहीं है वैसे ही आपका और हमारा प्रेम ऐसा पक्का और व्यापक हो कि कदापि कम न हो.

३.गोपियोंने ऐसे भाव जो प्रकट किये उसका कारण यह था कि गोपियोंमें भगवान् कृष्णकेलिए मनुष्यभाव नहीं था किन्तु ब्रह्मभाव था अर्थात् यह प्रकट बाल स्वरूप भगवान्(ब्रह्म) है इसलिए शुकदेवजीने 'अजन' शब्द देकर बताया कि यह बालक अजन्मा भगवान् है.

४.'सहि' शब्दसे सुबोधिनीमें बताया गया है कि गोपियोंने जान लिया है कि ये वे ही भगवान् हैं जिनने हमको वरदान दिया था. वे भगवान् षड्गुणैश्वर्य संयुक्त अक्षरमें ही विराजमान हैं. अन्य बालककी तरह पृथ्वीपर इनका जन्म नहीं हुआ है किन्तु अक्षरको प्रकटकर उसमें आपका प्रादुर्भाव हुआ है. यह गोपियोंने (भगवदावेश होनेसे) समझा था.

अवाद्यन्त विचित्राणि वादित्राणि महोत्सवे ।।
कृष्णे विश्वेश्वरेनन्ते नन्दस्य व्रजमागते ।।१३।।

नन्दजीके व्रजमें जगत्के नाथ अनन्त श्रीकृष्णके प्रकट होनेके कारण जन्म महोत्सवमें विचित्र बाजे बजने लगे ।।१३।।

उपर्युक्त पांचसे बारह श्लोकोंमें सूत मागध आदि विद्योपजीवियोंके,

व्रजभूमिके गाय और गोपियोंके अलंकारो[1]का वर्णन हुआ. इस श्लोकमें लौकिक बाजोंके बजनेसे हुए उत्सवका वर्णन करते हैं.

स्वभावसे वाद्य दश[2] प्रकारके होते हैं, बाजेवालोंने उनसे भी विशेष वाद्य, भगवान्‌के जन्म महोत्सवमें बजाये. महोत्सव करनेका निमित्त कारण, विश्वके नियामक कृष्णका प्राकट्य है. अभी तो बालकका जन्म हुवा है; नामकरण तो हुवा ही नहीं, तो कृष्ण नाम शुकदेवजीने कैसे कहा? इस शंकाको मिटानेकेलिये कहते हैं कि 'भगवति नियमाभावात्' नामकरण संस्कारमें नाम तो लौकिक बालकोंका धरा जाता है इसलिए लौकिक बालकके नामका ज्ञान, नामकरण होनेपर होता है. भगवान्‌के साथ, यह नियम लागू नहीं होता है क्योंकि उनका नाम धरा नहीं जाता है. जैसे वे नित्य हैं वैसे ही उनका नाम सदैव नित्य है. शंका तो गर्गजीने नामकरण संस्कारमें नाम क्यों धरे? इसके उत्तरमें कहते हैं कि गर्गजीने नये नाम नहीं धरे थे किन्तु पहलेके ही नाम कह सुनाये थे. जैसे "**कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृत्तिवाचकः, तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते**" गोपालतापिनीय उपनिषद् 'कृष्' शब्द सत्तावाचक है 'ण' शब्द आनन्दवाचक है. दोनों शब्दोंके ऐक्यसे 'कृष्ण' बना है, उन कृष्ण[3]को परब्रह्म कहते हैं. अर्थात् 'कृष्ण' सदानन्द स्वरूप है यह नाम कोई प्राकट्यके कारण नहीं है. आनन्द होनेपर सामान्यतया बाजे अवश्य बजने चाहिये जिसपर यहां तो विश्वके नियामकका प्राकट्य हुआ है इसलिए महान्‌के पधारनेपर स्वयं उसके पास जाकर बाजे भी अधिक बजाने चाहिए. यह तो दूसरे बालकों जैसा ही बालक है, ऐसी शंका मनमें नहीं लानी चाहिए क्योंकि शुकदेवजीने इनको 'अनन्त' कहा है इसलिए यह लौकिक बालक जैसा बालक नहीं है किन्तु जिनका कोई अन्त नहीं है ऐसे महान् हैं, या अनन्त काल[4]रूप हैं इसलिए यदि अन्यथा किया जाएगा अर्थात् महोत्सव नहीं मनाया जाएगा तो कालरूप होनेसे वे नष्ट कर देवेंगे. इसके अतिरिक्त नन्दजी छोटे हैं और उनका घर व्रज भी छोटा है, वहां विश्वके 'ईश्वर' 'सदानन्द' 'अनन्त'[5] पधारे हैं. छोटेके छोटे घरमें यदि महान् आ जाए तो उनके आगमनपर अवश्य महोत्सव करना चाहिए. इससे आने वालेका स्वागत समादर होता है, नहीं तो उसका अपमान[6] होता है. जिससे अप्रसन्न होकर वह कुछ हानि भी करे. इन सब विचारोंके साथ साथ नन्दजी द्रोण हैं और भगवद्भक्त हैं. तथा भगवान् कृष्ण,

ब्रह्माजीके वचन सत्य करनेकेलिये, व्रजमें पधारे हैं. इसलिए महामना नन्दरायजीने आह्लादमें जो बाजे बजानेका महोत्सव किया सो बहुत उचित था।।१३।।

१.प्रकाश: सुबोधिनीमें कहे हुए 'अलंकार'शब्दसे, सुन्दर सत्यवाणी, जातकर्म संस्कार, वेश और गुणगान समझने चाहिए.

२.दश प्रकारके वाद्य: १.मृदङ्ग २.शंख ३.भेरी ४.वीणा ५.पणव ६.गोमुख ७.धुन्धुरी ८.आनक ९.घण्टा १०.दुन्दुभि.

प्रथम स्कन्ध, दशवें अध्यायके श्लोक पन्द्रहमें कहे हुएके अनुसार ये बाजे स्वयं आप ही नहीं बजेंगे, इसलिए सुबोधिनीमें कहा है 'वादकाः वादयामासुः' अर्थात् बजानेवालोंने बजाये.

३.टिप्पणी: तेरहवें श्लोकमें 'कृष्ण' शब्द 'विश्वेश्वर' और 'अनन्त' शब्दके समान भगवान्का सदानन्द स्वरूप बतानेकेलिये कहा गया है न कि कृष्णका नाम है. ऐसी अवस्थामें यह शंका करनी ही व्यर्थ है कि नामकरणसे पहले शुकदेवजीने 'कृष्ण' नाम कैसे दिया. टिप्पणीकार इसका उत्तर देते हैं कि 'विश्वेश्वर' और 'अनन्त' आदि शब्द पहले धर्म बताकर, धर्मीका ज्ञान कराते हैं, किन्तु 'कृष्ण' शब्द धर्म कहकर धर्मीका ज्ञान नहीं कराता है वह तो स्वयं आनन्दकी सत्तारूप है, इसलिए यह 'कृष्ण' नाम है न कि किसीका धर्म बतानेवाला शब्द है. अतः यह शंका वास्तविक होनेसे उसका समाधान इस प्रकार किया गया है कि पुरुषोत्तम स्वरूप सदानन्दात्मक हैं, 'कृष्ण' पद केवल सदानन्दात्मक स्वरूपका वाचक होनेसे 'मुख्य नाम' है. इसलिए शुकदेवजीने यहां 'कृष्ण' पद नामवाचक ही दिया है.

४.लेख: 'काल' यह काल भी भगवद्रूप है जैसा कि ''अथ सर्वगुणोपेतः'' श्लोकमें कहा है और ''तमद्भुतं'' श्लोकमें उसका विशेष विवरण है. इसलिए यह 'काल' साधारण काल नहीं, किन्तु भगवद्रूप है. भगवान्के लीला कालके प्रादुर्भाव होते हुए यदि सेवक पूर्णतया सेवा न करे, तो सेवकोंका अहित ही होता है इसलिए भगवद्रूप कालके आगमनके कारण, सब सेवक सेवा करने लगे. अन्यथा दण्डपात्र होते.

५.अनन्त: 'काल' लीला काल भगवद्रूप है, इसलिए लीला कालके समय, यदि सेवक सेवा न करे, तो वह कालरूप भगवान्, उन सेवकोंको दण्ड देंगे.

६.'अपमान' सेव्यकी सेवा न करे, तो दोष है.

गोपाः परस्परं हृष्टा दधिक्षीरघृताम्बुभिः ।।
आसिञ्चन्तो विलिम्पन्तो नवनीतैश्च चिक्षिपुः ।।१४।।

आनन्दमग्न गोपगण दही, दूध, घृत और जल एक दूसरे पर सिंचन करने (उडेलने) लगे और दही आदिसे मुख लेपन करते हुए माखन फेंकने लगे।।१४।।

गोपिकाओंमें भगवान्का आवेश भगवत्स्मरणसे हुआ और गोपोंमें तो भगवान्के सन्निधानसे भगवद्धर्म प्राकट्यके कारण भगवान्का आवेश हुआ. भगवदावेश होनेपर, हर्षसे प्रफुल्लित गोपोंके, मनाये हुए उत्सवका वर्णन करते हैं.

दधि, दूध, घी एवं जलको मिलाकर आपसमें सिंचन करने लगे; दही आदि एक दूसरेके मुखोंपर लेपन करते हुए परस्पर मक्खनके गोले फेंकने लगे. अथवा जिसको जो वस्तु हाथ लगी जैसे किसीको दही हाथ लगा तो वह दहीसे दूसरेके मुखपर लेप करने लगा, यदि किसीको दूध या जल हाथ लगा तो वह दूध या जल उडेलने लगा. इसी प्रकार घृत एवं जलसे सिञ्चनादि किये. सिञ्चन समान आनन्दवाले और अधिक आनन्दवाले करते थे. विशेष रसमें मत्त होनेपर नवनीतके गोलोंकी वर्षा करते थे. इसी प्रकार सबोंके उत्सवका वर्णन किया है ।।१४।।

इस प्रकार सबोंके आनन्दसे उत्सव मनानेका वर्णनकर, अब नन्दरायजीके दानरूप उत्सव मनानेका वर्णन करते हैं.

नन्दो महामनास्तेभ्यो वासोलङ्कारगोधनम् ।।
सूतमागधबन्दिभ्यो येऽन्ये विद्योपजीविनः ।।१५।।

उदार हृदयवाले नन्दरायजीने उन सूत(पौराणिक), मागध(वंशकी स्तुति करनेवाले भाट) और बन्दी(चारण)जनोंको तथा अन्य विद्योपजीवियोंको वस्त्र अलंकार और गौएं दीं ।।१५।।

नन्दरायजीने विद्योपजीवी विद्वानों, दूसरों और स्त्रियोंको मुंह मांगा दान दिया. पहले विद्यावालोंके दानका वर्णन करते हैं. विद्याके तारतम्यसे(जो जितनी विद्यावाला होवे उसको उसकी योग्यतानुसार) दान करना चाहिए. यदि कोई अनेक विद्याओंका जानकार होवे तो उसको अधिक और थोड़ी विद्यावालेको कम दिया जाय तो, जिनको कम मिलेगा उनके मनमें होगा कि नन्दरायजी हमको भी इतना देते तो हम भी प्रसन्न होते. इस प्रकारके लोभका विचार किसीको न हो, इसलिए प्रत्येक ब्राह्मणको एक समान कपड़े, अलंकार, गौएं और धन अथवा गौओंका एक एक गोष्ठ दानमें दिया. सूत[१] आदिको अनुवाद[२] करनेसे ब्राह्मणोंके समान न देकर योग्यतानुसार दिया. सूतोंको यशकेलिये दिया, दूसरे गानेवाले, वैद्य, ज्योतिषी, शकुन जाननेवाले और स्त्रियां आदि जो उत्सवमें आई थीं उन सबको शिरोपावमें वस्त्र अलंकारादि दिये।।१५।।

१.लेख: मूल श्लोक १५.में 'तेभ्यः प्रादात्' उनको दिया इसका सम्बन्ध (भा.अ.५।३)

में कहे हुए 'विप्रेभ्यः प्रादात्'से है.

२. प्रकाश: १५ श्लोक दूसरोंका पृथक् विवरण देनेके कारण दूसरोंके दानमें भी भेद है अर्थात् ब्राह्मणों जैसा दान उन्हें न मिला किन्तु अपनी योग्यतानुसार ही उन्हें दान मिला.

तैस्तैः कामैरदीनात्मा यथोचितम् अपूजयत् ।।
विष्णोराराधनार्थाय स्वपुत्रस्योदयाय च ।।१६।।

अदीन, निर्लोभी(महान्) आत्मा(मन)वाले नन्दरायजीने आए हुओंका कामनानुसार विष्णुकी प्रसन्नताकेलिए और अपने पुत्रके उदयकेलिए यथायोग्य पूजन किया ।।१६।।

दूसरोंको भी दान दिया उसका वर्णन करते हैं. नन्दरायजीका अन्तःकरण निर्लोभी था अर्थात् उदार था. इसलिए जिनके मनमें जो जो पानेकी इच्छा थी उस इच्छाके अनुसार उनका भी विष्णुबुद्धि[१]से आदर सत्कार किया।।१६।।

शंका: यदि किसीने अदेय मांगा हो व मांगनेवाला असुर था, तब वहां नन्दरायजीने क्या किया? तहां कहते हैं कि योग्यता अनुसार पूजन किया, अर्थात् जिसकी जैसी योग्यता थी उसको उतना दिया और जो कुछ देना योग्य था वही दिया क्योंकि देने और दानमें, योग्यता आवश्यक है. इस प्रकार सबोंके पूजा करनेका प्रयोजन बताते हैं कि विष्णु[१]की प्रसन्नताकेलिये, अपने पुत्रकी[२] उन्नति केलिये सबोंका पूजन किया. श्लोकमें 'च' दिया है इसका आशय बताते हैं कि ग्रहादिकी प्रार्थनाकेलिये भी पूजन किया.

१.विष्णु प्रसन्न हो इस बुद्धिसे पूजन(आदर सत्कार) किया. लेख.

२.योजना: ''तस्य नन्दस्य ज्ञानानुरोधात् भिन्नतया कथनं''के आशयको स्पष्ट करते हैं. विष्णुकी प्रसन्नता और अपने पुत्रकी उन्नतिकेलिये अलग अलग लिखनेका भाव यह है कि नन्दरायजीने अपने पुत्रको विष्णुसे पृथक् लौकिक बालकवत् समझा था. अर्थात् अपने पुत्रको विष्णुरूप नहीं समझा था. तात्पर्य यह है कि शुकदेवजीने नंदजीकी बुद्धिके अनुसार पृथक् पृथक् कहा है.

रोहिणी च महाभागा नन्दगोपाभिनन्दिता ।।
व्यचरद् दिव्यवासःस्रक्कण्ठाभरणभूषिता ।।१७।।

नन्दरायजी द्वारा प्रसन्न की हुई महाभाग्यशालिनी[१], रोहिणीजी[२], सुन्दर वस्त्र, माला और कण्ठाभरणोंसे भूषित हो इस महोत्सवमें फिर रही थीं ।।१७।।

स्त्री वर्गके दानमें, रोहिणीजीको दिया हुआ दान तो कंसके भयके कारण छिपाकर दिया होगा. इस शंकाको मिटानेकेलिये कहते हैं कि भगवान्‌के आवेश होनेसे दान करनेवाले एवं लेनेवालेको कोई भय नहीं होता है. इसलिए नन्दरायजीने, जो रोहिणीजीको दिया, वह छिपकर नहीं दिया और न रोहिणीजीने डरकर छिप छिपकर लिया. इस श्लोकमें रोहिणीजीकी निर्भयता दिखानेकेलिये रोहिणीजीके चरित्रका वर्णन करते हैं.

रोहिणीजीको 'महाभागा'(बड़े भाग्यवाली) इसलिए कहा गया है कि भगवान्‌के आनेसे पहले ही रोहिणीजीसे बलरामजी प्रकट हो गये थे. यद्यपि देवकीके अतिरिक्त वसुदेवजीकी सब पत्नियां भी भाग्यशालिनी थीं, किन्तु बाललीला आदि सब लीलाएं रोहिणीजी देखेंगी, दूसरी पत्नियां बाललीला नहीं देखेंगी, इस कारणसे यह विशेष भाग्यवती है. रोहिणीजी नन्दरायजीसे अभिनन्दित (सम्मानित) होनेके कारण केवल स्त्री-वर्गमें ही नहीं फिरती थीं, किन्तु सब जगह घूमती हुई सारा गृह-कार्य करती थीं और गृहिणीके समान देख रेख करती थीं. रोहिणीजी प्रचार करने और निर्भयता दिखानेकेलिये सुन्दर वस्त्र, मालाएं तथा कण्ठाभरणोंसे अलंकृत हुई थीं. 'च' अक्षरसे बताते हैं कि अन्य स्त्रियां भी दिव्य वस्त्र मालाएं, कण्ठाभरण पहनकर सुशोभित हुई थीं. स्त्रियोंके तीन प्रकारके आभूषण होते हैं: १.वस्त्रोंके, २.पुष्पोंके और ३.सुवर्णके. इसलिए उन्होंने तीन प्रकारके आभूषण धारण किये थे. पैर और हाथोंके आभूषण तो यों ही स्त्रियोंके सदैव रहते हैं, परन्तु कण्ठाभरण पदकहार आदि विशेष उत्सवोंपर पहने जाते हैं. इसलिए उनका यहां वर्णन किया गया है. इससे रोहिणीजीके सम्बन्धके कारण यह कृष्ण(वसुदेवजीके पुत्र) यहां आये हैं. यह भय भी मिटा दिया।।१७।।

१. रोहिणीजीको महाभाग्यशालिनी इसलिए कहा है कि वह 'कृष्ण'की सब लीलाएं (व्रजमें की हुई बालादि लीलाएं और दूसरी भी लीलाएं) देखेंगी. वसुदेवजीकी दूसरी पत्नियां कृष्णकी बाल लीलाएं नहीं देखेंगी. कंसके मरनेके बाद जो लीलाएं होंगी वे ही देखेंगी इसलिए वे स्त्रियां केवल भाग्यवतियां थीं.

२. रोहिणीजी पूर्ण शृंगारसे सुसज्जित होकर चारों ओर घूम रही थीं इससे 'कृष्ण' वसुदेवजीके पुत्र हैं यह शंका कंसके मनमें भी न होगी. इसी प्रकार कंसके भयका भी निवारण हुआ. प्रकाश.

तत आरभ्य नन्दस्य व्रजः सर्वसमृद्धिमान् ।।

हरेर्निवासात्मगुणै रमाक्रीडमभून् नृप ।।१८।।

हे राजन्! उस दिनसे नन्दजीका सारा व्रज सम्पूर्ण समृद्धिवाला हुआ. भगवान्के घर होनेसे एवं उनकी आत्मा तथा ऐश्वर्यादि छः गुणोंके निवाससे वह व्रज लक्ष्मीका क्रीडा भवन हो गया ।।१८।।

महोत्सवमें, इस प्रकार, सर्वस्व देनेसे नन्दरायजीके पास कुछ नहीं रहा होगा. इस शंकाको मिटानेकेलिये कहते हैं कि, स्वयं भगवान्के निवास स्थल होनेसे उन (नन्दजी)के पास पहलेसे भी अधिक समृद्धि हुई इसका वर्णन ''तत आरभ्य'' श्लोकसे करते हैं.

नन्दरायजीके पहले कहे हुए दान देने और विष्णुबुद्धिसे पूजन करनेके कारण उस दिनसे धन, पशु, ज्ञान आदि सर्वप्रकारकी समृद्धियां केवल नन्दजीके पास ही नहीं, किन्तु समग्र व्रजमें हो गईं, पर यह उसका गौण फल है. न केवल समृद्धियां ही हुईं किन्तु व्रजकी वैकुण्ठ जैसी विशेष शोभा हुई, क्योंकि व्रज भगवान्का निवास बन गया, उसमें अपनी आत्मा(स्वरूप) और षड्गुणों सहित आप विराजमान हुए. यों तो व्रजमें गौएं अधिक रहनेसे वह स्थान गोमयादिके कारण असुन्दर होता है, किन्तु वहां तो आधिदैविकी कान्ति(शोभा) सबसे उत्तम हुई, वह तो लक्ष्मीजीके निवाससे ही होती है, इसलिए कहते हैं कि, वह व्रज रमाके खेलनेका स्थान(वैकुण्ठ) बन गया. गोमयादिसे असुन्दरता मिट गई और उनमें आधिदैविकता आनेसे सर्वत्र अलौकिक सुन्दरता आ गई.

वैकुण्ठमें जानेका परिश्रम भी भक्तोंको न हो, इसलिए सर्वदुःखहारी भगवान् यहांपर ही वैकुण्ठको लाए, यदि लाए हुए वैकुण्ठमें भी भगवान् न हों, तो वह वैकुण्ठ भी भक्तोंको आनन्ददाता नहीं होता है. इसलिए भक्तेच्छापूरक भगवान्ने भक्तोंकी अभिलषित कामनाओंकी पूर्तिकेलिये, अपनी आत्मा (स्वरूप) तथा षड्गुणसहित व्रजको अपना निवास बनाया. भगवान् उनकी आनन्दमय आत्मा तथा षड्गुणके वहां विराजनेसे स्वयं रमाकी क्रीडास्थल अर्थात् वैकुण्ठ हो गया अर्थात् परमानन्द स्वरूपका लीला स्थान होनेसे व्रज अत्युत्कृष्ट(सबसे उत्तम) स्थान हुआ. हे राजन्! यह सम्बोधन देनेसे, यह भाव बताया है कि, जहां राजा रहता है, वह 'राजधानी' होती है. आप राजा हो, आपको तो यह अनुभव है ही. जब भगवान् स्वयं व्रजमें रहे तो, वह व्रज भगवान्का धाम, वैकुण्ठ बन ही गया, इसमें कोई शंकाका अवकाश नहीं है।।१८।।

योजना: (१०।५।१८). 'हरेर्निवासात्मगुणैः' पदोंसे शुकदेवजीने देह और षड्गुणों सहित भगवान्का व्रजमें निवास कहा है. यहां 'देह' शब्दसे किसीको शंका हो कि भगवान्की भी मनुष्यवत् देह है क्या? इस शंकाको मिटाते हुए योजनाकार कहते हैं कि भगवान् और भगवान्की देह पृथक् नहीं है वह भगवद्रूप ही है, इसलिए 'आत्म' शब्द दिया है और शास्त्रोंमें भी, भगवान्के देहको आनन्दरूप कहा है जैसा कि ''कृषिर्भूवाचकः'' श्रुतिमें कृष्णको सदानन्द स्वरूप कहा गया है. ''सच्चिदानन्द-रूपाय'' गोपालतापिनी उपनिषद्में, सच्चिदानन्दरूप कहा है. ''आनन्दरूपम् अमृतं यद् विभाति'' श्वेताश्वतर उपनिषद्में 'आनन्द रूप अमृत' कहा गया है. ''सच्चिदानन्दविग्रह नन्दव्रजजनानन्दी'' ब्रह्माण्ड पुराणमें नन्दके व्रजको आनन्ददाता सच्चिदानन्द शरीरधारी कहा है. इत्यादि प्रमाणोंसे कृष्ण आनन्दस्वरूप है, उनकी देह उनसे पृथक् नहीं है वह देह भी आनन्दात्मक ही है.

लेख: १. विष्णुबद्धिसे किये हुए पूजनका गौण फल है.

टिप्पणी: प्रथम दान करनेसे नन्दरायजीको समृद्धिकी प्राप्ति हुई, मुख्य फल विष्णुका आराधन मिला, जिससे नन्दजीने सबका विष्णुबद्धिसे पूजन किया. दानका गौण फल है. विष्णुबद्धिसे पूजन करनेसे वेदके दोनों काण्डोंके फल नन्दजीको मिले १.पूर्व काण्डका फल धन, पशु और उत्तर काण्डका फल ज्ञान. ''यत्र गावो भूरि शृंगा'' इस श्रुतिमें आधिदैविक नित्यसिद्ध, लोकमें प्रसिद्ध व्रजको वैकुण्ठ कहा गया है. आधिदैविक व्रजमें वैकुण्ठको लाए. लेख.

शुकदेवजीने इस प्रकार जन्मोत्सवका वर्णन किया, जिसमें यह दिखाया कि यह उत्सव 'बनावटी'[१] नहीं था, क्योंकि भगवान्के प्राकट्यके कारण उत्सव मनाया गया था, चाहे नन्दजीकी बुद्धि ऐसी नहीं थी तो भी वास्तवमें तो, आनन्दरूप भगवान्के प्राकट्यके कारण सबके मनमें उल्लास प्रकट हुआ, जिससे इतना महामहोत्सव मनाया गया और वह स्थान वैकुण्ठ बन गया. ऐसे महोत्सवमें लगनेके कारण, नन्दजी दूसरे आवश्यक कार्य भी न कर सके, तो भी, उत्सव पूरा होते ही, अन्तरासक्ति होनेपर भी, भगवान्(पुत्र)केलिए सुन्दर वस्तु लानेको मथुरा गए. यह 'गोपान्' इस श्लोकसे वर्णन करते हैं(अथवा वसुदेवजी और देवकीजीका भी भगवान्में अतिशय स्नेह है) भगवान्को हम गोकुलमें छोड आए हैं इसका ज्ञान किसीको हुआ भी है या नहीं, इस संशयसे उनके मनमें खेद होता था. नन्दरायजीसे बातचीत होनेपर उनका वह खेद मिटेगा और उनको भी प्रसन्नता होगी. इस कारणसे भी नन्दरायजी उत्सव पूर्ति होते ही बिना कुछ दिन ठहरे, मथुरा चले गए, जिसका वर्णन करते हैं. ऐसा करनेसे इस अध्यायका अर्थ उत्सव है,

इसकी भी सिद्धि हो जाती है. मथुरागमनका वर्णन 'गोपानिति' इस श्लोकसे करते हैं :

१.लेख: उत्सव बनावटी नहीं था. भगवान्की अकृत्रिम उत्सवकी लीला तो नित्य वैकुण्ठमें ही होती है. भूतलपर तो, जो लीला होती है वह(भूतलपर की हुई लीला) कृत्रिम(बनावटी) ही होगी, आप कैसे कहते हो कि लीला अकृत्रिम थी. इस शंकाको मिटानेकेलिए ही भगवान्ने गोकुलको वैकुण्ठ बना दिया था. इससे सिद्ध होता है कि उत्सव अलौकिक था.

गोपान् गोकुलरक्षायां निरूप्य मथुरां गतः ।।
नन्दः कंसस्य वार्षिक्यं करं दातुं कुरूद्वह ।।१९।।

हे कुरुनन्दन! नन्दरायजी गोकुलकी रक्षाकेलिए गोपोंको नियुक्तकर, आप कंसको वार्षिक 'कर' देनेके लिए मथुरा गए ।।१९।।

वसुदेवजी नन्दरायजीको मथुरामें रहनेका निषेध करेंगे, इससे नन्दजी व्रजमें लौटकर आनेके अनन्तर मथुरा नहीं जाएंगे. कंसकी चिन्ता न कर, व्रजमें ही निश्चिन्त रूपसे निवासकर, सुखपूर्वक दिन व्यतीत करेंगे. इससे भगवान्के ऐश्वर्य गुणका दिग्दर्शन हुआ. पहले गोकुलकी रक्षामें नन्दजीका इतना आदर न था. अब अत्यन्त आदरसे गोकुलकी रक्षाकेलिये, अन्तरंग गोपोंको आदेश देकर मथुरा गए. कारण कि सारी प्रजा 'कर' देती है. अभी भी इस देशमें श्रावणी(श्रावण शुक्ल १५) के अनन्तर कर देनेका नियम है. सारे वर्षमें जो कर देना हो वह एक ही दिन बडे पुरुष दे देते हैं. नन्दजी महान् हैं इसलिए उनका नाम करदाताओंमें गिनाया गया है. कुरूद्वह! यह सम्बोधन राजधर्मज्ञापनकेलिये दिया गया है।।१९।।

प्रकाश:(१०।५।१९.) 'गोपान्' इस श्लोकसे सिद्ध करते हैं कि यह अध्याय ऐश्वर्याध्याय है. क्योंकि नन्दरायजी वसुदेवजीके निषेध करनेके बाद फिर मथुरामें नहीं आवेंगे, व्रजमें ही रहेंगे. कंसकी थोड़ीसी भी चिन्ता न कर, निश्चिन्त वहां सुखपूर्वक समय बिताएंगे.

यद्यपि नन्दरायजीकी उत्सवमें आसक्ति बताकर, यह जताया है कि अब कर नहीं देना चाहिए ऐसा निरूपण किया है, किन्तु वास्तवमें ईश्वर(भगवान्)के विद्यमान होते हुए, अन्यको 'कर' देना उचित नहीं है. अब 'कर' नहीं देना चाहिए. यह समझानेकेलिए वसुदेवजीका नन्दजीसे मिलना आवश्यक है, जिसका वर्णन 'वसुदेव उपश्रुत्य' श्लोकसे करते हैं :

वसुदेव उपश्रुत्य भ्रातरं नन्दम् आगतम् ।।

ज्ञात्वा दत्तकरं राज्ञे ययौ तदवमोचनम् ।।२०।।

अपने भाई नन्दरायजीका आगमन सुन और राजा कंसको कर दिया, यह जानकर वसुदेवजी उनके डेरेपर गए ।।२०।।

१.जिसके जन्मका हमने ऐसा महान् उत्सव मनाया है, वह वसुदेवजीका पुत्र होगा. इस शंकाको मिटानेकेलिये, वसुदेवजीका नन्दजीसे मिलना आवश्यक था.

२.कंसको महान् उत्सवका ज्ञान पूर्ण न हो जाय नहीं तो वह उपद्रव करेगा. यह जतानेके वास्ते वसुदेवजीका नन्दजीसे मिलना आवश्यक था.

३.कंसने मंत्रणाकर दूतोंको गोकुल आदि स्थानोंमें बालकोंका नाश करनेको भेजा है, इसका ज्ञान वसुदेवजीको था जिसकी सूचना नन्दजीको देनी थी सो उन दोनोंका मिलना आवश्यक था.

४.नंदजीको मथुरासे गोकुल शीघ्र भेजकर, वहांपर ही रहने एवं बालकोंकी रक्षाकेलिये कहना था, जिसकेलिये वसुदेवजीको उनसे मिलना आवश्यक था.

उपर्युक्त चारों[१] मेंसे एकका भी यदि अभाव हो, तो उत्सवकी सिद्धि नहीं होगी. पहले वसुदेवजीके मिलनेका वर्णन करते हैं. मायाके कार्यको बताना यह भगवत्कार्य होनेसे भगवत् चरित्र ही है. वसुदेवजी और नंदरायजी आपसमें धर्मभ्राता थे. जिस कल्पमें वसु[२] आदि देव, ब्रह्माके पुत्र थे; उस ही कल्पमें कश्यप भी उनके पुत्र थे. इस प्रकार पूर्व जन्ममें ये दोनों भाई भाई थे. इस दूसरे जन्ममें भी पूर्व संस्कारसे धर्म भाई हुए हैं, इसलिए शुकदेवजीने नंदजीका विशेषण 'भ्रातरं' शब्द देकर सिद्ध किया है कि ये दोनों भाई हैं. यदि वसुदेवजीको यह सूचना पहले होती कि नंदजी मथुरा आते हैं तो वे नंदजीको यहां आनेसे ही रोक देते तथा यहां आनेपर भी, कर देनेसे पहले ज्ञात हो जाता कि, यह कर देने आये हैं तो कर देना बंद करवा देते. नंदजी कर जब तक नहीं देंगे तब तक राज कर्मचारी डेरेपर आते रहेंगे, अतः वसुदेवजीने जब जाना कि नंदजीने कर दे दिया है और अब कोई भी राजकर्मचारी उनके पास नहीं आएगा तथा इनसे मेरे मिलनेका ज्ञान उनको नहीं होगा, इसलिए अब नंदजीसे मिलें. यह सोचकर नंदरायजीसे वे मिलनेकेलिये, उनके डेरेपर गए।।२०।।

१.प्रकाश: (१०।५।२०). चारोंमेंसे एकके भी अभावसे नन्दजी एवं वसुदेवजी तथा अन्योंका उत्सव भी अपूर्ण रहता. जिससे अध्यायका अर्थ 'उत्सव'भी सिद्ध न होगा.

शंका: नन्दजीके डेरेपर मिले हुए वसुदेवजी और नन्दजीका संवाद भगवत् चरित्र न होनेके कारण दशम स्कन्धमें यह प्रसंग नहीं देना चाहिए.

समाधान: इस शंका निवृत्तिकेलिये सुबोधिनिजीमें(मायाकृतस्य ज्ञापनं भगवत्कार्यं, भगवच्चरित्रता तक) कहा है कि माया वेशधारी कंसने जो मंत्रणा की, वह वसुदेवजीने नन्दजीको सुनाई. अतः यह भी भगवत्कार्य था, इसलिए यह भगवत्चरित्र होनेसे दशम स्कन्धमें आ सकता है.

(१०।५।२०).'मायाकृतस्य ज्ञापनं'का विशेष भाव बताते हुए कहते हैं कि कंसने गोकुलमें(व्रजमें) उपद्रव करनेकेलिये जो जो दैत्य भेजे वे सब मायाके कहे हुए वचनोंसे, जैसा कि नन्दकी कन्या रूपधारी मायाको, जिस समय कंसने मारनेकी तैयारी की, उस समय उसके हाथसे छिटककर, आकाशमें जा, मायाने कंसको कहा था कि ''हे कंस! तेरा अन्त करनेवाला पूर्व शत्रु, जहां कहीं प्रकट हो चुका है, अब अन्य दीन बालकोंको वृथा मत मार''. इसका भाव यह है कि तुम्हारा शत्रु मथुरामें नहीं दूसरे स्थानमें उत्पन्न हो गया है, वहां उपद्रव करो, मथुरामें नहीं. इस मायाके ज्ञापनानुसार कंसने मन्त्रणाकर, गोकुलमें उपद्रव कराए, जिनकी सूचना वसुदेवजी ''सन्त्युत्पाताश्च गोकुले'' श्लोक द्वारा नन्दजीको देंगे और भगवत् रक्षाकेलिये उद्यत करेंगे. इस कारणसे यह भगवत्चरित्र है. इस योजनानुसार भी 'प्रकाश'में उठाई शंकाको मिटाया गया है.

२.नन्दजी 'द्रोण' नामक वसु थे, इसलिए उस जन्ममें ब्रह्माके पुत्र थे.

तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय देहः प्राणमिवागतम् ।।
प्रीतः प्रियतमं दोर्भ्यां सस्वजे प्रेमविह्वलः ।।२१।।

जैसे देहमें प्राण आनेपर, देह उठ खडी हो जाती है वैसे ही नन्दजी भी वसुदेवजीको देखकर सहसा उठ खडे हो गए और प्रसन्न हुए तथा प्रेमसे व्याकुल हो दोनों भुजाओंसे आलिंगन करते हुए प्रियतमसे मिले ।।२१।।

'तं दृष्ट्वा' इस श्लोकसे वसुदेवजीके साथ 'भ्रातृपन' बतानेकेलिये नंदरायजी द्वारा किये सम्मानका वर्णन करते हैं. 'अकस्मात् उठना' विशेष आदरका सूचक है, लौकिक व्यवहारमें भी कोई घर आता है, तो उसका उठकर आदर किया जाता है, किन्तु यहां तो वह लौकिकता नहीं थी, इसलिए शुकदेवजीने 'देहः प्राणमिवागतम्' कहा है, इसका भाव यह है कि जैसे मूर्छित देहमें प्राण आते ही, वह शीघ्र उठकर खड़ी हो जाती है तथा उसमें तेजस्विता आ जाती है जैसे लोहेका गोला अग्निके सम्बन्धसे विशेष तेजसे चमकने लगता है.

वैसे ही सर्व देवतारूप, वसुदेवजीके समीप आनेसे उनके तेज(वसुदेवजीके) ज्ञान और सब सद्गुण, जितने भी उनमें थे, वे सब तथा वसुदेवजीका आधिदैविक स्वरूप[१] भी नन्दजीमें प्रवेशकर गया[२] इसलिए कहा है कि प्राण आनेपर, देहकी तरह नन्दजी भी इन गुणोंसे युक्त होनेसे स्फूर्तिमान् हो गए. यह सब भगवान्की लीला है इस कारणसे नन्दजी अत्यन्त प्रसन्न हुए. अत्यन्त प्रसन्नताके दो कारण हुए: १.वसुदेवजीका आगमन, २.प्राणोंकी तरह सर्वस्व देना. विशेष प्रियतम तो व्यवहारसे दयालु एवं मनोहर होता है. वसुदेवजीने भी नन्दजीसे माया लेकर भगवान्को दिया. ऐसे दयालु भ्रातासे विशेष प्रिय कौन होगा? अर्थात् कोई नहीं होगा. इस समय तो अपना सर्वस्व(तेज, ज्ञान एवं आधिदैविकरूप आदि) भी दे दिया. इन कारणोंसे नन्दजी ऐसे प्रेम विवश हुए कि प्रेमसे वसुदेवजीका दोनों भुजाओंसे गाढ़ आलिंगन किया और छोड़ नहीं सके अर्थात् नन्दजी और वसुदेवजी एकरूप हो गये. ऐसे प्रेममग्न एकरूप होते हुए भी स्थानपर ही आगेके कार्य करने लगे. यह भी भगवत् चरित्र(लीला) है।।२१।।

१.प्रकाश: वसुदेवजीका 'नन्दः परमानन्दः' इस श्रुतिमें जो आधिदैविक स्वरूप वर्णन किया है वह नन्दजीमें प्रविष्ट हुआ.

लेख: आधिदैविक वसुदेवजीको नमस्कारादि कार्य न किये.

२.योजना: वसुदेवजीके आधिदैविक रूपका नन्दजीमें प्रविष्ट होनेका भाव बताते हैं कि भगवान्का व्रजसे मथुरामें पधारनेके अनन्तर नन्दजीको ज्ञात होगा कि वे वसुदेवजीके पुत्र हैं तो भी नन्दजीका, जो उनमें उत्कट वात्सल्य भाव था, वह कम न हुआ अर्थात् श्रीकृष्णको वे अपना पुत्र ही समझते रहे. यदि आधिदैविक स्वरूपका प्रवेश नन्दजीमें न होता तो भगवान्की वसुदेवजीके घरमें पुत्रकी तरह स्थिति और रुक्मिणीसे विवाहादिका ज्ञान होनेपर 'मेरा पुत्र है' यह बुद्धि मिट जाती और पुत्र स्नेह भी नष्ट हो जाता एवं नन्दजीका निरोध भी न रहता. ऐसा न होकर नन्दजीकी वही बुद्धि बनी रहे, इसलिए भगवान्ने वसुदेवजीके आधिदैविक स्वरूपका नंदजीमें प्रवेश कराया. जिससे वसुदेवजीके पुत्रका ज्ञान होनेपर भी 'स्वपुत्र बुद्धि' मेरा पुत्र है यह बुद्धि स्थिर ही रही.

पूजितः सुखमासीनः पृष्ट्वानामयमादृतः ।।
प्रसक्तधीः स्वात्मजयोरिदमाह विशाम्पते ।।२२।।

नन्दरायजीसे पूजा और आदर पाकर अपने पुत्रोंमें आसक्त बुद्धिवाले वसुदेवजी सुख पूर्वक बैठे और आरोग्य पूछकर, यह कहने लगे कि हे वैश्योंके स्वामी ! ।।२२।।

इस श्लोकमें लौकिक प्रकार कहते हैं(पूजितः) पूजे हुए. यदि वसुदेवजी नन्दजी द्वारा पूजादि[१]से आदर न पाते तो वसुदेवजी, जो देवगुह्य(जिसको देवता ही जानते हैं) कथा नन्दजीको बताते, वह नन्दरायजीके हृदयमें स्थिर न होती. इसलिए नन्दजीने पहले वसुदेवजीका पूजन किया. पूजन होनेसे वसुदेवजीके हृदयसे बैठने आदिका संकोच निकल गया. जिससे सुखपूर्वक बैठे और वसुदेवजीने भी वैश्यसे मिले तब आरोग्य पूछे. इस शास्त्र वचनानुसार नन्दजीसे पहले आरोग्य पूछकर नन्दजीका आदर किया. वसुदेवजीने नन्दजीसे देवगुह्य वार्ता क्यों की, तो कहते हैं कि, 'प्रसक्तधीः' अर्थात् वसुदेवजी अपने पुत्रोंमें अत्यन्त आसक्त बुद्धिवाले थे, इस कारणसे वसुदेवजी देवगुह्य बातें भी नन्दरायजीसे छिपा नहीं सके. यद्यपि नन्दजीको एक पुत्र(बलराम)का तो ज्ञान था कि यह वसुदेवजीका पुत्र है किन्तु दूसरेका ज्ञान नहीं था कि यह मेरा पुत्र भी वसुदेवजीका ही पुत्र है. उसको तो वे अपना ही पुत्र समझते थे, इसलिए दोनोंकी कुशलता स्पष्ट पूछना कठिन था, इसलिए साधारण रीतिसे पूछना चाहिए. यह अवसर इसके पूछनेका नहीं है तो भी 'आसक्तधीः' होनेसे साधारणरूपसे पूछेंगे इसलिए कहा 'विशाम्पते' हे देशोंके राजा! यह सम्बोधन गूढ़ वचनोंका(जो वसुदेवजी सूक्ष्म रीतिसे कहेंगे) ज्ञान नन्दजीको करानेकेलिये है।।२२।।

१.प्रकाश: शास्त्रमें कहा है कि 'पूज्यपूजाव्यतिक्रम' पूजनीयकी पूजा न करनेसे दोष लगता है इसलिए यदि नन्दजी वसुदेवजीका पूजन न करते तो दोषके भागी होते. इस दोषसे बचनेकेलिये शास्त्रवचनानुसार नन्दजीने वसुदेवजीका पूजन किया. इससे देवगुह्य भी नन्दजीके चित्तमें स्थिर हुआ.

योजना: गुरुकी पूजासे ही ज्ञान स्थिर होता है. वसुदेवजी उपदेश देनेके कारण नन्दजीके गुरु हैं. इसलिए गुरुपूजा आवश्यक होनेसे नन्दजीने वसुदेवजीका पूजन किया; यों गुरुपूजन करनेसे वसुदेवजीका उपदेश नन्दजीके चित्तमें स्थिर हुआ. तदनुसार शीघ्र गोकुल गए.

वसुदेवः उवाच

दिष्ट्या भ्रातः प्रवयस इदानीमप्रजस्य ते ।।
प्रजाशाया निवृत्तस्य प्रजा यत् समपद्यत ।।२३।।

हे भाई! तुम अत्यन्त वृद्ध हो गए. तुम्हारे कोई सन्तान न थी. तुम सन्तानकी आशा भी छोड चुके थे. यह बडे आनन्दकी बात है कि अब तुम्हें सन्तान प्राप्त हुई ।।२३।।

पहले पुत्रवाला बताकर नन्दजीको 'दिष्ट्या' इस श्लोकसे प्रोत्साहित करते हैं: हे भाई! वृद्ध होनेसे प्रजा होनेकी आशा छूट गई थी एवं आपने भी प्रजाकी आशा त्याग दी थी, किन्तु बड़े भाग्यसे बिना प्रजावाले भी आपको प्रजा प्राप्त हुई, इसकी आपको बधाई है. अभी भी बिना प्रजावाले आपको प्रजा हुई. यह वसुदेवजीने स्पष्ट कह दिया. श्लोकमें 'अप्रजस्य' शब्दके साथमें 'इदानीं' शब्द दिया है[१]. इससे 'इदानीं' शब्दको 'अप्रजस्य'के साथ लाने पर अर्थ होता है कि अभी भी आप प्रजा(सन्तानवाले) नहीं हो अर्थात् इस संकेतसे वसुदेवजीने बता दिया कि यह कृष्ण मेरा पुत्र है. यदि 'इदानीं' शब्द इसके साथ न लिया जाय तो अर्थ होगा कि आप पहले बिना प्रजावान् थे 'इदानीं' अभी आपको प्रजा हो गई है. इस तरह अन्वयमें[२] भ्रम भगवत् इच्छासे हुआ. जिससे वसुदेवजीका झूठापन भी मिट जाता है और कंसको भी यह ज्ञान न हो कि वह वसुदेवजीका पुत्र हैं. 'अप्रजस्य' बिना प्रजावाले आपको इस शब्दसे यह भी संकेत कर दिया कि आपके दत्तक आदि सन्तान भी नहीं है. बूढ़ा कहनेसे सन्तान उत्पन्न करनेवाले स्वरूपकी अयोग्यता दिखाई. आशा न रही, इससे प्रयत्नकी भी आवश्यकता न रही, इच्छा ही न रही, तो पुरोहितों द्वारा भी प्रयत्न न कराये. 'प्रजा' शब्द अपत्य वाचक[३](पुत्र वा पुत्री) कोई भी सन्तान है, इसलिए 'प्रजा' शब्द कहनेमें वसुदेवजी झूंठ भी नहीं कहा. श्लोकमें 'समपद्यत' शब्दका भावार्थ बताते हैं कि अचानकको आ जावे यह अर्थ है, इसलिए आपके यहां किसीका जन्म नहीं, मात्र अचानक आना हुआ है. 'माया' भी वीर्यसे उत्पन्न हुई थी इसी तरह भगवान् भी. फिर बूढ़े तो हो ही, तो यह सब जो कुछ हुआ है वह भगवद् इच्छासे ही हुआ है. इससे प्रसन्नता है. यों कहनेसे सामान्य रीतिसे सारी बातका सच्चा स्वरूप, एक भगवान्का स्वरूप भी कह दिया. यदि यों नहीं कहते तो भाईसे वञ्चना (धोखेबाजी) करनेका वसुदेवको दोष लगता।।२३।।

१.टिप्पणी: 'इदानीं अप्रजस्य'का भावार्थ बताते हैं कि एक कन्या(माया) हुई थी वह भी आपके पास रही नहीं, इसलिए आप अब प्रजा(सन्तान) रहित हो. 'प्रजा समपद्यत'का भाव बताते हैं जो कि पहली कन्या नहीं अब तो पुत्र सन्तति आ गई. यह भगवान्के यहां आनेके कारण वसुदेवजीने कहा. यह सब वसुदेवजीकी बुद्धिके अनुसार कहा गया है. यदि इस तरह अभिप्राय न हो तो 'बिना प्रजावाले' आपको प्रजा हुई इन दोनोंमें परस्पर विरुद्ध वाक्यकी संगति नहीं होती.

२.प्रकाश: 'अन्वय' शब्दका आशय बताते हैं कि लौकिक रीतिसे उत्पन्न प्रजाको अन्वय(वंश) कहा जाता है. यहां लौकिक रीतिसे प्रजा नहीं हुई है इसलिए 'अप्रजस्य' कहना सत्य है. अर्थात् इस समय आपके प्रजा नहीं है. टिप्पणीकार प्रभुचरणने पहिले नन्दगृहमें भगवान्का प्राकट्य कहकर, अब 'अप्रजस्य'का भाव बिना प्रजावाला कैसे बताया. इसका समाधान करते हैं, कि यह कहना वसुदेवजीकी बुद्धिके अनुसार है. नन्दके गृहमें प्रकट स्वरूपका ज्ञान वसुदेवजीको नहीं है, वसुदेवजीको तो अपने यहां प्रकट भगवान् एवं नन्दजीके यहां प्रकट हुई मायारूप कन्याका ज्ञान था. कन्याको आप ले गए और भगवान्को वहां विराजमान कर गए. इस ज्ञानके कारण वसुदेवजीने जो कहा उसका अनुवाद मात्र यहां किया गया है, अर्थात् वसुदेवजीकी बुद्धिके अनुसार वर्णन किया गया है. सुबोधिनीजीमें दो प्रकार बताये हैं: १.माया और भगवान् दोनों लौकिक रीति, वीर्यादिसे उत्पन्न नहीं हुए, इसलिए प्रजाका अभाव. २.भगवान् प्रकट हुए इसलिए प्रजा सम्पत्तिवाले नन्दजी हैं.

३.योजना: 'प्रजा' शब्द अपत्य पुत्र वा पुत्री हो उसको कहा जाता है. इसलिए मायारूप कन्याका जन्म हुआ. इसलिए वसुदेवजीका कहना असत्य नहीं.

दिष्ट्या संसारचक्रेस्मिन् वर्तमानः पुनर्भवः ।।
उपलब्धो भवानद्य दुर्लभं प्रियदर्शनम् ।।२४।।

इस संसार चक्रमें चक्कर काटते हुए आपने नया जन्म पाया है फिर आज मुझे मिले हो. यह भाग्यसे हुआ है क्योंकि प्रियतमके दर्शन दुर्लभ होते हैं.

और[१] वसुदेवजी नन्दजीके यहां आनेपर उनके दर्शनका अभिनन्दन (प्रशंसा) करते हैं. संसाररूप भंवरमें परिभ्रमण द्वारा इधरसे उधर प्राप्त हुए. आपको आज मैंने पाया है यह भी हमारा आपका नया जन्म है इसलिए हर्षकी बात है. संसार फिरते हुए चक्र(भंवर)के समान है उसमें पड़ा हुआ नीचे चला जाता है, दूर रहनेवाला चक्कर काटता है और चक्रमें पड़ जानेपर तो अदृश्य ही हो जाता है. वसुदेवजी नन्दजीसे कहने लगे कि इस संसार चक्रमें हम दोनों ही डूब जाते अथवा कोई एक डूब जाता तो जो डूबकर निकलता, उसका पुनर्जन्म ही कहा जाता है. सर्वनाशकारी संवत्सररूपी कालके आधीन होनेपर भी यदि कोई व्यक्ति संवत्सर पूर्ण होनेके अनन्तर जीवित रहता है तो उसका जन्म नया ही समझना चाहिये. संवत्सर कालरूप होते हुए भी प्रजापति इसलिए कहलाता है कि वह किसी किसीको अपने(संवत्सरके) पश्चात् नया जन्म देता है. यदि ऐसा न करे तो प्रजापति नामकी सार्थकता न हो, मात्र कालरूप ही रह जावे. इसमें भी जो

कदाचित् संवत्सर पूर्ण होनेके अनन्तर सन्तानादि सुखकी भी प्राप्ति हो गई हो, तो पुत्ररूपसे फिर उत्पन्न होना तो अलौकिक[२] ही है. यह भाग्यके अतिरिक्त नहीं होता है, इसलिए बधाई है.

आपका संसाररूप भंवरमें रहना भी महान् हर्षका विषय है. नया जन्म भी महाभाग्य है. मुझे मिले यह भी महान् उत्सव है. मृत्यु तो अपने पास ही सदा रहती है. 'भवान्'(आप) यह शब्द स्नेहका चिह्न है अर्थात् इस शब्दसे निश्चितरूपसे अपना स्नेह सिद्ध होता है. 'अद्य'(आज) इस शब्दसे यह भाव निकलता है कि मुझे एवं आपको नहीं मिलनेवाला लाभ मिला है. इसका मिलना केवल प्रारब्धसे ही है कारण कि 'दुर्लभं प्रियदर्शनम्' प्रियका दर्शन कठिनाईसे होता है. संसारमें बहुत करके पदार्थ दुःख देनेवाले होते हैं, आनन्द देनेवाला एक प्रियतम(प्यारा) भाई(मित्र) ही है, जिसका मिलना दुर्लभ है, सो आज मिला है ।।२४।।

१.लेख: 'और' शब्द पहले श्लोक २३ व २४का सम्बन्ध बताता है. पहले श्लोकमें नन्दजीका उत्साह बढ़ाया इसमें दर्शनका अभिनन्दन किया.

२.अलौकिक: ''आत्मा वै पुत्र नामासि'' पिता ही पुत्र नाम धरता है. इसलिए यह अलौकिक है अर्थात् इसका प्रतिपादन (श्रुति) वेद करता है, न कि लोक.

नैकत्र प्रियसंवासः सुहृदां चित्रकर्मणाम् ।।
ओघेन व्युह्यमानानां प्लवानां स्रोतसो यथा ।।२५।।

जलके प्रवाहसे बहती हुई नौका, तृण और काष्ठ आदिकी स्थिति जैसे एक स्थानपर नहीं रहती है, वैसे ही विचित्र प्रारब्धवाले सम्बन्धियोंका सुख देनेवाला निवास एक स्थानपर नहीं रहता ।।२५।।

नन्दजीसे मिलकर यों कहनेके अनन्तर वसुदेवजीके मनमें दो विचार आये. १.कदाचित् नन्दरायजीके मनमें यह शंका हुई हो कि मैं लौटकर शीघ्र ही गोकुल जाऊंगा तो वसुदेवजीको खेद होगा इसलिए यहां ही रह जाऊं. २.मैं इतने दिन नहीं आया इससे वसुदेवजी अप्रसन्न हुए होंगे. नन्दरायजीके खेदकी शंका और देरीसे आनेके दोषको मिटानेकेलिये 'नैकत्र' यह श्लोक कहकर बताया है कि आपका दोष नहीं है और आपको यहां रहनेकी शंका भी नहीं करनी चाहिए. प्रेमियोंका एक स्थानपर निवास नहीं होता है. उनमें भी सुहृद् और सम्बन्धियोंमें जो प्रिय होते हैं उनका तो एक साथमें निवास महान् दुर्लभ है. कारण कि सबके किये हुए कर्म पृथक्-पृथक् होते हैं. एकही कर्म यदि हो तो प्रपा(प्याऊ)में

एकबार मिले हुए पुरुषोंके समान एक ही स्थानपर सबका जन्म होता. इसमें भी निश्चित नियम नहीं है कि प्रपामें मिले हुए भी जैसे जलके प्रवाहसे इधर उधर हो जाते हैं वैसे ही एक कुटुम्बमें उत्पन्न होते हुए भी किन्हीं कारणोंसे बिछुड़ जाते हैं. इसलिए सब कर्मके आधीन है कर्मसे ही परलोक गमन तथा इहलोकमें आगमन आदि होता है. न मात्र कर्मके अधीन है किन्तु वहां भी काल[१] महान् बाधक है. दृष्टान्त देकर कालकी बाधकता दिखाते हैं. 'ओघेन'(प्रवाहसे) जैसे नदीमें थोड़ी देर मिले हुए पदार्थ फिर प्रवाहसे अलग हो जाते हैं. जैसे नावें भी नदीमें आपसमें आकर मिलती हैं इनको मिलानेवाले मुख्य जल और नाविक होते हैं. प्रवाहको, सहज कारण होनेसे 'नदी' कहा है. इससे समझमें आता है कि नावोंका आने जानेके समय मिलाप जैसे क्षणिक है वैसे ही जीवमात्रका भी मिलाप क्षण मात्र ही होता है. पार पहुंचनेपर जैसे नाव देखनेमें नहीं आती है वैसे ही बिछुड़नेके बाद प्रिय सम्बन्धियों मित्रों आदिके भी दर्शन नहीं होते हैं।।२५।।

१.प्रकाश: काल प्रवाहरूप है और कर्म नाविकरूप है.

कच्चित् पशव्यं विरुजं भूर्यम्बुतृणवीरुधम् ।।
बृहद्वनं तदधुना यत्रास्से त्वं सुहृद्वृतः ।।२६।।

जिस महावनमें आप अपने बन्धु बान्धवोंके साथ रहते हो वह तुम्हारे पशुओंकेलिए रोग आदि रहित तो है न, और वहां जल, घास और लता आदिकी बहुलता तो है न ? ।।२६।।

इस प्रकार नन्दजी और उनके दर्शनका अभिनन्दनकर, देवगुह्य नीतिसे कहते हैं 'कच्चित्' यह अव्यय सम्भावना अर्थमें प्रश्न करनेपर दिया जाता है जैसे कहा जाता है कि ऐसा है न? तो यहां वसुदेवजी भी महावनके विषयमें इसी तरह सम्भावनासे पूछते हैं कि महावन पशुओंका हितकारी है न? इस वनमें पशु आनन्दसे रमण करते हैं न? यहां परम्परासे पशुस्थान है, यहांके पशुओंमें आधिदैविकत्व[१] है इसलिए पशुओंका रमण होता है न? यह स्थान दूसरे स्थानोंके समान नहीं है इसलिए 'विरुजं' रोग रहित है न? कोई देश ऐसे भी हैं जहां पशु रोगी होते हैं और अकालमें ही मर जाते हैं. कुछ भी रोग न हो यह तो भगवान्के निकट विराजनेपर होता है. सामान्य रीतिसे रोगका अभाव दिखाकर यह बता दिया है कि यहां भगवान् बिराजते हैं.

पीनेकेलिये पानीका बाहुल्य है न? तृण लताएं आदिसे भी तो वन

हराभरा है न? जलकी बहुलतासे वन सरस हरा होता है तो दूध भी वहां विशेष उत्पन्न होता है अर्थात् दूधकी सम्पत्तिका भी इससे पता पड़ जाता है. घासकी विशेषता पशुओंके वृद्धिका कारण है. वीरुध अधिक हो तो घृत विशेष उत्पन्न होता है और वन सुगन्धित रहता है. वसुदेवजी ऐसी सम्भावना इसलिए करते हैं कि इसको 'बृहत् वनं' कहा है अर्थात् यह वन ही महावन् है इसके अर्थसे इन पदार्थोंका इसमें अधिक होना स्वाभाविक है. और 'बृहद्वनं'[२] इस शब्दसे भी जाना जाता है कि यह 'वन' धर्मका भी हेतु है. 'तद्' शब्दसे इस महावनकी प्रसिद्धि सूचित की गई है. 'अधुना यत्र आस्से'(अभी जहां रहते हो) सर्वदा रहनेका तो पूछना ही नहीं था. कभी तो आप गोष्ठमें भी रहते हैं. इस गोष्ठमें रहना भी सर्वदा नहीं, इसलिए पूछते हैं कि सुहृद् और सम्बन्धियोंके साथ जहां रहते हो वहां तो सब प्रकारसे कुशल है न? ।।२६।।

१.लेख: भगवान् जैसे 'गोकुल' में वैकुण्ठ लाये वैसे ही वहांके गौ आदि पशु भी आये. इसलिए श्रुतिमें ''यत्र गावो भूरि शृङ्गा'' लिखा है. जिस वैकुण्ठरूप गोकुलमें बड़े बड़े शृङ्गवाली गौएं हैं अतः आधिदैविक हैं. इनमें रोगादि भी नहीं.

योजना: कृष्णोपनिषद्में ''गोप्यो गाव ऋचस्तस्य यष्टिका कमलासतः'' इसमें गौओं और गोपियों को श्रुतिरूपा कहा है ऐसी ये गौएं आधिदैविक हैं.

२.प्रकाश: 'बृहद्वनं' 'बृहत्' शब्दसे वनको धर्मका हेतु और अक्षररूप बताया गया है.

लेख: 'बृहद्वनं' गोचारणरूप धर्मकी सिद्धि होगी.

भ्रातर्मम सुतः कच्चिन्मात्रा सह भवद्व्रजे ।।
तातं भवन्तं मन्वानो भवद्भ्यामुपलालितः ।।२७।।

हे भाई! मेरा पुत्र जो आपको पिता करके मानता है और माताके साथ आपके व्रजमें रहता है, एवं आप दोनों(नन्द यशोदा) प्रेमके साथ जिसका लालन पालन करते हो, वह कुशलसे है न? ।।२७।।

देशका कुशल[१] पूछकर अब बालकोंका कुशल पूछते हैं. 'भ्रातः इति' 'भ्रातः' कहनेका भाव बताते हैं कि स्त्री व पुत्र दूसरेके पास छोड़ना अयोग्य है, तो वसुदेवजी कहते हैं कि नहीं, मैंने दूसरेके पास नहीं छोड़े हैं, ये तो मेरे भाई हैं. मैंने भाईके पास भेजे हैं. इसलिए 'भ्रातः' कहा. 'मम सुतः' मेरा पुत्र क्यों कहा? कि वसुदेवजीको अपना स्पष्ट अनुभव था कि मेरा पुत्र है. माताके साथ कुशलसे तो है न? इस 'माता' शब्द कहनेका तात्पर्य यह है कि हे भाई! आपको तो केवल

उसकी रक्षा ही करनी है, शेष अन्य शुश्रूषा तो दूसरे अर्थात् माता आदि करेंगे. आपको पिता मानकर बालक(मेरा पुत्र) दीनता प्रकट करता है. पालनादि तो लौकिक है, उसके पूछनेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि आप(नन्द, यशोदा) पालन, प्रीणन(प्रसन्नता)के अनन्तर उपलालन ये सब प्रेमसे करते ही हो. भगवान्केलिये तो पूछना ही नहीं किन्तु दूसरी रीतिसे तो पूछ ही लिया है।।२७।।

१.लेख: २६वें श्लोकमें देशकुशलताका पूछनेका आन्तरिक उद्देश्य(तात्पर्य) भगवान् (अथवा दोनों पुत्रों)की कुशलता पूछनेका था. अर्थात् देशमें घृत, धान्य, निरोगता आदि हैं तो हमारा पुत्र भी सुख पूर्वक आनन्दमें होगा.

इस श्लोकमें स्पष्टरूपसे बलभद्रजीकी कुशलता पूछते हैं किन्तु सामान्य प्रश्नसे दोनों बालकोंकी कुशलता पूछ ली है.

पुंसस्त्रिवर्गोभिहितः सुहृदो ह्यनुभावितः ।।
न तेषु क्लिश्यमानेषु त्रिवर्गोर्थाय कल्पते ।।२८।।

पुरुषकेलिए वही त्रिवर्ग(धर्म, अर्थ, काम) शास्त्र विहित है जिससे बन्धु बान्धवोंका भी अभ्युदय हो. जिस त्रिवर्गसे बन्धु बान्धवोंको क्लेश हो वह श्रेयस्कर नहीं है ।।२८।।

नन्दजीके मनमें यह शंका हो कि तुम्हारे पास भी सर्व समृद्धि है फिर तुम दीनता क्यों दिखा रहे हो ? इस शंकाको मिटानेकेलिये 'पुंसः' यह श्लोक कहा है.

शास्त्रोंमें पुरुषकेलिये त्रिवर्ग(धर्म, अर्थ और काम) सिद्ध करनेकी आज्ञा है; किन्तु वह त्रिवर्ग, जब सुहृदोंके सम्बन्धवाला हो तब अर्थात् उस त्रिवर्गसे सुहृदोंको भी लाभ हो, न कि उस अकेलेको ही लाभ हो. अकेलेकेलिये तो, त्रिवर्ग सिद्ध करनेकी शास्त्राज्ञा नहीं है. वह तो चौथे पुरुषार्थ मोक्षको ही सिद्ध करे. श्लोकमें 'हि' शब्द इस वास्ते दिया है कि निश्चयपूर्वक अकेलेको मोक्ष ही सिद्ध करना चाहिए. अकेलेकेलिये त्रिवर्ग(धर्म, अर्थ और काम) सिद्ध करनेकी आज्ञा नहीं है. 'सुहृद्' पदसे चेतन मात्र समझने चाहिए. इससे कहीं न कहीं त्रिवर्गके फलमें सुहृद् मिल ही जाते हैं. सुहृदोंके सम्बन्ध मात्रसे, त्रिवर्गका उपयोग नहीं है, किन्तु सुहृदों द्वारा पुष्ट हुआ त्रिवर्ग लाभदायी सार्थक होता है, ऐसा हो तो क्या? इसका उत्तर देते हैं कि उस त्रिवर्गसे सुहृदोंको यदि लाभ न होवे और सुहृदोंको कष्ट हो, तो त्रिवर्ग सिद्धि पुरुषार्थरूप और सार्थक नहीं है. त्रिवर्गमें सुहृद् ही मुख्य हैं, जैसे वसुदेवजीके पास त्रिवर्ग(धर्म, अर्थ और काम) सिद्ध भी

थे किन्तु वसुदेवजी नन्दजीको अपने घर बुला नहीं सकते हैं क्योंकि नन्दजीको बुलानेसे वसुदेवजीके पुत्रोंका नाश करनेवाले कंसको यह निश्चय होगा कि नन्दजीके यहां जो बालक(भगवान्) है वह वसुदेवजीका पुत्र है इसलिए वसुदेवजी नन्दजीको अपने पास नहीं बुलाते हैं. जिससे वसुदेवजीका त्रिवर्ग सुहृदोंके काम न आनेसे व्यर्थ ही है. इस कारणसे वसुदेवको दीनता दिखाना योग्य ही है।।२८।।

१.लेख: 'सुहृद्' शब्दसे मात्र सम्बन्धी नहीं समझने चाहिये किन्तु चेतन मात्र समझने चाहिए. कारण कि तीन पुरुषार्थोंमेंसे काम पुरुषार्थमें तो सम्बन्धियोंका स्पष्ट उपयोग होता है किन्तु धर्म और अर्थमें दूसरोंका भी उपयोग होता है जैसे धर्म-कार्य (यज्ञादिक)में ऋत्विक् एवं अर्थ कार्य(व्यापारादि)में काम करनेवाले मुनीम आदिका उपयोग होता है. अतः 'सुहद्' शब्दका अर्थ चेतनमात्र समझना चाहिए.

योजना: योजनाकार ''आत्मनः कंसस्य पुत्रमारकत्वाद् नाकारणं देवकीपुत्रत्वं संभाव्येत''के सम्बन्धमें अपनी सम्मति देते हैं कि नन्दजीने वसुदेवजीको पुत्र जन्मोत्सवमें नहीं बुलाया कारण कि कंस वसुदेवजीके पुत्रोंका नाशक है एवं उनके बुलानेसे कंस समझेगा कि यह देवकीजीके पुत्र हैं तो अनर्थ होगा इसलिए नन्दजीने मुझे बुलाया नहीं किन्तु सुहृदोंके न होनेसे उत्सवमें आनन्द नहीं हुआ. अर्थात् मेरे न जानेसे नन्दरायजीका चित्त प्रसन्न नहीं रहा. अतः नन्दजीके त्रिवर्गकी भी मेरी तरह सार्थकता नहीं हुई. इस पंक्तिके कहनेसे वसुदेवजीका यह आशय प्रकट होता है.

टिप्पणी: (१०।५।२८). 'आत्मनः कंसस्य' वसुदेवजीके नन्दजी अतिप्रिय थे इसलिए नन्दजीको प्रसन्न करनेकेलिए उन्हें अपने घरपर बुलाना उचित था. तो भी वसुदेवजीने इसलिए नहीं बुलाया कि इससे कंस समझेगा कि यह देवकीका पुत्र है तो नन्दजीका अनिष्ट करेगा. जिससे मेरे प्रिय नन्दजी दुःखी होंगे इसलिए नहीं बुलाया. इस उक्तिसे कहा यह भी एक दुःख ही है. वसुदेवजीने भी इस कारणसे नन्दजीको नहीं बुलाया. इस तरह दोनोंका सम्बन्ध बताया.

साधन बल त्याग जिन्होंने भगवदाश्रय ही लिया है उनका फलरूप भगवान् गोकुलमें प्रकट हुआ है इसलिए हम सब तरहसे निश्चिन्त हुए हैं.

अहो ते देवकीपुत्राः कंसेन बहवो हताः ।।
एकावशिष्टावरजा कन्या सापि दिवं गता ।।२९।।

अहो ! खेद व आश्चर्य है कि देवकीसे उत्पन्न तुम्हारे बहुतसे पुत्र कंसने मार डाले. अन्तमें उत्पन्न हुई एक कन्या ही शेष थी वह भी स्वयमेव स्वर्गलोकको चली गई ।।२९।।

वसुदेवजी नन्दजीको कंसके डरसे घर नहीं बुला सकते थे तो धन देकर इनका आदर करते. वहां कहते हैं कि 'द्रव्यादि दानंतु भेद जनकं' सुहृद् सम्बन्धियोंको द्रव्य देना भेदका द्योतक है. अर्थात् द्रव्य देनेसे बन्धुत्व न रहकर पृथक्ता देखनेमें आती है. लौकिक रीतिसे, दुःखी वसुदेवजीके दुःखकी स्पष्ट व्याख्या करनेसे उनका दुःख कम होता है और वास्तविक स्थितिका ज्ञान होनेसे वसुदेवजीको सुखकी प्राप्ति होगी. सब वृत्तांत(जो कुछ घटना घटी) कहनेसे वसुदेवजीको निश्चय होगा कि सचमुच नन्दजी मेरे सच्चे सुहृद् हैं, जो मेरी सब बातोंका ध्यान सदा रखते हैं. वसुदेवजीके तो बहुत स्त्रियां हैं, उनके पुत्र भी हैं और कुशल भी हैं. कंसने देवकीके बहुत(छः) पुत्र मारे. वे छः भगवान्के छः गुणरूप थे इससे कंसने इनको मारकर भगवद्गुणोंके साथ द्रोह किया. नन्दजी इसलिए अहो कहकर बताते हैं कि यह आश्चर्य है कि मारना तो एकको था तो भी छः पुत्र मार दिये. अन्तमें जन्मी एक कन्या शेष थी, यह सब भगवान्की चरित्र लीला है, नहीं तो दूसरे(भगवान्के चरित्रोंके अतिरिक्त) वचनोंका यहां कहना योग्य नहीं था. श्लोकमें दिये हुए 'कन्या' पदका आशय बताते हैं कि, वह बची हुई कन्या भी, यदि विवाहकर पुत्रादि उत्पन्न होनेके बादमें जाती तो भी देवकीका वंश तो रहता, वह भी न हुआ इसलिये 'कन्या' कहा. वह कन्या भी साधारण कन्या नहीं थी, किन्तु सिद्धा, देवता रूपा होते हुए भी तथा पुत्र न होनेके दुःखकी निवारिका होकर भी स्वयं ही उडकर शरीर सहित आकाशमें चली गई. इससे ज्ञात होता है कि मात्र कंसका ही दोष नहीं, किन्तु वसुदेवजीके भाग्यका भी दोष है. वसुदेवजीका प्रारब्ध मन्द न होता तो वह कन्या ऐसी थी और लौटकर आ सकती थी, किन्तु आई नहीं. कंसका भय तो उसे था ही नहीं. इससे समझा जाता है कि इसमें प्रारब्ध ही मूल कारण है, यह (नूनं) इस श्लोकसे बताते हैं।।२९।।

नूनं ह्यदृष्टनिष्ठोयम् अदृष्टपरमो जनः ।।
अदृष्टम् आत्मनस्तत्त्वं यो वेद न स मुह्यति ।।३०।।

निश्चय ही मनुष्योंकी निष्ठा अदृष्टमें ही है. अदृष्ट ही सब जीवोंका परम नियामक है. आत्माका तत्त्व अदृष्ट ही है. जो इस कर्मरूप आत्मतत्त्वको जानता है वह मोहमें नहीं फंसता अर्थात् उसका मोह नष्ट हो जाता है ।।३०।।

प्रत्येक पुरुषकी अदृष्ट(प्रारब्ध)में निष्ठा(विश्वास) होती है. यह सिद्धान्त कर्मको ही आत्मा और प्रवर्त्तक माननेवालोंका है. जो कुछ प्रवृत्ति होती

है अर्थात् कर्म किया जाता है उसकी प्रारम्भ एवं पूर्ति प्रारब्धके आधीन है. इसलिए श्लोकमें कहा है 'अदृष्टपरमः'. अदृष्ट ही प्रवृत्ति कराता है तथा उसके अनुसार ही फल मिलता है. शास्त्रोंमें मनुष्यकेलिये 'जन' शब्द आया है, वह भी इसलिए वह कर्मके अनुसार जन्म लेता है. यह सिद्धान्त कर्मवादियोंका है. जो मनुष्य सब कुछ कर्माधीन है यह समझ लेते हैं उनको शोक नहीं होता है. अर्थात् ऐसे मनुष्योंको जब कुछ भी सुख-दुःख होता है तो वे कहते हैं कि यह हमारा अदृष्ट है तदनुसार उनका सिद्धान्त दिखाते हुए महाप्रभुजी कहते हैं कि इस आशयको लेकर श्लोकमें भी 'अदृष्टं' पद दिया है. आत्मतत्त्वका सच्चा स्वरूप प्रवर्तक(कर्ममें प्रवृत्ति करानेवाला) और निवर्तन करानेवाला है. ब्रह्मवादियोंका आत्मतत्त्व जैसे ब्रह्म है और भक्तोंका भगवान् है, वैसे ही कर्मवादियोंका आत्मतत्त्व कर्म है. इस प्रकार जो समझ लेता है वह मोहित नहीं होता है. दूसरे पक्षोंमें(सिद्धान्तोंमें) किसीको उलाहना भी दिया जा सकता है किन्तु कर्म सिद्धान्तमें स्वयं कर्म करनेवाला है, इससे किसीको न तो उलहना दे सकता है न किसीकी प्रार्थना करनी पड़ती है. दूसरे पक्षोंमें दूसरे प्रकारसे मोह भी होता है. इस प्रकार नन्दरायजीने शोक मिटानेकेलिये वसुदेवजीको कर्मतत्त्वका उपदेश दिया।।३०।।

१.प्रकाश: भक्तोंका 'भगवान्' है. वेदके पूर्व काण्डमें 'कर्म' नाम द्वारा ब्रह्मकी क्रियाशक्तिका वर्णन है, उत्तर काण्डमें 'ज्ञान' नाम द्वारा ब्रह्मकी ज्ञानशक्तिका वर्णन है और भागवतमें ज्ञान और क्रियाशक्ति युक्त ब्रह्मका भगवान् नामसे वर्णन है, वह भक्तोंका शेष है अर्थात् ब्रह्मवादी ज्ञानी एक ज्ञानशक्तिको ही आत्मतत्त्व मानते हैं, कर्मवादी क्रियाशक्तिको ही आत्मतत्त्व मानते हैं किन्तु भक्त, भगवान्(ज्ञान और क्रियाशक्तिरूप पूर्ण ब्रह्म)को आत्मतत्त्व मानते हैं.

इस प्रकार नन्दजी और वसुदेवजीने कुछ समय वार्तालाप किया तदनन्तर वसुदेवजी नन्दजीको शीघ्र ही गोकुल भेजनेकेलिए 'करो वै' इस श्लोकसे उनके मनमें भय उत्पन्न करते हैं :

वसुदेवः उवाच

करो वै वार्षिको दत्तो राज्ञे दृष्टा वयं च वः ।।
नेह स्थेयं बहुतिथं सन्त्युत्पाताश्च गोकुले ।।३१।।

वसुदेवजीने नन्दजीको कहा भाई ! आपने राजाको कर तो दे दिया. हम

एक दूसरेसे मिल भी लिए. अब आपको मथुरामें बहुत समय ठहरना नहीं चाहिए, कारण कि गोकुलमें उपद्रव हो रहे हैं ।।३१।।

नन्दजीने मथुरामें अपने सब कार्य पूरे किये थे. अब वसुदेवजी नन्दजीको सूचित करनेकेलिये उनके किये हुए कार्योंकी पुनरावृत्ति करते अर्थात् दोहराते हैं. आपने राजाको वार्षिक कर दे दिया, तथा हम सुहृदोंसे मिले. अब कुतूहलके कारण विशेष समय यहां(मथुरामें) न ठहरें कारण कि गोकुलमें उपद्रव हो रहे हैं. श्लोकमें 'च'का आशय कहते हैं कि केवल गोकुलमें ही नहीं किन्तु व्रजमें अन्यत्र भी उपद्रव हो रहे हैं. मैंने सुना है कि कंसने अपने मन्त्रियोंसे परामर्श करके उपद्रव करनेका निश्चय किया है, इसलिए अब आप यहां न ठहरें।।३१।।

इतना सुनते ही नन्दजी आदि वहांसे शीघ्र जानेकेलिए तैयार हुए :

इति नन्दादयो गोपाः प्रोक्तास्ते शौरिणा ययुः ।।
अनोभिरनडुद्युक्तैः तमनुज्ञाप्य गोकुलम् ।।३२।।

वसुदेवजीके वचन सुनकर नन्दजी आदि गोपोंने बैलोंके गाडे जोडे और वसुदेवजीसे आज्ञा लेकर गोकुल गए ।।३२।।

जानेकी शीघ्रतामें छोटे बड़ेके क्रमका ध्यान न रखकर 'नन्दादयः' नन्दादिक एक साथ कह दिया. सब साथमें ही मथुरासे रवाना हुए, कारण कि वसुदेवजीने इसी प्रकारसे जानेकेलिये शीघ्रता की थी, इससे अधिक और कोई सम्भावना नहीं थी. पैदल जानेका भी साहस नहीं था. इसलिए जानेके साधन बैल गाड़ोंकी तैयारी की. उसी समय वसुदेवजीसे आज्ञा लेकर उनको अपने घर इसलिए भेज दिया कि हम लोगोंके प्रेमका लोकमें प्रकाश न हो. इस प्रकार सब कार्य करके वे गोकुल गये. श्लोकमें दिये 'ययुः' पदका भाव बताते हैं कि मार्गमें कंसादिकका कोई उपद्रव न हुआ तथा वे सब सुखपूर्वक गोकुल पहुंच गये।।३२।।

गोकुलोत्सवमीशानं गोपगोपीगवां हितम् ।।
ज्ञानतः कर्मतश्चैव तामसानां नमाम्यहम् ।।का.१७।।

कारिकार्थ: तामस भक्त गोप, गोपी और गौओंके ज्ञान तथा कर्म द्वारा कल्याण करनेवाले गोकुलोत्सव प्रभुको प्रणाम करता हूं.

सूक्ष्म व्याख्या: इस कारिका द्वारा इस अध्यायके दो अर्थ 'गोकुलोत्सव' विशेषणसे उत्सव और 'ईशान' विशेषणसे ऐश्वर्य बताए हैं. निबन्धमें उत्सवको लक्षण और ऐश्वर्यको लक्ष्य कहा है. ज्ञान और कर्म द्वारा तामस गोप, गोपी तथा

गौओंका जो हित किया है वह प्रकरणार्थ है.

लेख: 'ज्ञान' शब्दका भाव बताते हुए कहा है कि जैसे वेदके उत्तरकाण्डमें निरूपित ज्ञान द्वारा ज्ञानियोंको अनुभवानन्द होता है वैसे ही तामस भक्तोंको गुणगान द्वारा अनुभवानन्द कराकर 'ज्ञान'से उनका हित किया और जैसे वेदके पूर्व काण्डमें कही हुई क्रियाशक्ति द्वारा कर्मात्माका भजन कर, कर्मिष्ठ आनन्दानुभव करते हैं वैसे ही गोपीजनोंको अच्युत भगवान्, कान्त रूपसे, रमण क्रियामें लीनकर, आपने उनका कर्म द्वारा हित किया. इसी प्रकार दोनों दलों द्वारा अनुभव कराकर निरोधको स्थिर किया.

योजना: 'गोकुलोत्सव' पद द्वारा 'उत्सव' पञ्चमाध्यायका अर्थ कहा. 'ईशान' पद द्वारा भगवान्के ईश्वरत्वको कहा. वियोगावस्थामें जो भगवान्की अन्तःस्थितिका अनुभव किया जाता है वह अनुभव यहां ज्ञान नामसे कहा गया है (अर्थात् भगवान्ने व्रज भक्तोंको जो विरहावस्थामें, अन्तःकरणमें प्रकट(स्थित) हो आनन्दानुभव कराया वह उत्तरकाण्डस्थ ज्ञानवत् होनेसे यहां 'ज्ञान' नामसे कहा गया है. संयोगावस्थामें जो लीलाओं द्वारा अनेक प्रकारका विहार होता है वह यहां 'कर्म' नामसे कहा गया है. (अर्थात् भगवान् स्वयं प्रकट हों, भक्तोंके साथ जो संयोगमें लीलाएं करते हैं जिसमें तामस भक्तोंको क्रियाओं द्वारा आनन्द प्राप्ति होती है वह पूर्वकाण्डस्थ यज्ञात्मक कर्मात्मककी क्रियाशक्ति होनेसे इसको 'कर्म' संज्ञा दी गई है). इसी प्रकार ज्ञान और कर्मसे तामस भक्तोंके हितकारी हुए. भगवान् तामस भक्तोंको संयोग-वियोग दोनों अवस्थाओं द्वारा आनन्दानुभव कराकर, सदा व्रज भक्तोंको परमानन्द संयुक्त करते हैं. यह तामस प्रकरणका अर्थ है.

वियोगावस्थाको ज्ञानरूपता और संयोगावस्थाको कर्मरूपता दी. ज्ञानमार्गमें अन्तरमें ही भगवत् स्फूर्ति होती है तथा वियोगावस्थामें भी अन्तरमें भगवत्स्फूर्ति होती है. इसलिए वियोगावस्थाको ज्ञानरूपता कहा वह योग्य ही है. जैसे कर्म मार्गमें सारी क्रिया बाहर होती हैं वैसे ही संयोगावस्थामें सब क्रियाएं प्रत्यक्ष होती हैं इससे संयोगावस्थाको 'कर्म' कहना उचित है. इस कारिकामें गोकुलवासियोंको सर्वदा सर्वथा भगवान् कैसे हितकारक हैं ऐसी जिज्ञासा हो तो श्रीप्रभुचरण कृत श्री गोकुलाष्टक पढ़कर अनुभव करना चाहिए. गोकुलाष्टक इस कारिकाकी टीका है.

इति श्रीमद्भागवत दशमस्कन्धकी श्रीवल्लभाचार्यविरचित सुबोधिनी टीकाके तामस प्रकरणके 'प्रमाण' अवान्तर प्रकरणके ऐश्वर्य निरूपक अध्याय १ का (स्कन्धानुसार अध्याय ५) का हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण.

अध्याय ६

शकटभञ्जन और तृणावर्त्त का उद्धार

चरित्रमद्भुतं शास्त्रे लोकेपि भगवत्कृतम् ।।

पूतनासुपयःपानं षष्ठे रक्षा निरूप्यते ।।का.१।।

कारिकार्थ: पूतनाके स्तन्यपानके साथ प्राण खींच लेना और बालकोंकी भी रक्षा करना ये भगवान्के चरित्र लोक एवं शास्त्रमें भी अद्भुत कहे और समझे जाते हैं. इनका छठे अध्यायमें निरूपण किया जाता है।।१।।

एकं कार्यं भगवतो बह्वर्थानां तु साधकम् ।।

अतो दुष्टवधो रक्षा बालकानां ततः कृता ।।का.२।।

भगवान्का एक कार्य(लीला) बहुत अर्थोंको सिद्ध करता है, जैसे पूतना-वधकी लीलासे दुष्टोंका नाश, पूतना द्वारा प्रथम मारे हुए बालकोंका हित, एवं बालकोंका मरनेसे निर्भय(रक्षा) होना आदि कार्य सिद्ध हुए।।२।।

वीर्यं भगवतो वर्ण्यं मायया भगवत्कृतम् ।।

दुःखं तस्मात् तु मुक्तिर्हि निरोधोक्तेर्न दूषणम् ।।का.३।।

इस अध्यायमें भगवान्के वीर्य(वीरता) गुणका वर्णन करना है. भगवान्ने माया द्वारा दुःख दिलाकर, फिर उससे मुक्त किया, इसमें किसी प्रकारका दोष नहीं है; क्योंकि यह दुःख निरोध सिद्धिकेलिए दिलाया था।।३।।

भयं निवर्त्त्यं वीर्येण द्विविधं बाह्यमान्तरम् ।।

आन्तरं शब्दजं* बाह्यं पूतनाजनितं तथा ।।का.४।।

वीर्य द्वारा भीतरी और बाहरी दोनों प्रकारका भय मिटाना है. भीतरी भय शब्द द्वारा पैदा हुआ है और बाहरी भय पूतना द्वारा हुआ है।।४।।

*.'शब्दज भय'(भीतरी भय) वसुदेवजीने नन्दजीको मथुरामें कहा था कि गोकुलमें उत्पात(उपद्रव) हो रहे हैं ये शब्द सुनते ही नन्दजीके हृदयमें भय उत्पन्न हुआ था ''मैं यहां हूं, वहां न जाने कौनसे उपद्रव हो रहे होंगे'', इस प्रकारके इस भयको कारिकामें 'शब्दज' कहा है .

प्रकाश: छठे अध्यायके आशयका स्पष्टीकरण करते हैं कि जैसे पांचवें अध्यायकी लीलाओंमें निज स्वरूपमात्र प्रकट करके भगवान्ने भक्तोंका निरोध किया है वैसे आगेकी लीलाओंमें केवल स्वरूपसे ही निरोध नहीं होगा, किन्तु स्वरूप एवं लीलाओं द्वारा भक्तोंका निरोध होगा. जैसे पांचवें अध्यायमें भगवान्के प्रकट होनेपर

किया हुवा नन्दमहोत्सव निरोध सिद्ध करनेवाला था. वैसे ही यहांपर बालकोंकी रक्षा लीला, निरोध बतलानेवाली है. इसे समझानेकेलिये इस चरित्र और रक्षा प्रसंगकी संगति बताई जाती है. इस चरित्र अर्थात् पूतना चरित्रको शास्त्रमें(भागवतके द्वितीय स्कन्धके सातवें अध्यायके २७ श्लोक 'तोकेन जीवहरणं'में अद्भुत इसलिए कहा गया है कि दुष्ट स्वभाववाली शास्त्रीय साधन रहित पूतना जिसने मुक्तिकेलिये शास्त्रोंमें लिखे हुए साधनमेंसे कोई भी साधन नहीं किया) ऐसीको भी मुक्ति दे दी. इससे विशेष अनूठा चरित्र क्या होगा? अथवा पूतनाके प्राण रूपी स्तन्य(दूध)के पान द्वारा बालकोंकी रक्षा की इस कार्यको रूपक समझ लेवें तो इस अध्यायमें एक ही लीला बताई गई है.

प.भ.निर्भयराम भट्ट कारिकार्थमें कहते हैं कि भगवान्ने पूतनाके प्राणोंके साथ दूध पीकर, जो बालकोंकी रक्षा की, उस रक्षामें पूतना द्वारा प्रथम मारे हुए बालक कृतार्थ* हुए और अन्य बालकोंकी पूतनाके मर जानेके कारण रक्षा हुई. (*.पूतना द्वारा मारे हुए बालकोंको भगवान्ने पूतनासे खींचकर, अपने श्रीअंगमें स्थापित किया इसलिए वे कृतार्थ(सन्तुष्ट) हुए.)

योजना: कारिका २में ''रक्षा बालकानां ततः कृता'' दुष्ट पूतनाके वध द्वारा व्रजस्थोंकी रक्षा की. नहीं तो नन्दजी जब तक नहीं पहुंचे थे, तब तक जैसे बालकोंको पूतनाने मारा था वैसे ही नन्दजीके पहुंचनेपर भी मारती. इसलिए पूतना-वधसे बालकोंकी रक्षा हुई और साथ ही नन्दजीका अन्तर्भय भी, जो वसुदेवजीके शब्द सुननेसे हुआ था, वह कम हुआ.

लेख: पूतनाके वधसे, पूतना द्वारा मारे हुए जो बालक, पूतनाके भीतर थे वे भी मारे गये होंगे. क्योंकि गर्भवती माताके मरनेपर जो बालक उदरमें होता है वह भी मर जाता है, वैसे ही वे भी मरे होंगे, इस शंकाको इस कारिका द्वारा मिटाया गया है.

टिप्पणी: छठे अध्यायमें वीर्यका वर्णन करते हुए भक्तोंके दुःखोंका वर्णन करना ठीक नहीं है. इसका समाधान करते हैं कि 'मायया' भगवान्ने माया द्वारा भक्तोंको दुःख दिया और उस मायारूपी पूतनाको मारकर, भक्तोंका दुःख मिटाकर निरोध किया. यह सब भगवान्की वीर्य लीला होनेके कारण, इस अध्यायमें भक्तोंके दुःखका वर्णन है, इस कारणसे भक्तिमार्गमें यह अवगुण नहीं है. श्रुतिमें कहा गया है कि 'मायेत्यसुराः' असुर लोगोंका भगवान् माया है अर्थात् असुर लोग, मायारूपी भगवान्के सेवक हैं उसीकी सेवा करते हैं. मायारूप पूतनाका यह स्वरूप(मायारूप) भगवान्ने ही भक्तोंको दुःख देनेकेलिये तैयार करवाया था. इसलिए भगवान्ने ही पूतनाको साधनरूप बनाकर भक्तोंको दुःख दिया था. इसलिए उस पूतनामें व्रज-

भक्तोंका लक्ष्मीभाव हुआ था, नहीं तो वे ही उसको निकाल देते. दूसरे बालकोंको अब कष्ट न हो, इसलिए पूतनाको मुक्ति-दान दिया. यदि मुक्ति न देते तो फिर उसके दूसरेमें प्रवेश होकर दुःख देनेकी सम्भावना थी. वह सम्भावना अब सदाकेलिये मिट गई. इस कारणसे निरोध-मार्ग मर्यादा भक्ति-मार्गसे विलक्षण है. ईश्वरकी रक्षा करनी योग्य न थी, इसका समाधान भी यही है कि निरोध मार्ग(प्रेम मार्ग), मर्यादा मार्गसे अनूठा है; क्योंकि उसमें स्नेह ही मुख्य है .

श्रीशुकः उवाच

नन्दः पथि वचः शौरेर्न मृषेति विचिन्तयन् ।।

हरिं जगाम शरणम् उत्पातागमशंकितः ।।१।।

शुकदेवजीने कहा वसुदेवजीके वचन झूठे नहीं होंगे, इस प्रकार मार्गमें विचार करते हुए, उपद्रव होनेकी शंकासे युक्त नन्दरायजी भगवान्‌की शरणमें आए ।।१।।

वसुदेवजीके वचनोंसे पैदा हुआ भीतरी भय ईश्वरकी शरणमें जानेसे नष्ट होगा, इसका वर्णन 'नन्दः पथि' श्लोकसे श्रीशुकदेवजी कहते हैं. वसुदेवजीके वचनमात्र सुनते ही नन्दादि गोप भयभीत होकर मथुरासे निकले, बीचमें(मार्गमें) भयके कारण चलनेकी भी शक्ति क्षीण हो गई, इससे चल नहीं सकते थे और वसुदेवजीके वाक्योंको विचारते थे, ''क्या हमको कंस द्वारा भय होगा? इसलिए मथुरासे जानेकेलिये वसुदेवजीने कहा, अथवा जैसे उनसे सुने गए शब्द हैं कि गोकुलमें भय(उपद्रव) हैं इस कारण वसुदेवजीका विचार हमको मथुरासे निकालनेका था, इसलिए ये शब्द कहे. नहीं-नहीं, ऐसा हो नहीं सकता. वसुदेवजी कभी झूठ नहीं बोलते हैं. यों कहें तो असत्यवादी हो जांय.'' इससे यह निश्चय किया कि वसुदेवजीने जो कुछ कहा वह कदाचित् सत्य भी हो जाय. इस प्रकार शंकाशील होते हुए, भीतर भयवाले नन्दजी गोकुल जाने लगे.

ऐसा विचार करते हुए मार्गमें कोई भी कार्य न होनेसे निश्चिन्त हो भय मिटानेकेलिये नन्दजीने हरिकी शरण ली. 'गोकुलमें उत्पात(उपद्रव) हैं, नन्दजीने वसुदेवजीके इस वाक्यपर ध्यान न दिया अर्थात् इस शब्दका विचार न किया. यदि करते(ध्यान देते) तो उनके प्राण भी निकल जाते. नन्दजीके मनमें उपद्रवोंकी शंका मात्र हुई, वह भी उपद्रवोंके आनेकी शंका हुई कि कदाचित् उपद्रव होंगे; अब हो रहे हैं, यह निश्चय नन्दजीको नहीं हुआ. इसलिए श्लोकमें शुकदेवजीने

कहा है कि उत्पात आनेकी शंकावाले नन्दजी थे. नन्दजीके मनमें इस प्रकारका सन्देह ही रहा, यह भी भगवान्का चरित्र(लीला) है, सचमुच तो जिस समय वसुदेवजीने नन्दरायजीको 'गोकुलमें उपद्रव हैं' कहा था उस समय ही 'पूतना' गोकुलमें पहुंच गई थी ।।१।।

योजना: (१०।६।१).जब कि नन्दरायको निश्चय था कि वसुदेवजी सत्यवक्ता हैं, उन्होंने जो कहा वह सत्य ही है. वसुदेवजीने स्पष्टतया कह दिया था कि गोकुलमें उत्पात(उपद्रव) हो रहे हैं, फिर भी नन्दजीके मनमें सन्देह हो रहा था, उसका कारण भगवान्का चरित्र है अर्थात् भगवान्की इच्छा ऐसी थी कि नन्दजीको इस विषयमें सन्देह ही हो, नहीं तो, भगवान्में विशेष वात्सल्य स्नेह होनेसे, नन्दजीके प्राण पक्षी उड जाते, इससे भगवान्ने ही नन्दजीके मनमें सन्देह कराया, निश्चय होने नहीं दिया. श्रीशुकदेवजीने भी मूल श्लोकोमें 'उत्पातागमशङ्कितः' (उपद्रव आनेकी शंकावाले नन्दजी) लिखा. इसलिए सुबोधिनीमें यह सन्देह उत्पन्न कराना भगवच्चरित्र है, इस प्रकार व्याख्या की है.

इस प्रकार भीतरी भय मिटाकर, बाहरी भय श्रीभगवान् मिटाते हैं. इसलिए पहिले बाहरी भयका वर्णन 'कंसेन' इस श्लोकसे लेकर साढे आठ श्लोकोंमें करते हैं.

कंसेन प्रेषिता घोरा पूतना बालघातिनी ।।
शिशूंश्चचार निघ्नन्ती पुरग्रामव्रजादिषु ।।२।।

कंसकी भेजी हुई बालकोंको मारनेवाली घोर पूतना नगर, गांव और व्रज(गोष्ठ)में बालकोंको मारती हुई घुमती थी ।।२।।

पूतना सब जगह सब उपद्रव करनेवाली है, इस कारण यह मारने योग्य है. इसको पहले सामान्य ढंगसे वर्णन करते हैं.

कंसकी भेजी हुई घोर पूतना, बच्चोंको मारती हुई, सब जगह फिर रही थी. स्वामीने जिस कार्यकेलिये भेजा, वह कार्य सेविकाको अवश्य करना चाहिये. स्त्रीजातिका बच्चोंमें स्वाभाविक स्नेह होता है इसलिए वे बच्चोंको प्यार करती हैं उन्हें मारती नहीं; ऐसा जानते हुए भी कंसने स्त्रीको क्यों भेजा?

इसलिए शुकदेवजी कहते हैं कि यह पूतना दूसरी स्त्रियोंके समान कोमल हृदयवाली न थी, किन्तु घोरा(भयंकर) थी. यह जानकर कंसने बच्चोंको मारनेकेलिये इसको भेजा. जातकर्म आदि संस्कारों द्वारा पवित्र, वैदिक कर्मोंसे सम्बन्धवाले उन कर्मोंके अधिष्ठात्री(नियामक) देवताओं आदि द्वारा रक्षित हुए

बालकोंको किस प्रकार मारेगी? इसपर शुकदेवजी कहते हैं कि वह 'पूतना' है; उसके ऐसे घोर कर्मोंके करनेके कारण उसका 'पूतना' नाम धरा गया है. जैसे कि 'पूतान् नयति इति पूतना' शुद्ध पवित्रोंको भी जो ले जाती है उसको पूतना कहा जाता है. इतना ही नहीं यह केवल बच्चोंको ही नहीं ले जाती है, अपितु पुरुषोंको भी ले जाती है, इसलिए भी इसका नाम पूतना हुआ है. 'पुरुषान् अपि उन्नयति' इस व्युत्पत्तिसे पुरुषोंको भी ले जानेवालीको पूतना कहा जाता है. ऐसी घोर स्त्री समझ कंसने इसको भेजा है. इन कारणोंसे यह बहुत बलवाली है, सबको मारनेकी शक्ति रखती है. संस्कारोंके करनेके कारण, जब देवता रक्षक हैं तब उन्हें यह कैसे मारती है? वहां कहते हैं कि 'बालघातिनी' जैसे देवताओंमें रक्षा करनेकी शक्ति है, वैसे इसमें बालकोंके घात करने(मारने)की शक्ति है. भगवान्ने ऐसी ही शक्ति उसको दी है. इससे ही तीन वर्षसे छोटे बच्चोंको मारती हुई फिरती रहती थी. जो बच्चोंको खा जावे, तो थोड़ोंसे ही पेट भर जानेके कारण मारना छोड़ दे, लेकिन बालकोंके प्राण मात्र चूस-चूस कर चली जाती है. तीनों गुणोंवाले स्थानोंमें जानेकी इसको रुकावट न थी, इससे सात्त्विक नगरोंमें, राजस गांवोंमें और तामस व्रज(गोष्ठों)में रहनेवाले बालकोंको मारती हुई, इस कार्यमात्रकेलिये वहां घूमती थी. अर्थात् कभी यहां कभी वहां चक्कर काटती थी. श्लोकमें 'आदि' शब्द है उसका भाव है कि वह केवल नगर, गांव और गोष्ठोंमें ही नहीं घूमती थी किन्तु खेड़ो(छोटे गांवों), खिड़कों और वाड़ियोंमें भी घूम-घूमकर बच्चोंके प्राण चूसती थी।।२।।

जो पहले भी इस प्रकार होता तो उस समय भी कोई बालक जीता न रहता. इस शंकाको 'न यत्र' श्लोकसे मिटाते हैं.

न यत्र श्रवणादीनि रक्षोघ्नानि स्वकर्मसु ।।
कुर्वन्ति सात्त्वतां भर्तुर्यातुधान्यश्च तत्र हि ।।३।।

जहां मनुष्य, अपने कर्मोंमें, राक्षसोंके नाश करनेवाले वैष्णवोंके भर्ता, भगवान्के श्रवणादि, कुछ नहीं करते हैं, वहां ही राक्षसियां अपना काम(मारना, दुःख देना) करती हैं ।।३।।

जहां मनुष्य, अपनी रक्षार्थ किये हुए कर्मोंमें और 'स्व'(अपने) शब्द कहकर स्व(अपने) धार्मिक कर्मोंमें, अधर्मकी शाखाओंको हटाने या रोकनेमें, देवादिकोंके पोषण करनेवाले वैष्णवोंके पति भगवान्के, नव प्रकारके अथवा

छः[२] प्रकारके श्रवणादि भजन और इसी प्रकार जिन भगवद् गुणोंके गानसे राक्षसोंका नाश होता है (जैसे ताटकादि राक्षसोंके नाश करनेवाले श्रीरघुनाथजीके चरित्र गान आदि) ऐसे कर्म (जहां) नहीं होते हैं, वहां राक्षसियां होती ही हैं और आकर उपद्रव करती ही हैं क्योंकि वे कर्म(अधर्म) श्रवणादि न करनेसे उन्होंके(राक्षसोंके) सम्बन्धवाले हो जाते हैं.

इसलिए कहा है कि ''यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या'' इस वाक्यसे स्वधर्म(अपने धर्म कर्म आदि) भगवान्के श्रवणादिके अभावमें अपूर्ण ही रहते हैं, भगवान्के स्मरण एवं नाम ग्रहणसे ही पूर्ण हो जाते हैं. राक्षस तो सब जगह होते ही हैं इस कारणसे ही 'अपहतासुराः' ये मन्त्र (उनके नाश करणार्थ) हैं. इससे जाना जाता है कि राक्षसोंका तो वहां जहां भगवत्स्मरण आदि नहीं है पहलेसे ही सम्बन्ध है इसलिए राक्षसोंसे सम्बन्धवाली राक्षसियां भी वहां आ जाती हैं, अर्थात् राक्षसोंसे सम्बन्धवाली राक्षसियां भी जहां तहां आ और जा सकती हैं एवं पृथक् पृथक् मन्त्रोंके स्वामियोंका निराकरण[३] भी कर सकती हैं. यह अर्थ योग्य है कारण कि पतियोंकी उपस्थितिमें स्त्रियां प्रबल होनेसे कहीं भी जा सकती हैं. कोई उनको रोक नहीं सकता है. इससे राक्षसोंका नाश करनेकेलिये 'रक्षोघ्न' मन्त्र जप पाठ आवश्यक है, उसके अतिरिक्त उपद्रव नष्ट नहीं होंगे. राक्षसोंके नाश हो जानेपर राक्षसियां कुछ नहीं कर सकेंगी. जैसे प्रबल वायुसे दीपक बुझ जाता है और उसमें डाला हुआ तेल व्यर्थ हो जाता है अर्थात् दीपकको बुझनेसे बचा नहीं सकता; इसी प्रकार राक्षसोंके नाश होनेसे राक्षसियां बेकार हो जाती हैं. इसलिए उपद्रवोंका प्रतीकार एकमात्र 'रक्षोघ्न'(राक्षस नाशक) मन्त्रोंके सिवाय दूसरा कोई नहीं है. पूर्ण शुद्ध विधिसे पढ़े हुए मन्त्र ही पापोंका नाश करनेमें समर्थ होते हैं. ''अग्निं वै जातं'' इस उपाख्यानमें ऐसे ही (शुद्ध) मन्त्रोंसे पापनाश होना कहा गया है. मर्यादा मार्गमें आधिदैविक, आध्यात्मिक और आधिभौतिक; इन तीनोंको उत्तरोत्तर प्रबल बताया गया है. परस्पर सामर्थ्यकी अपेक्षा होनेसे, उसके अधिष्ठाता देवताकी प्रेरणासे, दूसरेमें फल पैदा करनेकी शक्ति आती है.

भगवान् तो सब जगह विद्यमान् हैं और अपने प्रकट होनेका विशेष कारण 'भक्तिमार्ग'को बनाया है अर्थात् भक्तिमार्ग द्वारा आपका प्राकट्य एवं सकल विघ्न–दोषादिका नाश भी हो जाता है. इसलिए वैष्णवोंके पति परमात्माके श्रवणादि भक्ति द्वारा 'रक्षोघ्न' मन्त्रोंका फल, राक्षस नाश भी हो जाता है.

आगन्तुक(अचानक आनेवाले राक्षस आदि द्वारा) दुःखोंका निवारण[१] मन्त्रों द्वारा ही हो सकता है; किन्तु सहज(स्वाभाविक व साथमें पैदा हुए) दोषोंका निवारण मन्त्रों द्वारा नहीं हो सकता है. इस प्रकार प्रबल और दुर्बल भाव होनेपर, बाधा बाधक भाव होना उचित ही है. अर्थात् जहां एक बलवान हो, दूसरा शक्ति-हीन या निर्बल हो, तो वहां यदि एक हटानेवाला और दूसरा हटनेवाला हो जाय, तो वह योग्य ही है. इससे आगे श्रवण करनेवालेकी शंका भी मिटाई गई. वर्णाश्रम धर्मवाले जो कर्म करते हैं वे देह-मात्रसे सम्बन्ध रखनेवाले होते हैं तथा उन कर्मोंका सम्बन्ध भगवान्से कुछ नहीं होता है. जहां भगवान्के नाम सुननेसे ही राक्षस भाग जाते हैं, वहां स्वयं भगवान्की उपस्थितिमें राक्षसोंकी चिन्ता कैसी? अर्थात् कोई चिन्ता नहीं. इसलिए ही 'कर्मसु'के पहले 'स्व' शब्द दिया है ।।३।।

१.प्रकाश: पूतनाका बालकोंको मारना ही केवल प्रयोजन होता तो.

२.प्रकाश: भागवतके (२।४।१५) ''यत् कीर्तनं यच्छ्रवणं'से बताई हुई छः प्रकारकी भक्ति.

लेख: श्रवणादि नव प्रकारकी भक्ति कहकर, फिर छः प्रकारकी भक्ति की. दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन इन तीन प्रकारकी भक्तियोंसे राक्षसोंके सम्बन्धकी शंका ही नहीं है. इससे राक्षसोंके नाशक रघुनाथजीके चरित्र गानेकेलिये कहना नहीं चाहिए, इसलिए कहते हैं अथवा छः प्रकार की.

सा खेचर्येकदोपेत्य पूतना नन्दगोकुलम् ।।
योषित्वा माययात्मानं प्राविशत् कामचारिणी ।।४।।

आकाशमें विचरण करनेवाली, उस पूतनाने एक बार नन्दजीके गोकुलके निकट पहुंचकर और कपटसे अपना सुन्दर स्त्रीका रूप बनाकर स्वच्छन्द घूमती हुई गोकुलमें प्रविष्ट हुई ।।४।।

इस प्रकार पूतना सब प्रकारके उपद्रव करनेवाली है. यह बात हेतुओंसे सिद्ध कर अब उसका गोकुलमें आनेका 'सा खेचरी' श्लोकसे वर्णन करते हैं. वह(पूतना) जिस समय देवादिकोंका सम्बन्ध न था एवं आश्लेषा नक्षत्र, विष घटिका, मृत्यु योग था एवं भगवान् पृथ्वीपर विराजमान थे उस समय एक बार गोकुलमें आ पहुंची. श्लोकमें 'खेचरी' विशेषण देनेका भावार्थ बताते हैं कि भूमिकी सर्व देवता रक्षा करते हैं इसलिए वह भूमिपरसे आ नहीं सकती थी, इस कारणसे वह पक्षीकी तरह आकाशमें उडती हुई गोकुलमें आई. यों तो गोकुल

मर्यादा धर्मवाला है, किन्तु वैकुण्ठसे पधारकर आये हुए भगवान् जहां विराजें वहां मर्यादा धर्मका नाश हो जाता है; इसलिए गोकुल न कहकर शुकदेवजीने 'नंद गोकुल' कहा है. नन्द गोकुलमें वह(पूतना) आ नहीं सकती, किन्तु जिस समय नन्दजी एवं गौ दोनों गोकुलमें नहीं थे, उस समय वह आ गई.

पूतना गोकुलके निकट तो पहुंच गई परन्तु उसमें भीतर आनेकी सामर्थ्य न थी, तब उसने अपने इष्ट, मायारूप भगवान्का ध्यान धरा, तब मायारूप भगवान्ने उसको यशोदा आदि स्त्रियोंके समान, सुन्दर रूपवती स्त्रीका रूप प्रदान किया. (जैसे श्रुतिमें कहा है कि ''मायेत्यसुरा'' ''तद्धैतान् भूत्वावतीति च'' माया असुर है वे प्रकट हो इनकी रक्षा करते हैं.) इसलिए श्लोकमें कहा है कि ''अपना रूप मायासे स्त्री जैसा बनाकर, गोकुलमें प्रवेश किया''. श्लोकमें दिये हुए 'कामचारिणी' पदका भावार्थ बताते हुए कहते हैं कि अजान स्त्री होते हुए भी उसने प्रवेश किया क्योंकि वह स्व इच्छासे वहां भी प्रवेशकर सकनेकी शक्तिवाली थी, एवं उसने युवती स्त्रीका रूप भी इस निश्चयसे लिया था कि मैं गोकुलमें प्रवेश करूं तो मेरे रूपको देखकर कोई पुरुष भी मुझे रोके नहीं. जहां जहां कामका प्रवेश था, वहां वहां ही प्रवेश कर सकी. जैसे साक्षात् काम हो वा विशेष कामका वेग हो तो वहां प्राणी अन्धे हो जाते हैं अर्थात् वे कुछ भी देख व समझ नहीं पाते हैं ।।४।।

प्रकाश: भगवान्का प्राकट्य रोहिणी नक्षत्रमें हुआ और छठे दिन आश्लेषा नक्षत्रमें पूतना आई. इससे जाना जाता है कि भगवान्ने पूतनाको मारा तब भगवान् 'छः' दिनके ही थे. पद्मपुराणमें लिखा है कि भाद्रपद कृष्णा चतुर्दशीको पूतनाको मारा. इससे श्रीभगवान् उस समय 'छ:' दिनके ही थे हरिवंशमें लिखा है कि छः मासके भगवान्ने पूतनाको मारा, यह कथा दूसरे कल्पकी है.

लेख: जहां सतोगुण और धर्म होता है, वहां राक्षसादि प्रवेश नहीं पा सकते हैं, इसलिए कहा कि पूतना उस समय आई जिस समय गोकुलमें सतोगुणरूप नन्दजी नहीं थे एवं धर्मरूप गौ भी नहीं थीं.

तां केशबन्धव्यतिषक्तमल्लिकां बृहन्नितम्बस्तनकृच्छ्रमध्यमाम् ।।
सुवाससं कम्पितकर्णभूषणत्विषोल्लसत्कुन्तलमण्डिताननाम् ।।५।।
वल्गुस्मितापाङ्गविसर्गवीक्षितैर्मनो हरन्तीं वनितां व्रजौकसाम् ।।
अमंसताम्भोजकरेण रूपिणीं गोप्यः श्रियं द्रष्टुमिवागतां पतिम् ।।६।।

बालोंके जूडोंमें गूंथे हुए मोगरोंके फूलोंवाली, बडे नितम्ब, स्तन एवं

पतली कटिवाली, सुन्दर वस्त्रोंवाली, हिलते कुण्डलोंकी कान्तिसे झलकते केशोंसे सुशोभित मुखवाली, मनोहर मुस्कानवाले कटाक्ष, चलायमान दृष्टिसे व्रजवासियोंके मनको हरण करनेवाली उस सुन्दर स्त्रीको गोपियोंने हाथमें कमल धारण करनेके कारण समझा कि लक्ष्मी अपने स्वामीके दर्शनकेलिए आ रही है ।।५-६।।

सबको मोहित करनेकेलिये भगवान् द्वारा बनाये हुए पूतनाके रूपका वर्णन करते हैं. पांचवें श्लोकमें रूपका एवं छठेमें चेष्टाओंका वर्णन है.

पूतनाका यह रूप, मायारूप भगवान्ने किया है. उसकी मोहकता सोनेके आभूषण एवं सुन्दर वस्त्रोंके कारण थी एवं बालोंके जूड़ोंमें गूंथे हुए मोगरोंके फूल ऐसे लगे थे कि गिरते नहीं थे. श्लोकमें 'मल्लिका' उपलक्षण है, लेकिन जूड़ेमें उस ऋतुके विविध फूल गूंथे हुए थे. सौन्दर्य और सुगन्धि उनमें थी. बड़े स्तन तथा नितम्ब एवं पतली कमरके कारण, सब प्रकारके आसनों द्वारा, भोग करने योग्य थी, उत्तम वस्त्र रसजनक थे, हिलते हुए कुण्डलोंकी कान्तिसे झलकते केशोंसे सुशोभित मुखकी सुन्दरताका मोहकेलिये ही निरूपण है. अथवा कानोंके ऊपरके भागमें पहने हुए आभूषणोंसे ही कुण्डलों जैसी कान्ति होती थी, अर्थात् कुण्डल धारण नहीं किये थे, तो भी, उन आभूषणोंसे कुण्डलोंकी कान्तिका भान होता था. इससे उन भूषणोंकी सर्वोत्तमता बताई गई।।५।।

छठे श्लोकमें पूतनाकी चेष्टा(हाव-भाव, अंग-चालन आदि)का वर्णन करते हैं. पूतनामें स्वाभाविक स्मित(मुस्कान)का अभाव था, इसलिए श्लोकमें 'स्मित' न कहकर 'वल्गु' विशेषण दिया, जिसका आशय है कि पूतनाकी मुस्कान बनावटी थी. ऐसी बनावटी मुस्कानसे जो अक्रियता(चेष्ठा रहित)से लपेटे हुए कटाक्षोंको (बहुवचनसे कहा) विविध प्रकारसे दिखाती, व्रजवासियोंके मनको हरण करती, बिना रोक-टोकके गोकुलमें आ गई. व्रजवासी विवेक रहित(भोले या सीधे-सादे) होते हैं, इससे पूतनाके बनावटी मुस्कान एवं कटाक्षादिको पहचान न सकनेके कारण मोहित हो उसको रोक नहीं सके. गोप बहुत थे, तो भी 'मन' एकवचन इसलिए दिया कि सब गोपोंका मन एक जैसा ही था अर्थात् सब एक सरीखे विवेक रहित थे. इससे गोपोंने उसको(पूतनाको) पूर्ण रीतिसे देखा(समझा) नहीं. गोपोंने अच्छी तरहसे देखा भी, किन्तु गोपियोंकी तरह नहीं देखा. गोपियोंने तो पूरी तरहसे देखा, वे तो पूर्ण ज्ञानवाली थीं, उसका रूप

भगवान्का बनाया हुआ है, यह जान लिया. भगवान्की लीलासे उसकी घातकता न समझ सकीं, किन्तु यों समझा कि अपने रमण केलिये भगवान्ने लक्ष्मीजीको बुलाया है. लक्ष्मी भगवान्की पत्नी हैं. उससे दासियोंका वैमनस्य या वैर नहीं होता है, इसलिए श्लोकमें कहा है कि गोपियोंने दर्शनकेलिये आई हुई उसको लक्ष्मी ही समझा. भगवान्ने वैसा ही रूप बनाया है इसलिए उसके हाथमें लीला कमल था. यही पहचानका असाधारण चिह्न है. इससे खाली हाथका भी निषेध हुआ वह अपनेमें आवेश[२]से बढ़े हुए स्वरूपके कारण सुन्दर रूपवती[३] हुई थी. पति दर्शनकेलिये आई हुई जानकर, किसीने उसको रोका नहीं. गोपियोंने तो उसका समादर किया, इसलिए गोपियोंका न रोकना गोपियोंकेलिये बाधक नहीं।।६।।

१.लेख: पूतनाके आनेके समय वर्षा ऋतु थी उस कालमें मोगरे होते नहीं, लेकिन वर्षा ऋतुके पुष्पोंमें मोगरे जैसी शोभा एवं सुगन्ध होनेसे 'मल्लिका'(मोगरा) लिखा है.

२.टिप्पणी: पूतना स्वतन्त्रतासे स्वयं गोकुलमें आ नहीं सकती थी इसलिए आचार्य चरणोंने श्रीसुबोधिनीमें कहा है कि 'स्वस्मिन्नावेशातिरिक्तरूपां' गोपियोंके सम्बन्धकी इच्छासे वहां प्रवेश किया.

३.प्रकाश: जब ''वल्गुस्मित एवं श्रियं अमंसत''से ही उसकी शोभा चेष्टा और रूपका वर्णन हो गया फिर श्लोकमें 'रूपिणीं' क्यों कहा? इसका भावार्थ समझनेकेलिये श्रीसुबोधिनीजीमें 'स्वस्मिन्नावेशातिरक्तरूपां' कहा. इस सुबोधिनीजीके पंक्तिको श्रीप्रभुचरणने टिप्पणीमें समझाया कि पूतना अपने आप गोकुलमें नहीं आ सकती थी इसलिए गोपियोंके सम्बन्धकी इच्छासे वहां (गोपियां जहां थीं) प्रवेश किया. इस टिप्पणी एवं सुबोधिनीके संस्कृत 'स्वस्मिन्नावेशातिरिक्तरूपां'को विशेष स्पष्ट समझाते हैं कि 'स्वस्मिन्' गोपीजनोंमें जो आवेश था, उससे पूतनाका भी रूप बढ़ गया अर्थात् विशेष सुन्दर हो गया, अथवा पूतनामें जो लक्ष्मीका (भगवान्की पत्नी होनेका) आवेशसे अभिमान था; इससे भी सुन्दर रूपवती देखनेमें आई और गोपीदास्यात्मक आवेशसे भी सुन्दर रूपिणी हुई. इन्हीं सब कारणोंसे श्लोकमें 'रूपिणी' कहा गया है. जिसको 'स्वस्मिन्नावेशितरूपां' पंक्तिसे श्रीआचार्यचरणने स्पष्ट कर समझाया है.

टिप्पणीजी एवं प्रकाशसे यह समझमें आया कि पूतना गोकुलमें स्वयं स्वतन्त्र न आ सकी, किन्तु गोपियोंके सम्बन्ध(आवेश)से ही आ सकी.

बालग्रहस्तत्र विचिन्वती शिशून् यदृच्छया नन्दगृहेऽसदन्तकम् ।।
बालं प्रतिच्छन्ननिजोरुतेजसं ददर्श तल्पेग्निमिवाहितं भसि ।।७।।

बालकोंकेलिए ग्रहके समान वह पूतना बालकोंको ढूंढती हुई नन्दजीके घर गई. वहां उसने शय्यापर सोये हुए बालक कृष्णको देखा जो दुष्टोंके काल समान थे लेकिन जिन्होंने भस्माच्छादित अग्निके समान अपने प्रचण्ड तेजको छिपा रखा था ।।७।।

वह(पूतना) गोकुलमें भी बालकोंके ढूंढनेमें ही प्रवृत्त रही, न कि भगवान्के निकट आप ही गई. इसका वर्णन 'बालग्रह' श्लोकसे किया जाता है.

बालकोंको पकड़े, उसे 'बालग्रह' कहते हैं. पूतना बालकोंको पकड़ ले जाती, इसलिए पूतनाको 'बालग्रह' कहा गया है अर्थात् बालकोंको पकड़ने वाली. बालकोंके पकड़नेमें, आग्रह होनेके कारण, अपने आप ही, भगवान्के पास न गई, क्योंकि वह बालक नहीं था किन्तु भगवान् थे. इसलिए गोकुलमें बालकोंको ढूंढती फिरने लगी. ढूंढनेमें ही लगी रही, न कि, किसीको भी मारा, कारण कि भगवान् उनके रक्षक थे. जब वह दूसरोंको ही पकड़ती रही, भगवान्के पास न आई, तब भगवान्ने अपनी इच्छासे उसको अपने पास बुलाया. इसलिए श्लोकमें 'यदृच्छया' शब्द दिया है. अर्थात् पूतनाका इस घरमें आनेका विचार नहीं था, किन्तु भगवत्प्रेरणासे अचानक नन्दके घरमें आई और बालकको देखा. भगवान्की इच्छाके अतिरिक्त सकल उपायोंसे भी नन्दगृहमें आना अशक्य था. सुन्दर रूपवाली बनावटी दुष्टा स्त्री(पूतना)को भगवान्के दर्शन कैसे हुए? इस शंकाको मिटानेकेलिये श्लोकमें 'असदन्तकं' कहा है, जिसका अर्थ है भगवान् दुष्टोंका काल है. इसलिए जिन दुष्टोंको मारना है उनको देखकर ही मारते हैं इस कारणसे मारनेवालोंको भी दर्शन होनेमें कोई बाधक नहीं. भगवान्को नन्दगृहमें दुष्टोंके आनेको भी रोकना था. बालकोंके हरणमें ही चित्तवाली उसको यह विचार ही न आया कि यह भगवान् हैं, दुष्ट असुरोंके नाशक हैं. उन(भगवान्)को साधारण बालकके रूपमें देखा, इसलिए श्लोकमें 'बालं' शब्द दिया है. यद्यपि बालकरूप था तो भी अलौकिक तेजसे यह विचार क्यों नहीं आया कि यह 'भगवान्' हैं? यह शंका मिटानेके वास्ते ही श्लोकमें कहा है कि 'प्रतिच्छन्ननिजोरुतेजसं' भगवान्ने अपना अधिक अलौकिक तेज छिपा लिया था. यदि यह न छिपाते तो उस भगवान्के तेजसे असुर जलनेके कारण दूरसे ही भाग जाते तो मरते नहीं. बिल्कुल तेज छिपा लेते तो यशोदादि व्रजवासियोंको डर होता इसलिए 'उरु' शब्दसे बताया कि अधिक तेज छिपा लिया. भगवान्की ज्ञान

और क्रिया-शक्ति तो सर्वत्र सदैव रहती ही है; किन्तु लीलार्थ तिरोहित सी दिखती है. अतः जब तक पूतना भगवान्के पास पहुंची, तब तक उस तेजको कुछ छिपाने जैसा कर लिया, कारण कि भगवान् उस वक्त पलंगड़ीपर पौढे थे. पौढ़नेके समय क्रियाशक्ति कार्य नहीं करती है. अवस्था(आयु) वा निद्रादि कालसे क्रियाशक्तिका तिरोभाव होता है. निद्रासे उठकर चलने-फिरनेसे वह क्रियाशक्ति आविर्भाव पाती है. ज्ञानशक्तिका प्रकाश तो स्वाभाविक है, जिससे ब्रह्मज्ञानियोंको भी ज्ञान होनेपर उनमें प्रकाश आ जाता है. वह ज्ञानशक्तिका प्रकाश पूतनाकेलिये क्यों न बाधक हुआ? इस शंकाको मिटानेकेलिये श्लोकमें कहा है कि 'अग्निमिवाहितं' जैसे अग्निहोत्री अग्निको भस्मसे ढांक देते हैं, फिर हवनके समय भस्म दूर होनेपर, वह अग्नि अपना तेज दिखाती है, वह तेज(अग्नि) दूसरोंको तो जलाती है किन्तु अपनेमेंसे पैदा हुई भस्मको नहीं जलाती है; वैसे ही ज्ञानशक्तिसे उत्पन्न इच्छा, उस इच्छासे तिरोहित प्रकाशरूप शक्ति प्रवृत्ति होने तक बाधक नहीं होती है. अर्थात् पूतनाकी प्रवृत्तिमें वह ज्ञानशक्तिका प्रकाश भगवद्इच्छासे बाधक नहीं हुआ।।७।।

ज्ञानशक्ति अपने आप उसके आनेमें रुकावट कर दे तो, इसकेलिये 'विबुध्य तां' इस श्लोकमें वह ज्ञानशक्तिके तिरोहित होनेका वर्णन करते हैं.

विबुध्य तां बालक-मारिकाग्रहं चराचरात्मा स निमीलितेक्षणः ।।
अनन्तमारोपयदंकमन्तकं यथोरगं सुप्तम् अबुद्धिरज्जुधीः ।।८।।

चल और अचलके आत्मा भगवान् श्रीकृष्णने उस बालहत्यारिणी पूतनाको जानकर नेत्र मूंद लिए. मूर्ख मनुष्य जैसे सोते सांपको रज्जु समझ लेवे, वैसे ही पूतनाने अनन्त कालरूप भगवान्को साधारण बालक समझ गोदमें ले लिया ।।८।।

श्रीशुकदेवजीने 'पूतनाको बालकोंको मारनेवाला ग्रह समझकर' यह पंक्ति कहकर, भगवान्के ज्ञान होनेका उत्कर्ष(आधिक्य) नहीं बताया है, वरन् ज्ञानशक्तिका स्वरूप बताया है. अर्थात् भगवान्की ज्ञानशक्ति ऐसी है कि कोई किसी भी रूपमें आवे, तो भी उसके निजी भीतरी स्वरूपको पहचान लेती है. और 'विबुध्य तां मारिकाग्रहं' यह पंक्ति इसलिए भी कही कि जैसे इन्द्रियोंका सामनेवाले पदार्थसे सामीप्य(सम्बन्ध) होते ही, संकेतित(ठहराव)के स्मरणकी तरह, उसके गुण स्वयं प्रकट हो जाते हैं, वैसे ही उस पूतनाके देखनेसे, उसके भी

गुण प्रकट दिखाई देने लगे अर्थात् पूतनाको देखने मात्रसे उसके गुण भगवान्को भी प्रत्यक्ष दिखने लगे. 'तां' शब्दका आशय बताते हैं कि इस 'तां'से उसकी प्रसिद्धि और कंसकी प्रेरणा आदि भी कह दी एवं उसका मुख्य दोष बालकोंको मारना एवं पकड़कर ले जाना भी बता दिया. 'ग्रह' शब्दका भावार्थ बताते हैं कि जो पकड़ लेते हैं, उनको 'ग्रह' कहा जाता है. उनमें मारनेकी शक्ति नहीं हो, तो भी वे शीघ्र पकड़कर, अपने पास तब तक रखते हैं, जब तक उनकी शक्ति चल सकती है. प्रतीकार(बदला) होनेपर भी पकड़ रखते हैं. जब प्रतीकारसे शक्ति नष्ट होती है, तब छोड़ते हैं. इसलिए पूतनाको ग्रह कहकर यह बताया है कि जब तक प्रतीकारसे इसकी शक्ति नष्ट न होगी, तब तक यह इस कार्यको छोड़ेगी नहीं. ऐसा है तो भगवान्ने उठकर क्यों नहीं उसका नाश किया? इस शंकाके निवारणकेलिये कहते हैं कि भगवान् चराचरात्मा(चल और अचल दोनोंकी आत्मा) हैं. यदि दोनोंकी आत्मा स्वयं ही मर्यादा(नैतिक विधि या सीमा) छोड़ दे, (कर्ता तो पालक चाहिये न कि मारक) तो जीव(चल), जड़(अचल), दोनोंका नाश(प्रलय) हो जाय. यदि कोई कह दे कि भले प्रलय हो जाय, इसपर कहते हैं कि श्रीशुकदेवजीने श्लोकमें कहा है कि 'सः' यह बालक साधारण बालक नहीं है; किन्तु यह वह मूलरूप जगत्कर्ता है. इसलिए वह मर्यादा तोड़, अब प्रलय कैसे करे? मूलभूतकी ज्ञान-शक्ति, तो सदैव रहती है. उसके छिपानेकेलिये यह प्रयत्न किया कि आंखें मूंद लीं.

इस प्रकार सब तरह बाधा निवृत्त होनेपर उसने आकर अनन्त (भगवान्)को उठा लिया. उठानेमें उसको किसी प्रकारकी शंका न हुई, क्योंकि भगवान् अनन्तरूप थे. 'अनन्त' पदका दूसरा यह भी आशय है कि भगवान् (जगत्कर्ता) किसीको अपने आप मारता नहीं, क्योंकि आप अक्लिष्ट कर्मा हैं. पूतनाने अपने आप ही कालको पकड़ लिया. उसके समीप बैठ गोदमें बैठाया. काल(अनन्त) तो हत्यारोंका हितकारी है? इस शंकाको मिटानेकेलिये 'अन्तकं' विशेषण दिया है कि वह अनन्त सबोंको मारनेवाला है.

श्लोकमें 'यथोरगं सुप्तम्'(जैसे सोये हुए सांपको) देनेका भावार्थ बताते हैं कि यदि किसीको यह शंका होवे कि बालरूप भगवान्को गोदमें लेनेपर, भगवान्की क्रियाशक्ति तो जाग्रत हुई होगी तो उसको यों करनेमें क्यों न बाधा डाली? इसपर कहा है कि जैसे सोये हुए सांपको सांप अति तामस प्रकृतिवाला

होनेके कारण बहुत गहरी नींद लेता है. इससे जब तक उसको पीटा नहीं जाता तब तक वह कोई क्रिया नहीं करता है अर्थात् वहीं पड़ा रहता है. उसमें किसी प्रकारकी चलन क्रिया(कांपना हिलना आदि) नहीं होती है. तैसे ही भगवान्की भी क्रिया-शक्तिका कोई भी कार्य प्रकट न हुआ.

क्रियाशक्तिका कोई कार्य न हुआ; किन्तु ज्ञान-शक्तिका तेज तो प्रकट होना चाहिये था, वह क्यों न प्रकट हुआ? इसका उत्तर देते हैं कि जैसे सांपको रस्सी समझनेवाला बेसमझीसे सांपको पकड़ता है तो उस पकड़नेवालेको सांप अपने स्वरूपका ज्ञान नहीं कराता है कि मैं तुझे मार डालूंगा. रस्सी तो बन्धन करनेवाली है; लेकिन मारनेवाला सांप है. पूतनाने भी बेसमझीसे समझा था कि स्नेहसे स्तन्य पान करानेके कारण मुझपर प्रसन्न ही होंगे. पूतनाने यह न समझा कि यह मेरा अंत करनेवाला है. जैसे रस्सी समझ सांपको पकड़नेवाला नहीं समझता है कि यह मुझे काटेगा, वैसे ही पूतना भी इसको साधारण बालक समझ, गोदमें ले स्तन्य पान कराने लगी. इस कारणसे भगवान्का ज्ञान, तेज वा प्रकाश भी स्पर्शसे प्रकट न हुआ।।८।।

लेख: सातवें श्लोकमें धर्मरूप ज्ञानका तिरोधान होनेके कारण ब्रह्मविद्का दृष्टान्त दिया था. इस आठवें श्लोकमें ज्ञानशक्तिके धर्मी स्वरूपका तिरोधान हुआ है. इतना भेद है. यद्यपि भगवान्की कोई भी शक्ति तिरोहित होती ही नहीं है, सदैव उनका आविर्भाव ही रहता है; किन्तु लीलार्थ भगवान् स्वयं ऐसा दिखावा देते हैं, अतः यहां पूतना आ सके, इसलिए आंखें मूंदकर ज्ञानशक्तिको स्वरूपतः तिरोहित सा कर दिया. ज्ञान शक्ति प्रकट न हुई अर्थात् पूतनाकी बुद्धिको यह मालूम न हुआ कि यह भगवान् हैं.

प्रकाश: भगवान्ने अपनी इच्छासे ज्ञानशक्तिका अत्यन्त तिरोधान कर लिया था. भगवान्का महान् उत्कर्ष 'चराचरात्मा'(जड़ और चेतनकी आत्मा है) पदसे बताया है इसलिए पूतनाके दोषोंके ज्ञानसे, उत्कर्ष नहीं बताया है.

योजना: इस श्लोकमें शुकदेवजीने ज्ञानशक्तिका स्वरूप ही बताया है, क्योंकि भगवान् तो अपरोक्ष ज्ञानवाले होनेसे सब छिपे हुए पदार्थोंको भी जानते ही हैं, इससे पूतनाके सर्वदोषोंके ज्ञानसे, भगवान्का कुछ भी उत्कर्ष प्रकट नहीं किया. इसलिए प्रथम ७वें श्लोकमें तिरोधानमें ब्रह्मविद्का दृष्टान्त दिया यहां भगवान्ने आंखें मूंदनारूप यत्न किया है.

तां तीक्ष्णचित्ताम् अतिवामचेष्टितां वीक्ष्यान्तराकोशपरिच्छदासिवत् ।।

वरस्त्रियं तत्प्रभया च धर्षिते निरीक्षमाणे जननी ह्यतिष्ठताम् ।।९।।

म्यानमें छिपी हुई तलवारके समान बहुत तेज(क्रूर) चित्तवाली और बुरे कार्य करनेवाली घरमें आई हुई उत्तम रूपवाली स्त्री(पूतना)की कान्तिसे दबी हुई दोनों माताएं(केवल खडी-खडी) उसको देखती ही रहीं ।।९।।

पूतनाको घरमें आती देखकर भी यशोदा तथा रोहिणीने उसको क्यों नहीं रोका? इस शंकाका उत्तर इस श्लोकमें दिया है. पूतना बहुत तेजवाली थी. उसको देखकर उसके तेजसे दबायी जानेके कारण दोनों माताएं रोकनेमें असमर्थ हो गईं. इसलिए देखती ही रह गईं और यशोदा रोहिणीको इतना मोह(वात्सल्य) भी न था, जो कि जननीमें होना चाहिए; क्योंकि वे दोनों अजननी थीं. 'तां' शब्दका भाव बताते हैं कि भगवान् जहां बिराजते हैं वहां माया(मोह करानेवाली) अपने कार्य करनेमें असमर्थ होती है इससे मायाके कारण जो पूतनाके चित्तकी क्रूरता आदि धर्म छिप गये वे अब प्रकट हो गये. 'अतितीक्ष्णचित्तां' बहुत तेज (क्रूर) चित्तवाली कहकर, उसके भीतरके दोष जताये और 'अतिवामचेष्टितां' (अत्यन्त कठिन स्पर्शादिवाली) कहकर उसके बाहरके दोष बताये. जब इस प्रकार दोनों माताएं ये दोष प्रत्यक्ष देखकर समझ गई थीं, तब उसको यदि स्वयं रोकनेमें असमर्थ थीं, तो दूसरोंको(पुरुषोंको) क्यों न कहा? यदि पुरुषोंको कहतीं, तो वे उसको रोकते. इस शंकाका निवारण 'अन्तराकोश-परिच्छदासिवत्' पदसे करते हैं. 'अन्तरा' शब्दसे यह बताया है कि वह घरके भीतर आ गई, जहां पुरुषोंका आना योग्य नहीं. और 'कोशपरिच्छदासिवत्' पदसे यह बताया है कि जैसे म्यानमें छिपी तलवार अथवा कोशमें छिपे हुए धनको बाहरका बेसमझ आदमी पहचान नहीं सकता है, वैसे ही इसके छिपे हुए दोष बहिर्मुख लोग समझ नहीं सकेंगे, इसलिए पुरुषोंको कहना व्यर्थ है और 'वरस्त्रियं'(सुन्दर रूपवाली)से भी यशोदा-रोहिणीने समझा कि यह रूपवती सब पुरुषोंके वरण योग्य(मोहित करनेवाली) है, इससे इसको कोई पुरुष मारेगा नहीं. इस कारणसे भी उन्होंने दूसरोंको न बताया और न कहा. स्वयं मारने व भगानेमें असमर्थ थीं, तो भी भगवान्के प्रेमके कारण प्रयत्न तो करना ही चाहिये था. इस प्रकार उदासीन होना अच्छा नहीं था. इसपर कहते हैं कि वे स्वयं उसके तेजसे दब गई थीं. इतना तेज उसमें भगवान्ने किया था.

मनुष्यभाव राक्षसभावके प्रभावसे दब जाता है इस कारणसे उस

राक्षसीकी प्रभासे ये दोनों दब गईं. तथा श्लोकमें दिये हुए 'च'का आशय है कि भगवान्‌की इच्छा ऐसी थी. इससे वे खडी-खडी देखती ही रहीं ।।९।।

१.'सहजभाव' सन्तानके पैदा होनेके साथ जो लौकिक भाव(वात्सल्य भाव) माता जननेवालीमें होता है, वह लौकिक वात्सल्य यशोदा तथा रोहिणीमें न था. यहां तो अलौकिक भाव था; वह भगवान्‌की इच्छानुसार ही होता है. भगवान्‌की इच्छा थी कि पूतनाको कोई रोके नहीं, भले ही वह आवे, मैं इसका उद्धार करूंगा, इसलिए वे दोनों उसके तेजसे दब गईं और कुछ न किया.

२.मायारूप भगवान्‌ने पूतनाको जब किसीने रोका नहीं तब जो उसने किया उसका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं.

प्रकाश: गोपोंके न रोकनेका कारण था कि अत्यन्त रूपवती बनकर आई थी. उसको देखकर, कामोत्पत्तिके कारण वे मोहित हो गये थे. गोपियोंने इसलिए न रोका कि उसके स्वरूपमें उनको लक्ष्मीजीका भाव हुआ, इन दोनोंमें ये दोनों कारण न होनेसे उनमें मोहका अभाव था, किन्तु(भगवदिच्छासे) ये दोनों उसके तेजसे दब गईं इसलिए वे रोक न सकीं.

तस्मै स्तनं दुर्जरवीर्यमुल्बणं घोराङ्कमादाय शिशोर्ददावथ ।।९।।

भीतर आनेके बाद दुष्ट पूतनाने बालकको गोदीमें लेकर, दुर्धर जहरसे भरा हुआ गाढ(कठोर) स्तन उसको(उसके मुखमें) दिया।।९।।

पूतनाने भीतर सब धर्म धारण करनेवाले उस बालरूप भगवान्‌को अपना स्तन दूध पिलानेकेलिये मुखमें दिया. यदि भगवान्‌ने अपने धर्म भीतर न छिपाये होते तो पूतना भगवान्‌के मुखसे स्तन दे न सकती, एक स्तन दिया.

स्तन देनेमें उसका कौनसा अर्थ था? इसका उत्तर देते हैं कि उसके स्तनमें दुर्जर(कठिनाईसे पचनेवाला) वीर्य(तेज)वाला स्तन्य(दूध) था अर्थात् जिसके पीनेसे शरीर अस्वस्थ रहे. 'स्तन्य' शब्द न देकर 'स्तन' शब्द इसलिए दिया कि दूध पिलानेका कार्य छिपा हुआ हो. किसीको मालूम न हो. यह स्तन्य ऐसे वीर्य(विषवत् बल)वाला था, जो केवल(एक मात्र) परिणाममें ही हानि नहीं करता है, किन्तु (उल्बणं) (क्रूर भी है अर्थात् लेनेके समयमें ही हानि करनेवाला है). पूतनाने ऐसा अनर्थका कार्य भगवान्‌के साथ क्यों किया? तो कहते हैं कि वह 'घोरा' थी अर्थात् भयानक थी. पूतनाके मनमें यह विचार आया कि कदाचित् वह दूध न पीवे तो इसलिए उसने लाड़ प्यार करनेकेलिये अपनी गोदीमें ले, बांये हाथसे भगवान्‌की पीठको पकड़कर डुलाती हिलाती थी और दाहिने हाथसे दूध

निकालनेकेलिये स्तनको दबाती हुई भगवान्के मुखमें देने लगी।।९।।

उसकी क्रिया(दूध पिलाने)केलिये जो कुछ करना था वह पूरी होनेके अनन्तर भगवान् दूसरे ढंगसे उसके दूधको पीने लगे इसका वर्णन 'गाढं' इस श्लोकमें करते हैं.

गाढं कराभ्यां भगवान् प्रपीड्य तत् प्राणैः समं रोषसमन्वितोऽपिबत् ।।१०।।

'पूतनाके इस प्रकार स्तन देनेपर' भगवान्, क्रोधपूर्वक दोनों हाथोंसे स्तनको जोरसे दबाते हुए, प्राणोंके साथ स्तन्य पीने लगे।।१०।।

पूतना आग्रह पूर्वक दूध पिलानेका प्रयत्न करने लगी. भगवान्ने सोचा कि इसको मारना आवश्यक है ऐसा न हो कि दूध पिलानेके बाद भाग जाय, इसलिए दोनों हाथोंसे दृढ़ता पूर्वक स्तनको दबाकर(कठोरतासे पकड़कर) दूध पीने लगे. बालक होकर भी, इस प्रकार निडर होकर स्तन पानमें प्रवृत्तिका कारण यह है कि आप भगवान् हैं. ईश्वर होनेसे आपको स्त्रीको मारनेका दोष भी लगता नहीं है ''पुमान् स्त्री षंड'' यह वाक्य ईश्वर होनेसे लागू नहीं.

पूतनाका दूध दुर्धर विषवाला और उल्बण(क्रूर) लेते ही हानिकारक एवं अपच था, उसको भी पीकर, आपने अपना वीर्य धर्म प्रकट दिखाया, अलौकिक चरित्र कर यश धर्म दिखाया, जिस प्रकार पूतनाने दूध पिलाकर भगवान्को मारना चाहा, उसी प्रकार आपने भी, दूध पीते ही पूतनाके प्राण ले लिये. यदि दूसरे प्रकारसे मारते तो शोभा नहीं होती. इस चरित्रसे, आपने श्रीधर्म प्रकट कर दिखाया. उसमें छिपे हुए दोषोंके जाननेसे, उसको मारना ही आवश्यक जाना, इससे अपना ज्ञानधर्म प्रकट किया. दैन्य पक्ष भी पूतनाके नाश करनेमें बाधक हुआ, इससे वैराग्य धर्म दिखलाया. इस प्रकार छः गुणोंको प्रकट करनेमें छः हेतु दिखलाते हुए पूतनाको मारा और धर्मी स्वरूप उसको मोक्ष दान दिया. जो भगवान्को यह लीला(पाप-प्रायश्चित्त-मोक्षदान) न करनी होती तो स्तन्यपान न करते. इसलिए ही उसके पापोंका सर्व प्रायश्चित्त करानेकेलिये प्राणोंके साथ दूध पिया.

पूतनाने अब तक जो कुछ किया(बालहरणादि) वह सर्व अपने प्राणोंकी रक्षाकेलिये किया, इसलिए उसके प्राण लेनेसे, पूतनाका सब कुछ भगवान्के अर्पण हो गया(आत्म निवेदन करा दिया). पूतनामें हरण किये हुए बालकोंके प्राण भी थे, इससे उनकी भी मुक्ति हो गई.

श्लोकमें 'प्राणैः' बहुवचन दिया है, उसका आशय है कि भगवान्ने न केवल प्राणोंको पिया, किन्तु इन्द्रियोंको भी, इस कारणसे उसका जो कुछ था, सब भगवान्ने चूस लिया(स्वीकार किया).

भगवान्ने निन्दित पदार्थोंको स्वीकार कैसे किया? जब कि आप 'अपहतपाप्मा' अर्थात् पाप रहित हैं. इसलिए ही श्लोकमें 'रोषसमन्वितः' कहा है. भगवान् इस लीलाके समय (क्रोध)वाले थे. जिससे उसके दुष्ट अंशका भगवान्से सम्बन्ध न हुआ अथवा वह दुष्ट भाग क्रोध स्पर्शसे जलकर भस्म हो गया. भगवान्का तो सर्व सम्बन्ध है कोई वस्तु भगवान्के सम्बन्धसे रहित नहीं है. अतः भगवान्को क्रोध समन्वित होनेका कोई दोष नहीं है. भगवान्में पहले रोष सम्बन्ध नहीं था, इसलिए श्लोकमें ''प्राणैः समं रोषसमन्वितः'' अर्थात् प्राण पानके समय रोषवाले हुए.

श्रुतिमें भगवान्को असंग कहा गया है तो भी भगवान् सर्वात्मक(सबकी आत्मा) होनेसे रोषयुक्त होनेमें कोई हानि नहीं है. पूतनाके मारनेकेलिये भी रोषकी अपेक्षा न थी, किन्तु लीलाके कारण रोषका दिखावा किया. क्योंकि आपने वीर्य गुण प्रकट किया था. अतः स्तन द्वारा प्राणपान करनेमें कोई विरोध नहीं.

'कर' शब्द श्लोकमें द्विवचन दिया है भगवान्ने पूतनाके स्तनको दोनों हाथोंसे पकड़ा(दबाया) इसका आशय बताते हैं कि, भगवान्ने पूतनाकी साधनरूप एवं फलरूप दोनों क्रियाओंका नाश किया।।१०।।

प्रकाशः (१०।६।१०). पूतना अविद्याका आधिदैविक रूप श्रवणादिसे नाश होनेवाला न होनेके कारण भगवान् ही उसको नाश करनेमें समर्थ थे इसलिए भगवान्ने उसको मारा, उसको अपनेमें समा लिया(मोक्ष) दिया.

सा मुञ्च मुञ्चालम् इति प्रभाषिणी निष्पीड्यमानाखिलजीवमर्मणि ।।
विवृत्य नेत्रे चरणौ भुजौ मुहुः प्रस्विन्नगात्रा क्षिपती रुरोद ह ।।११।।

प्रत्येक मर्म स्थानोंमें पीडित हुई वह(पूतना) 'छोडदे छोडदे अब बस' ऐसा कहती हुई आंखे फाडकर, बार बार हाथ पैर पछाडती पसीनेसे भरे शरीरवाली जोरसे रोने लगी ।।११।।

भगवान्ने पूतनाके दूध पानके साथ, पूतनामें स्थित मायारूप भगवान्, एवं उसके साथ आधिदैविक पूतनाको भी अपनेमें प्रविष्ट कर लिया.

इस श्लोकमें आध्यात्मिक पूतनाके कृत्य(कार्य)का वर्णन करते हैं. वह पहले ही आग्रहपूर्वक दूध पिलाती थी, परन्तु जब भगवान्से पीड़ित हुई, तब भी भगवान्के स्वरूपको पहचान न सकी. इससे तीन वचन(मुञ्च मुञ्च अलम्) छोड़ दे, छोड़ दे, बस बोलने लगी. जैसे कोई लौकिक बालक माताको चूसता (माताका दूध पीता) है तब स्तनमें पीड़ा होनेपर माता बच्चेको कहती है 'छोड़ दे' वह छोड़ता नहीं तो विशेष पीड़ा होनेपर फिर भी कहती है कि 'छोड़ दे' पर वह छोड़ता नहीं तब माता बच्चेका पेट भरा समझ कहती है कि अरे 'अब बस कर'. बालक अपनी समझसे मेरा पेट भर गया है यह नहीं समझ सकता, इसलिए दूसरे(माता)का कहना मानता है. इसलिए कहा कि पूतनाके भीतर रहा हुआ दुष्ट भाव नाश हुआ. इसी कारणसे लौकिक प्रकारकी भाषासे 'छोड़दे-छोड़दे, बस' कहा एवं इसलिए भी कहा कि माताओंको भी ज्ञात हो जाय. प्राण जानेपर भी उसका सम्बन्ध भगवान्से था, इससे उसकी चेष्टा(क्रिया) प्राणवाली जैसी ही थी जैसे कि श्लोकमें कहा है कि 'प्रभाषिणी' बोलनेवाली थी. 'भगवान् कराभ्यां प्रपीड्य' भगवान्के दोनों हाथोंसे दबानेसे कुछ भी पीड़ा न होगी, क्योंकि यह भगवान् बालक हैं ऐसा कोई समझ न बैठे. इसलिए कहा है कि 'अखिलजीव-मर्मणि निष्पीड्यमाना' भगवान्से प्रत्येक मर्मस्थानोंमें पीड़ित थी, क्योंकि पूतनाने जिन बालकोंके प्राण हरण किये थे, वे प्राण, उसके मर्ममें रहे हुए थे. भगवान्को उन सब बालकोंके प्राण अपनेमें प्रविष्ट करने थे. इसलिए सर्व मर्म स्थानोंका मर्दन होनेसे, सर्व मर्म स्थानोंमें पीड़ा हुई. यहां 'अखिल' शब्द, 'जीव' शब्दका विशेषण समझना चाहिए.

बालकोंसे द्रोह करनेकी आज्ञा पूतनाको कंसने दी थी परन्तु इसमें मूल कारण भगवान् ही हैं, इसलिए कि बालकोंको अपनेमें प्रवेश कराना आवश्यक था. बालकोंको अपनेमें स्थित कराके उनको बाललीला रस(मिट्टी खाने)का अनुभव करानेके वास्ते ही आपने अपने मुख द्वारा उनको मिट्टी खिलाई. इसलिए अपनी माताको कहा कि 'मैया मैंने मिट्टी नांहि खाई' यह आपका कहना तभी तो सत्य है. इस प्रकार पूतनासे मारे हुए भक्त बालक, पूतनाके हृदयमें थे, इसलिए ही पूतनाकी छाती भगवान्के क्रीड़ास्थलके योग्य थी. ये ही बालक, व्रतचर्य्याके प्रसंगमें 'वयस्यैः' पदसे वर्णन करेंगे. तब अत्यन्त पीड़ित होनेसे कुछ बोल न सकी. आंखें फाड़कर, हाथ पैर उलटे-सुलटे, जहां-तहां फैलाकर, पसीनेसे भीगे

हुए शरीरवाली रोने लगी. जोरसे रोनेका शब्द करने लगी. श्लोकमें दिये हुए 'ह' अक्षरसे भगवान्का माहात्म्य बताया है, जैसे कि छोटे बालकके खेल(स्पर्श)से उसके भीतर कठोर पीड़ा होना आश्चर्यजनक है, किन्तु यह भगवान्का पराक्रम एवं माहात्म्य है. आकर्षण शक्तिवाले, वायुमें प्रवेशकर ही भगवान्ने यह लीला की, इससे वीर्य दिखलाया. नेत्र सात्त्विक थे, हाथ पैर राजस थे और शरीर तामस था यों तीन गुणोंसे दी हुई पीड़ाका निरूपण किया है. रजोगुण दोनों(सात्त्विक-तामस) गुणोंके बीचमें आनेके कारण दोनोंसे मिला हुआ है इससे उसका दो स्थानोंसे(हाथ-पैर)से सम्बन्ध बताया है. निकलनेके समय प्राणोंकी कठोर आवाज(रोदन) हुआ उससे आकृष्ट(खींचे हुए) ही प्राण भगवान्ने खींच लिये यह जताया।।११।।

लेख: (१०।६।११). भगवान्के श्रीअंगके संग(स्पर्श)से पूतनाका समग्र शरीर(देह इन्द्रियादि) आधिदैविक(अलौकिक) हो गया इसलिए उसने(आधिदैविक पूतनाने) भगवान्में प्रवेश पाया. श्रीकृष्णावतार होगा तब 'सम्पद्याविर्भाव स्वेन शब्दात्'' इस सूत्रके अनुसार 'पूतना' भी जन्मेगी, क्योंकि लीलाके उपयोगी अलौकिक देहेन्द्रियादि पदार्थ, नित्य भगवान्में निवास करते हैं. इसलिए भूतलपर लीलाधारी लीलार्थ प्रकट होते हैं, और लीला कार्य सम्पूर्ण होनेपर भगवान्में ही प्रवेश करते हैं. जिनकी मुक्ति नहीं, वे प्रकृतिमें स्थित होते हैं. आध्यात्मिक पूतनाका स्वरूप: लौकिक इन्द्रियां और प्राणोंको आध्यात्मिक पूतना कहा जाता है. आधिभौतिक पूतनाका स्वरूप: लौकिक देहमात्रको आधिभौतिक पूतना कहा जाता है.

प्रकाश: व्याख्यामें 'अखिल' शब्द जीव शब्दका विशेषण क्यों कहा है. उसको स्पष्ट कर समझाते हैं कि भगवान्के जन्मके दूसरे दिन की हुई, कंसकी मन्त्रणानुसार 'पूतना' भी गांव आदिमें बालकोंको मारती छठे दिन गोकुलमें आई. भगवान्को दूध पिलानेसे पहले, जितने बालक मारे थे, उनके जीव सहित प्राण, पूतनाके मर्म स्थानोंमें स्थित थे. उन बालकोंके 'जीव' लिंग देह सहित यम गतिको प्राप्त क्यों न हुए? एवं साधनाध्याय व प्रथम पादमें जैसे उत्पत्ति क्रम है, तैसे इनकी उत्पत्ति हो जाती. इस शंकाका निवारण(समाधान) करते हैं कि ये जीव भगवल्लीलोपयोगी थे, इसलिए भगवान्की इनके साथ ही लीलाएं करनेकी मूल इच्छा थी, इस मूल भगवदिच्छाके कारण ही ये पूतनाके मर्म स्थानोंमें प्रविष्ट हुए. इसलिए यहां 'अखिल' शब्द 'जीव'का विशेषण है. आधिदैविक पूतनाने उनको अपने मर्म स्थानोंमें रख लिया. मर्म स्थान स्थित उन बालकोंको अपनेमें स्थित करने केलिये ही भगवान्ने यह लीला की अर्थात् खेल किया.

योजना: आधिदैविकी पूतनाने जो बालक अपने साथ लायी थी जिनको साथ ले भगवान् क्रीडा करेंगे वे बालक कौन थे? लीलोपयोगी कैसे हुए? इसका स्पष्टीकरण योजनाकार करते हैं कि रामावतारमें दण्डकारण्यवासी ऋषियोंको, श्रीरामचन्द्रके रूप लावण्य देख, स्त्रीभाव उत्पन्न हुआ. इन ऋषियोंके, पुम्भावका तो बालक रूपसे, व्रजमें जन्म हुआ और स्त्रीभावका कन्यारूपसे गौड़ देशमें जन्म हुआ. उन बालकोंको मार उनके प्राण पूतनाने अपने मर्म स्थानमें छिपाकर रक्खे थे, उनको भगवान्ने पूतनाके दूध पान करते हुए अपनेमें स्थित किया. जैसे चतुर वैद्य विषैली वस्तुओंको शोधकर, उनका विष निकाल, उन्हें निर्विष कर, शुद्ध करता है वैसे ही उन ऋषियोंका लीलामें प्रतिबन्धक, पुम्भावरूप दोष, आधिदैविकी पूतनाके संगसे नष्ट हो गया. जो रमण योग्य स्वतन्त्रता प्रागल्भ्य(चतुराई) आदि गुण, वे तो उनमें वैसे ही रक्खे गए. अनन्तर भगवान्ने अपने चरण स्पृष्ट मिट्टी एवं प्रसादी दूध मक्खन आदि खिलाकर उनको लीलाधिकारी बना दिया. चीरहरणलीलाके समयमें, वस्त्र दानके साथ, उन पुम्भावरूप भक्त बालकोंको कुमारिकाओंमें प्रवेश कराएंगे (इससे दण्डकारण्य वासी ऋषियोंके दोनों भाव स्त्रीभाव पुम्भाव मिलकर एकत्र स्थित हुए.). इससे प्रागल्भ्य स्वातन्त्रादि गुणरूप, पुम्भाववाली कुमारिकाएं, रासोत्सवमें भगवान्के साथ पुम्भावसे भी रमण करेंगी.

पुम्भाव मनका धर्म है, वह बालक एवं शरीरवाला कैसे हुआ? इस शंकाका निवारण करते हैं कि क्रोध भी मनोधर्म है परन्तु उसका भी शरीरवाला होना तृतीय स्कन्धमें ''क्रोधं...कुमारो नीललोहितः'' इस श्लोकमें लिखा है ऐसे अन्य भी. इसलिए यह शंका निर्मूल है. इस प्रकार यह भी समझना कि जैसे क्रोधादि आधिदैविक थे वैसे ही यहां पुम्भाव भी आधिदैविक था.

इस श्लोकका वाक्यार्थ आध्यात्मिक पूतनाका 'मरण' है. उसको 'निर्गमन... महान् घोषः' (प्राणोंके निकलनेके कालमें भयंकर आवाज हुई)से कहा है. 'घोर' शब्दका कारण बताते हैं कि पूतनाके अपने प्राण न निकले, इसलिए अपनी तरफ उनको खेंचे और भगवान्ने अपनी तरफ उसे खेंचा. इस प्रकार खेंचातानीके कारण पूतनासे प्राणोंके निकलनेकी भयानक आवाज हुई.

लेख: 'आकर्षण शक्ति' भगवान्का आकर्षण ही, वायुकी स्वरूप भूत आत्मा(शक्ति) होनेसे, भगवान्ने उस वायुमें प्रविष्ट हो, पूतनाके प्राण खींचे. खींचना क्रिया वायु द्वारा होती है.

योजना: पूतना क्यों रोई? इसका स्पष्टीकरण योजनामें लालूभट्टजी करते हैं कि भगवान् एवं पूतनाने अपनी अपनी तरफ प्राणोंके खेचनेका जो कार्य किया उसमें पूतना हार गई इसलिए पूतना रोने लगी.

१.प्राण जानेपर भी, बृहदारण्यकादि उपनिषदोंमें कहा है कि, वाणी आदि इन्द्रियोंमें बोलने आदिका सामर्थ्य प्राणोंसे ही प्राप्त होता है, अब प्राण जानेपर भी, पूतना बोलती थी, यह क्यों? इस शंकाका निवारण करते हैं कि आधिदैविक प्राण, भगवान्में स्थित थे, उस(भगवान्)का संग(स्पर्श) पूतनासे था, इस संगके कारण ही पूतना बोलना आदि क्रिया कर सकती थी.

सींगके समान ग्रहण करानेवाली ध्वनिसे, भगवान्का माहात्म्य दिखाते हुए, भगवान् द्वारा खींचे हुए पूतनाके प्राणोंसे उठे हुए शब्दोंका माहात्म्य, इस 'तस्याः स्वने' श्लोकसे वर्णन करते हैं.

तस्याः स्वनेनातिगभीररंहसा सादिर्महीद्यौश्च चचाल सग्रहा ।।
रसा दिशश्च प्रतिभेदिरे जनाः पेतुः क्षितौ वज्रनिपातशंकया ।।१२।।

अति गंभीर वेगवाले उस पूतनाके शब्दसे पर्वतों सहित पृथ्वी और ग्रहों सहित आकाश चलायमान हुआ. रसातल(पाताल) एवं दिशाओंमें परछन्द उठने लगे, वज्रपात होनेकी शंकासे मनुष्य पृथ्वीपर गिर पडे ।।१२।।

निराकार शब्द, जब साकार जैसा कार्य करे, तब वह अलौकिक होता है चरण आदिके चोटसे ही कम्पन होता है, वह कम्पन, यहां, शब्दसे हुआ बतानेकेलिये, श्लोकमें पर्वतों सहित पृथ्वी और ग्रहों सहित आकाशमें, कम्पन होनेका वर्णन किया है. कोई कहते हैं कि पर्वत आदिकोंके अधिष्ठाता देवोंके डर जानेके कारण इन्होंमें कम्पन हुआ है. ब्रह्माण्ड विग्रह पुरुषको भी, इस शब्दसे कम्पन हुआ, इससे यह बताया कि पुरुषोत्तमका वीर्य(पराक्रम) अवतारोंके वीर्यसे विशेष है. एक ही समयमें सब ठिकाने, कम्पका कारण बतानेकेलिये ही कहा कि पूतनाका शब्द अति गंभीर वेगवाला था. ऐसा होनेका कारण, उसमें इतनी शक्ति थी, जो अति गंभीर होनेसे, नीचेके भाग(पर्वत-पृथ्वी)के विदारण(चीरने, पृथक् टुकड़े करने)में समर्थ था एवं वेगवाले होनेसे ऊपरके भाग(आकाश-तारागण)को डुबानेमें समर्थ था. श्लोकमें दिये हुए, 'च' शब्दसे इसके ऊपरके लोक समझने, अर्थात् उनमें भी कम्पादि हुआ. पर्वत बड़े और स्थिर होनेसे, उनमें कम्प कैसे हुआ होगा, इसलिए श्लोकमें पृथ्वी सहित पहाड़ोंमें कम्प हुआ लिखा है. इसी प्रकार ग्रहोंका चक्र ध्रुवमें स्थित होनेसे, उनमें भी कम्प कैसे हुआ होगा. इसलिए कहा कि, ग्रहों सहित आकाश चलायमान हुआ. पर्वतों सहित पृथ्वी, ग्रहों सहित आकाशका चलायमान क्यों हुआ उनका प्रमाण देकर स्पष्टीकरण करते हैं कि

दोनोंने वर प्राप्त किये हैं जैसा कि ''नक्षत्रविहिताहं चित्रविहिताहं''[१] इस श्रुतिमें कहा है, कि आकाशने यह वर प्राप्त किया है, कि मैं सदैव तारागणोंसे सुसम्पन्न (सुशोभित) रहूं एवं पृथ्वीने भी वर लिया है कि मैं सदैव अनेक प्रकारके पदार्थोंसे सुसम्पन्न रहूँ. इस कारण इनका कम्प साथमें ही हुआ लिखा है. पाताल और दिशाओंका सम्बन्ध न होनेसे और दूर होनेसे उनमें कम्प तो हुआ होगा? इसके उत्तरमें कहते हैं कि श्लोकमें पाताल और दिशाओं[२] का 'च' देकर भिन्नता बताकर, यह जताया है कि उनमें भिन्न कम्प हुआ एवं दूर होनेके कारण उनमें कम्प शब्दकी प्रतिध्वनिसे हुआ. सबमें कम्प हुआ कोई शेष बचा नहीं. शेष मनुष्योंकेलिये कहा कि वे पृथ्वीपर गिर पड़े. यहां शंका करते हैं कि दूसरोंमें(पृथ्वी आकाशादिमें) कम्प तो देवता भयसे वा पुरुष भयसे हुआ, किन्तु विवेक और धैर्यवाले मनुष्य पृथ्वीपर क्यों गिरे? इस शंकाके निवारणकेलिये श्लोकमें कहा है कि मनुष्य इसलिए गिरे, कि उनको वज्रके गिरनेका भय हुआ, उस भयसे मनुष्य गिरे. विचारसे भी पात हुआ क्योंकि वे ऊंचे स्थित थे, उन्होंने विचारा कि वज्र गिरेगा तो उसका तेज हम सहन न कर सकेंगे तो हमारी मृत्यु होगी, इससे भी वे गिरे ।।१२।।

१.प्रकाश: यह श्रुति तैत्तिरीय संहितामें दूसरे अध्यायके पञ्चम अध्यायके द्वितीय अनुवाक्में है.

२.निराकार दिशाओंमें तो कम्प नहीं होना चाहिए, तो यह कम्पन दिशाओंके अधिष्ठातृ स्वरूपोंमें हुआ.

इस प्रकार पूतनाकी भारी आवाजसे हुए कार्यसे भगवान्के पराक्रमका माहात्म्य कहा, पूतनाके प्राण पूतनामें फिर आनेकी शंका मिटानेकेलिये, सम्पूर्ण मरणका वर्णन, इस श्लोकमें 'निशाचरी'से करते हैं.

निशाचरीत्थंव्यथितस्तना व्यसुर्व्यादाय केशांश्चरणौ भुजावपि ।।
प्रसार्य गोष्ठे निजरूपमास्थिता वज्राहतो वृत्र इवापतन्नृप ।।१३।।

इस प्रकार स्तनोंकी व्यथासे पीडित राक्षसी मरनेके समय, अपना असली रूप पाकर, वज्रसे मरे हुए वृत्रासुरके समान, गिर गई. (उस समय) उसका मुंह फट गया, केश बिखर गए, हाथ पैर लंबे फैल गए ।।१३।।

इस तरह, स्तनोंकी व्यथासे व्याकुल वह प्राण रहित हो गिर गई. 'राक्षसी' शब्दसे बताया कि राक्षसोंके प्राण कठिन होनेसे शीघ्र नहीं निकलते हैं परन्तु राक्षसी होते हुए भी उसके प्राण शीघ्र निकलना आश्चर्यजनक है. राक्षस तो

घोर पीड़ा भी सहन कर सकते हैं, किन्तु भगवान् द्वारा स्तन पकड़नेसे, इतनी घोर पीड़ा हुई कि वह राक्षसी होते हुए भी स्तन पीड़ासे व्यथित(दुःखित) हुई, जिससे शरीरके प्रत्येक अंगमें घबराहट हुई, ऐसी अवस्थामें उसने प्राणोंको भी छोड़ दिया. घबराहटके कारण, प्राण छोडनेसे मुख खुल गया, बाल बिखर गये और हाथ पैर फैल गये. मायारूप भगवान् न होनेसे, बनावटी रूप न रहा; भगवान्के सम्बन्धसे कृतार्थ हो उसने असली रूप पाया. वीरकी तरह अभूमि(बिना वीरोंवाली पृथ्वी)पर अर्थात् गोष्ठमें गिर गई. इसका स्वरूप असीमित स्थूल सबको उपद्रव हानि करनेवाला है, यहां वृत्रासुरका दृष्टान्त देकर यह समझाया है कि वृत्र अपनी इच्छासे गिरकर, फिर उठा था इसलिए वज्रसे मारे हुए वृत्रका दृष्टान्त देकर यह बताया कि यह भी वैसे ही गिरी जैसे वज्रसे मारा हुआ वृत्र गिरकर फिर न उठ सका, तैसे इसमें फिर प्राण न आए. 'नृप' शब्दका भावार्थ है कि आप महान् हो और श्रद्धालु हो इसलिए इस चरित्रको सद्रूपसे समझोगे.

प्राणोंके उत्क्रमण(निकलने)से मुख खुलना आदि क्रिया न हुई थी, किन्तु वायु द्वारा नाड़ियोंके आकर्षण(खींचने)से यह सब चेष्टा हुई थी. मुख खुल जानेसे ही देह क्लेश होना बताया. केश, चरण और भुजाओंके स्वरूपके वर्णनसे बताया कि उसको तीनों प्रथम, मध्य और अन्तके कालोंमें क्लेश हुआ. प्रसारण(फैलाना) शब्दसे सतोगुणसे प्राण परित्याग बताकर, मुक्तिका सूचन किया अर्थात् पूतनाकी मुक्ति हुई. निजरूप अर्थात् राक्षसरूप(छोड़ा) जैसे वृत्रके मरनेपर तीनों लोक सुखी हुए तैसे ही पूतनाके मरनेसे भी सब प्रसन्न हुए. इस प्रकार आध्यात्मिक पूतनाके मरणका(भगवान्में प्रविष्ट होनेका) वर्णन किया. आधिभौतिक पूतना पृथ्वीपर गिरी।।१३।।

प्रकाश: (१०।६।१३). १.भगवान्में आधिदैविक पूतनाके प्रवेशका पहले वर्णन हो चुका है, यहां वर्णन है उस आध्यात्मिक पूतनाके लिंग शरीर सहित प्राण एवं इन्द्रियादिकका जो भगवान्में अब प्रविष्ट हुए और शेष, पूतनाका आधिभौतिक शरीर पृथ्वीपर गिरा.

टिप्पणी: भगवान्के पधारनेपर तो गोकुलमें सर्व प्रकारसे उत्कृष्टताका वर्णन करना चाहिये था न कि उपद्रवोंका. इसका समाधान करते हैं कि उत्कर्ष दो प्रकारका होता है: एक लौकिक दूसरा अलौकिक. लौकिक उत्कर्ष पिछले(पांचवे) अध्यायमें नन्दमहोत्सवसे बताया है कि ऐसा उत्सवानंद दूसरे स्थानमें नहीं हुआ एवं वहां उत्पात होनेके कारण ही गोकुलकी साधारण स्थिति कही गई है. इससे लौकिक उत्कर्ष कहा

गया. अब अविद्या पूतनासे गोकुलका अलौकिक उत्कर्ष बताते हैं.

यहां यह भाव है. वह(अविद्या) स्वरूपाज्ञान, देहाध्यास, इन्द्रियाध्यास, प्राणाध्यास, अन्तःकरणाध्यास रूप होनेसे पञ्चपर्वा(पांच अंगवाली) कही जाती है. उसके एक एक अंगके प्रभावका वर्णन करते हैं.

१.स्वरूप विस्मृति: पूतनाके प्रभा(तेज)से माताएं देखती ही रह गईं, क्योंकि माताओंको पूतना(अविद्या)के तेजसे अपने स्वरूपकी विस्मृति हो गई अर्थात् उन्होंने अपनेको माताएं नहीं समझा. इससे पूतनाको रोका नहीं. अब पूतना(अविद्या)के नाश होनेपर, जब माताओंको अपने स्वरूपका ज्ञान हुआ तब उन्हें ज्ञात हुआ कि हमारे चुप रहनेपर इस(पूतना राक्षसी)ने ऐसे ऐसे कार्य किये इसलिए अब हम इस (पुत्र)की रक्षामें सावधान रहेंगी, जिससे दूसरी कोई भी ऐसी स्त्री यहां आ न सके, माताओंके ऐसे दृढ़ विचार हुए. मातृत्व धर्म जैसा होता है वैसा धर्म हृदयमें प्रगट हुआ. इससे यह बताया कि इस प्रकार भगवान्ने अविद्यारूप पूतनाको मारकर माताओंको निरोधरूप 'स्व स्वरूप स्मृति' कराई.

२.देहाध्यास: भगवान्की रक्षाकेलिए स्थापित गोप भी, पूतनाके श्रीरूपपर मोहित होकर, देहाध्यासके कारण अपना स्वरूप भूल गये, जिससे उन्होंने भी पूतनाको आनेसे रोका नहीं. पूतना(अविद्या)के नाश होनेपर, वे भी अपनी भूल समझने लगे और भगवान्की रक्षामें तत्पर हुए. इस प्रकार गोपोंकी भी स्वरूप स्मृतिरूप निरोध सिद्ध हुआ. गोपोंमें अविद्या(पूतना)के संयोगके कारण देहाध्यास(हम पुरुष हैं) प्रबल हुआ था, जिससे वे पूतनाके स्त्रीरूपपर मोहित हुए और उसको रोकनेमें असमर्थ हुए.

३.इन्द्रियाध्यास: पूतनाकी सुन्दरता(शोभा) तथा बेनीमें गूंथे हुए मल्लिकादि पुष्पोंसे गोपोंका मन मोहित हो गया यह इन्द्रियाध्यास गोपोंको हुआ जिससे भी पूतनाको रोकनेकी क्रिया न कर सके.

४.प्राणाध्यास: गोपोंको जब वज्रके गिरनेकी आशंका हुई, तब उनका कर्त्तव्य था कि श्रीकृष्ण कहां हैं? किस स्थितिमें हैं? यह विचारकर कृष्ण को ढूंढना चाहिए था. ऐसा न कर अपने प्राणोंको बचानेकेलिये गिर पड़े, गोपोंने यह कार्य प्राणाध्यासके कारण किया अर्थात् पूतनाके दृष्टि द्वारा अविद्या उनके भीतर घुसकर, उनमें 'प्राणाध्यास' उत्पन्न किया, जिससे वे कृष्णकी चिन्ता न कर, अपने प्राणोंकी चिन्ता करने लगे.

५.अन्त:करणाध्यास: गोपिकाओंके अन्तःकरणमें भगवत्सम्बन्ध होते हुए भी पूतनाके रूपको लक्ष्मीरूप समझा, जो न रोका, उसका कारण अन्तःकरणाध्यास था.

पूतनाके जीते हुए उसके प्रभावसे, स्वरूप विस्मृति एवं देहाध्यासादि कारणोंसे

सब शान्त रहे, अर्थात् रोका नहीं और अविद्याके कारण, इसके परिणामका विचार ही न हुआ, पूतनाके मरनेके पश्चात् ज्ञान हुआ कि हमारे शान्त रहनेसे हमारा ही भगवत्सम्बन्धी अनिष्ट होता. जैसे तैसे, अपने प्यारे प्रीतमको पाकर पछताते हुए कहने लगे कि आगेकेलिये हमको भगवद् रक्षामें सावधानीसे रहना चाहिए. इसलिए ठीक ही कहा है ''अविद्या पूतना नष्टा'' अविद्यारूप पूतनाका नाश हुआ, अब 'निरोध' सरल रीतिसे होगा.

साधारणस्थितिर्लोके पूर्वाध्याये निवारिता ।।
अविद्या पूतना नष्टा गन्धमात्रावशेषिता ।।का.१।।

कारिकार्थ : पूर्व(अगले पांचवे) अध्यायमें यह बताया है कि लोकमें गोकुलकी स्थिति साधारण नहीं थी, कारण कि वहां नन्दमहोत्सवसे हर्ष था और उत्पातसे खेद था, अविद्यारूप पूतनाका नाश हुआ किन्तु केवल उसकी गन्ध रही।।१।।

व्रजवासियों, साधारण गोपियों एवं माताओंके भाव बताए. इससे ही आगे 'सन्तत्रसुः' श्लोक १७-१८ आदिमें गोपियां डर गईं, तो भी श्रीकृष्णको शीघ्र ले लिया और उसकी सर्व प्रकारसे रक्षा की. श्रीकृष्णमें आसक्ति और प्रपंचका भूलना ही निरोध कहा जाता है.

अतः परं निरोधस्तु गोकुले सुगमो भवेत् ।।
प्रपञ्चविस्मृतिः सा हि कृष्णासक्तिसमन्विता ।।का.२।।

कारिकार्थ: अब(पूतनाके मरनेके अनन्तर) गोकुलमें व्रजवासी (भक्तों) का निरोध सरल रीतिसे होगा. क्योंकि व्रजवासियोंको भगवान् कृष्णमें आसक्ति एवं प्रपञ्च विस्मृति(निरोधरूप) होने लगी है ।।२।।

इस प्रकार पूतनाके वधका वर्णनकर, अब यदि किसीके हृदयमें यह शंका उत्पन्न होवे कि भगवान्ने व्यर्थमें एक स्त्रीको मार दिया, तो उस शंकाको मिटानेकेलिये नीचेके 'पतमानोपि' श्लोकसे कहते हैं कि उस मरी हुई(पूतना)की देह भी कैसी महत्ववाली है.

पतमानोपि तद्देहस्त्रिगव्यूत्यन्तरद्रुमान् ।।
चूर्णयामास राजेन्द्र महदासीत् तदद्भुतम् ।।१४।।

हे राजेन्द्र ! पूतनाके शरीरने गिरते गिरते छः कोसके घेरेमें आए हुए वृक्षोंको चूर्ण कर दिया, यह बडा आश्चर्यकारक कार्य हुआ ।।१४।।

श्लोकमें 'अपि' शब्द देकर इस शंकाका निवारण करते हैं कि

वह(पूतना) साधारण स्त्री न थी, किन्तु महाशक्तिशाली एवं भयंकर तथा बालहत्यारिणी थी. वह इतनी तो शक्तिवाली थी जो प्रथम कृत्रिम[१] रूप बनाया और मरते समय इतना भारी वजनवाला रूप कर दिया, जिससे छः कोसके पेड़ चूर्ण हो गये. जिसने देखे वे अचंभेमें पड़ गये तथा डरे और कहने लगे कि यह जीती तो अन्य बालकोंको दुःख देती. इसलिए इसका नाश व्यर्थमें नहीं किया गया है वरन् अन्य बालकोंकी रक्षार्थ किया है.

छः कोसके घेरेके वृक्षोंके चूर्ण हो जानेसे, उसके देहकी स्थूलता लम्बाई और बोझका परिज्ञान हो जाता है. इस महान् अद्‌भुत लीलाकार्यसे, भगवान्‌के वीर्य(पराक्रम) गुणका गौरव स्पष्ट समझमें आ जाता है. 'चूर्णयामास' इस आत्मनेपदकी क्रिया[२] के अलौकिक प्रयोगसे यों समझमें आता है कि इस देहके जलानेमें ही ये लकड़ियां काम आएंगी. यह सब भगवान्‌की इच्छासे हुआ. गोकुलवासियोंने छः कोससे विशेष देश देखा ही नहीं है उनमें 'गव्यूति' शब्द ही प्रसिद्ध है इसलिए इतना ही कहा गया है. राजाको शुकदेवजीने इस श्लोकमें 'राजेन्द्र' यह सम्बोधन, विश्वासकेलिये दिया है कि इन्द्रने वृत्रका वध किया आप भी राजाओंमें इन्द्र हो इससे आप भी विश्वास रक्खो।।१४।।

१.प्रकाश: पूतना अपनी शक्तिसे जब कृत्रिम(बनावटी) रूप बना सकती थी इसलिए मरनेके समय भी घटोत्कचके समान बड़ा रूप बना सकी. जैसे घटोत्कचने मरते समय आकाशमें जाकर एक अक्षौहिणी सेनाको नाश करनेकी सामर्थ्यवाला महत्‌रूप बनाया था, वैसे ही पूतनाने मरते समय महद्‌रूप बना लिया.

२.प्रकाश: 'अलौकिक आत्मनेपद' कहनेका तात्पर्य यह है कि यों तो आत्मनेपद तब दिया जाता है जब क्रियाका(जो कार्य किया जाय उसका) फल करनेवालेको मिले, लेकिन यहां क्रियाका फल करनेवालेको और दूसरोंको भी मिला है, जैसे कि गिरनेकी क्रिया हुई उसका फल वृक्षोंको मिला वे चूर चूर हो गये और पूतनाको भी मिला कि उन चूर्ण हुई लकड़ियोंकी आगसे वह जलाई गई. इसलिए आचार्यचरणने कहा है कि यह आत्मनेपद अलौकिक है.

ईषामात्रोग्रदंष्ट्रास्यं गिरिकन्दरनासिकम् ।।
गण्डशैलस्तनं रौद्रं प्रकीर्णारुणमूर्धजम् ।।१५।।
अन्धकूपगभीराक्षं पुलिनारोहभीषणम् ।।
बद्धसेतुभुजोर्वङ्घ्रि शून्यतोयह्रदोदरम् ।।१६।।

सन्तत्रसुः स्म संवीक्ष्य गोपा गोप्यः कलेवरम्।।
पूर्वं तु तन्निस्वनितभिन्नहृत्कर्णमस्तकाः ।।१७।।

इस पूतनाके मुंहमें हलके समान लम्बी और भयानक दाढें, पर्वतकी गुफाके समान नाक, पर्वतसे गिरी बडी बडी शिलाओं जैसे स्तन, बिखरे हुए लाल केश थे. अन्धकूप जैसे गहरे नेत्र, नदीके करारोंके समान भयंकर जंघाएं, (विस्तृत) पुलके समान बाहु, घुटने और पांव, जल रहित सूखे तलाब जैसा पेट था. ऐसे भयंकर पूतनाके शरीरको देखकर गोप और गोपियां जिनके हृदय, कान और मस्तक प्रथम ही उसके शब्दसे विदीर्ण हो गए थे वे अति भयभीत हुए अर्थात् डरे।।१५-१७।।

१५-१६ श्लोकोंसे पूतनाके रूपका वर्णन करते हैं. उसके मुंहमें चार हाथ लम्बी कृषकोंके हलके दण्डेके समान भयानक दाढ़ें थीं, पर्वतकी गुफाके समान नाक थी, पर्वतसे गिरे बड़े पत्थरोंके समान स्तन थे, बिखरे हुए लाल केश थे, अन्ध कूप जैसे नेत्र थे, नदीके रेतीले तटके समान जघन भाग(गुह्य) कठिनताके कारण भयंकर था, पुलके बांध, जैसे बाहु, जांघ और पांव थे, सूखे (जलरहित) तालाब सदृश पेट था. इस प्रकार पूतनाके शरीर[१]के वर्णनमें नव विशेषणोंसे सब प्राकृत[२] गुणोंका समावेश बताया. नव विशेषणका भाव बताते हुए कहते हैं कि अविद्या नव प्रकारसे डराती है।।१५-१६।।

इस कारणसे यह पूतना भी नव अवयवोंसे डरानेवाली हुई. इसका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं. श्लोकमें 'स्म' अक्षरका भाव प्रसिद्ध है कि वे (गोप गोपियां) भयको प्राप्त हुए जब कि भगवान् सान्निध्य(पास)में थे तो वे डरे क्यों? इसका उत्तर देते हैं कि 'संवीक्ष्य' उस पूतनाको अच्छी तरहसे देखनेसे डरे. पहले जब तक पूतनाके वास्तविक स्वरूपका ज्ञान नहीं था तब तक तो निडर थे, परन्तु उसके इस विचित्र भयानक रूपको देखनेसे डर गये. वास्तविकताका ज्ञान होनेपर पूतनाके सम्यक् दर्शनका निरूपण किया. इतने समय तक कलेवर क्यों न देखा? इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि 'पूर्वं' पहले तो इसके रोनेके शब्दसे उन गोप गोपियोंके हृदय, कान और मस्तक फट गये थे, कुछ समय तक तो वे निकम्मे जैसे हो गये थे इसलिए कलेवरकी तरफ उनका ध्यान न गया. विशेष तामसताके कारण तीन प्रकार[३]के अवयवोंका सर्वत्र निरूपण किया है।।१७।।

१. इस प्रकारका शरीर भगवान्की क्रीड़ा स्थली हुई अर्थात् भगवान् उसकी छातीपर

खेलते हुए देखे गये ''तस्यां उरसि क्रीडन्तं'' (१०।६।१८)में लिखा है. टिप्पणी.

२. सत्त्व,रज, तम, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य इन सब नव दोषोंका समावेश पूतनामें था क्योंकि पूतना अविद्या थी. प्रकाश.

३. पूतनाका रोदन अति तामस होनेके कारण सात्त्विक अंगोंको दुःख दिया. इसलिए तीन प्रकारके सात्त्विक अवयव–हृदय, कान और मस्तक कहे गये हैं. प्रकाश.

बालं च तस्या उरसि क्रीडन्तमकुतोभयम् ।।
गोप्यस्तूर्णं समभ्येत्य जगृहुर्जातसम्भ्रमाः ।।१८।।

घबराई हुई गोपियां उसकी(पूतनाकी) छातीपर निर्भय होकर खेलते हुए श्रीबालकृष्णको शीघ्रतासे निकट जाकर ले गईं ।।१८।।

इस प्रकार उस पूतनाका कार्य सहित रूपका निरूपणकर, अब वर्णन किया जाता है कि गोप गोपियोंने भगवान्‌को अपनेसे भी निर्भय देखा. यह बतानेकेलिये पूतनाके हृदयपर स्थित भगवान्‌के स्वरूपका वर्णन करते हुए कहते हैं कि 'बालं' बालरूपसे ही पूतनाका वध किया, अपना रूप बड़ा न किया. इस कारणसे कृष्णावतारके चरित्र अलौकिक हैं क्योंकि कृष्णके कार्य, आयु एवं साधनोंसे विरुद्ध हैं; अर्थात् पूतनाको मारनेकेलिये सुदृढ़ बड़ी देह जो बड़ी आयु(युवावस्था)में होती है और साधन शस्त्रादि होने चाहिये, वे भी नहीं, इन दोनोंके अभावमें बालकरूपसे, बिना साधन पूतना जैसी राक्षसीको मारना, यह चरित्र लौकिक हो नहीं सकता अतः कृष्णचरित्र अलौकिक है. 'च' शब्द बालक और पूतना दोनोंको देखनेकेलिये दिया है अथवा 'च'का भाव यह है कि जैसा भय उनको देखकर गोपियोंको हुआ, वैसा भय बालकको न था. वह तो उसके हृदयपर खेल रहा था. इससे यह बताया कि वह बालक है, बालकका स्वभाव खेलना ही होता है और यह बालक तो सदा सबोंके हृदयमें अन्दर बाहिर खेलता ही है. इसकी सूचना देनेकेलिये ही पूतनाके हृदयपर भी खेलते हुए दर्शन दिये. वह लौकिक दृष्टिसे क्रीडास्थान तो हो नहीं सकता था और न मुग्धभावसे क्रीड़ा थी. यदि मुग्धभावसे होती तो, अपरिचितके दर्शनसे भय होता परन्तु यहां भय तो कुछ नहीं था इसलिए 'अकुतोभयः' अर्थात् सर्वथा निर्भय होकर खेल रहा था. किन्तु गोप गोपी डरे. इनको दो डर हुए एक तो पूतनाको देखकर स्वयंको डर हुआ और दूसरे भगवान्‌को देखकर उनकेलिये डर हुआ, न जाने अब भगवान्(बालक)का क्या होगा? आदि. इस प्रकार डरते देखकर जो गोपियोंने किया उसका वर्णन इस

१८वें श्लोकके उत्तरार्द्धमें 'गोप्यः'से करते हैं. गोपोंसे भी गोपियोंमें स्नेह और साहस अधिक है इसलिए वे ही कृष्णको लानेकेलिये प्रवृत्त हुईं, कुछ भी विचार न कर शीघ्रतासे जाकर ले आईं. भगवान्के ले आनेपर गोपियोंके मनमें विशेष विचारसे कि पूतनाकी ऐसी भयानक भारी देहसे इस छोटे बालकका सम्बन्ध भारी उत्पात है इससे भय उत्पन्न हुआ।।१८।।

यशोदारोहिणीभ्यां ताः समं बालस्य सर्वतः ।।
रक्षां विदधिरे सम्यग् गोपुच्छभ्रामणादिभिः ।।१९।।

उन्होंने(गोपियोंने) यशोदा रोहिणीके साथ मिलकर गौकी पूँछ फिराने आदि द्वारा सब प्रकारकी अच्छी तरह बालककी रक्षा की ।।१९।।

वे(गोपियां) बालकको शीघ्रतासे ले आईं किन्तु स्वतन्त्रतासे अर्थात् अपने आप कुछ कर न सकीं. तब माता यशोदाजी एवं रोहिणीजीको साथमें लिया. यशोदा एवं रोहिणी दोनों स्त्री प्रकृतिवाली थीं, अग्निकुमार गोपियां ऋषिरूपा थीं, गोप मन्त्रोंके अभिमानी देव थे, इसलिए उस अवसर पर भी, जो गोप सम्बन्ध रहित होनेसे केवल भगवान्की उपासिकाएं थीं एवं रक्षाके उपाय तथा मन्त्र द्रष्टा थीं, उनकी प्रसिद्धिके कारण इस श्लोकमें 'ताः'[1] शब्द दिया है.

दूसरे प्रकरणसे अर्थ करते हैं कि यशोदा, रोहिणी और गोपियोंने साथमें मिलकर, बालककी रक्षा की. श्लोकमें दिये हुए 'समं' शब्दका अर्थ 'सह' अर्थात् साथ(मिलकर) है. 'समं' यह अव्यय है.

यह भगवान् हैं ऐसा जानकर भी उसकी रक्षा क्यों की? इसका समाधान करते हैं कि श्लोकमें 'बाल' शब्द देकर यह बतलाया है कि भगवान् होते हुए भी, लोककी तरह लीला करनेकेलिये, बाल भावसे प्रकट हुए हैं, इसलिए जैसे अन्य उपचार(उपाय,मन्त्र प्रयोग आदि) किये जाते हैं वैसे ही यह रक्षा भी कर्त्तव्य है. श्लोकमें दिये हुए 'सर्वतः' शब्दका आशय बताते हैं कि अन्दर, बाहर किसी भी तरह थोड़ासा भी अनिष्ट(अशुभ, बुरा) न हो इस प्रकार मन्त्रों द्वारा रक्षा करने लगीं. श्लोकमें 'सम्यक्'का भावार्थ बताते हैं कि आधिदैविक प्रकारसे उस देवताको वहां स्थापित कर रक्षा की. पहले दैत्य सम्बन्धसे, चारों तरफ विद्यमान(मौजूद) आधिभौतिकादि तीन दोष(अशुभ) गौ पूंछ आदि फिरानेसे निवृत्त(समाप्त) किये. आधिभौतिक अनिष्ट, तीर्थ स्नान आदिसे नष्ट होते हैं. अतः गोपुच्छ फिराये, क्योंकि शास्त्रोंमें कहा है कि ''गवां पुच्छेषु तीर्थानि

सन्ति'' गौओंकी पुच्छोंमें तीर्थ रहते हैं. उनके फिराते हुए मन्त्रसे, उसमें(पुच्छमें) स्थित तीर्थ, बालकके चारों तरफ अर्थात् शरीरमें प्रविष्ट होते हैं जिससे आधिभौतिक अशुभ निवृत्त हो जाते हैं. 'आदि' शब्दसे, मन्त्र और ध्यान आध्यात्मिक और आधिदैविकको भी निवृत्त कर देते हैं ।।१९।।

१.गोप एवं माताओंके विद्यमान होते हुए भी गोपियोंने क्यों रक्षा की? इस शंकाकी निवृत्ति करनेकेलिये 'ताः' शब्द देकर बताया है कि माताएं स्त्री प्रकृति थीं, गोप मन्त्रोंके अभिमानी देव होनेसे, केवल प्रेरक थे, गोपियां ऋषिरूप, मन्त्ररूप और देवरूप भी थीं एवं उनका भगवान्के साथ ही वास्तविक सम्बन्ध था. गोपियां विशेष सहज प्रेमके कारण प्रसिद्ध हैं इसलिए उन्होंने रक्षा की. 'गोपियां और गोप' दोनों देवरूप हैं कृष्णोपनिषद्. 'गोपियां और गौएं' मन्त्ररूप हैं कृष्णोपनिषद्. 'गोपियां ऋषिरूपा एवं श्रुतिरूपा भी हैं' बृहद्वामन पुराण.

इत्यादि प्रमाणोंसे गोपियां एक प्रकारकी नहीं हैं तो भी सबका वास्तविक सम्बन्ध भगवान्से ही होनेसे उन्होंने ही रक्षा की.

लौकिक परम्परासे चली आई रीतिसे बाहिरी रक्षा की. अब आर्ष(ऋषियोंके) ज्ञानसे सिद्ध(प्राप्त) रीतिसे की हुई रक्षाका वर्णन 'गोमूत्रेण' इस श्लोकसे करते हैं.

गोमूत्रेण स्नापयित्वा पुनर्गोरजसार्भकम् ।।
रक्षां चक्रुः सशकृता द्वादशाङ्गेषु नामभिः ।।२०।।

गोपियोंने बालकको गो–मूत्रसे नहलाकर, फिर गोरजसे नहलाके गोबर और गौके खुरोंकी रजसे भगवान्के नाम लेते हुए द्वादश अंगोकी रक्षा की ।।२०।।

बालकको पहले गोमूत्रसे नहलाकर आती हुई गौओंके खुरोंसे उड़ी हुई रजसे नहलाया तो भींजे हुए शरीर पर वह रज चिपक गई, जिससे फिर जलसे स्नान कराया. भगवान्के संस्कार क्यों किये जाते हैं? इस शंकाको मिटानेकेलिये 'अर्भक' शब्द दिया है अर्थात् इस वक्त यह छोटा वा मुग्ध बच्चा है. इस रक्षाकी विशेषता बताते हुए कहते हैं कि पहले केवल मन्त्रोंसे रक्षा की गई अब पदार्थों सहित रक्षा की जाती है. इस प्रकार गोमूत्र एवं रज आदिसे स्नान कराके अनन्तर गोबरके साथ गौके खुरोंकी मृत्तिका अंगों पर चिपकाई. पुरुष(भगवान्)के बारह अंग होते हैं. ''द्वे सक्था'' वितिश्रुतेः 'दो जांघ' आदि, यों श्रुतिमें कहा है. स्मृतिमें भी ललाट, दो बाहुमूल, हृदय, नाभिके पासका भाग, कण्ठ, दो कन्धे, कमर, मस्तक, दो स्तन इस प्रकार विद्वान कहते हैं. इन द्वादश अंगोंकी रक्षा भगवान्के

१.केशव	२.नारायण	३.माधव	४.गोविन्द
५.विष्णु	६.मधुसूदन	७.त्रिविक्रम्	८.वामन्
९.श्रीधर	१०.हृषीकेश	११.पद्मनाभ	१२.दामोदर

इन बारह नामोंसे रक्षा की ।।२०।।

१.टिप्पणी: जिन गोपियोंने प्रियके प्राकट्यका श्रवणकर, आत्माको भूषित किया उन गोपियोंने अपने प्रीतमको गोमूत्रसे कैसे नहलाया? इस शंकाका समाधान करते हैं कि अपने प्रियका दुष्ट राक्षसीके सम्बन्धसे कुछ भी अनिष्ट न हो जाय, इससे स्नान कराया. पहली सब बातें सहज स्नेहके कारण भूल गई, यही आशंका रही कि हमारे प्रिय बालक स्वरूपकी, कैसे भी हम रक्षा करें. इसलिए मूत्रसे नहलानेमें भी संकोच न किया. भगवान्की रक्षा भी स्नेहवश होकर ही की है.

भगवान्के माहात्म्यज्ञानकी दशामें सहज स्नेह रहता है जिससे भक्त ज्ञान पर ध्यान न देकर, स्नेहसे सब कुछ करता है. यही ज्ञानसे स्नेह(भक्ति)में विशेषता है. इससे कहा जाता है कि ज्ञानसे स्नेह(भक्ति) बलवान् है.

गोप्यः संस्पृष्टसलिला अङ्गेषु करयोः पृथक् ।।
न्यस्यात्मन्यथ बालस्य बीजैर्न्यासमकुर्वत ।।२१।।

गोपियोंने जलका स्पर्श कर, पहले अपने शरीरके पृथक् पृथक् अंगोंमें तथा करोंमें न्यास कर, पीछे बालकके अंगों एवं करोंमें न्यास किया ।।२१।।

उन्नीसवें श्लोकसे आधिभौतिक रक्षा की गई थी, किन्तु उसमें 'कर्ता' एवं 'कर्म'का संस्कार(शुद्धि) न हुआ तथा बीसवें श्लोकमें आध्यात्मिक रक्षा की, तब केवल कर्मका संस्कार किया. अब इस आधिदैविक रक्षाके समयमें, कर्ताका भी संस्कार किया गया है.

पहले अपना संस्कार दो प्रकारसे किया १.बाहिर(देह)का स्नानकर संस्कार किया, २.भीतर(आत्मा)का आचमन लेकर संस्कार किया. इसके अनन्तर ग्यारह बीज मन्त्र अपनेमें स्थापन(विराजमान) किये. अर्थात् बीज मन्त्रों द्वारा अपनेमें देवताओंको प्रविष्ट किया अथवा देवता प्रविष्ट हो गए जिससे निज अनुभवके आधार पर अपनेमें आए हुए देवताका दूसरेमें भी स्थापना कर सकनेका निश्चय होता है अर्थात् दूसरेमें भी देवता स्थापित हो गए.

गोपियोंने बीज मन्त्रों द्वारा अपनेमें देवता स्थापन क्यों किये? उसका भाव(आशय) बताते हैं कि ''अग्निं वै जातं'' इस मन्त्रमें कहा है कि बलवान्, दोष छुड़ानेवालेमें जाकर बैठते हैं तो वहां भी गोपियोंने समझा कि हम भगवान्में

स्थित दोषोंको देवता स्थापित कर निकालती हैं, वे दोष हममें प्रवेश न करें इसलिए गोपियोंने पहले अपना संस्कार कर, अपनेमें देवता स्थापित किए. गोपियोंने अपनी दुगुणी रक्षा की, क्योंकि गोपियां कर्ता और[१] करण दोनों थीं. इससे जो साक्षात् प्रकट करण(साधन) एवं कर्ता होता है, उससे ही दोषका सम्बन्ध होता है. रक्षाके प्रकारका वर्णन करते हैं कि कहे हुए बारह अंगोंमें, उन उन भगवान्के नामोंसे, दाहिने अंगूठेसे बायें अंगूठें तक दस अंगुलियों सहित, हाथके तल एवं पृष्ठमें न्यास किया, अथवा हाथकी चारों अंगुलियोंके तीन तीन पर्वोंमें न्यास किया. जैसे कि कहा है कि ''अंगुल्यंगुष्ठपर्वसु'' 'इति वचनात्' अंगूठेसे अंगुलियोंके पर्वोंमें न्यास करें. पृथक् वा दूसरा आशय बताते हैं कि मातृकाके स्थापनमें भिन्न-भिन्न दश प्रकारके न्यास कहे हैं. इस प्रकार गोपियां बीज न्यास द्वारा, सर्व देवताकी आधारभूत हुईं, अनन्तर देवताओंको बाहर स्थापितकर, बालक(भगवान्)के अंगोंमें ग्यारह बीजोंसे देवता स्थापित किए।।२१।।

१. टिप्पणी गोपियां रक्षा करनेके कारण कर्ता थीं और उनके अंग(जिनसे रक्षा की, हस्तादि) करण(साधन) थे.

अब अगले श्लोक 'अव्यादजो'में मन्त्रोंके बीज और देवोंके स्थान गुप्त रखने योग्य हैं इसलिए दूसरे प्रकारसे होनेके कारण रक्षाकेलिये स्तोत्रसे देवताकी प्रार्थना करते हैं.

अव्यादजोङ्घ्रिमणिमांस्तव जान्वथोरू यज्ञोच्युतः कटितटं जठरं हयास्य।।
हृत् केशवस्त्वदुर ईश इनस्तु कण्ठं विष्णुर्भुजं मुखमुरुक्रम ईश्वरः कम् ।।२२।।

अज भगवान् तेरे पैरोंकी, मणिमान घुटनोंकी, यज्ञ जंघाओंकी, अच्युत कमरकी, हयग्रीव पेटकी, केशव हृदयकी, ईश छातीकी, इन्द्र कण्ठकी, विष्णु बाहुकी, उरुक्रम मुखकी, ईश्वर मस्तककी रक्षा करे ।।२२।।

वैष्णव तन्त्रमें, भगवान्के ग्यारह रूप आरम्भसे(शक्तिशाली) प्रसिद्ध हैं, दूसरे(इन ग्यारह रूपोंके अतिरिक्त) रूप शक्तिवान् नहीं हैं, उनमें शक्ति संचार करनेसे(देनेसे) आती है.

१.जो जन्म रहित[१], अविकारी, मूलरूप अज है, वह अक्षरात्मा होता है, वह अक्षररूप(आध्यात्मिक) अज चरणोंकी रक्षा करे. यह चरण जिसकी रक्षा की जाती है, आध्यात्मिक है क्योंकि अन्तर्यामी आदि अवतार चरणरूप

(आध्यात्मिकरूप) होते हैं. ऐसा शास्त्रोंमें निरूपण है. वह श्रीकृष्ण अज फलरूप तो आधिदैविक है.

२.वह ही अज सबोंका उपास्यरूप दुर्ज्ञेय[२] होनेसे 'अणिमान्[३] होता है. ये भगवान्के नाम बीजरूप होनेसे अविकारी हैं, स्थूलसे सूक्ष्म भाववाला 'अणिमान्' दो घुटनोंकी रक्षा करे. प्रमेय बलवाले इन दोनों रूपोंमें इन दोनों (चरण और घुटनों)की रक्षाका निरूपण हुआ.

श्लोकमें दिये 'अथ' शब्दका आशय बताते हैं कि इस प्रकार प्रमेय बलवाले रूपोंके पश्चात्, प्रमाण बलवाले रूपोंके कार्यका पृथक् वर्णन करते हैं. इससे यह बताया कि भक्ति मार्ग और ज्ञान मार्गकी सिद्धि(निर्णय) प्रमेय बलसे ही होती है.

३.[४]'यज्ञ' जंघाओंकी रक्षा करे. कारण कि वह यज्ञ प्रजनन, वीर्यरूप, उत्पन्न करनेवाला रूप है.

४.[५]यज्ञका आधिदैविकरूप अच्युत 'कमर'की रक्षा करे. वह(अच्युत) रक्षक किसी प्रकारसे भी च्युत नहीं होता है. इससे यज्ञ एवं वेदकी नित्यता कही.

५.'हयग्रीव' पेटकी रक्षा करे. सम्पूर्ण जगत् भगवान्का उदर है उसकी रक्षा कर्म(यज्ञ)से होती है. इसलिए भगवान् वेदों(वैदिक कर्म यज्ञादि)की रक्षाके वास्ते हयग्रीवरूपसे यज्ञमें प्रकट हुए.

६.'केशव' हृदयकी रक्षा करे. 'केशव' शब्दका आशय बताते हैं कि 'केशव' शब्दमें 'क' 'ईश' और 'व' ये तीन अक्षर हैं. 'क'का अर्थ ब्रह्मा, 'ईश'का अर्थ शिव और 'व'का अर्थ सुख है. इसलिए व्याकरणानुसार विग्रह करनेसे 'केशव' शब्दमें द्वन्द्व और बहुव्रीही दो समास हैं जैसे कि 'कः च ईशः च' केशौ द्वन्द्व समास हुआ. जिसका अर्थ हुआ, ब्रह्मा और महादेव. अब 'केशयोः वं यस्मात्' सः केशवः यह बहुव्रीही समास हुआ. जिसका अर्थ ब्रह्मा और महादेवको सुख(आनन्द) जिससे मिलता है वह केशव. बुद्धि एवं अहंकारके नियामक ब्रह्मा और शिवको सुख देनेवाला अन्तर्यामी केशव हृदयका परिपालन करे ऐसी आशा करती हैं. दोनों स्तनोंके मध्य ढालवाले स्थलको 'हृदय' कहा जाता है.

७.'ईश' प्रकृतिके गुणको उत्तेजित करनेवाला(आधिदैविक कालरूप) तुम्हारी छाती(कंठसे नीचेका और स्तनोंसे ऊपरका भाग)की रक्षा करें. 'तुम्हारी'

शब्द कहनेका भावार्थ बताते हैं कि केवल छातीकी ही रक्षाकेलिये प्रार्थना करती है न कि छाती पर विराजमान लक्ष्मीजीकी रक्षाकेलिये भी प्रार्थना है.

८.इन सूर्यके अन्दर विराजमान नारायण, कण्ठकी रक्षा करें. श्लोकमें दिये हुए 'तु' शब्दका भावार्थ बताते हैं कि यहां ब्रह्माण्ड मध्य स्थितको प्रार्थना करती हैं न कि ब्रह्माण्डसे बाहर स्थित प्रार्थना करती हैं. इसलिए शुकदेवजीने श्लोकमें 'तु' शब्द दिया है. 'कण्ठ' सरस्वतीका स्थान होनेसे तीन वेदोंका रूप है.

९.'विष्णु'(जगत्की रक्षा करनेवाले क्रियाशक्तिरूप विष्णु) भुजाओंकी रक्षा करें, भुजाओंकी रक्षाका कारण बताते हैं, कि 'क्रियाशक्ति'(काम करनेकी शक्ति) भुजाओंमें ही रहती है.

१०.'उरुक्रम'(वामन) मुखकी रक्षा करें. 'उरुक्रम'का भाव बताते हैं कि जब दैत्यों द्वारा भक्तोंको दुःखकी सम्भावना होती है अथवा दुःख मिलते हैं तब आप पधारकर भक्तोंको किसी प्रकारसे भी दुःखोंसे बचाते हैं. जैसे बलिके हितकेलिये बलिका बन्धन, वामनरूपसे किया, जिससे आप 'उरुक्रम' कहलाते हैं.

११.ईश्वर(सफेद और काले बालवाला संकर्षण) मस्तककी रक्षा करे. वह मुख्य होनेके कारण 'शिर'की रक्षा करे यह प्रार्थना योग्य ही है ।।२२।।

१. योजना: श्रीआचार्यचरणोंने जिस-जिस नाम द्वारा जिस-जिस अंगकी रक्षाकी प्रार्थना की है, वह सब उपपत्ति पूर्वक(युक्ति देकर) समझाई है. जैसे यहां अज भगवान् 'चरणोंकी' रक्षा करें. इसको समझानेकेलिये कहते हैं कि 'अज' के दो रूप हैं : एक आध्यात्मिक दूसरा आधिदैविक. और चरण भी आध्यात्मिक हैं. इसलिए आध्यात्मिक चरणकी रक्षा की. प्रार्थना आध्यात्मिक स्वरूप अक्षरात्मा अजकी की गई है. श्रीकृष्ण(जिसके सामने प्रत्यक्ष दर्शन हो रहे हैं वह) तो मूलरूप अज है अतः आधिदैविक है. आधिदैविक स्वरूप(श्रीकृष्ण स्वरूप)में विराजमान आध्यात्मिक स्वरूप ही आध्यात्मिक चरणारविन्दकी रक्षा करें.

श्रीआचार्यचरणोंकी उपपत्ति (युक्ति पूर्वक समझाना) व्यासजीको भी अभिप्रेत (वांछित, अभीष्ट) है, जैसे कि व्यासजीने भी 'जले रक्षतु (वाराहः)' आदिमें उपपत्तिपूर्वक रक्षाका वर्णन किया है. वराह जलके भीतर निर्भय निर्विघ्न जा सकता है इसलिए जलमें वह रक्षा करे. इस प्रकार अन्य भी.

योजना: अक्षरके दो रूप हैं एक 'अज' दूसरा 'अणिमान्'. अज रूपसे चरण रक्षा बताई. इससे यह सिद्ध हुआ कि अक्षर अज रूपसे आधिदैविक रूपका चरणारविन्द होनेसे

भक्ति रूप है, इसलिए यह भक्ति मार्ग है. 'अणिमान्'(सूक्ष्म) रूपसे दो घुटनोंकी रक्षा बताई. सूक्ष्म रूप दुर्ज्ञेय होनेसे ज्ञान मार्ग कहकर, उस दुर्ज्ञेयताका वर्णन किया जैसे कि ''कश्चिद् धीरः प्रत्यगात्मानम् ऐक्षत्'' कोई धीर पुरुष ही प्रत्यगात्माको (ज्ञान द्वारा) देखता है.

२.कठिनाईसे जानने योग्य.

३.'अणिमान्' शब्दका अर्थ बहुत सूक्ष्म जो कठिनाईसे जाननेमें आवे करने पर 'अणिष्ठ' होना चाहिए. इस शंकाका समाधान सुबोधिनीजीमें महाप्रभुजीने भगवान्के नाम, बीजरूप होनेसे अविकारी(जो सदैव एकसा रहे.) हैं. दूसरे शब्द व्याकरणानुसार बनते और बदलते हैं. नाम तो बने हुए ही हैं.

४.योजना: यज्ञ उत्पत्ति करनेवाला है, जैसा कि गीतामें कहा है यज्ञसे मेघ, मेघोंसे वर्षा द्वारा अन्नादि उत्पन्न होते हैं. इसलिए यज्ञ प्रजनन(पैदा करनेवाला रूप) है श्रुतिमें जंघाओंको भी पैदा करनेमें प्रयोजक कहा है अतः प्रजननरूप यज्ञ भगवान् पैदा करनेमें प्रयोजक जंघाओंकी भी रक्षा करें यह उपपत्ति कही.

५.योजना: अच्युत यज्ञका आधिदैविक स्वरूप है. कमर पृथ्वीरूप है. पृथ्वी(कर्म क्षेत्र) अन्नादिकोंके उत्पत्तिका स्थान पैदा करनेवाली है. इसलिए आधिदैविक यज्ञ स्वरूप अच्युत पृथ्वीरूप कटि(कमर)की रक्षा करे. यह कहना भी उपपत्ति पूर्वक समझाया.

इस प्रकार चरणोंसे मस्तक तक रक्षाकेलिये की हुई प्रार्थनाका निरूपण २२वें श्लोकमें किया. अब पुरुषके जिस जिस बाहरके भागोंके जो जो प्रेरक देव हैं, वे देव उस भागकी रक्षा करें. इस प्रकारकी प्रार्थना इस २३वें श्लोक 'चक्र्यग्रतः'में करती है.

चक्र्यग्रतः सहगदो हरिस्तु पश्चात् त्वत्पार्श्वयोर्धनुरसी मधुहाजनश्च ।।
कोणेषु शंख उरुगाय उपर्युपेन्द्रस्तार्क्ष्यः क्षितौ हलधरः पुरुषः समन्तात् ।।२३।।

चक्रधारण भगवान् आगे, गदाधर भगवान् पीछे, धनुषधारी मधुसूदन भगवान् और खड्गधारी अजन् भगवान् दोनों पाश्वो(पसलियों)में, शंखधर उरुगाव भगवान् कोनोंमें, उपेन्द्र गरुड भगवान् ऊपर, हलधर भगवान् पृथ्वी पर, पुरुष भगवान् चारों तरफ रक्षा करें ।।२३।।

पुरुषके जितने वा जो जो भाग बाहर हैं उनकी ये नियन्ता रक्षा करें इस प्रकारकी प्रार्थना करती है.

चक्रधारण करनेवाले भगवान्(चक्र धारण कर) आगेके भागका पालन करें, गदाधर हरि(गदा धारणकर) पीछेके भागकी रक्षा करें. पीछेके भागकी

रक्षाकेलिये महान्को कैसे कहती हैं? इस शंकाके समाधानकेलिये ही शुकदेवजीने गदाधरको पीछेकी रक्षाकी प्रार्थना की है, जैसे गजेन्द्रके प्रार्थना करने पर, वैमनस्यका विचार न कर, तुरन्त आकर उसकी रक्षा की; क्योंकि आप 'सर्व दुःख हर्ता' हैं वैसे ही अब भी, प्रार्थनासे स्वयं हरि यहां, पीछे स्थित होकर पालन करें, तेरी दोनों(बायें और दाहिने) पसलियोंकी धनुर्धारी मधुसूदन और असिधारी अजन रक्षा करें, अर्थात् दाहिनी तरफ धनुष लेकर वहां स्थित राक्षसोंको दूरसे ही मधुसूदन भगवान् मारें. बायें तरफ सब ज्ञानियोंके सेव्य, सबके जन्मादि, सब प्रकारके दुःखोंके नाशक, अजन[१] भगवान् खड्ग लेकर अविद्या(अज्ञान) नाश करता हुआ रक्षा करे. प्रत्येक आयुधकी सामर्थ्य दिखानेकेलिये ही हर एक आयुधका भिन्न-भिन्न नाम दिया है. श्लोकमें दिये हुए 'च' शब्दका भावार्थ बताते हैं कि 'च' शब्दसे गोपियोंने उत्तरकी ओर स्थित हरिवर्य आदि स्वरूपोंकी ही रक्षाकेलिये प्रार्थना की है.

उरुगाय भगवान् शंख धारणकर चारों कोनोंमें तेरी रक्षा करे, वह शब्द (शंख[२]की ध्वनि) सब दैत्योंके दर्प(अभिमान)का हरण करनेवाला है. क्योंकि शास्त्रमें कहा है कि विष्णु भगवान्के मुखसे निकले वायुसे भरे हुए शंख(एक एक कोनेमें जुदे जुदे शंख कहे हैं)का वायु प्रत्येक कोनेमें यह कार्य(दैत्य नाश) करता है, इसलिए इसी एकसे ही सब जगह रक्षा होती है. ऊपरके भागमें गरुड़ पर बिराजमान मन्वन्तरका अवताररूप उपेन्द्र और रक्षक होनेसे गरुड़ भी रक्षा करे. इस प्रकार हर एकको रक्षाकी प्रार्थना कहकर अब मामूली तौरसे कहती हैं कि पुरुष नारायण सब जगह रक्षा करें क्योंकि उसके उदरमें सब निवास करते हैं और वह सब ठौर है।।२३।।

१.लेख: 'अजन' नामका भाव बताते हैं कि जिसके विराजते ही अविद्या(अज्ञान) नाश हो जाता है इसलिए वह ही ज्ञानियोंके सेव्य एवं सबके दुःखोंका नाश करनेवाले अर्थात् अज्ञान नाश कर, आनन्द देनेवाले हैं.

२.लेख: शंख स्पर्शसे ध्रुवमें वाक्शक्ति आई. निबन्धमें कहा है कि शंखमें 'आसन्य' वायु रहती है इसलिए उसमें सर्वशक्ति है. इससे वह दैत्य मद नाशमें समर्थ है.

इस प्रकार बाहरकी रक्षा कहकर अब २४वें श्लोकमें आध्यात्मिक[१]के अंशरूप[२] प्राण[३]की रक्षाका निरूपण करते हैं.

इन्द्रियाणि हृषीकेशः प्राणान् नारायणोवतु ।।

श्वेतद्वीपपतिश्चित्तं मनो योगीश्वरोवतु ।।२४।।

हृषीकेश इन्द्रियोंकी, नारायण प्राणोंकी, श्वेतद्वीपके पति चित्तकी और योगेश्वर मनकी रक्षा करें ।।२४।।

इन्द्रियोंका ईश(इन्द्रियोंको नियममें रखनेवाला) भगवान् नेत्रोंका भी नेत्र होनेसे (इस प्रकार दश इन्द्रियोंकी इन्द्रियां आप हैं) दश इन्द्रियोंकी रक्षा करें. बालकरूप भगवान्के प्राणापानादि दश प्राणोंकी जीव समूहको प्रेरणा करनेवाला व उसमें प्रवेश करनेवाला नारायण भगवान् रक्षा करें क्योंकि सबके प्राणोंकी जड़ आप हैं एवं सबके जीवनकी जड़ भी प्राण हैं इसलिए नारायणसे प्राण रक्षा होती है. श्वेत द्वीप शुद्ध सत्त्वरूप है इसलिए शुद्ध सत्त्वका स्वामी ही चित्त (अन्तःकरण चतुष्टय) अर्थात् मन, बुद्धि, अहंकार और चित्तकी रक्षा करे, वासुदेव[४] ही चित्त रक्षक है. योगियोंके सेव्य योगीश्वर अनिरुद्ध भगवान् मनकी रक्षा करें. योगशास्त्रका मुख्य विषय मन आदिकी स्थिरता होनेसे योगशास्त्रको मनोमूलक कहा गया है।।२४।।

१.प्रकाश: आध्यात्मिकके अंशरूप अक्षर ब्रह्मके अंशरूप.

२.लेख: इन्द्रिय प्राण अन्तःकरणका संघात(समूह) आध्यात्मिक है और इन्द्रिय, प्राण, अन्तःकरण अलग अलग उसके अंश कहलाते हैं.

३.लेख: 'प्राण' शब्दसे इन्द्रियां समझनी क्योंकि ''तथा प्राण'' इस ब्रह्मसूत्रमें और श्रुतिमें 'प्राण' शब्द इन्द्रियोंका उपलक्ष्यक माना गया है.

४.लेख: ''यदाहुः वासुदेवाख्यं'' श्लोकसे सम्मति बताई है. अर्थात् शुद्धसत्त्व (वासुदेव) ही अक्षररूपका चित्त है इसलिए वह चित्तकी रक्षा करे.

पृश्निगर्भस्तु ते बुद्धिम् आत्मानं भगवान् परः ।।
क्रीडन्तं पातु गोविन्दः शयानं पातु माधवः ।।२५।।

पृश्निगर्भ(प्रद्युम्न) तेरी बुद्धिकी, पर संकर्षण भगवान् अहंकारकी, खेलते समय गोविन्द और सोते समय माधव रक्षा करें ।।२५।।

सबके वंशको बढ़ानेवाला, पहले पृश्निके गर्भसे प्रकट हुवा प्रद्युम्न ही बुद्धिकी रक्षा करे. आत्मा[१](अहंकार)की भगवान् संकर्षण रक्षा करे. यह संकर्षण उस १.प्रद्युम्नसे पर[२] अर्थात् श्रेष्ठ है, २.आत्मा(जीवरूप)की (पर पुरुषोत्तम) रक्षा करे, ३.आत्मा(देह)की, सबका नियमन करनेवाला भगवान् रक्षा करे, अथवा भगवान् आत्माकी रक्षा करे. यह भगवान् कृत्रिम नहीं है, इसलिए

इस(भगवान्)को पर(सबसे श्रेष्ठ) कहा है. अब हर अवस्थामें अर्थात् सब अवस्थाओंमें रक्षाकी प्रार्थना करती है कि बाललीला(खेल) करते समय जहां भी पर्वत, अग्नि आदिकी ओर जावे, तो वहां भी गुप्त रीतिसे स्थिति कर रक्षा करनेवाले गौओंका इन्द्र, गोविन्द रक्षा करे. सोते हुएकी माधव(लक्ष्मीपति) रक्षा करे. 'माधव' नामका भाव बताते हैं उस समय लक्ष्मी प्रयोजक है।।२५।।

१.आचार्यचरणने 'आत्मा' शब्दके अहंकार, जीव और देह अर्थ किये हैं इसलिए 'आत्मानं भगवान् परः' पादका भिन्न-भिन्न अर्थ समझाया है. (अनुवादक)

२.प्रकाशः 'चतुर्मूर्ति'(वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध)में संकर्षण नाम प्रद्युम्नसे पहले आया है. इसलिए सुबोधिनीजीमें संकर्षणको प्रद्युम्न 'पर' कहा है.

व्रजन्तम् अव्याद् वैकुण्ठस्त्वासीनं त्वां श्रियः पतिः ।।
भुञ्जानं यज्ञभुक् पातु सर्वग्रहभयंकरः ।।२६।।

चलते हुएकी वैकुण्ठ भगवान्, बैठते हुएकी लक्ष्मीपति और भोजन करते हुएकी सब ग्रहोंको भय कारक, यज्ञ भोक्ता तेरी रक्षा करें ।।२६।।

बाललीला करते हुए धीरे-धीरे जाते हुए तेरी वैकुण्ठ रक्षा करे क्योंकि वह चलनेमें वेग(सुख) देनेकेलिये ही वैकुण्ठ बनाकर स्थित है. इस प्रकार वैकुण्ठ (भगवान्)को प्रार्थना करनेका आशय यह है कि जहां भी बालक चरण धरे, वह पृथ्वी कोमल गुणवाली होकर, वैकुण्ठके समान सुखदायी होवे. बैठे हुए तुझे लक्ष्मीपति रखे(तेरी रक्षा करे) वह(लक्ष्मीपति) लक्ष्मीके विवाहके समय, लक्ष्मीके साथ जिस भावसे बैठा था उस भावको प्राप्त, सर्व सौभाग्य पूर्ण लक्ष्मीपति, बैठे हुएकी रक्षा करे. सारा जगत् भगवान्में ही स्थित होकर रहता है इसलिए कहा 'तुझे'.

इस प्रकार देहकी चारों अवस्थाओंको बताकर, अब क्रियाकी अवस्था कहते हैं कि सहज रीतिसे वा चोरी आदिसे प्राप्त स्तन्य अर्थात् दुग्ध आदि भोज्यकी यज्ञभोक्ता विष्णु रक्षा करे. भोजनमें और क्रियामें काल और फलके नियामक ग्रह है. अर्थात् ग्रह ही कालानुसार भोजनादि क्रियामें फल दाता है इसलिए वे ग्रह अवश्य फल देंगे. इस भयको मिटानेकेलिये ही गोपियोंने भोजनादिमें रक्षा करनेको यज्ञभोक्ता विष्णुको प्रार्थना की है, क्योंकि काल, क्रिया, द्रव्य आदिके नियामक नव ग्रह उससे डरते हैं. यदि वे ग्रह, विष्णुसे डरते न होते तो, यज्ञादिका फल ही न होता. ग्रहोंके अनुसार फल होता किन्तु ऐसा होता

नहीं है. इससे जब यज्ञभोक्ता फल देता है तब ग्रह निवृत्त हो जाते हैं. ग्रहोंकी निवृत्ति वचनोंसे नहीं किन्तु विष्णुके केवल स्वरूप देखनेसे ही डरकर निवृत्त होते हैं(भाग जाते हैं). इसलिए कहा है कि 'सर्वग्रहभयमरः' विष्णु यज्ञभोक्ता, सर्व ग्रहोंकेलिये भयंकर है. सारांश यह है कि जिनकी वे रक्षा करते हैं वहां वे ग्रह कुछ नहीं कर सकते हैं।।२६।।

इस प्रकार सहज(स्वाभाविक) दोषोंको निवृत्त करनेवालोंकी प्रार्थना कर, अब आगन्तुक(आनेवाले) दोषोंकी तीन श्लोकोंसे गणना करती हुई कहती हैं कि भगवान्का नाम उच्चारण करनेसे ही वे दोष स्वयं मिट जायेंगे.

डाकिन्यो यातुधान्यश्च कूष्माण्डा येऽर्भकग्रहाः ।।
भूत–प्रेत–पिशाचाश्च यक्ष–रक्षो–विनायकाः ।।२७।।
कोटरा–रेवती–ज्येष्ठा–पूतना–मातृकादयः ।।
उन्मादा ये ह्यपस्मारा देह–प्राणेन्द्रिय–द्रुहः ।।२८।।
स्वप्न–दृष्टा महोत्पाता वृद्ध–बाल–ग्रहाश्च ये ।।
सर्वे नश्यन्तु ते विष्णोर्नाम–ग्रहण–भीरवः ।।२९।।

डाकिनी, राक्षसियां, कूष्मांड, बालग्रह, भूत, प्रेत, पिशाच, यक्ष, राक्षस, विनायक, कोटरा, रेवती, ज्येष्ठा, पूतना मातृका प्रभृति, उन्माद, अपस्मार, अन्य जो देह, प्राण एवं इन्द्रियोंके द्रोही हैं तथा स्वप्नमें देखे हुए महान् उत्पात, वृद्ध और बालकोंके ग्रह, वे सब विष्णुके नामसे डरनेवाले होनेके कारण, विष्णुके केवल नाम लेनेसे ही भाग जावें ।।२७–२९।।

कितने ही महादेव सम्बन्धी स्थूल दोष हैं, दूसरे आध्यात्मिक मध्यम दोष हैं, तीसरे स्वप्नमें डरानेवाले आधिभौतिक क्षुद्र(तुच्छ) दोष हैं. डाकिनी(चुडेल) दासियोंकी तरह पति रहित दुष्ट स्त्री जाति सेना सदृश हैं. (यातुधान्यः) राक्षसियां यक्षोंकी स्त्रियां हैं. श्लोकमें दिये हुए 'च'का आशय है कि यातुधानियां अन्य प्रकारकी भी होती हैं. 'कूष्मांड' महादेवके गणोंमें दुष्टगण पुरुषरूप हैं. 'कूष्मांड' शब्दका यौगिक अर्थ कर, उनकी उत्पत्ति एवं आकृति बताते हैं, कि बुरे, गरमीसे पैदा हुए अंडोंके समान आकृतिवाले पुरुषरूपको कूष्मांड कहते हैं. प्रलयके समय इनसे काम लिया जाता है. 'कूष्मांड' यह लौकिक रूढ नाम है. 'कूष्मांड' यह नैमित्तिक नाम होनेसे, 'वैदिक'[१] भी है. वैदिकसे पृथक् दोषवाला 'कूष्मांड' अन्य है, यह बतानेकेलिये श्लोकमें 'ये' शब्द दिया है, अर्थात् जो 'कूष्मांड' दोषवाले,

दुष्टगण हैं उनका यहां निरूपण है, लौकिक और वैदिकोंका नहीं. 'अर्भकग्रहाः' अर्भकरूप ग्रह, पिशाच जातिके हैं वे बालरूप धारणकर सबको पकड़ते हैं. भूत, प्रेत, पिशाच, यक्ष, राक्षस और विनायक विघ्न करनेवाले प्रसिद्ध हैं. वे छेदवाले छिन्न भिन्न होते हैं. उनका अधिपति विनायक कहा है. वह तो स्वयं कहीं भी नहीं आता है. 'विनायक' नामसे कोई गणेश न समझें, इसलिए श्लोकमें दिये 'ये' शब्दका यहां भी उपयोग करना अर्थात् 'ये'(जो) शब्द देकर यह बताया कि यहां दिये 'विनायक' शब्दसे गणेश न समझना क्योंकि ये विनायक तो विघ्न करनेवाले हैं और वह विनायक(गणेश) तो विघ्नविनाशक हैं।।२७।।

उनसे(२७वें श्लोकमें कहे हुओंसे) क्षुद्र(नीच) स्वतन्त्र स्त्रीरूप कोटरा नामक हैं जिनको पूर्व दिशामें कुठारे नामसे जानते हैं. तैसे 'रेवती' कोई उनको रेणुका कहते हैं. 'ज्येष्ठा' दक्षिण देशमें प्रसिद्ध है 'पूतना' तो यही है किन्तु गोपियोंने अनजानमें इसका भी नाम कह दिया है (जो कहना न चाहिये था).

यथार्थमें तो ये मन्त्र हैं, इसलिए जैसे हैं वैसे ही पड़ने चाहिए, नहीं तो उनका फल नहीं मिलेगा, क्योंकि शास्त्रमें कहा है कि यदि स्वरका वर्ण आदिसे न पढ़ा जाएगा तो वह मन्त्र व्यर्थ होगा, अर्थात् इससे कोई लाभ न होगा. इसलिए मन्त्रका भी जो रूप हो उस प्रकार ही उसका कीर्तन ज्ञान सहित करना चाहिए.

पूतनाकी तरह, वृद्ध ग्रहोंका कीर्तन भी सम्बन्ध बिना किया है. सोलह मातृकाएं तो प्रसिद्ध हैं किन्तु श्लोकमें दिये हुए 'आदि' शब्दसे सब ग्रामदेवियां समझनीं, ये सब स्त्रियां हैं. उन्मादि पुरुष हैं. ये पुरुषोंको पागल बना देते हैं. 'अपस्मार' भी समझ नाशकर मिरगी आदि अचेतनताके रोग करते हैं. वे दोनों ही, दोष और रोगरूप हैं इनको हटा देना आवश्यक है. अन्य भी तीन तरहके देह, प्राण और इन्द्रियोंको दुःख देनेवाले हैं. इनसे देहमें सदैव पीड़ा रहती हैं, प्राणोंमें व्याकुलता(वायुकोप)से भूख नहीं लगती है और इन्द्रियां निर्बल होती जाती हैं जिससे बधिरता आदि होती है।।२८।।

भौतिक दुःखोंको कहते हैं स्वप्नमें देखे गए जैसे डर, भागना, शिरच्छेद और महान् उत्पात आदि दुःख. इनके लक्षण स्वप्नाध्यायमें कहे गए हैं. वृद्धग्रह और बालग्रह अभक्तोंको भ्रमित करते हैं वे पिशाचकी नाईं तथा भ्रान्तके समान वृद्ध और बालरूप होकर फिरते हैं. यहां भी जो श्लोकमें 'ये' (जो) शब्द दिया है उसका आशय यह है कि ऊपर कहे हुए काल, रोग करनेवाले नहीं है. इस प्रकार

सबका वर्णनकर फिर 'सर्वे' शब्द देनेका तात्पर्य है कि जो कहे गये अथवा जो नहीं कहे गये हैं वे सब हमारे वचनोंसे आप ही निवृत्त हो जाओ, भाग जाओ. उन्होंकेलिये अधिक परिश्रम करनेकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि केवल नाम ग्रहणसे ही वे डर जाते हैं. किसके नाम ग्रहणसे डरते हैं? इसके उत्तरमें वे कहती हैं कि तेरे नामग्रहणसे. कारण कि आप विष्णु(सर्वत्र व्यापक) हो. जब कि नाम लेनेसे ही डरकर भाग जाते हैं तो आपके बिराजते हुए आपके सामीप्य(निकट)में कैसे ठहरेंगे. इस कारणसे हम उनका अपने वचनोंसे ही निराकरण करती हैं।।२९।।

१.प्रकाश: विवाहादि संस्कारके समय, अशौचकी संभावना होती है, तो विवाहादि संस्कारमें अशौचसे रुकावट न पडे, इसलिए वैदिक मन्त्रोंसे 'होम' किया जाता है, उस होमको 'कूष्मांड' कहते हैं इसलिए 'कूष्मांड' यह शब्द वैदिक भी है.

इस तरह सब प्रकारसे गोपियोंने तीन तरहकी रक्षा की. इसके बाद जो कुछ हुआ उसका वर्णन इस श्लोकमें शुकदेवजी करते हैं.

श्रीशुकः उवाच

इति प्रणयबद्धाभिः गोपीभिः कृतरक्षणम् ।।
पाययित्वा स्तनं माता सन्न्यवेशयदात्मजम् ।।३०।।

इस प्रकार स्नेहबद्ध गोपियों द्वारा रक्षा किये हुए पुत्रको माता यशोदाने स्तन पान कराके शयन कराया ।।३०।।

गोपियोंने लौकिक न्यायसे(सम्बन्ध आदिसे अथवा किसीकी प्रेरणासे रक्षा नहीं; किन्तु सहज स्वाभाविक स्नेहसे बद्ध होकर) रक्षा की थी. इसलिए किन्हींके हटानेसे भी हटनेवाली नहीं थी. अठारहवें श्लोकमें कहा गया है कि यह रक्षा, गोपियोंने ही की, फिर भी यहां श्लोकमें, 'गोपीभिः'(गोपियोंने) शब्द देनेका आशय यह है कि गोपियां तो स्वयं रक्षा कर रही थीं, किन्तु कोई यों न समझे कि बीचमें ब्राह्मणोंने उनको शिक्षा दी होगी कि रक्षा करो, इस शंकाको मिटानेकेलिये, यहां फिर 'गोपीभिः'(गोपियोंने) पद दिया है. गोपियोंने न केवल वाणीसे रक्षा की, किन्तु हाथोंसे रक्षा बन्धन आदि भी किया था, यों समझा जाता है. माता यशोदाने स्तनपान कराके यह बताया कि पूतनाके पयःपानसे मेरे लालाको अजीर्ण आदि कुछ दुःख नहीं हुआ है. गोपिकाओंको भावी अर्थ (भविष्य)का ज्ञान था, इसलिए उन्होंने स्तनपान स्वयं न कराया क्योंकि माताका

स्तनपान शान्तिको जतानेवाला था. फिर आत्मज अर्थात् पुत्रको पलंग पर अच्छे प्रकारसे सुला दिया।।३०।।

इस प्रकारकी बुद्धि उत्पन्न करनेवाला यह भगवान्का चरित्र स्पष्ट निरोध[१] है. ऐसे पूतना वध कर आगेकी लीलाकी सिद्धिकेलिये मन्त्रोच्चारणसे भली भांति बचे हुए अज्ञान शेषको स्थापनकर, पूतनाके मोक्षका ज्ञान करानेकेलिये, इस श्लोकसे अध्याय समाप्ति तक आगेके चरित्रको कहते हैं.

तावन् नन्दादयो गोपा मथुराया व्रजं गताः ।।
विलोक्य पूतनादेहं बभूवुरतिविस्मिताः ।।३१।।

इतनेमें मथुरासे व्रजमें गए(पहुंचे हुए) नन्दादिक गोप, पूतनाकी देहको देखके अति आश्चर्यमें पडे ।।३१।।

पूतनाके रूप दर्शनसे तो, भय उत्पन्न होता है अर्थात् इससे यों समझमें आता है कि पूतनाका मोक्ष नहीं हुआ है, इस शंकाको मिटानेकेलिये, पूतनाके देहके जलनेसे उत्पन्न हुए गन्धसे, उसके मोक्षका ज्ञान होगा, इसलिए उसका आग्रह किया जाता है. उसके जलाने पर सबको स्पष्ट सुगन्ध मिलेगी. उसको(पूतनाको) जलाना साधारण मनुष्यका काम नहीं था. ऐसी विशाल देहको जलानेवाला कोई बलवान् होना चाहिये जिससे यह जलाई जायेगी. जब तक गोपियोंने यह सब कृत्य किया तब तक तो नन्दादिक मथुरामें रहे. यहां कार्य करनेमें गोपियां प्राधान्य(आगेवान) थीं, इसलिए मथुरासे लौटते समय गोपियोंके पतियोंके नाम प्रधानतामें न देकर नन्दका ही दिया है. शुकदेवजी वहां(मथुरामें) ही भगवान्में स्थित होकर कह रहे थे, इसलिए 'व्रजं आगताः' 'व्रजमें आये' न कहकर 'व्रजं गताः' 'व्रजको गये' कहा है. नन्दादिक, पूतनाके ऐसे रूपको देखकर, अचम्भेमें पड़ गये. उस समय सब लौकिक भूल गये. यदि लौकिक स्मृति रहती तो निरोध न होता ।।३१।।

१.भक्तोंका चित्त संसारसे निकालकर अपनेमें(भगवान्में) आसक्त करानेको 'निरोध' कहते हैं. भगवान्के इस चरित्रसे अविद्यानाश द्वारा भक्तोंकी संसार विस्मृति पूर्वक भगवान्में आसक्ति हुई.

उन(गोपों)की बालक्रीड़ा[१]में आसक्ति, न कहनी चाहिए (वा न हो) उनके[२] लिये दूसरे प्रकारका व्यापार(लीला) कहना चाहिए. क्योंकि वे प्रमाण परायण हैं अर्थात् प्रमाणके अधिकारी हैं इसका निरूपण ३२वें श्लोकमें करते हैं.

नूनं बतर्षिः सञ्जातो योगेशो वा समास सः ।।
स एव दृष्टो ह्युत्पातो यमाहानकदुन्दुभिः ।।३२।।

आहा ! निश्चयरूपसे वसुदेवजी तो ऋषि हो गए हैं अथवा वसुदेवजी योगेश्वर बन गए हैं क्योंकि जैसा उन्होंने कहा है वैसा ही उत्पात देखा ।।३२।।

उन(नन्दादि गोपों)की प्रमाण परायणता वर्णन करते हैं. 'बत' शब्दसे खेद दिखाया है. वसुदेवजी पहले(केवल) क्षत्रिय थे अब तो निश्चयरूपसे वे ऋषि (भी) हो गए. ऋषियोंका वचन ही प्रमाण माना जाता है. लौकिकमें तो ऋषि अप्रयोजक(प्रमाणरूप नहीं) हैं क्योंकि इससे मन्त्र भी लौकिक हो जाएंगे (तो उनकी प्रामाणिकतामें संशय रहेगा). इस (संशय)को मिटानेकेलिये कहते हैं कि न केवल ऋषि हुए किन्तु पूरे पूरे योगेश भी हुए हैं. योगेश्वर योगरूपसे सब देख लेते हैं. सभा आदिमें जो कुछ होता है उसका ज्ञान उनको हो ही जाता है. वसुदेवजीके कहनेमें किसी प्रकारकी असम्भावना नहीं करनी चाहिए क्योंकि वसुदेवजी साधारण मनुष्य नहीं हैं किन्तु प्रसिद्ध हैं. हमने जैसा वसुदेवजीका स्वरूप समझा है वह सत्य है इस (ज्ञान)की दृढ़ताकेलिये वसुदेवजीके कहे हुए वाक्यको दुहराते हुए कहते हैं कि जिस उत्पातकेलिये वसुदेवजीने कहा था वह उत्पात हमने देखा. श्लोकमें 'हि' शब्दका भी यह ही आशय है कि वसुदेवजीका कहना युक्त(सत्य) है. 'तदुदितः स हि यो यदन्तर' जो जिसके पीछे होता है वह उसमें होता ही है. इस न्यायके अनुसार भी यह कहना सत्य है. विशेषमें कहते हैं कि उसका कहना प्रामाणिक इसलिए भी है कि वसुदेवजीके जन्मके समय आनक और दुन्दुभि बजे थे. जिससे उनकी आप्तता प्रकट है।।३२।।

१.गोपोंकी आसक्ति प्रमेय प्रकरणमें मध्यलीलामें कहनी चाहिए.

२.गोपोंकी आसक्ति सिद्ध करनेकेलिये आध्यात्मिक अविद्याकी निवृत्ति हो जानेके पश्चात् प्रमेय प्रकरणमें वर्णन करनी चाहिए. यहां केवल प्रमाण परायणताका वर्णन है. लेख

कलेवरं परशुभिश्छित्त्वा ते तु व्रजौकसः ।।
दूरे क्षिप्त्वावयवशो निर्दहन् काष्ठवेष्टितम् ।।३३।।

(तदनन्तर) उन ग्वालोंने पूतनाके शरीरको कुल्हाडोंसे काटके सब अवयव दूर दूर फेंक कर(अलग अलग ढेर बनाकर) उनको लकडियोंसे लपेटकर जला दिया ।।३३।।

इसके पश्चात् सब ग्वालोंने व्यवहारकी सिद्धिकेलिये, उस पूतनाके शरीरको कुल्हाड़ोंसे काटके अवयवोंको दूर फेंककर ढेर किया. उसकी दुर्गन्ध न आवे, इसलिए उस ढेरको लकड़ियोंसे ढककर जला दिया. पानीमें इसलिए नहीं फेंका कि राक्षसोंकी दुष्टता समझमें नहीं आती है, कदाचित् पानीमें फेंकने पर, वह फिर जीवित हो जाय, तो इसलिए जलाना ही अच्छा समझा. जलावे भी नहीं और पानीमें भी न डालें, यों ही खंड-खंड पड़े छोड़ दिये जांय(गीध आदि खावें) यों करनेसे कदाचित् राक्षस उन भागोंको लेकर जोड़ देवें जिससे वह फिर जीवित हो जावे, इसलिए सब विचारकर उसको जलाना ही उचित समझा. उनकी ऐसी बुद्धि भगवान्ने इसलिए की, कि इसके जलानेसे सुगन्धि निकलेगी, तो ये समझेंगे कि इसकी मुक्ति हो गई और श्रुति भी कहती है कि, इस शरीरकी भस्म होनेके बाद मुक्ति होती है।।३३।।

दह्यमानस्य देहस्य धूमश्चागरुसौरभः ।।
उत्थितः कृष्णनिर्भुक्तसपद्याहतपाप्मनः ।।३४।।

भगवान् श्रीकृष्णके उपभोग(स्तन्य पान) करनेसे, तुरन्त पाप नष्टवाली पूतनाकी जलती देहसे अगरके समान निकला हुआ धूम ऊपर(आकाशमें) जाने लगा ।।३४।।

जलते समय जो धुआं निकला, वह लकड़ियोंका नहीं था, यह बतानेकेलिये मूल श्लोकमें 'दह्यमानस्य देहस्य धूमः' शब्द दिये हैं जिसका अर्थ है कि जलती देहका धुआं लकड़ियोंका है. श्लोकमें दिये 'च' अक्षरका आशय बताते हैं कि 'अंगार' भी उजले थे और देह भी घृतके समान जलती थी. अगरके जलनेके धूम जैसी, उसके देहके जलनेकी धूमकी सुगन्धि, धुएंके साथ ऊपर (आकाशकी तरफ) जाने लगी. धुएंका ऊपर जाना, सारी जनताको बताता है कि इसकी ऊर्ध्व(उत्तम) गति हुई है. शंका होती है कि इस दुष्टाकी उच्च गति क्यों हुई? इसके मिटानेकेलिये कहते हैं कि श्रीकृष्णने स्तन्य पानकर, इसके सब पाप क्षणमात्रमें नाश कर दिये थे, जिससे यह अब दुष्टा पापिनी नहीं रही, इसलिए इसकी उर्ध्व गति हुई, जिसका प्रमाण है कि उसकी पवित्र हुई देहसे, अगर जैसी सुगन्धि निकलकर ऊंची जा रही थी।।३४।।

३५ से ४० तक छः श्लोक प्रक्षिप्त हैं उन पर व्याख्या प्रक्षिप्त तीन अध्यायोंकी तरह करनी चाहिए; किन्तु स्पष्ट अर्थ होनेसे व्याख्याकी

आवश्यकता नहीं. ३६वें श्लोकमें 'तन्मातरो' 'उसकी माताए'की व्याख्या अन्य टीकाकार करते हैं 'वसुदेवजीकी स्त्रियां'.

पूतनालोकबालघ्नी राक्षसी रुधिराशना ।।
जिघांसयापि हरये स्तनं दत्वाप सद्गतिम् ।।३५।।
किं पुनः श्रद्धया भक्त्या कृष्णाय परमात्मने ।।
यच्छन् प्रियतमं लोके रक्तास्तन्मातरो यथा ।।३६।।

लोगोंके बालकोंको मारनेवाली और रुधिर पीनेवाली पूतना, मारनेकी इच्छासे भी भगवान्को दूध पिलानेसे मुक्त हो गई।।३५।। भला तब श्रद्धा तथा भक्तिसे, श्रीकृष्णको प्रिय वस्तु अर्पण करनेवाली स्नेहवती माताओंके समान मोक्षको प्राप्त हो, तो क्या आश्चर्य है।।३६।।

पद्भ्यां भक्तहृदिस्थाभ्यां वन्द्याभ्यां लोकवन्दितैः ।।
अङ्गं यस्याः समाक्रम्य भगवानपिबत् स्तनम् ।।३७।।
यातुधान्यपि सा स्वर्गमवाप जननीगतिम् ।।
कृष्णभुक्तस्तनक्षीराः किमु गावो नु मातरः ।।३८।।

भक्तोंके हृदयमें स्थित, लोकवन्दित देवताओंसे भी पूजनीय चरणोंसे जिसके अंगको दबाके भगवान्ने जिसके स्तनका पान किया, वह राक्षसी भी माता जैसी गतिको प्राप्त हुई तो जिन गौ और माताओंका कृष्णने दूध पिया, उनकी गति होवे तो उसमें कहना ही क्या ? ।।३७-३८।।

पयांसि यासामपिबत् पुत्रस्नेहस्नुतान्यलम् ।।
भगवान् देवकीपुत्रः कैवल्याद्यखिलार्थदः ।।३९।।
तासामविरतं कृष्णे कुर्वतीनां सुतेक्षणम् ।।
न पुनः कल्प्यते राजन् संसारोज्ञानसम्भवः ।।४०।।

कैवल्य आदि सब पुरुषार्थोंको देनेवाले भगवान् देवकी पुत्रने, जिन माताओंके सुतस्नेहसे टपकते हुए दूधको पिया और जो माताएं निरन्तर कृष्णको पुत्र भावनासे देखती हैं, हे राजन ! उनको अज्ञानसे उत्पन्न संसार फिर नहीं आता है, अर्थात् वे संसारसे सदैव छूट जाती हैं।।३९-४०।।

इस प्रकार देहके धूम निकलते हुए जो कुछ हुआ उसका वर्णन इस ४१वें श्लोकसे करते हैं.

कटधूमस्य सौरभ्यमवघ्राय व्रजौकसः ।।

किमिदं कुत एवेति वदन्तो व्रजमाययुः ।।४१।।

व्रजवासी चिताके स्थानसे आते धुएंकी सुगन्ध सूंघकर कहने लगे कि यह क्या है, कहांसे आ रही है? यों कहते हुए व्रजमें आ गए ।।४१।।

चिता सम्बन्धी धुएंकी सुगन्धको सूंघकर व्रजवासी गौओंकी रक्षाकेलिये वा अन्य कार्यके वास्ते दूर चले गये थे. सुगन्धसे अचम्भेमें पड़कर व्याकुल होकर कहने लगे कि यह अगर जल रहा है यों समझ, यह सुगन्ध कहांसे आती है. ये शब्द कहते हुए उस कार्यको छोड़कर व्रजमें आ गये. इससे सब व्रजवासियोंकी प्रपञ्च विस्मृति बताई और भगवान्का प्रभाव उनके अन्तर(देहादिमें) प्रविष्ट हुआ, जिससे भीतरका प्रपञ्च भी नाश होगा. प्रपञ्च तमोगुणी है, पूतना भी तमोगुणी है इससे तामस द्वारा तामसका नाश होना योग्य ही है।।४१।।

उन(नन्दादि गोपों)को भी कारण जानने पर आश्चर्य हुआ. इसका वर्णन ४२वें श्लोकमें किया जाता है.

ते तत्र वर्णितं गोपैः पूतनागमनादिकम् ।।

श्रुत्वा तन्निधनं स्वस्ति शिशोरासन् सुविस्मिताः ।।४२।।

वे (नन्दादि गोप) ग्वालों द्वारा पूतनाका व्रजमें आगमन आदि और उसकी मृत्यु एवं बालककी कुशलता सुनके अत्यन्त आश्चर्य युक्त हुए ।।४२।।

नन्दादि गोप गोकुलमें गोपोंसे १.पूतनाका आगमन, 'आदि' शब्दसे गोपोंने दूध पिलानेका ढंग भी बताया, २.उसका मरण और ३.बालकका कल्याण, ये तीनों सुनकर बहुत अचम्भित हो गये; सब गोप गोपियोंके वहां होते हुए पूतनाका आगमन(नन्दके घरमें भीतर आ जाना) ही आश्चर्यमें डालनेवाला कार्य था, ऐसे उसका अचानक मरण भी आश्चर्यका कारण था; इससे भी विशेष विस्मय इसका हुआ कि इस बलवान् पूतनाको मारनेवाले कालने बालकको छोड़ दिया।।४२।।

वेदमें कहा है, कि विदेशसे लौटा हुआ पिता पुत्रके मस्तकको सूंघे विदेशसे लौटे हुए नन्दजीको इस वृद्धावस्था तक दुर्लभ, यह आनन्द, अब मिला, उसका वर्णन ४३वें श्लोकमें करते हैं.

नन्दः स्वपुत्रमादाय प्रोष्यागत उदारधीः ।।

मूर्ध्न्यवघ्राय परमां मुदं लेभे कुरूद्वह ।।४३।।

हे कुरुके वंशमें उत्पन्न! उदार बुद्धिवाले! देशान्तरसे आए हुए नन्दजीने अपने पुत्रको पासमें ले मस्तक सूंघकर हर्षको प्राप्त किया ।।४३।।

नट विद्यामें दिखाया(लिखा) है कि जिस बातको सुनकर आश्चर्य होता है, उस बातको जाननेकी इच्छा पैदा होती है. श्लोकमें 'पुत्रं'(पुत्रको) न कहकर जो 'स्वपुत्रं'(अपने पुत्रको) कहा उसका आशय, आचार्यचरण बताते हैं कि यदि केवल 'पुत्र' कहते तो, उससे कोई बलदेवजीको समझ ले, इस संशयको मिटानेकेलिये 'स्वपुत्रं'(अपने पुत्रको) कहा है अर्थात् अपने पुत्र श्रीकृष्णके मस्तकको सूंघा. वेदमें ऐसी विधि(आज्ञा) होनेसे नन्दजीने हाथसे श्रीकृष्णको अपने निकट करके मस्तक सूंघा क्योंकि देशान्तरसे आए थे. नन्दजीने यह नवीन कार्य कर(बेटेको) बहुत दूंगा ऐसा मनमें विचार किया.

भगवान्केलिये, अनेक प्रकारके आभूषण बनवाके ले आए थे, क्योंकि नन्दजी उदार बुद्धिवाले थे. नन्दजीकी सम्पूर्णतया ऐसी उदार बुद्धि थी, जो नन्दजीको भी मोक्ष देनेवाली तो थी ही, किन्तु उस अवस्थाकी, अर्थात् नन्दजी जैसी उदारताकी, भावना करनेवालोंको भी मोक्ष देनेवाली है.

'वात्सप्रसूक्त'में 'दिवस्परि' इत्यादिसे मस्तकको सूंघनेका विधान है. गन्धसे प्रपञ्च नाश हो जानेके कारण भगवान्के मस्तकको सूंघनेसे नन्दजीके हृदयमें अत्यन्त आनन्द उत्पन्न हुआ. इसलिए मूलमें 'परमां मुदं' पद दिया है जिसका अर्थ है परम आह्लाद. परीक्षितको इस श्लोकमें 'कुरूद्वह' सम्बोधन देनेका भाव यह है कि परीक्षितका इस सम्पूर्ण चरित्रमें विश्वास हो अथवा परीक्षितको यह संकेत शुकदेवजी कराते हैं कि तू कुरुके कुलमें उत्पन्न हुआ है. इसलिए तुझे इस चरित्रमें विश्वास करना चाहिए।।४३।।

पूतनाके मोक्षको 'कैमुतिक' न्यायसे सिद्ध करनेकेलिये निम्न श्लोकमें कहते हैं कि जो मनुष्य इस पूतना मोक्षके चरित्रको सुनेंगे, उनको मोक्षसे भी विशेष, भगवान्में भक्तिरूप फलकी प्राप्ति होगी.

य एतत् पूतनामोक्षं कृष्णस्यार्भकमद्भुतम् ।।
श्रृणुयाच्छ्रद्धया मर्त्यो गोविन्दे लभते गतिम् ।।४४।।

जो मनुष्य इस पूतनाको मोक्ष देनेवाले, श्रीकृष्णके विचित्र बाल चरित्रको विश्वाससे, अर्थात् यह सत्य है, ऐसा समझके सुनेगा, वह गोविन्दमें मोक्ष प्राप्त करेगा ।।४४।।

यह पूतनाको मोक्ष देनेवाला, श्रीकृष्णकी बाललीला सम्बन्धी चरित्र, जो कि लौकिक उपपत्ति रहित है, अर्थात् ऐसा विलक्षण चरित्र है कि जो लौकिक युक्तियोंसे समझमें ही नहीं आ सकता है. अनिष्ट अर्थको जिससे संसार उत्पन्न होता है ऐसे अर्थ, अविद्याको नाश करनेवाला है. इस अर्थ(मोक्ष)को देनेवाले चरित्रको सुनकर श्रद्धावाला अमर्त्य, अर्थात् देवभावको प्राप्त होता है. तात्पर्य यह है कि वह इस चरित्रको सर्वथा, सत्य मानता है, क्योंकि देवता सत्यमें ही प्रतिष्ठित हैं. इस चरित्रके सुननेसे मनुष्यमें देवभाव आ जाता है तथा उसकी भी सत्यमें प्रतिष्ठा होती है. अतः उस मनुष्यको इस चरित्रके सुननेसे गोविन्द भगवान्में मोक्ष वा रति(प्रेम) होता है. कितने ही इस श्लोकको भी प्रक्षिप्त कहते हैं।।४४।।

।। इति श्रीमद्भागवत दशमस्कन्धकी श्रीवल्लभाचार्यविरचित सुबोधिनी टीकाके तामस प्रकरणके 'प्रमाण' अवान्तर प्रकरणके वीर्य निरूपक अध्याय २ का (स्कन्धानुसार अध्याय ६) का हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण.।।

अध्याय ७

नामकरण संस्कार और बाल लीला

पूतना सुपयः पानं भगवत्त्वाय यत् कृतम् ।।
अलौकिकत्वज्ञानाय तत् षष्ठे विनिरूपितम् ।।का. १।।

कारिकार्थः श्रीकृष्णने अपने भगवत्त्व तथा अलौकिकता जतानेकेलिए पूतनाके स्तन्य पानके साथ उसके प्राणोंका पान एवं शव दाहसे सुगन्धिका निकालना आदि जो चरित्र किये उनका निरूपण छठे अध्यायमें किया गया है ।।१।।

व्याख्या प्रकाशः यह कारिका सातवें अध्यायके साथ छठे अध्यायकी संगति बतानेकेलिये कही गई है. छठे अध्यायमें पूतनाके प्राण एवं स्तन्य पानकी लीला करके श्रीकृष्णने अपना भगवत्व बताया है जिससे उनका वीर्य प्रकट हुआ है, इसी लीलासे श्रीकृष्णने अपनी अलौकिकता भी दिखाई है कि पूतना राक्षसीके देहदाहसे सुगन्धि निकली अन्यथा उस राक्षसीके शरीरके जलनेसे तो दुर्गन्ध ही निकलनी थी।।१।।

ततोप्यलौकिकं लोके विशेषासक्तिबोधकम् ।।
सप्तमे त्रिविधं प्राह शकटोत्पाटनादिकम् ।।का. २।।

कारिकार्थः सातवें अध्यायमें, छठे अध्यायमें वर्णन किये गए वध चरित्रसे भी लोकमें विशेष अलौकिकतावाले एवं विशेष आसक्ति बोधक, शकट(गाडा, बडी भारी गाडी) उत्पाटन(उठाकर फेंकना) आदि तीन प्रकारके चरित्र निरूपण करते हैं ।।२।।

व्याख्या प्रकाशः इस प्रकार, पहिलेके अध्याय अर्थात छठे अध्यायमें प्रयोजन सहित बताये हुए अर्थ सहित चरित्रसे भी, इस सातवें अध्यायका चरित्र अलौकिक है; क्योंकि उस अध्यायमें पूतनाका मर्म स्थलोंकी पीड़ासे प्राण जाना सम्भव था उसमें ऐसी कोई विशेष अलौकिकता नहीं भी मानी जा सकती है किन्तु बालकके चरणसे इतने भारी शकटको ऊपर फेंका जाना जिससे गिरकर उसका टूट जाना तो लोकमें सम्भव ही नहीं है कारण कि जहां इतना छोटा सामान्य बालक पैरसे इतने भारी शकटको थोड़ासा भी नहीं हिला सकता है वहां इतना बड़ा भारी शकट सुकोमल चरणसे फेंककर तोडना तो (विशेष) अलौकिक होनेसे विशेष आसक्ति कराने वाला है. यह प्रसंग पहलेसे भी अलौकिक होनेसे संगतिकारक है. अलौकिक ज्ञान विशेषासक्तिका कारण है उससे किया हुआ प्रसंग भी संगतिकारक है. इस प्रकार संगति बोध करानेकेलिए अध्यायका

अर्थ कहकर विशेषता बतलानेकेलिये 'आदि' शब्दसे तीन प्रकारके चरित्र प्रकट करते हैं.

टिप्पणी: कारिकामें दिये हुए 'संग्रह' शब्दका तात्पर्य बताते हुए कहते हैं कि लोकमें 'संग्रह' शब्द अपने उपयोगमें आनेवाली ऊंची अथवा साधारण वस्तुको इकट्ठा कर रखनेके अर्थमें दिया जाता है परन्तु यहां संग्रहका अर्थ 'निरोध' है क्योंकि भगवान्ने इस 'निरोध'केलिये ही ये तीन चरित्र(शकट भंजन) इकट्ठे कर रखे थे इसलिये चरित्रोंका निरोधके साथ सम्बन्ध है.

उत्क्षेपणमवक्षेपः प्रसारणमितीर्यते ।।
राजसानां तामसानां सात्त्विकानां च सङ्ग्रहे ।।का.३।।

कारिकार्थ: राजस, तामस और सात्त्विक(भक्तों)के संग्रह(निरोध) केलिए ऊपर फेंकना, नीचे गिराना और जंभाई लेते हुए मुख को खोलना, इस प्रकारके तीन चरित्र वर्णन करते हैं ।।३।।

व्याख्या: प्रकाशके भावोंका स्पष्टीकरण:

भगवान्ने देखा कि पूतना वध लीलासे भक्तजनों(यशोदादि)की जितनी आसक्ति मुझमें हुई थी अब तक वह उतनी ही है; केवल इतनी ही आसक्ति होनेसे ये भक्त आगे नहीं बढ़ सकेंगे. उस पूतना वध लीलाको तीन महीने बीत गये हैं इससे अब इनमें शिथिलता आने लग गई है अतः इनकी शिथिलता दूर करनी चाहिए और ऐसा खेल खेलना चाहिए जिससे इनकी मुझमें विशेष आसक्ति हो. यों विचारकर शिथिल चित्तवाले भक्तोंके चित्तमें चेतनता लाने अर्थात् उन भक्तोंके चित्तको विशेष आसक्तिके योग्य बनाने, एवं उनको लौकिक विषयोंसे हटानेकेलिये तथा अपनेमें विशेष आसक्ति पैदा करनेकेलिये बालकृष्णने तृणावर्तको नीचे पटकनेकी लीला की, जिससे भक्तोंको दुःख भी हुआ. दुःख इसलिये हुआ कि इस लीलासे भगवान्में विशेषासक्ति होनेसे उन्होंने सोचा कि तृणावर्त द्वारा कृष्णको कुछ कष्ट हुआ होगा. यह गाड़े को फेंकनेवाली लीलासे लौकिक रीतिसे विशेषासक्ति कराई, जम्भाई लेते हुए मुख खोला, इस लीलासे भक्तोंके हृदयसे असम्भावना दोष निवृत्त कराकर, श्री बालकृष्णने अपनेमें विशेषाशक्ति कराई.

आचार्यश्रीने 'निरोध लक्षण' ग्रन्थमें निरोधका लक्षण देते हुए कहा है कि उपरोक्त लीलाओंसे हृदयमें भय उत्पन्न होनेसे, हृदय दुःखित हुआ. यह दुःख भी निरोधका रूप है इसलिये ही भगवान्ने यह लीला की है.

लेख: श्रीवल्लभजी महाराज लेखमें(सुप्त) शब्दका भावार्थ बताते हुए कहते हैं कि 'सुप्त सोया हुआ' वह है जो कही हुई बातको न समझ सके, अर्थात् 'मूढ'. इस समय यह दशा यशोदाकी थी, इसलिये यशोदाके हृदयमें स्फूर्ति लानेकेलिये

निष्क्रमण(बालकको घरसे बाहर ले जानेकी) संस्कार करानेकी प्रेरणा की. उस संस्कारको मनानेकेलिये, आए हुए गोप गोपी आदिके आदर-सत्कारमें लगा हुआ यशोदाका मन, वहांसे(लौकिकसे) हटे एवं सर्व प्रपञ्चको भूल जाय, इसलिये तृणावर्तको नीचे पटकने आदिकी लीला श्रीकृष्णने की, जिससे यशोदा सर्व(लौकिक) कार्यको भूल गई और उसका मन कृष्णमें ऐसा आसक्त हो गया, जो कहने लगी कि हाय हाय! तृणावर्तके पटकनेसे कृष्णको कुछ हुआ तो नहीं? इस प्रकारके दुःख द्वारा भगवान्ने यशोदाका निरोध किया.

योजना: १.(शकटस्य उत्क्षेपः) गाड़ेको ऊपर फेंकना, २.(तृणावर्तस्य अपक्षेपः) तृणावर्तको नीचे पटकना, ३.(प्रसारणं जुम्भाली लावा मुखस्य) जम्भाई लेते हुए मुख को खोलना.

निर्भयराम भट्ट कृत कारिकार्थ: १.गाड़ेको ऊपर फेंकना, २.तृणावर्तको नीचे पटकना, ३.जम्भाई लेते हुए मुखको खोलना, इन तीनों लीलाओंके आशयको तीसरी कारिकाके उत्तरार्धमें बताते हैं कि ये ३ लीलाएं राजस, तामस एवं सात्विक भक्तोंके निरोधकेलिये की गई हैं. इस कारिकामें वह क्रम नहीं रक्खा है जो दशम स्कन्धके निबन्धमें दिया है, जैसे कि गाड़ा तामस है, तृणावर्त राजस है, पुत्र भाव से, दुल्हार और प्यार करना एवं मोह सात्विक है, इससे तीन चरित्रोंसे तामस, राजस एवं सात्विकका निरोध हुवा ऐसा समझना चाहिये.

सुप्तं चित्तम् अथोल्लास्य त्याजयित्वा च लौकिकान्।।
स्वासक्तिसिद्धये प्रीत्या दुःखं च कृतवान् क्वचित्।।का.४।।

कारिकार्थ: पूतना वधके अनन्तर भक्तोंके सोए हुए(सुस्त हो गए हुए) चित्तको उल्लास(उत्साह)में लाकर और उनके लौकिक विषयोंका त्याग कराकर श्रीकृष्णने अपनेमें आसक्ति करानेकेलिए उनको प्रेमसे कभी दुःख भी दिया ।।४।।

यशो हि सर्वगं चेत् स्यात् स्वासक्त्यैव च तद् भवेत्।।
यशोदानन्दयोरत्र निःप्रपञ्चो विधीयते।।का.५।।

कारिकार्थ: जिसके सुचरित्रका जब सारी जनता गान करती है तब उसका 'यश' होता है. भगवान् श्रीकृष्णने यशोदा एवं नन्दजीके प्रपञ्चका नाश करके अपनेमें आसक्तिरूप निरोध कराया है ।।५।।

आनुषङ्गिकमन्येषां गोपानां सर्वदेहिनाम्।।
गोपीनाम् इति तत्राद्ये यशोदाया वितन्यते।।का.६।।

कारिकार्थ: गोप, गोपी और अन्य प्राणियोंका प्रपञ्च भाव गौण रीतिसे किया है. मुख्य तो प्रथम यशोदाजीके प्रपञ्च भाव(आसक्ति)का विस्तार पूर्वक

वर्णन करनेमें आता है ।।६।।

टिप्पणी: भगवान्का यश(गुणगान) सर्वत्र तब हो, जब भगवान्की की हुई, यशोवर्द्धक लीलाओंका सर्व जनताको ज्ञान हो. भगवान्ने जिस लीलासे, यशोदा एवं नन्दके प्रपञ्चका नाशकर, अपनेमें आसक्ति कराई, उस लीलाका सर्वत्र फैलाव हो गया, जिससे सब भगवान्के गुणगान करने लगे.

भक्तजनोंको सब प्रकारसे जो दुःख होने लगा, उसका नाश कर, भगवान्ने भक्तजनोंकी अपनेमें आसक्ति कराई, इससे भी आपकी महिमा सर्वत्र फैल गई. सब कहने लगे कि देखो श्रीकृष्णने भक्तजनोंका दुःख मिटाकर अपनेमें कैसी आसक्ति करा दी है कि इत्यादि प्रकारसे आपके यशका सर्वत्र ज्ञान होने लगा. भगवान् भक्तोंको इसीलिये दुःख देते हैं कि मैं प्रकट होकर उनके दुःखोंका नाश कर, अपनेमें आसक्ति कराऊं.

प्रकाशका भावार्थ: भगवान्ने अपनेमें आसक्ति करानेकेलिये भक्तोंको दुःख क्यों दिया? इसका आशय प्रकट करते हुए श्री पुरुषोत्तमजी प्रकाशमें कहते हैं कि भक्तोंको दुःख इसलिये दिया कि भगवान् आसुर व्यामोह लीला करेंगे, उसके पश्चात् भी पृथ्वी पर होनेवाले भक्तोंको भगवान्की लीलाओंका ज्ञान हो, जिससे उनकी भी भगवान्में आसक्ति हो जाए. वह ज्ञान उनको तब होगा, जब सब उस समयमें भी, भगवान्के गुणगान होते रहेंगे. इनका विचारकर, भगवान्ने दुःख आदि देकर, फिर लीला द्वारा उन दुःखोंका नाश कर, अपनेमें आसक्ति कराई जिससे अब तक आपका जगहितार्थ यशोगान हो रहा है.

लेखका भावार्थ: दुःख तब होता है जब आसक्ति होती है, आसक्तिके अतिरिक्त दुःख नहीं होता है. व्रजभक्तोंकी भगवान्में आसक्ति थी इसलिये उनको दुःख होता था. भगवान्ने यशोदा और नन्दजीकी प्रपञ्च विस्मृति कराके उनका भाव अपनेमें स्थिर कराया.

लेखकार: शकटभंजन लीलासे केवल यशोदाजीका प्रपञ्च नाश कराया है, दूसरोंका नहीं ।।६।।

राजा परीक्षितके मनमें शंका हुई कि भगवान् द्वारा की हुई आश्चर्यकारक लीलाओं द्वारा यशोदाकी प्रपञ्च विस्मृति पूर्वक आसक्ति हो गई, जिसका वर्णन पांचवे अध्यायमें शुकदेवजीने किया है. अब भगवान्में उत्पन्न हुई यशोदाकी आसक्तिका विशेष वर्णन शुकदेवजी करेंगे, क्योंकि किसी किसी ऋषिका मत है कि प्रपञ्च विस्मृति ही पुरुषार्थ है. इस शंकाको मिटानेकेलिए परीक्षित् 'येन येनावतारेण' श्लोकसे प्रारम्भ कर तीन श्लोकोंमें पूछते हैं.

श्रीराजोवाच

येन येनावतारेण भगवान् हरिरीश्वरः ।।
करोति कर्णरस्यानि चरितानि च नः प्रभो ।।१।।

हे प्रभो ! हरि, ईश्वर, भगवान् जिन जिन अवतारोंसे जिन जिन चरित्रोंको करते हैं वे चरित्र हमारे कर्णेन्द्रियको रसान्वित करनेवाले हैं ।।१।।

सर्वं चरित्रं हितकृद् गुणकृच्च ततोधिकम् ।।
तत्रापि स्नेहजनकं तद् वक्तव्यमिति स्थितिः ।।का.७।।

कारिकार्थ : भगवान्के सर्व चरित्र हितकारी हैं, एवं उनसे भी अधिक वे गुणकारी हैं ; पर स्नेह उत्पन्न करनेवाले चरित्र उन गुणकारी चरित्रोंसे भी विशेषतर हैं[१]. भगवान्के ऐसे (स्नेह बढानेवाले) चरित्र कहने चाहिए इस प्रकारकी स्थिति[२] है.

परीक्षितने प्रारम्भमें कहा है कि भगवान्के सर्व चरित्र उत्तम हैं. भगवान् जिन जिन चरित्रोंको करते हैं, वे सर्व चरित्र कर्णेन्द्रियको रसप्रद हैं. इस प्रकारका सम्बन्ध है. यदि कोई व्यक्ति कृष्णावतारके चरित्रोंको प्रेमसे श्रवण नहीं करना चाहता है तो यह एक प्रकारकी भेद-बुद्धि है, जिसको द्वेष भी कहा जा सकता है. इस प्रकार अवतारोंमें भेद-बुद्धि वा द्वेष नहीं है. इसलिए 'येनैवावतारेण' जिस भी अवतारके सम्बन्धमें यों कहना कि अवतार ही लीला करते हैं ; भगवान् नहीं करते हैं. ऐसी लौकिक बुद्धि अवतारोंमें न हो इसकेलिये आचार्यश्री कहते हैं कि 'वस्तुतस्तु भगवान् करोति' वास्तविक रीतिसे सर्व लीला भगवान् ही करते हैं अर्थात् वे अवतार भगवान्के ही हैं. भगवान् इस प्रकारके अवतार धारणकर ऐसी लीलाएं क्यों करते हैं? इस पर कहते हैं कि शुकदेवजीने मूलमें भगवान्का नाम 'हरि' इसलिए ही दिया है कि वे दुःखोंको हरण करनेवाले हैं. अतः दीन जनताके दुःखोंको दूर करनेकेलिये अवतार धारण करते हैं. शुकदेवजीने मूलमें 'ईश्वर' (शब्द) जो दिया है, उसका भावार्थ आचार्यश्री कहते हैं कि वह सर्व समर्थ होनेसे सर्व प्रकारकी आकृतियोंसे अपनेको प्रकट कर सकते हैं. इस समय हम लोगोंके ऐसे भाग्य नहीं हैं जो भगवान्के प्रकट रूपसे दर्शन हों, फिर भी, आप जैसे महानुभावोंकी कृपासे, भगवच्चरित्र कर्णोंको रसदायी हो रहे हैं. लोकमें काव्यादिमें लिखे हुए जो कृत्य(कथाएं) हैं वे चरित्र नहीं हैं ऐसी शंकाको भी स्थान नहीं है. क्योंकि श्लोकमें 'चरितानि' शब्द देकर यह बताया है कि वे चरित्र

काव्यादि ग्रन्थोंमें भी लिखे हुए हैं. श्लोकमें दिये हुए 'च' शब्दका भाव कहते हैं महापुरुषोंके मुखसे अचानक कभी कहे हुए कृत्य(कथाएं) भी चरित्र हैं, क्योंकि जिनको श्रवणकर, हम सब श्रोताओंकी कर्णेन्द्रिय रसवती होती है. श्लोकमें परीक्षितने शुकदेवजीको 'हे प्रभो' शब्द कहकर यह जताया है कि आप समर्थ हो तथा मेरे एवं सबके अन्तःकरणको जानते हो. यदि मुझमें कोई दोष हो, अथवा मैं विपरीत कहता हूं, तो आप दंड दे सकते हो।।१।।

१.निर्भयराम भट्ट कृत कारिकार्थ: 'हितकृत्' शब्दका तात्पर्य है भगवान्के चरित्र श्रवणसे कर्णेन्द्रियको जो रस(आनन्द) प्राप्त होता है वह श्रवणरूप फलात्मक साधारण गुण है. ऐसा फलदाता हितकारी चरित्र पहले 'येन येनावतारेण' श्लोकसे पूछा है. 'गुणकृत्' शब्दका आशय व्यक्त करते हुए कहते हैं कि 'गुण' शब्दसे सर्व दोषोंको नाशकर, सत्त्वशुद्धि आदि गुणोंको प्रकट करना समझें. इस प्रकारके गुणको प्रकट करनेवाला चरित्र उससे(हितकृत् चरित्रसे) भी अधिक है. यह गुणकृत चरित्र(यच्छृण्वतः) दूसरे श्लोक द्वारा पूछा गया है. इससे (गुणकृत्से) भी विशेष भक्ति(स्नेह) उत्पन्न करनेवाला(शकट भंग) लीलावाला चरित्र (अथान्यदपि) इस तीसरे श्लोकसे पूछा है. वह चरित्र विशेष रूपसे कहना स्थिति (मर्यादा) है.

२.स्थिति–स्नेह उत्पन्न कराने वाली मर्यादा.

भगवान्के चरित्र भाव जानकर, प्रेमसे सुननेमें आवें तो वे चरित्र, श्रोताओंके हृदयमें सर्व गुण उत्पन्न करते हैं. यदि बिना भाव जाने भी ऊपर ऊपरसे भगवत्चरित्र सुने जाए तो श्रोताके सर्व दोष नाश हो जाते हैं और सब गुण भी हृदयमें आ जाते हैं ऐसे चरित्रोंका प्रश्न निम्न श्लोकमें किया है.

यच्छृण्वतोपैत्यरतिर्वितृष्णा सत्त्वं च शुध्यत्यचिरेण पुंसः ।।
भक्तिर्हरौ तत्पुरुषे च सख्यं तदेव हारं वद मन्यसे चेत् ।।२।।

भगवान्के चरित्रोंमें जो 'अरति'(प्रेमका न होना) एवं अहंता, ममतासे उत्पन्न संसारकी जो तृष्णा है, ये दोनों भगवच्चरित्र सुननेसे नष्ट हो जाते हैं एवं अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है. भगवान्में भक्ति और भगवान्के भक्तोंमें मैत्री पैदा होती है. जो आप चरित्रोंको ऐसा मनोहर समझो तो कहो, अथवा ऐसे चरित्रोंको आप योग्य समझो तो ऐसे प्रकारसे वर्णन करो जैसे वे मनोहर हों ।।२।।

जिस मनुष्यका भगवान्के चरित्रमें प्रेम न हो, वह भी यदि भगवान्के चरित्रोंको सुने, तो उसकी भी भगवच्चरित्रमें प्रीति हो जाती है. भगवच्चरित्र श्रवणसे, भगवान्के माहात्म्यका और अपने(जीवके) ऊपर भगवान्के किये

उपकारोंका जो ज्ञान होता है, उससे भी भगवच्चरित्रमें प्रेम उत्पन्न होता है, अर्थात् अरति(प्रेमका अभाव)का नाश हो जाता है कि संसार दुःखदायी है और भगवान्के प्रेमकी उत्पत्तिमें सर्वथा बाधक है. इस ज्ञानसे श्रोताकी संसार विषयक तृष्णा भी, विशेषरूपसे नष्ट हो जाती है. ये दोनों क्रमशः गुण और दोषके अभावरूप हैं; अथवा साधारण रीतिसे दोनों दोषके अभावरूप हैं. अर्थात् भगवान्के चरित्र श्रवणसे भगवच्चरित्रमें जो प्रेमका अभाव था वह मिट जाता है एवं उसमें प्रेम होता है. यह चरित्र श्रवणका गुण है और उससे(चरित्र श्रवणसे) दोषरूप सांसारिक तृष्णाका नाश होना यह दोषका अभाव हुआ. अथवा साधारण रीतिसे, 'अरति' एवं सांसारिक तृष्णा दोनों दोषरूप थे. भगवच्चरित्र श्रवणसे इन दोनों दोषोंका अभाव हुआ. चरित्र श्रवणसे उत्पन्न गुणोंका वर्णन करते हैं कि स्वतंत्र श्रोता पुरुषका अन्तःकरण शीघ्र ही शुद्ध होता है अर्थात् काम क्रोधादि वासनाएं इसके अन्तःकरणसे नष्ट हो जाती हैं. ज्ञानात्मा(ज्ञान स्वरूप परमात्मा)के संसारसे अतीत अर्थात् अलौकिक चरित्रश्रवणसे जो फल होता है उसे कहते हैं. जैसे भगवान्के मुखारविन्दमें तीनों लोकोंका वर्णन श्रवण करनेसे अन्तःकरण, काम, क्रोध आदि वासना रहित होता है. ऊखल बन्धन लीलाके सुननेसे भगवान्में भक्ति होती है. यमलार्जुन भञ्जन लीला श्रवणसे भगवद्भक्तोंसे मैत्री होती है. 'च' अक्षरका भाव स्पष्ट करते हुए आचार्यश्री कहते हैं कि शुकदेवजीने 'च' अक्षर देकर कहा है कि इस लीलासे श्रोताका भगवद्भक्तोंके सेवकोंमें भी सखा भाव होता है. राजा परीक्षित् प्रार्थनापूर्वक कहते हैं कि आप उचित समझो तो यह भगवच्चरित्र जिस प्रकार मनोहर हो, उस प्रकार कहो. इस चरित्र श्रवणसे इस प्रकारका फल होगा जो आपकी कृपा होगी तो अधिकारानुसार सुनानेसे भगवच्चरित्र मनोहर(आनन्दायी) होगा. परीक्षितने इस प्रकार पांच प्रकारके चरित्र पूछे. शुकदेवजी उनका तृणावर्त–वधादिके क्रमसे वर्णन करते हैं:

१.आश्चर्यकारक तृणावर्तवधका चरित्र सुननेसे भगवान्के चरित्र श्रवणमें जो किसीमें भगवच्चरित्रकेलिये प्रेमका अभाव होगा तो वह नाश होकर उस चरित्रमें प्रीति उत्पन्न होगी.

२.भगवान्की जुम्भा(उबासी लेना) लीलाके श्रवण करनेसे सांसारिक तृष्णा नाश होती है क्योंकि भगवान्के पास सर्व पदार्थ हैं. अर्थात् भगवान् ही सकल

अर्थरूप हैं ऐसा ज्ञान श्रोताको होता है.

३.भगवान्के नाम और धूर्तता(माखनचौर्यादि) लीला श्रवण करनेसे अन्तःकरण, देह एवं इन्द्रियादि शुद्ध होते हैं.

४.भगवान्की उलूखल(ऊखल) बन्धन लीला श्रवणसे भक्ति होती है.

५.भगवान्की यमलार्जुन भंग लीला सुननेसे भगवद्भक्तोंके साथ सख्य होता है।।२।।

इन पांचो प्रश्नोंके उत्तरसे पहले श्रीकृष्णका कोई साधारणतया अद्भुत बालचरित्र कहो जिसके श्रवणसे कृष्णमें आसक्ति हो यह निम्न श्लोकमें पूछते हैं.

अथान्यदपि कृष्णस्य तोकाचरितमद्भुतम् ।।
मानुषं लोकमासाद्य तज्जातिमनुरुन्धतः ।।३।।

प्रारम्भमें(पांच प्रश्नोंके उत्तर देनेसे पहिले) श्रीकृष्णका कोई दूसरा अद्भुत बाल-चरित्र कहो, जो बाल-चरित्र मनुष्य लोकमें आकर उन्होंने मनुष्य जातिके अनुकूल किया हो ।।३।।

'अथ' शब्दका भावार्थ बताते हैं कि उन पांच प्रश्नोंके उत्तर देनेसे पहिले अथवा यह मेरा प्रश्न उनसे अलग है इसलिए इसका शीघ्र ही उत्तर देवें. उन पांच प्रश्नोंका उत्तर पीछे देवें. 'अन्यत्' शब्दसे उन प्रश्नोंसे इसकी भिन्नता बताते हैं. इसको स्पष्ट करते हुए आचार्यश्री कहते हैं कि परीक्षितने 'अन्यद्' शब्दसे 'पूतनावध' जैसे बाल्य अवस्थामें जो अन्य चरित्र किये हैं, वे पूछे हैं. इससे यह जताया कि दूसरे अवतारोंके बालचरित्र मैं नहीं पूछता हूँ. बाल अवस्थामें अद्भुत् चरित्र करनेकी सामर्थ्य प्रकट करनेकेलिये श्लोकमें भगवान्का नाम श्रीकृष्ण दिया है. अलौकिक सामर्थ्य प्रकट करते हुए कहते हैं कि वे चरित्र, इसलिए अलौकिक(मनको आकर्षण करनेवाले) हैं कि श्रीकृष्णने ये चरित्र, बाल आयुमें, उस समय कर दिखाये, जब आप उठ भी नहीं सकते थे. (तोकाचरितमद्भुतम्) अलौकिक आश्चर्यकारक इसलिए हैं कि उनके होनेके कारणकी कल्पना हो नहीं सकती है उसमें भी विशेष आश्चर्य इसलिए होता है कि भगवान्ने मानुष भाव धारणकर, अपनी बाल जातिके समान, क्रीड़ा करते हुए वे चरित्र किए हैं. पूतनावध जैसा एक अन्य चरित्र कहें यह प्रार्थना है।।३।।

श्रीशुकदेवजी परीक्षितके प्रश्नके भावको जान कर, वैसा ही शकट भंग लीलाका वर्णन १४ श्लोकोंसे करते हैं. चौदह श्लोकोंमें वर्णन इसलिए किया है

कि वह लीला दश इन्द्रियों और 'अन्तःकरण चतुष्टय'को[१] आनन्द देनेवाली है अथवा दश इन्द्रियों और 'अन्तःकरण चतुष्टय'का भगवान्में प्रेम उत्पन्न करानेवाली है.

श्रीशुकः उवाच

कदाचिदौत्थानिककौतुकाप्लवे जन्मर्क्षयोगे समवेतयोषिताम् ।।
वादित्र–गीत–द्विज–मन्त्र–वाचकैः चकार सूनोरभिषेचनं सती ।।४।।

किसी समय, जब भगवान्का जन्म नक्षत्र था, उसी दिन निष्क्रमण[२] संस्कार चौथा महीना होनेसे किया. तदर्थ किये हुए उत्सवमें आई हुई स्त्रियोंके मध्यमें यशोदाने बाजे गाजेके साथ स्त्रियों द्वारा गीत गाते हुए एवं ब्राह्मणों द्वारा स्वस्तिवाचन आदि मन्त्रोंके उच्चारण होते हुए अपने पुत्रका अभिषेक किया ।।४।।

किसी समय, निष्क्रमण[३] संस्कार कर्म करनेका अवसर, चौथे मासमें आया, उस दिन भगवान्के जन्मका रोहिणी नक्षत्र भी था. औत्थानिक कर्म करनेसे, चित्तमें उल्लास एवं आनन्दका आविर्भाव हुआ जिससे यह विचार हुआ कि आज निष्क्रमण संस्कार एवं जन्म नक्षत्रका योग है इसलिए यह उत्सव धूमधामसे, प्रेमपूर्वक करना चाहिए. इस उत्सवको मनानेकेलिये आई हुई स्त्रियोंके बीचमें, तुरी आदि वाद्य, स्त्री और पुरुषों द्वारा गाये हुए गीतोंके साथ एवं ब्राह्मणों द्वारा उच्चारण किये हुए मन्त्रोंके साथ यशोदाजी पुत्रका अभिषेक करने लगीं अर्थात् ब्राह्मणोंने कलश स्थापनकर, जो जल अभिमन्त्रित किया था, उससे पुत्र पर प्रोक्षण(सिञ्चन) किया, मंगल स्नान तो पहिले किया ही था. प्रोक्षण संस्कार पुत्रके अभ्युदयकेलिये किया. श्लोकमें यशोदाजीकेलिये 'सती' विशेषण दिया है उसका भावार्थ बताते हैं कि वह पतिव्रता थीं और क्योंकि नन्दरायजीकी इस प्रकारसे विधिपूर्वक और धूमधामसे उत्सव करनेकी इच्छा थी इसलिए यशोदाने यह उत्सव घरमें ही किया दूसरे स्थान[४] पर यह उत्सव नहीं किया।।४।।

१. मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार.

२. घरसे प्रथम बार बच्चेको बाहिर ले जानेका संस्कार.

३. श्रीपुरुषोत्तमजी प्रकाशमें 'निष्क्रमण' संस्कारके स्वरूपको बताते हैं कि उसमें क्या क्या किया जाता है. पहिले बालकको मंगल स्नान करके इष्ट देवताका पूजन किया जाता है (उद्वाते वा) इत्यादि मन्त्र पढ़कर बालकका शृंगार करनेमें आता है. अनन्तर

बाजे गाजेके साथ देवालय, गंगा आदि नदीके किनारे पर, सुन्दर उद्यान अथवा बान्धवोंके गृह आदि स्थानोंमें से किसीके स्थान पर ले जाते हैं. बान्धवादि मित्रों द्वारा मिली हुई भेंट लेके फिर घर आकर पुण्याह वाचनादि कर्म करके आरती की जाती है तथा दक्षिणादि देकर उत्सव पूर्ण किया जाता है.

४.दूसरे स्थानका भाव लेखकार कहते हैं कि सती पतिव्रता थी इसलिए पिताके घर यह उत्सव नहीं किया. दूसरे स्थानका आशय श्रीपुरुषोत्तमजी प्रकाशमें कहते हैं कि जहां नन्दरायजी नहीं थे वहां नहीं किया.

इस प्रकार चौथे श्लोकमें महोत्सवका वर्णनकर, अब बालक (श्रीकृष्ण)की विस्मृतिकेलिए उन्हें पलंगडी पर पौढनेका वर्णन नीचेके श्लोकमें किया जाता है.

नन्दस्य पत्नी कृतमज्जनादिकं विप्रैः कृतस्वस्त्ययनं सुपूजितैः।।
अन्नाज्यवासःस्रगभीष्टधेनुभिः सञ्जातनिद्राक्षमशीशयच्छनैः ।।५।।

स्नानादि किये हुए एवं अन्न, घृत, वस्त्र, पुष्पमालाओंसे मन चाहे इच्छित पदार्थों तथा गौओंके दानसे पूजित ब्राह्मणों द्वारा स्वस्तिवाचन किये हुए निद्राशील अपने पुत्र(भगवान्)को नन्दजीकी पत्नी(यशोदा)ने धीरे-धीरे पौढाया ।।५।।

नन्दजीकी पत्नी थी अतः उसको नन्दजीके इच्छित वा यशोवर्द्धक कार्य अवश्य करने थे, यदि वे कार्य न करें तो ज्ञातिवाले अप्रसन्न होंगे. ज्ञाति-बान्धवोंके आदरार्थ समय निकालनेकेलिये यशोदाजीने मज्जनादिक कराये हुए, निद्राशील, भगवान्को इस तरह धीरेसे पौढाया, जैसे उनकी निद्राका भंग न हो. इस प्रकारसे निद्राशील भगवान्को पोढ़ानेसे पूर्व जो जो कार्य किये उनका वर्णन करते हैं. पहिले स्त्रियोंको गीतादि गानेकेलिये बुलाकर, उनका भली प्रकारसे आदर सत्कार किया. स्नान स्थानको सजाया, आई हुई स्त्रियां गीत गाने लगीं, गीतोंके गाते हुए, यशोदाजीने तेल फुलेल आदि सुगन्धित द्रव्योंसे पुत्रको स्नान कराके, आभूषण पहनाये और कस्तूरी गोरोचनादिसे तिलक किया, तथा स्थानसे पैदा हुई आर्द्रता धूपादिसे मिटाई. पश्चात् सर्व प्रकारके आभूषणोंसे सुसज्जित बालक(भगवान्)की ब्राह्मणों द्वारा स्वस्तिवाचन आदिसे रक्षा-बन्धन आदि क्रिया कराई. कर्म करानेवाले उन ब्राह्मणोंको घृत युक्त अन्नादिका भोजन करवाया और उनको वस्त्र दिये, जिससे उन ब्राह्मणोंका लौकिक सिद्ध हुआ, वैदिक कर्मकी पूर्णताकेलिये, गौ दान किया, ब्राह्मणोंकी मालाओं द्वारा पूजा की

जिससे यशकी वृद्धि हुई. ब्राह्मण लोग चार प्रकारसे प्रसन्न होते हैं, प्रथम सात्त्विक भोजन, उसके पश्चात् वस्त्र इन दोनोंसे स्वयं पूर्ण होकर इच्छित पदार्थ अर्थात् धनकेलिये प्रार्थना करते हैं, तत्पश्चात् वैदिक कर्म सिद्धिकेलिये गायकेलिये, इन चारोंसे और माला आदिसे पूजा होने पर अन्तःकरणसे प्रसन्न होकर आशीर्वाद देते हैं. इस प्रकार चतुर्विध पूजनसे ब्राह्मण प्रसन्न हुए. इस प्रकार अलंकृत भगवान् स्वस्तिवाचनादि कर्म पूर्ण होते ही, सोनेकी चेष्टा करने लगे.

आचार्यश्री भगवान्के निद्राशील[१] होनेका रहस्य बताते हैं कि भगवान्ने निद्रा चेष्टासे आंखें मूंदकर ब्राह्मणोंकी ज्ञान-शक्ति हर ली. ज्ञान-शक्ति लुप्त होनेसे उन्होंने भगवान्को भगवान् न समझा किन्तु यशोदाका पुत्र समझा. जिससे वे भगवान्को आशीर्वाद देने लगे।।५।।

१.लेखकार: श्लोकमें(सञ्जातनिद्राक्षम्) पदमें आये हुए (सम्) उपसर्गका आशय स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि भगवान्ने आंख मींचकर ब्राह्मणोंकी ज्ञान-शक्ति खींच ली. जिससे यशोदाजीने जो पूजामें दिया था वह ग्रहण किया. भगवान्को आशीर्वाद भी दिया. भगवान् आंख मींचकर ज्ञान-शक्तिका हरण न करते, तो ब्राह्मण उन्हें भगवान् समझकर, न पूजा लेते और न आशीर्वाद ही देते.

इस प्रकार करनेसे अर्थात् आंखोंमें निद्रा लानेसे सबमें बर्हिमुखता आ गई. इसका वर्णन इस निम्न श्लोकमें किया जाता है.

औत्थानिकौत्सुक्यमना मनस्विनी समागतान् पूजयती व्रजौकसः ।।
नैवाशृणोद् वै रुदितं सुतस्य सा रुदन् स्तनार्थी चरणावुदक्षिपत् ।।६।।

औत्थानिक कर्म(निष्क्रमण-संस्कार) करनेमें, उत्साह एवं अभिमान युक्त मनवाली यशोदाजी, उत्सवमें आए हुए व्रज-वासियोंका पूजन कर रही थीं, इसलिए उन्होंने पुत्रका रोना सुना ही नहीं, भगवान्ने स्तनपानकी इच्छासे रोते रोते अपने दोनों चरण उछाले(ऊंचे किये)।।६।।

भगवान्ने आंखोका निमीलन(मींचना) ब्राह्मणोंकी ज्ञानशक्ति तिरोहित करनेकेलिये किया था किन्तु इससे वहां स्थित सबकी ज्ञानशक्ति भी तिरोहित हो गई, जिससे भगवत्कार्यकी तुलनामें लौकिक कार्यकी प्रबलता हो गई. अतः सबका मन लौकिक कार्यमें आसक्त हो गया. यद्यपि पूर्वके दो अध्यायोंमें की हुई लीलाओंसे यशोदाका भगवान्में स्नेहरूप निरोध सिद्ध किया गया है, अतः यशोदाका लौकिकमें मन आसक्त नहीं होना चाहिये था फिर भी, जो लौकिक

कार्यमें यशोदाका मन लगा है उसका कारण यह है कि यह लौकिक कार्य भगवान्‌से सम्बन्धवाला है. इसलिए यशोदाकी बुद्धि ऐसी हुई, जिससे इस संस्कारकेलिये किए जानेवाले लौकिक कार्य करनेमें यशोदाका मन ऐसी उत्सुकता एवं अभिमानवाला हो गया, जो भगवत्सम्बन्धी कार्य गौण हो गया और लौकिक कार्य मुख्य एवं बलवान हो गये. इससे श्लोकमें शुकदेवजीने यशोदाजीको 'मनस्विनी' विशेषण देकर बताया है कि इस समय यशोदा, लौकिक कार्य करनेमें अभिमानवाली है, जिससे भगवत्सम्बन्धी विशेष कार्य सब भूल गई है. केवल आये हुए बाल, स्त्री और पुरुषोंका माला चन्दन उपहार आदिसे पूजनादि करनेमें उत्साह पूर्वक भाग ले रही है. इस प्रकार लौकिक कार्यमें आसक्त चित्त होनेसे, यशोदा बाहर और भीतर दोनों प्रकारसे बहिर्मुख हुई. यशोदा जिनकी पूजा कर रही थी, यदि वे सन्त अथवा भगवदीय होते, तो भी कुछ दोष नहीं होता, किन्तु यशोदा जिनका पूजन कर रही थी, उनके रहनेका स्थान तामस व्रज था, जिससे वे तामस थे, अतः पूजाके योग्य भी नहीं थे. इस प्रकारके कार्यसे, यशोदाकी बहिर्मुखता एवं लौकिक आसक्ति देखकर, भगवान्, जिनका प्राकट्य निरोध करनेकेलिये ही हुआ है, उन्होंने लौकिक प्रकारसे ही, यशोदाका निरोध करनेकेलिये रोना प्रारम्भ किया. आचार्यश्री रोनेका भावार्थ बताते हुए कहते हैं कि एक तो भगवान् इसलिए रोने लगे कि अ ह ह! मेरे स्नेही भी इस प्रकार बहिर्मुख हो जाते हैं और दूसरा रोनेका कारण यशोदादिकी अपनेमें आसक्ति कराना था. आचार्यश्री कहते हैं कि भगवान्‌का नाम(शकटासुर खण्डन) भी किसी कल्पमें था क्योंकि उस कल्प[२]में भगवान्‌ने जब आंखें बन्द कर, ज्ञानशक्तिका तिरोधान किया था, तब वहां धरे हुए शकटमें, असुरने प्रवेश किया. वह असुर भगवान्‌को लेनेकेलिये आया था. उस असुरका नाश करनेसे उस कल्पमें भगवान्‌का शकटासुर खण्डन नाम प्रसिद्ध हुआ. यहां अब(सारस्वत कल्पमें) शकटमें असुरका प्रवेश नहीं हुआ, केवल शकटको ही तोड़ा है, उसके तोड़नेसे भगवान्‌ने लौकिक पदार्थोंमें जो आसुर धर्म थे, उन पदार्थोंमें यशोदादिकोंका जो अभिनिवेश(आसक्ति) हो गया था उस अभिनिवेशका नाश किया. क्योंकि मनुष्योंका जिनमें अभिनिवेश हो जाता है, उन साधारण धर्मोंको मनुष्य छोड़ नहीं सकते. इस प्रकार, यशोदा सब तरहसे बहिर्मुख होनेसे, भगवान् द्वारा सचेत कराने पर भी सचेत न हुई और सचेत होनेके प्रकारको भी न समझ

सकी. अर्थात् भगवान्का रोना जो मेरा लौकिकमें अभिनिवेश हुआ है उसके छुड़ानेकेलिये है. इसको न समझ सकी इसलिए केवल सुना नहीं, सो नहीं, किन्तु आसक्तिके कारण, यशोदामें श्रवणकी सम्भावना भी न थी. इसलिए आचार्यश्रीने 'एवं' शब्द दिया है. आचार्यश्री श्लोकमें दिये हुए 'वै' अक्षरका भावार्थ बताते हैं कि यशोदाने रुदन सुनकर, कार्यकी व्यग्रताके कारण, रोने पर ध्यान नहीं दिया होगा, ऐसी शंका नहीं करनी. इसलिए शुकदेवजीने 'वै' शब्द देकर बताया है कि वह लौकिकमें इतनी आसक्त हो गई थी कि रोना सुना ही नहीं. यदि रोना सुना होता तो यशोदाका आधा भी चित्त पुत्रकी तरफ हो आता, अधिक रोदनसे तो चित्त यहां अवश्य होता. किन्तु यशोदाने रुदन सुना ही नहीं. पुत्रका रोना, यदि कैसी भी माता सुने तो पुत्रके पास आनेमें क्षणमात्र भी विलम्ब न करे. यशोदाने तो बहुत कष्टसे, वृद्धावस्थामें पुत्र पाया है, वह यदि रुदन सुनती तो अवश्य आकर पुत्रको ले लेती; इसलिए यह निश्चयसे कहा जा सकता है कि यशोदाने रुदन सुना ही नहीं. कारण कि आसुर भाववाली वस्तुओंमें अभिनिवेश होनेसे यशोदा बहिर्मुख हो गई थी. भगवान्ने जब देखा कि रोनेसे भी यशोदाकी आसक्ति वहांसे न छूटी, तब अपने चरणोंको जोरसे उछालने लगे, कारण कि वाणी[३]की अपेक्षा कर्तव्य प्रबल है. इसलिए भगवान्ने भी वाणीसे कार्यकी सिद्धि हुई न देखकर, कर्तव्य करनेकेलिये चरणोंको उछाला. इससे भगवान्ने मनसे ही निरोध क्यों नहीं किया, यह शंका भी मिटा दी. यदि भगवान् रोदन करनेके अतिरिक्त केवल पादोंको उछालके शकट भंग करते तो बालक आदि यों समझते कि भगवान्को शकट तोड़नेमें बहुत परिश्रम करना पड़ा. रोते रोते माताके आनेसे जैसे बालक स्वभावसे पैरोंको ऊपर उछालते हैं वैसे ही श्रीकृष्णने भी रोकर माताओंको बुलाया. वह न आई तब पैरोंको उछाला. पैरोंके उछालनेसे शकट भंगका कार्य आनुषंगिक[४] हो गया. इससे गोपादिकोंने समझा कि भगवान्ने शकट भंगकेलिये कोई परिश्रम नहीं किया है. पैरोंके उछलनेसे शकट भंग स्वतः हो गया है. भगवान्का रोदन तो यशोदाकी बहिर्मुखता जतानेकेलिये था, नहीं तो, मनसे यशोदाका निरोध क्यों नहीं कराते. यशोदाजीका निरोध तो भगवान्ने अपने कार्य सिद्धिकेलिये किया है. यदि यह निरोध भगवान् अपने लिये न करते तो दूसरोंकी पञ्चपर्वा अविद्याको नाश करनेकेलिये जो लीला भगवान् आगे करेंगे, जिनसे उनका निरोध सिद्ध होगा वे ही यहां करते. वे न कर, केवल रोदन वा पैरोंको

उछालनेसे शकट भंग किया, इससे जाना जाता है कि यह यशोदाका निरोध भगवान्ने अपने स्वार्थकेलिये ही किया है. इसलिए शुकदेवजीने कहा है कि (स्तनार्थी) भगवान् स्तनकी ही इच्छावाले थे, न कि दूधके पीनेकी इच्छावाले थे. स्तनकी इच्छा क्यों की? इसको समझाते हुए आचार्यश्री आज्ञा करते हैं कि यशोदाके स्तनोंमें उत्पन्न हुआ दूध मेरे लिये है अतः उसका विनियोग मुझमें ही होना चाहिए. इसलिए केवल स्तनकी इच्छा की. जब भगवान्को दूधपान करना नहीं था तो स्तनकी इच्छा क्यों की. इस सन्देहको मिटानेकेलिये आचार्यश्री कहते हैं कि जैसे मृत्स्नाभक्षण लीलामें प्रत्यक्ष तो यों दिखनेमें आया कि मृत्तिका भक्षण कृष्णने किया है किन्तु कृष्णके द्वारा मृद्भक्षण अन्तःस्थिति बालकोंने किया था वैसे ही यहां भी भगवान्को अन्तःस्थित बालकोंकी भूख मिटानेकेलिये स्तनकी आवश्यकता हुई. इसलिए स्तनकी इच्छा की यह कहा गया है. भगवान्ने उन स्व अन्तःस्थापित गोप बालकोंका दुष्टत्व तो पूतना पर क्रोध करनेसे ही नाश कर दिया था. अब उन गोप बालकोंको अपने समान बनानेकेलिये, स्वभोग्य गोपिकाओंके दर्शनमें प्रतिबन्धक दोषोंको मिटानेकेलिये उन गोप बालकोंको गोपिकाओंमें स्थापित करनेके योग्य बनानेकेलिये और ज्ञानोपदेश देनेकेलिये पहले अपने लिये उत्पन्न निर्दोष दूध उनको पिलाते हैं. वे गोप बालक क्षुधासे बहुत पीड़ित थे इसलिए भगवान् स्तनार्थी हुए हैं. भक्तिसे ही उनका निस्तार(उद्धार) हुवा, इसको प्रकट करनेकेलिये ही दो चरणोंके उछालनेकी क्रिया हुई. दो चरणोंसे लीला तो अवतार दशामें ही हो सकती है. आचार्यश्री कहते हैं कि अवतार विषयिणी भक्ति(अवतार समयकी भक्ति) ही अतिपुष्टि(विशेष अनुग्रहवाली) है, इसीलिए मूलमें 'चरण' शब्द द्विवचन[५] में दिया है।।६।।

२.श्रीधरजीके अतिरिक्त अन्य टीकाकार कल्पान्तरकी कथाको लेकर ही इस कल्पमें भी शकटमें असुर प्रवेश एवं उसका नाश मानते हैं.

३.कहनेसे कर बतानेमें बल विशेष होता है.

४.एक कार्य करते हुए बीचमें दूसरा कार्य अपने आप हो जाय उसे आनुषंगिक कहते हैं.

५.अनवतार दशामें भगवान्के चरणादि सर्वत्र अनन्त हैं. लेख.

भगवान्के चरण उछालनेसे जो कुछ हुआ उसका वर्णन निम्न श्लोकमें किया गया है.

अधः–शयानस्य शिशोरनोऽल्पकप्रवाल–मृदङ्घ्रि–हतं व्यवर्तत ।।

विध्वस्त–नाना–रस–कुप्य–भाजनं व्यत्यस्त–चक्राक्ष–विभिन्न–कूबरम्।।७।।

इसके पश्चात् शकटके नीचे पोढे हुए बालरूप भगवान्के नवीन कोमल आम्रपत्रके समान कोमल एवं लाल चरणके लगनेसे, हिल कर शकट उलटा हो गया. उसमें धरे हुए अनेक प्रकारके रसोंसे भरपूर चर्म पात्र टूट गए और पहिया, धुरी एवं जुवाडा सब छिन्न–भिन्न हो गए ।।७।।

'अधःशयानस्य' पदका आशय बताते हुए आचार्यश्री कहते हैं कि माता यशोदा, अपने पुत्र श्रीकृष्णको धूप न लगे, इसलिए गाड़ेकी छायामें पोढ़ाकर चली गई थी. भगवान् माताके इस दुलारको तब अंगीकार करना चाहते थे जब कि माता श्रीकृष्णमें निरोधवाली होती अभी तो यशोदा बहिर्मुख है. इसलिए श्रीकृष्णने शकटको तोड़कर माताको बता दिया कि बहिर्मुख हुई आपकी छाया भी मुझे नहीं चाहिए.

'शिशोः' शब्दका भावार्थ बताते हैं कि उठनेकी भी जिसमें शक्ति नहीं हो ऐसे बालक भगवान् तो सर्वकारण समर्थ हैं, उनमें उठनेकी भी शक्ति नहीं है, यह कहना असंगतसा प्रतीत होता है. इसके उत्तरमें कहते हैं कि भगवान् तो सर्वकरण समर्थ हैं, उठकर भी शकटको उलटा कर सकते थे; किन्तु भगवान्ने सबकी बुद्धि ऐसी बना दी थी, जो सब भगवान्को बालक ही समझते थे. इसलिए भगवान्ने उस बालपनेके विरुद्ध उठकर गाड़ा उलटाना आदि कार्य न किया. उस गाड़ेको चरण द्वारा उलटाकर अपनेसे भिन्न एवं केवल सम्बन्ध ही चरणोंसे बताया. चरण द्वारा शकटको उलटा करनेसे भगवान्ने अपने चरणोंका माहात्म्य प्रकट किया. भगवान्के चरणोंके भाव बताते हुए कहते हैं कि शुकदेवजीने 'अल्पक' शब्द देकर यह कहा है कि भगवान्के चरण, आम्रके नवीन पत्ते तो लाल एवं कोमल होते हैं; किन्तु भगवान्के चरण उन पत्तोंसे भी कोमल एवं ऊर्ध्व रेखावाले लाल थे. ऐसे दोनों चरणोंसे वा एक चरणसे, ताड़ित वह भारी शकट, जो हिल भी नहीं सकता था, वह उलटा होकर गिरा इससे यह शंका भी मिटा दी कि मारण समयमें चरण महान् हुए होंगे. गाडेमें धरे पदार्थोंका नाश तो आगे(श्लोकसे उत्तरार्धमें) वर्णन करेंगे. पूतना–वध कार्यके माहात्म्यसे भी, शकट भञ्जनका माहात्म्य विशेष है; क्योंकि पूतनाके वधमें पूतनाको भगवान्के दो हाथ और दो ओष्ठोंका स्पर्श हुआ था और यहां एक ही कोमल चरणका स्पर्श हुआ और वह चरण न केवल कोमल था; किन्तु उसकी आकृति भी वैसी छोटी ही थी. चरण कोमल एवं छोटे होनेसे,

शकटको स्पर्श होते समय, किसी प्रकारका क्लेश तो न हुआ, किन्तु सुख ही हुआ. छठे श्लोकमें 'चरणौ' द्विवचन दिया है जिसका अर्थ दो पाद होते हैं, ७वें श्लोकमें 'अङ्घ्रिहतं' समास है, जिसका अर्थ 'दो चरणोंसे' अथवा 'एक चरण'से दोनों तरह हो सकता है. ९वें श्लोकमें 'पादेन' एक वचन देकर बताया है कि एक पादसे शकट उलटा कर दिया. इन तीनोंको ध्यानमें रखकर आचार्यश्री निर्णय करते हुए आज्ञा करते हैं कि यद्यपि भगवान्ने दो पैर उछाले थे; किन्तु गाड़ेको एकका ही स्पर्श हुआ, इस एक चरणसे ही गाड़ा उलट गया. शकट भञ्जन कार्य होनेमें, भगवान्की अवस्था(आयु) तथा साधन(नवीन आम्र पत्र समान मृदु पाद) दोनों ही विपरीत(कार्य करनेमें असमर्थ) थे; क्योंकि शकट, भारसे ऐसा लदा हुआ था, जो कोई हिला भी न सके. दो विशेषण देकर, शकटके भीतरी और बाहरके भारीपनको सिद्ध किया है. गाड़ेके भीतरके भागमें धरे हुए अनेक प्रकारके रसोंवाले, घृत, मधु, गुड़, दधि एवं नवनीतसे भरे हुए चर्म निर्मित पात्र, (जो उस देशमें 'कुप्य' नामसे प्रसिद्ध है, 'भाजन' पदसे जाना जाता है कि उस देशमें व्यवहारमें आते हैं) भी गाड़ेके उलटे होने पर नीचे गिर पड़े. गाड़ेमें इन रसोंसे भरे हुए पात्र धरे थे यह कार्य भगवान्को अच्छा न लगा, क्योंकि जब मैं सर्वनिधि आपके पास विद्यमान हूँ तब दूसरे पदार्थोंके(जो अनित्य नाशवान हैं उनको) इकट्ठे करनेकी कौनसी आवश्यकता है? दूसरे सबसे उत्तम नित्य रस जो मैं हूं उसको तो नीचे धरा है और अनित्य रसोंको ऊपर धरा है. इसलिए भगवान्ने शकट स्थित सब रसोंका अधःपात करा दिया. आचार्यश्री कहते हैं कि भगवान्से ऊपर अन्य रस(पदार्थ) ठहर नहीं सकते. (इससे यह शिक्षा लेनी चाहिए कि जहां भगवान् विराजमान हों, वहां ऊपर कोई वस्तु नहीं धरनी चाहिए). दूसरे विशेषण 'व्यत्यस्त'का भाव बताते हुए कहते हैं कि शकटका बाहरका भाग तो बिना रसवाला था. और वह भी रसरूप भगवान्के ऊपर स्थित था, इसलिए वह स्वरूपसे नष्ट हो गया, उसका एक एक अंग अलग हो गया. जैसे कि एक पहिया एक ओर दूसरा पहिया दूसरी ओर जा पड़े; धुरी टूट गयी; जुआ छिन्न-भिन्न हो गया. आचार्यश्री इस लीलाके रहस्यको प्रकट करते हुए आज्ञा करते हैं कि जैसे शकटमें दो चक्र थे, वैसे ही संसारके काल रूपी दो चक्र(जन्म-मरण) हैं जिनको अहंकारने धारण कर रखा है. इस अहंकारका नाश हो तो संसारके चक्र(जन्म-मरण) नष्ट हो जावें. अहंकारका नाश भक्तिके एक अंग(श्रवण)से हो जाता है,

जैसे यहां भक्तिके एक अंग चरण स्पर्शसे शकटका नाश हुआ है. क्रिया-शक्ति भगवद्-भक्तिका एक देश भी अहंकारादि दोषोंसे बलवान् है यह उचित ही है. कूबर उच्च है; इसका आशय कहते हैं कि स्वभावसे उच्च होते हुए भी यदि वे भगवद्विरुद्ध धर्मवाले हैं, तो भक्तिके एक अंशसे ही नष्ट हो जाते हैं. इससे भगवान्ने वह घर[१] ही दूर अर्थात् नाश कर दिया।।७।।

१.इसका स्पष्टीकरण करते हैं कि 'वह घर ही दूर कर दिया' इसका रहस्य यह है कि भगवान्ने शकट भंजनसे अविद्याकृत संसार(अहन्ता ममतारूप)को उत्पन्न करनेवाला घर ही दूर कर दिया, अर्थात् संसार ही नष्ट कर दिया. प्रकाश.

लौकिकके नाश होनेसे सबका ध्यान नाश कर्ता भगवान्की ओर गया. परन्तु सबका ध्यान पहले टूटे हुए शकटकी ओर गया जिसका वर्णन इस आठवें श्लोकमें करते हैं.

दृष्ट्वा यशोदाप्रमुखा व्रजस्त्रिय औत्थानिके कर्मणि याः समागताः ।।
नन्दादयश्चाद्भुतदर्शनाकुलाः कथं स्वयं वै शकटं विपर्यगात् ।।८।।

औत्थानिक(करवट लेने) कर्मके उत्सवमें एकत्रित हुई यशोदा तथा प्रमुख व्रज स्त्रियां और नन्दादिक गोप इस अद्भुत(शकट गिर जानेके) कार्यको देखके व्याकुल हुए और कहने लगे कि गाडा आप ही कैसे उलट गया ।।८।।

'दृष्ट्वेति' यशोदा आदि व्रज स्त्रियों और नन्दादि गोपोंने भगवान्को वा भगवान्का शकटके साथ जो सम्बन्ध था, उस ओर ध्यान न देकर, दूर गिरे हुए शकटको ही पहले देखा. स्त्रियोंमें मुख्य यशोदाजी थीं और गोपोंमें नन्दजी मुख्य थे. आचार्यश्री आज्ञा करते हैं कि 'व्रजस्त्रियः' शब्दसे गोपिकाएं(प्रकाशकार कहते हैं 'गोपिकाएं' अर्थात् स्वामिनिएं) होंगी ऐसा भ्रम किसीको हो, तो उस भ्रम निवारणार्थ श्रीशुकदेवजीने 'औत्थानिके कर्मणि याः समागताः' पंक्ति देकर इस भ्रमका निवारण किया है. वे व्रज स्त्रियां गोपिकाएं न थीं; किन्तु औत्थानिक कर्मोत्सवमें जो भाग लेनेकेलिये आईं थीं, वे स्त्रियां 'व्रजस्त्रियः' पदसे समझनी. गोपिकाओंको तो इस लीलाका ज्ञान होगा. 'च' अक्षरका भाव बताते हुए आचार्यश्री कहते हैं कि बाहरसे भी आए हुए गोप इस अद्भुत कार्यको देखकर स्त्रियोंसे भी विशेष व्याकुल हुए. और सब कहने लगे कि अरे क्या हुआ? क्या होगा? शकट गिरने पर सब विचार करने लगे कि यह 'कथं' कैसे स्वयं गिरा? इसमें बलीवर्द(बैल) आदि तो शकटमें जुटे नहीं थे, जिन्होंने उसे गिराया हो,

इसलिए निश्चयसे यह शकट उलटा हो, इधर-उधर टुकडे होकर दूर जाके पड़ा है।।८।।

लेख: श्रीवल्लभलालजी कहते हैं कि १०।२७।१५ 'तोकायित्वा रुदन्त्यन्ये' इस श्लोकमें लिखा है कि गोपिकाएं स्वयं शकट भंजन लीला करेंगी इससे उन्होंको इसका ज्ञान होगा. आचार्यश्रीके इस कहनेका तात्पर्य है कि इस समय यहां इस लीलाको देखनेवाली व्रज स्त्रियां हैं न कि गोपिकाएं हैं.

प्रकाश: यशोदाजीका साधारण(लौकिक)में प्रवेश हुआ तो 'मुख्यों'का भाव बताते हैं कि 'रोहिणी आदि स्त्रियों'का भी उसमें प्रवेश हुआ. इसलिए नन्दादिक भी औत्थानिक कर्म है, ऐसा जानकर बाहर न जाकर गृह में ही रुके रहे.

भगवान्की कृतिमें असम्भावना समझनेवालोंको दूसरोंके कहने पर भी विश्वास न हुआ. इसका वर्णन निम्न दो श्लोकोंसे करते हैं.

ऊचुरव्यवसितमतीन् गोपान् गोपीश्च बालकाः ।।
रुदतानेन पादेन क्षिप्तमेतन्न संशयः ।।९।।

वहां स्थित बालकोंने संदेहग्रस्त(शकट कैसे गिरा? किसने गिराया?) गोप एवं गोपियोंको कहा कि यह शकट इस बालकृष्णने ही रोते-रोते अपने एक पैरसे गिरा दिया है. इसमें किसी प्रकारके सन्देह करनेकी आवश्यकता नहीं ।।९।।

आचार्यश्री 'बालकाः' शब्दका भाव बताते हैं कि भगवान्केलिये जिनके अन्तःकरणमें विपरीत भावना हो, उनको भगवान् द्वारा की हुई लीला नहीं सुनानी चाहिए यह शास्त्रका सिद्धान्त है. तब क्यों बताई गई. इसलिए श्रीशुकदेवजीने 'बालकाः' पद दिया है; जिसका आशय कहते हैं कि वे(बालक) ज्ञानवाले थे; किन्तु उनमें विवेक(छानबीन करनेकी बुद्धि) नहीं थी, इसलिए गोप गोपियोंके अधिकार और स्वभावका विचार न कर सके. जब उन(बालकों)में विवेक नहीं था तो ज्ञानवाले कैसे कहते हो? इसके उत्तरमें आज्ञा करते हैं कि बालकोंको यह ज्ञान था कि जिनको हम सुना रहे हैं, उनमें विपरीत ज्ञानका स्वभाव दोष नहीं है, वे केवल इसका(शकट किसने गिराया) निर्णय अब तक नहीं कर सके हैं. अभी तक इसका उपाय ढूंढनेमें ही लगे हुए हैं न कि कुछ भी विपरीत चिन्तन करते हैं. यदि विपरीत चिन्तन करते, तो कहनेके योग्य न होते. ये गोप और गोपियां दोनों स्वभावसे निर्दोष हैं. गोपोंका धर्म गौ-रक्षा करना है, गोपियोंका धर्म पातिव्रत्य पालना है. 'च' अक्षरका आशय कहते हैं कि ब्राह्मण भी वैसे ही निर्दोष एवं

धर्मपालक है, इस प्रकार दूसरे भी. इससे जाना जाता है कि वे बालक ज्ञानी थे, ज्ञानी होनेके कारण ही उन्होंने समझा कि जो कारण ढूंढ रहे हो उसको बिना पूछे भी कहना चाहिए. इसलिए बालकोंने उनको कह दिया कि इस बालकने रोते हुए एक पैरसे यह शकट दूर फेंक दिया. इसमें किसी प्रकारका संशय नहीं है क्योंकि हमने यह प्रत्यक्ष देखा है. प्रत्यक्षमें किसी प्रकारका विरोध नहीं करना चाहिए. प्रत्येक कल्पना प्रत्यक्षके अनुसार अनुसरण करनी चाहिए. इसलिए बालकोंकी सम्मति है कि इसमें संशयका अभाव है. इसके फेंकनेका कार्य बालकने किया है, तो वह दोषी है. इसके उत्तरमें ही बालकोंने कहा है कि इसका भी दोष नहीं है क्योंकि इसके गिरनेका निमित्त कारण बालकका रोना ही है. कर्ता(भगवान्) और करण(चरण)से यह कार्य होने जैसा नहीं है. भगवान् बालक और पैर कोमल, ये दोनों शकटको गिरा नहीं सकते. यह असम्भावना बालकोंने तो अंगीकार न की, किन्तु गोप गोपियोंको फिर भी विश्वास न हुआ।।९।।

इस निम्न श्लोकमें कहते हैं कि गोपोंने बालकोंके वचनों पर विश्वास न किया, क्योंकि प्रत्यक्ष भी तर्क विरुद्ध हो तो नहीं मानना चाहिए. इसलिए शुकदेवजी कहते हैं कि 'न ते श्रद्दधिरे गोपा'.

न ते श्रद्दधिरे गोपा बालभाषितमप्युत ।।
अप्रमेयं बलं तस्य बालकस्य न ते विदुः ।।१०।।

उन गोपोंने बालकोंके कहने पर भी विश्वास नहीं किया कारण कि वे गोप उस बालक(भगवान्)के अप्रमेय बलको नहीं जानते थे ।।१०।।

गोपोंने बालकोंके वचनों पर विश्वास नहीं किया[१]. श्लोकमें दिये हुए 'ते' अक्षरका भावार्थ आचार्यश्री बताते हैं कि वे गोप, बहिर्मुख(लौकिकमें आसक्तिवाले) थे. उनको बालकोंके वचनोंसे यह ज्ञान तो हो गया कि यह शकट इस बालकने अपने चरणसे दूर फेंक दिया है इसलिए इस शकटकी यह स्थिति हुई है. झूठी बातका भी शब्दसे ज्ञान हो जाता है यह तो सत्य थी. इसको जान तो लिया; किन्तु विश्वास(यह छोटा बालक ऐसे शकटको कैसे फेंक सकेगा इस प्रकारके असम्भावना दोष ग्रस्त होनेसे) नहीं किया, क्योंकि गोप अलौकिक ज्ञानसे हीन थे, अथवा यह जानकर कि ये तो बालक है; बालक भ्रमसे, न देखा हुआ भी कह देते हैं; यह शकट भूत, प्रेत आदिने गिराया हो, यह न समझकर बालकके चरणको ही कारण (फेंकनेवाला) समझ लिया हो. आचार्यश्री कहते हैं

कि इस प्रकार गोपोंका सोचना इसलिए है कि वे बालकके स्वरूपको नहीं जानते हैं. बालक तो भगत्परायण है और भगवान्‌के सामर्थ्य और भूतादिकोंके अभावको देख चुके हैं. दूसरों(बालकोंके अतिरिक्त अन्य गोपादिकों)ने ये दोनों ही (भगवान्‌की सामर्थ्य और भूतादिकोंका अभाव) देखे नहीं हैं. इसलिए जैसी उन्हें प्रतीति हुई है वैसा ही उन्होंने अंगीकार किया है. उनको(गोपादिकोंको) अश्रद्धा क्यों हुई? इसके उत्तरमें श्रीशुकदेवजीने कह दिया है कि बालक(कृष्ण)का बल अप्रमेय[२] यद्यपि बल, आंखोंसे देखा नहीं जाता है तो भी कार्यसे उसका अनुमान किया जा सकता है. अपनेमें कार्य एवं कारण भाव प्रत्यक्ष सिद्ध होते हैं. जो यह बालक इतना बलवान् होता तो स्वयं उठ खड़ा हो जावे और दूसरे कार्य भी करने लगे, रोदन न करे. इस प्रकार तर्कके करनेसे नैयायिक एवं मीमांसकोंके समान वे गोप भी भ्रान्त हो गये जिससे भगवान्‌के बलको न जान सके; कारण कि भगवान् का बल अप्रमेय है. इसलिए न उन गोपोंका दोष है और न तर्कका दोष है; किन्तु उस बालकका बल ही अप्रमेय है. इससे शास्त्रमें कहा गया है कि 'अलौकिक भावोंका निर्णय तर्कोंसे नहीं करना चाहिए' इस शास्त्रको समझने जैसी उन गोपोंकी बुद्धि नहीं थी. यह अलौकिक बालक है उसकी लीला भी अलौकिक है. ऐसा निश्चय न होनेसे ही गोप सन्देहग्रस्त रह गये. पूतनाके चरित्रसे जिज्ञासा(क्या शकट भी बालकने गिराया? ऐसी जाननेकी इच्छा) तो पैदा हुई और वसुदेवजीके वचन हैं कि गोकुल(व्रज)में उत्पात हो रहे हैं. इन दोनोंसे दो प्रकारके विचार उत्पन्न हुए और ये लोग बालकको अलौकिक जानते हैं यह भी गोप समझ नहीं सके. तो भी मुख्यसे(बालकोंके अज्ञानसे) कार्य सिद्ध होता है. इसलिए शुकदेवजीने श्लोकमें कहा है कि गोपोंने एक अविश्वास ही किया।।१०।।

१.श्रीलालूभट्टजी कहते हैं कि गोपोंके विश्वास न होनेका कारण यह था कि उनमें अभी तक असम्भावना दोष बलिष्ठ था. गोपियां तो मध्यस्थ हो गईं, गोप और बालकोंके संवादको सुनती रहीं अपनी सम्मति कुछ भी नहीं दी. योजना.

२.जो जीवबुद्धिसे न समझा जावे.

इसके अनन्तर विशेष विचार विमर्शके बिना ही यशोदा लौकिक कार्यमें ही प्रवृत्त हुई. इसका वर्णन निम्न सात श्लोकोंसे करते हैं.

रुदन्तं सुतमादाय यशोदाग्रहशङ्किता।।
कृतस्वस्त्ययनं विप्रैः सूक्तैः स्तैनमपाययत् ।।११।।

यह कन्हैया किसी ग्रहके कारण रो रहा है, इस प्रकार शंकित हृदयवाली यशोदाने रोते हुए पुत्रको लेकर विप्रोंसे रक्षार्थ स्वस्तिवाचन, शान्ति सूक्त आदि पढवाकर, बालकके दोष दूर करवाये, पश्चात् उसको स्तन पिलाया ।।११।।

यशोदा लौकिकमें प्रवृत्त होकर चतुर्विध कार्य करनेका प्रयत्न करने लगी.

१.यह रोना भी एक प्रकारसे उत्पात है इसलिए रोनेका प्रतीकार करना (रोदन बंद कराना चाहिए).

२.अनिष्ट ग्रह कृत उपद्रवसे उत्पन्न बालकके अनिष्टकी निवृत्ति करनी.

३.शकटका पूर्ववत् स्थापन करना.

४.शकट सम्बन्धी उत्पातोंको हटाना.

वास्तविक रीतिसे तो दो ही करने चाहिए: १.रोदनका प्रतीकार, और २.शकटका पूर्ववत् स्थापना.

ये चारों कर्तव्य करनेसे लौकिक[1] बुद्धि दृढ़ होगी. इस लौकिक दृढ़ बुद्धिकी निवृत्ति[2]केलिये चरित्र वर्णन करते हुए पहले भगवत्सम्बन्धी(भ्रमसे स्वीकृत) दो चरित्रोंका वर्णन करते हैं. उनमें अज्ञान स्थापनकेलिये(इनको मेरे स्वरूपका अज्ञान ही रहे जिससे ये समझने लगें कि यह शकट इस बालकके चरणसे नहीं फेंका गया है.) शकट टूट जानेके बाद भी रोते रहे. अनिष्ट ग्रहके कारण भी रोना आता है, इसकी सम्भावनासे बालकको अपना पुत्र ही समझ, यशोदाने पुत्रको ले लिया. यशोदा नाम देनेका आशय, आचार्यश्री प्रकट करते हैं कि वह लौकिक बुद्धिमें निपुण थी; इसलिए अनिष्ट ग्रहकी शंकाकी सम्भावना थी. कोई अनिष्ट बाल ग्रह आदिका बालकमें प्रवेश हुआ है. वह बालग्रह, इसको रुलाता है. ऐसी सम्भावना(कल्पना) है. इस कारणसे बालकको शीघ्र स्तन भी नहीं दिया. पहले बाल ग्रहादिसे उत्पन्न दोषोंको दूर करानेकेलिये अभिज्ञ(पूर्ण ज्ञानी) ब्राह्मणों द्वारा रक्षा-बन्धनादिकेलिये स्वस्तिवाचन आदि पढ़वाकर दोषोंको निवृत्त कराया. जब देखा कि अब दोष देखनेमें नहीं आते हैं तब स्तन पिलाए।।११।।

१.लौकिक बुद्धिका आशय यह है कि बालकको भगवान् न समझकर, लौकिक बालक ही हैं ऐसी बुद्धि यशोदाजीकी दृढ़ हुई. प्रकाश.

२.इस दृढ़ लौकिक बुद्धिकी निवृत्तिकेलिये गो.श्रीवल्लभजी इसका आशय बताते हैं

कि ग्रहोंसे उत्पन्न उपद्रव, तथा शकटके कारण पैदा हुए उत्पातकी निवृत्तिकेलिये भगवदिच्छासे पैदा हुए भ्रम अर्थात् ग्रह द्वारा उत्पन्न अनिष्टरूप भ्रमका वर्णन इसलिए किया गया है कि वह भगवान्का चरित्र है. लेख.

ग्यारहवें श्लोकोंमें भगवत्सम्बन्धी कार्य कहे. अब छः श्लोकोंसे शकट सम्बन्धी दो कार्य कहेंगे भगवान्के छः गुणोंसे अनिष्ट निवृत्ति होगी.

पूर्ववत् स्थापितं गोपैर्बलिभिः सपरिच्छदम् ।।
विप्रा हुत्वार्चयाञ्चक्रुर्दध्यक्षतकुशाम्बुभिः ।।१२।।

बलवान् गोपोंने उपकरण सहित शकटको पहलेकी तरह स्थापित(खडा) किया. ब्राह्मणोंने होम करके दही, अक्षत, कुश और जलसे(शकटका) पूजन किया ।।१२।।

'पूर्ववत्' पदका भावार्थ बताते हैं कि जिस प्रकार यह गाड़ा पहले स्थित था और इसमें रस(भरे हुए) रखनेके चर्म पात्र धरे हुए थे वैसे ही गोपोंने शकटको खड़ा कर दिया. साधारण गोपोंने खड़ा नहीं किया; किन्तु बलवान् गोपोंने खड़ा किया क्योंकि वह गाड़ा बड़ा वजनदार था. उसको साधारण गोप खड़ा नहीं कर सकते थे. इसलिए शुकदेवजीने गोपोंका विशेषण 'बलिभिः' श्लोकमें दिया है. गाड़ेके एक भागको ही खड़ा नहीं किया था; किन्तु उसके सब अवयव भी उसमें पूर्वकी तरह जोड़े गये थे इसलिए वह भारी हो गया था. इसको बतानेकेलिये श्लोकमें 'सपरिच्छदम्' पद श्रीशुकदेवजीने कहा है. आचार्यश्री 'सपरिच्छदम्' पदको दूसरा आशय भी बताते हैं कि 'सपरिच्छदम्' पदसे शुकदेवजीका यह भी आशय है कि गोप गोपियां पूजाकेलिये सर्व सामग्री लाई थीं. ऐसे महान् शकटमें उसकी अधिष्ठात्री देवताका विप्रों द्वारा आह्वान किया गया. 'विप्र' शब्दका भावार्थ बताते हैं कि वे ब्राह्मण जो पूर्ण जानकार हों और त्रुटिकी पूर्णता कर सकें. इसलिए इस कार्यकेलिये विप्रोंको बुलाया गया था. उन विप्रोंने पहले अनिष्ट निवृत्तिकेलिये साधारण रीतिसे होम किया. घृतसे व्याहृति पूर्वक होमकर, उससे निवृत्त होनेके अनन्तर निम्न प्रकारसे उस शकटकी पूजा करने लगे. उस शकटके चारों तरफ दधि मिश्रित अक्षत धरे गए और कुंकुमसे लाल किये हुए अक्षत एवं कुश सहित प्रोक्षण जल तैयार किये गए. ये सब विधि पूर्वक तैयार कर इनसे ब्राह्मणोंने मन्त्र द्वारा शकटका पूजन किया. ब्राह्मण जो कर्म करते हैं वह मन्त्रोंसे ही करते हैं।।१२।।

इस प्रकार दोनों(भगवान्में ग्रहादिकी शंका और शकटके उत्पात)का उपाय कहा(किया). यशोदाजीकी प्रेरणासे ही ये दो हुए. नन्दजीने तो दोनों (भगवान् एवं शकटको) एक स्थान पर स्थापित कर शान्ति कराई. इसका 'येऽसूया' आदि चार श्लोकोमें वर्णन करते हैं.

येऽसूयानृतदम्भेर्ष्याहिंसामानविवर्जिताः ।।
न तेषां सत्यशीलानाम् आशिषो विफलाः कृताः ।।१३।।

असूया, अनृत, दम्भ, ईर्ष्या, हिंसा और अभिमानसे रहित जो ब्राह्मण हैं, उन सत्यशील ब्राह्मणोंके आशीर्वचन व्यर्थ नहीं होते हैं ।।१३।।

नन्दजीकी ब्राह्मणोंमें विशिष्ट बुद्धि है उसका वर्णन पहले(१३वें श्लोकमें) करते हैं. उसके पीछे शकटमें भगवान्को पधराकर 'अभिषेक' करानेका १४वें श्लोकमें, 'स्वस्तिवाचनादि' पढ़वाकर होम करानेका १५वें श्लोकमें और दान देनेका वर्णन १६वें श्लोकमें किया गया है. इस प्रकारकी कृति विफल नहीं है. इसका कारण १७वें श्लोकमें कहेंगे.

इनमेंसे पहले ब्राह्मणोंमे उत्तमत्व बुद्धि हुई इसका वर्णन करते हैं 'ये' जो ब्राह्मणोंमें अलौकिक बुद्धि होगी तो उनके वचनों[२]से भगवान्में भी अलौकिक बुद्धि हो सकेगी ऐसा सूचित किया[२]. ब्राह्मण स्वभावसे उत्तम हैं और उनके स्वरूपमें भी किसी प्रकारका विकार नहीं है इसलिए वे ब्रह्म स्वरूप हैं किन्तु वे ब्राह्मण, असत्यादि छः दोषोंके होनेसे प्राकृत हो जाते हैं. भगवान्में छः दोष तो नहीं हैं किञ्च विशेष ऐश्वर्यादि छः गुण हैं. दोष रहित ब्राह्मण[३] एवं धर्मी ब्राह्मण एक ही हैं अथवा निर्दोषी ब्राह्मण भगवान्के समान हैं. इस कारणसे जैसे भगवान्का विचारा हुआ कार्य, सत्य ही होता है वैसे ही निर्दोषी ब्राह्मणका वचन भी सत्य होता है. कर्म तो, सबका पूर्वसे अविरोधी हो, तो सत्य होता है[४]. ब्राह्मणोंके बल-शक्तिके प्रतिबन्धक असूयादि छः दोष हैं. यदि वे दोष ब्राह्मणोंमें न हों तो ब्राह्मण निर्दोष हैं, उनका बल कोई नहीं रोक सकता है. उन दोषोंको छुड़ानेकेलिये उनकी गणना करते हैं. काम, क्रोध और लोभ ये तीन दोष अवस्था और विषय भेदसे दोष कहे जाते हैं. इसलिए इनकी दोषोंमें गणना नहीं की गई है. उनके कार्यरूप दोष, जो सब अवस्थाओंमें और सब विषयोंमें सदैव रहते हैं, वे दोष हैं. वे दोष छः हैं. इन दोषोंमें मुख्य दोष:

१. 'असूया' गुणोंमें भी दोषोंका आरोपण करना है, यह दोष बाह्य विषयक है.

२. 'अनृत' झूठ बोलना वाचनिक, वाणीका दोष है.

३. 'दम्भ' दूसरोंको अपनी उत्तमता दिखानेकेलिये चेष्टा करना निमित्त(कारण) जो न हो, तो 'नैमितिक' कार्य नहीं होता है, जैसे कि दूसरोंको अपनी उत्तमता दिखानी हो तो उस प्रकारकी चेष्टा की जाती है उसे दम्भ कहते हैं.

४. 'ईर्ष्या' दूसरोंके गुणोत्कर्षका सहन न होनेसे उसके दोषोंको ढूंढना यह मानस दोष है.

५. 'हिंसा' दूसरोंको मारना व सताना 'हिंसा' दोष है. उनके होने पर(दूसरोंको मारने व सताने पर) जो गर्व होता है वह.

६. 'मान' या अभिमान दोष है.

इस प्रकार एक ही त्रिदोष(ईर्ष्या, हिंसा और मान)से प्राणीका नाश होता है यदि दो त्रिदोष(छः ही) साथमें होवें तो प्राणीका क्या होगा? 'असूया' और 'अनृतं' वाणीके 'दम्भ' और 'हिंसा' कायाके और 'ईर्ष्या' और 'मान' मनके दोष हैं. ये दोष यदि ब्राह्मणोंमें न हों तो ब्राह्मणोंके आशीर्वचन कभी भी निष्फल नहीं होते हैं. स्वभावमें दोषकी विद्यमानता होने पर निर्दोषता कैसे हो सकेगी? इसके उत्तरमें कहते हैं कि 'सत्यशीलानां' ब्राह्मणोंका स्वाभाविक धर्म सत्य है. भगवान् का जो सत्यरूप कहा है वही उन ब्राह्मणोंका स्वभाव सत्यव्रतादि[१] हैं. ऐसे ब्राह्मण 'ब्रह्मवेत्ता' हैं. 'तेषां'का भावार्थ है कि उनमें स्वाभाविक दोषोंका वास्तविक अभाव ही है।।१३।।

१. ब्राह्मणोंके वचनोंमें श्रद्धा होनेसे. अनुवादक.

२. इससे आचार्यश्री समझाते हैं कि भगवान्के स्वरूपको समझानेवाले ब्राह्मण हैं अतः पहले ब्राह्मणोंकी अलौकिकताका ज्ञान होगा तो उनके वचनोंमें श्रद्धा होगी जिससे भगवान्के अलौकिक स्वरूपका ज्ञान भी प्राप्त होगा. अनुवादक.

३. भगवान् एवं ब्राह्मण सत्यरूप होनेसे एक हैं और ब्राह्मण भगवान्के अंश हैं इसलिए वे समान हैं. प्रकाश.

४. इसका आशय श्रीप्रभुचरण बताते हैं कि भगवान् तथा ब्राह्मणकी कृति सत्य होती है; किन्तु ब्राह्मणोंकी कृति तब सत्य होती है जब वह कार्य उनके वचनानुकूल हों, यदि वचनोंसे कृति विपरीत है, तो वह कृति सत्य नहीं है. इसलिए केवल वाणीकी सत्यताका प्रतिपादन किया है. जैसे यहां ग्रहादि शान्तिकी क्रिया जो ब्राह्मणोंने की, वह सत्य नहीं थी, कारण कि भगवान्में ग्रहादिका प्रवेश हुआ ही नहीं था.

५.ब्राह्मणोंमें असूयादि दोष स्वाभाविक नहीं हैं; किन्तु वे दोष संसर्गसे आगन्तुक हैं. अनुवादक.

ऐसे ब्राह्मण हैं, इस कारणसे यदि उत्पात होंगे तो भी उनके वचनोंसे उनकी निवृत्ति हो जाएगी. यों समझकर बालकको शकटमें पधराकर[१] अभिषेकादि कराने लगे इसका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

इति बालकमानीय सामग्र्यजुरुपाकृतैः ।।
जलैः पवित्रौषधिभिरभिषिच्य द्विजोत्तमैः ।।१४।।
वाचयित्वा स्वस्त्ययनं नन्दगोपः समाहितः ।।
हुत्वा चाग्निं द्विजातिभ्यः प्रादादन्नं महागुणम् ।।१५।।

नन्दजीने इस प्रकार यशोदाजीसे बालक लाकर, सावधान हो उत्तम ब्राह्मणों द्वारा सामवेद, ऋग्वेद और यर्जुवेदके मन्त्रोंसे संस्कृत किये हुए और पवित्र औषधियोंसे सम्मिलित जलोंसे उस(बालक)का अभिषेक कराके एवं स्वस्तिवाचनादि पढवाके अग्निमें होम किया तदन्तर ब्राह्मणोंको उत्तम अन्न दिया।।१४-१५।।

नन्दरायजी यशोदाके हाथसे(बालकको) ग्रहण कर वहां शकटके निकट लाकर तीन वेदोंको जाननेवाले ब्राह्मणोंसे तीनों (ऋक्, यजु एवं सामवेद) तीनों वेदोंके मन्त्रोच्चारण द्वारा अलौकिकताको प्राप्त जलोंसे एवं पवित्र शतावरी आदि औषधियोंसे सम्मिलित किये हुए पवित्र तथा फलदायक जलोंसे अभिषेक(स्नान) कराके और बालकके अंगोंको पोंछकर आभूषणादिसे सुसज्जित किया. अनन्तर नन्दरायजीने वहां सावधानतासे बैठकर ब्राह्मणोंके सन्निधानमें, अग्निमें होम करके(कराके) फिर ब्राह्मणोंको अनेक प्रकारके व्यञ्जनों सहित अन्न दिया. इसको स्पष्ट करते हुए आचार्यश्री कहते हैं कि नन्दरायजीने जैसे इस भौतिक अग्निमें होम किया वैसे ही ब्राह्मणाग्निमें भी होम किया अर्थात् ब्राह्मणोंको भोजन कराया।।१५।।

१. शकटमें पधारना आचार्यश्रीने लिखा है मूलमें ऐसे शब्द नहीं हैं. इस शंकाका निवारण करते हुए प्रकाशकार गो. श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज कहते हैं कि यदि नन्दरायजी बालकको लेकर अपने पास रखते, गाडेमें न पधराते, तो कर्म करते वक्त सावधान रह नहीं सकते थे इस आशयसे आचार्यश्रीने शकटमें पधरानेकेलिए लिखा है. प्रकाश.

नन्दजीने स्वस्तिवाचन, होम, ब्राह्मणभोजनादि कर्म कराके तत्पश्चात् ब्राह्मणोंको सुन्दर गाएं दक्षिणामें दी और ब्राह्मणोंने सफल आशीर्वाद दिया. इसका वर्णन निम्न दो श्लोकोंमें करते हैं.

गावः सर्वगुणोपेता वासःस्रक्रुक्ममालिनीः ।।
आत्मजाभ्युदयार्थाय प्रादात् ते चान्वयुञ्जत ।।१६।।
विप्रा मन्त्रविदो युक्तास्तैर्याः प्रोक्तास्तथाशिषः ।।
ता निष्फला भविष्यन्ति न कदाचिदपि स्फुटम् ।।१७।।

नन्दजीने सर्व कर्म करनेके पश्चात् ब्राह्मणोंको सब प्रकारके गुणोंवाली(निरोग) सुन्दर दूधवाली एवं पुष्ट शरीरवाली, वस्त्र, पुष्प तथा सुवर्ण मालाओंसे विभूषित गौएं अपने पुत्रकी अभिवृद्धिकेलिए दक्षिणामें दी. (जिसे पाकर) ब्राह्मणोंने बालकमें आशिषोंका आयोजन किया. मन्त्रवेत्ता योग्य विप्रोंने आशीर्वाद इस प्रकारसे नियुक्त की जैसे वे आशिषें कदापि निष्फल न होंगी. यह सत्य है ।।१६-१७।।

तब(नन्दजीने) बहुत दूधवाली, सुन्दर, साध्वी एवं वस्त्र, पुष्पमालाएं और सुवर्णके हारादि आभूषणोंसे सुसज्जित गौएं ब्राह्मणोंको दक्षिणामें दी. किसलिए दीं? वहां कहते हैं कि अपने पुत्रकी अभिवृद्धि(उन्नति)केलिये दीं. पुत्रकी अभिवृद्धिके अतिरिक्त नन्दजीका और कोई प्रयोजन नहीं था. 'अन्वयुञ्जत' पदका भावार्थ आचार्यश्री कहते हैं कि विप्रोंने आशीर्वाद केवल मुखसे नहीं कही, किन्तु वे आशिषें बालकमें चरितार्थ कीं. बालकमें वे आशिषें चरितार्थ हुईं, यह आप कैसे कहते हो? इसके उत्तरमें कहते हैं कि आशिष देनेवाले साधारण ब्राह्मण नहीं थे, किन्तु वे विप्र थे, जिसका भाव है विशेष प्रकारसे कार्यको पूर्ण(सफल) करनेकी शक्तिवाले ब्राह्मण. वे केवल विप्र ही नहीं थे, किन्तु साथमें मन्त्रवेत्ता ऋषि भी थे. इससे भी अन्य विशेषता उनमें यह थी कि वे कर्मकर्ता भी थे. इस प्रकारके तीन गुण युक्त जो आशीर्वचन नियुक्त किये वे कदाचित् भी निष्फल न होंगे यह स्फुट (स्पष्ट सत्य) है. इससे उन्होंने आशिषें नियुक्त कीं, यह शुकदेवजीका कहना योग्य ही है।।१६-१७।।

यशोदाजी व नन्दजीकी भगवत्परायणता साधक, एक चरित्रका निरूपण कर, अब पूछे हुए पांचोंमेंसे एकके उत्तरदानार्थ आख्यान प्रारम्भ करते हैं. 'एकदा' इस श्लोकसे लेकर अठ्ठारह श्लोकोंसे वर्णन करेंगे.

एकदा रोहमारूढं लालयन्ती सुतं सती ।।
गरिमाणं शिशोर्वोढुं न सेहे गिरिकूटवत् ।।१८।।
भूमौ निधाय तं गोपी विस्मिता भारपीडिता ।।
महापुरुषमादध्यौ जगतामास कर्मसु ।।१९।।

यशोदा किसी दिन गोदीमें विराजमान पुत्रका लालन करती थी तो भगवान् अनेक पर्वतोंके समान गुरु(भारी) हो गए. उस गुरुत्वको यशोदा सहन न कर सकी ।।१८।।

विस्मय युक्त गोपी(यशोदा) भारसे पीडित होनेके कारणसे पुत्रको गोदीसे उतार, पृथ्वीपर पधराकर, जगतोंके महापुरुष(भगवान्)का ध्यान करने लगी तथा अपने कार्यमें संलग्न हो गई।।१९।।

वाचिकं कायिकं चोक्तं मानसं तूच्यतेऽधुना ।।
अन्यथाज्ञानतः सर्वं करोतीति भविष्यति ।।का.१।।

कारिकार्थ : वाचिक निरोध: पूतना वधके समय भगवान्की गोपुच्छादिसे रक्षा की, इस लीलासे यशोदाकी वाणीका निरोध किया. कायिक निरोध: शकट भंगके समय स्वस्तिवाचनादि क्रिया करानेसे नन्द यशोदाका कायिक निरोध किया. अब मानस निरोध कहते हैं: तृणार्वतके वधकी लीलासे मानस निरोध करेंगे, कारण कि इस लीलामें भगवदर्थ जो दुःख होगा, उससे मानसिक वृत्ति भगवान्में ही निरुद्ध हो जाएगी. ये सब लीलाएं भगवान् ही स्वयं अन्यथा ज्ञान[१] कराके करते हैं.

१.टिप्पणी: प्रभुचरण अन्यथाज्ञानका भावार्थ बताते हैं कि भगवान्ने यशोदादिकोंमें अपने स्वरूपका सत्य ज्ञान तिरोहितकर, लौकिक बालस्वरूपका ज्ञानका आविर्भाव किया था, जिससे यशोदादिने भगवान्की पूतनावधके प्रसंगमें, गोपुच्छादिसे रक्षा की और शकट भंगके उत्पात समयमें, स्वस्तिवाचनादिसे शान्ति कराई. यदि ऐसा ज्ञान(अन्यथा ज्ञान) न कराते तो रक्षा, स्वस्तिवाचनादि होते ही नहीं.

इसलिए भगवान्ने अन्यथा बुद्धि अपने स्वरूपका अन्यथा भान कराके यशोदादि द्वारा आपने ये सब लीलाएं की हैं. भगवान्की ये सब लीलाएं शास्त्र अथवा लोकमें अतीव अद्भुत दीखती हैं क्योंकि एक ही बालकमें सब जनोंका सहज प्रेम लोकमें असम्भव है, अर्थात् हो नहीं सकता है. किन्तु यहां इस बालकमें जो वह सहज प्रेम हुआ है, सो भगवान्ने ही किया है. अतः इस चरित्रमें

अत्यद्भुतता प्रकट होती है.

अथवा यदि मानस निरोध न कहा जाए, तो सबोंको यह ज्ञान हो जाएगा कि नन्द यशोदादि अपने जीवस्थ(जीवमें स्थित) सहज अज्ञानसे ही, यह सब करते हैं, ऐसा ज्ञान सबको न हो, इसलिए भगवान्की गुरुत्वरूप, स्वधर्म सूचित करनेवाली, इस लीलाका वर्णन करते हैं. भगवान्का माताकी गोदीमें चढ बैठनेका निमित्त काल नहीं है.

श्रीकृष्णने शकट भंग लीला चतुर्थ मासकी आयुमें की है और तृणावर्त वध लीला दूसरे वर्षकी आयुमें की है इतने समय तक आपने लीला बन्द क्यों रखी? इस शंकाके निवारणार्थ यह 'लौकिकेन भावेन' कारिका कही है.[२]

२.जब तक श्रीकृष्णमें लौकिक भावसे भी आसक्ति होती है तब तक श्रीकृष्ण किसी प्रकारकी नवीन लीलाएं(अपना गुरुत्व धर्मज्ञापन पूर्वक लीला) नहीं करते हैं. लेख.

भगवान् अपनेमें आसक्ति करानेकेलिये ही लीला करते हैं तो जब तक यशोदादिकी लौकिक भावसे भी श्रीकृष्णमें आसक्ति थी तब तक अन्य लीला नहीं की. अनुवादक.

लौकिकेनापि भावेन यावत् कृष्णैकतानता ।।
तावन्नूतनकृत्यानि न करोति हरिः स्वयम् ।।का.२।।

इस कारिकामें दूसरे वर्षमें लीला करनेका कारण बताते हैं.

वर्षेण तु परावृत्तिर्धर्माणां भवतीति हि ।।
अतो वर्षान्तरे कृत्यं तृणावर्तगतं कृतम् ।।का.३।।

एक वर्षसे धर्मोंकी परावृत्ति[३](पुनरागमन या फिर लौट आना) होती है. (अतः तृणावर्त सम्बन्धी लीला दूसरे वर्षमें की है)।।३।।

३.भगवान्ने लीला द्वारा प्रपञ्च विस्मृति कराई वह कदाचित् स्थिर न हो तो उसको पुनः स्थिर कराया जाय इसलिए दूसरे वर्षमें लीला की. यों तो समग्र वर्ष एक ही काल होनेसे एक आयु ही है. दूसरे वर्षमें क्या भाव है कि दूसरी आयुरूप कालमें लीला की. दूसरे स्कन्धके 'आयुः हरति' श्लोकमें कहा गया है कि भगवान्के गुणानुवादमें एक क्षण भी जाय तो उसकी आयुका हरण नहीं होता है. इसलिए एक ही आयुमें सिद्ध हुआ धर्म समग्र आयु पर्यन्त उसकी अनुवृत्ति होती रहती है. कारिकामें दिये हुए 'हि' अक्षरका यह आशय है।।३।।

भगवान्में देह बुद्धिकी निवृत्तिकेलिए 'गुरुत्व'को जताया है.

देहबुद्धिर्भगवति निवृत्ता चेद् निवर्तते ।।

तत्पराणां देहमतिः सजातीयाविशेषतः ।।का.४।।

यदि भगवान्में देह बुद्धिकी निवृत्ति हो गई तो भगवत्परायण भक्त जनोंकी भी देहमें आत्मबुद्धि निवृत्त हो जाएगी. वह बुद्धि भगवान्में देह बुद्धिकी निवृत्ति सजातीयताके सम्बन्धसे भक्तकी भी देहात्मबुद्धिको नष्ट कर देगी।।४।।

भगवान्में निर्दोष बुद्धि हो तो सामान्य रूपसे भक्तके भी सर्व दोष निवृत्त हो जाते हैं. देहात्मबुद्धि सजातीय होनेसे विशेष रूपसे [४]देहात्मबुद्धिको नाश करती है.

४.प्रकाश: भगवान्के देह नहीं है, इस विषयको समझानेकेलिए एक कालमें ही गुरुत्व (भारीपन) और लघुत्व(हलकापन) कहा गया है.

योजना : भगवान्के(प्राकृत) देह नहीं है. इसमें प्रमाण देते हैं.

उपनिषद्: ''आनन्दरूपम् अमृतं बिभर्ति'भगवान् आनन्दरुप और अमृतरूपसे प्रकाशते हैं.

'सच्चिदानंद विग्रहं' भगवान्का विग्रह सत्, चित् आनन्द रूप है.

'कृष्णायाक्लिष्ट कर्मणे' सदानन्द रूप अक्लिष्ट कर्मवाले.

पुराण: 'आनन्दमूर्त्तिम्'आनन्द स्वरूप.

पञ्चरात्र:''आनन्दमात्रकरपादमुखोदरादि'सर्व श्रीअङ्ग आनन्द रूप जिसके हैं.

इत्यादि प्रमाणोंसे भगवान्की देह प्राकृत नहीं है.

प्राकृत देहका ही 'देह' शब्दसे व्यवहार होता है. 'देह' शब्द 'दिह' धातुसे बननेके कारण उसमें उपचयादि षड्भाव विकार नहीं रहते हैं. भगवान्के आनंदमय श्रीअंगमें षड्भाव विकार नहीं है. इसलिए उसे 'देही'(देहवाला) नहीं कहा जा सकता है.

अठारह विद्याओंमें १.पुराण २.न्याय ३.मीमांसा ४.धर्मशास्त्र ५.ऋग्वेद ६.सामवेद ७.यजुर्वेद ८.अथर्ववेद ९से १४.वेदांग छः, १५ से १८ उपवेद चार इस प्रकार ये अठारह विद्याएं हैं.

पूतनावधमारभ्य कंसो जानाति गोकुले ।।
हरिरस्ति जगद्वन्द्यो मम हन्तेति सर्वथा ।।का.५।।

जबसे पूतनावधका ज्ञान कंसको हुआ तबसे वह जान गया कि जगद्वन्द्य(जिसको समग्र जगत् वन्दन करता है) मेरे प्राण हरनेवाले हरि गोकुलमें[५] हैं।।५।।

५. पूतना नगरों व ग्रामोंमें घूमती हुई और बालहत्या करती हुई अन्तमें गोकुलमें आई

थी; किन्तु तृणावर्तका गोकुलमें सीधे आनेका कारण इस कारिकामें बताया है. प्रकाश. (कंसको पूतना वधसे ज्ञान हो गया था. मेरा हन्ता गोकुलमें है. इसलिए तृणावर्तको सीधे आनेकी आज्ञा थी. अनुवादक.)

श्रीपुरुषोत्तमजी प्रकाशमें कहते हैं कि 'पूतनावधमारभ्य' कारिकासे एवं १८ श्लोककी सुबोधिनीमें 'गुरुर्जातः' तक जो कहा गया है वह समग्र चरित्र 'आदि' पुराणके, 'वृन्दावन माहात्म्य'के १२वें अध्यायमें स्पष्ट कहा गया है.

तमानेतुं तृणावर्तं ततः प्रेषितवान् स्वयम् ।।
त्रयो ह्यत्यन्तबलिनः सर्वकार्यविचक्षणाः ।।का.६।।

कंसके पास तीन असुर सर्व कार्यमें कुशल और अत्यन्त बलशाली थे उन्हें स्वयं कंसने कृष्णको(मथुरा) ले आनेकेलिए (गोकुल) भेजा।।६।।

उन तीनोंके नाम एवं उनमें भी प्रथम(विशेष बलवान्) कौन है उसका ज्ञान इस कारिकासे कराते हैं.

तृणावर्तो बकः केशी तत्राप्याद्यो महान् स्मृतः ।।
तृणवत् सकलं विश्वमावर्तयति सर्वथा ।।का.७।।
तृणावर्तस्ततः प्रोक्तस्तमादौ प्राहिणोत् ततः ।।

१. तृणावर्त, २. बक, ३. केशी. ये तीन असुर थे, उनमें भी पहला (तृणावर्त्त) महान्(विशेष बलवान्) था. उसकी विशेषता वर्णन करते हुए कहते हैं कि वह सर्वथा सकल विश्वको तिनका समझ उसको पानीके भंवरमें पडे हुए तिनकेकी तरह भ्रमित करता है. इसलिए इसका नाम 'तृणावर्त' रखा गया है. इस कारणसे ही पहले इसको (कंसने) भेजा।।७।।

भगवान्(श्रीकृष्ण) सर्वज्ञ हैं, इसलिए गोकुलमें बैठे बैठे ही जान लिया कि कंसकी आज्ञासे मुझे लेनेकेलिये तृणावर्त मथुरासे गोकुल आनेकेलिये रवाना हो गया है. अब मैं गुरु बन जाऊं(जिससे वह मुझे अधिक समय एवं दूर तक ले जा न सके) यह विचारकर आप स्वयं गुरुत्व प्रकट करते हुए गुरु(भारी बोझवाले) बन गए. आचार्यश्री भगवान्के माता यशोदाकी गोदीमें बैठनेका आशय प्रकट करते हुए कहते हैं कि भगवान्की इच्छा हुई कि माता यहांसे दूसरे स्थान पर जाय, इसलिए गोदीमें बैठ स्तनपान करते हुए ही आप गुरु हुए. भगवान्का सहज गुरुत्व अब आविर्भूत(प्रकट) हुआ. यशोदाको भगवान्के गुरुत्वका ज्ञान हुआ; किन्तु किस समय हुआ और किस निमित्तसे हुआ है इसको यशोदा जान न सकी इसलिए शुकदेवजीने 'एकदा' शब्द दिया है जिसका अर्थ है किसी समय. कोई

नियत समय शुकदेवजीने नहीं बताया.

गोदीमें चढ़कर बैठे हुए, अपने लालनको स्वयं यशोदा लाड़ लड़ाने लगी, जैसे कि केशोंको सुसज्जित करती, मुख चुम्बन आदि क्रियासे बालकको हंसाती थी. यह लालन क्रिया पुत्रसे ही की जाती है. यशोदाजीको श्रीशुकदेवजीने 'सती' विशेषण दिया है, जिसका भाव आचार्यश्री प्रकट करते हुए कहते हैं कि यशोदाका ऐसा उत्तम भाग्य, जो परब्रह्म, ज्ञानियोंकेलिये भी अदृश्य व अगम्य है, उसको गोदीमें बिठाकर, लाड़ लड़ाकर, हास्यादिका आनन्द प्राप्त कर रही है उसका कारण, यशोदाका सतीत्व धर्म है. मेरे इस अलौकिक स्वरूपमें स्नेह तो करती है, किन्तु लौकिक भावसे करती है अर्थात् मुझे लौकिक बालक समझकर करती है. इसका लौकिक भाव निवृत्त करानेकेलिये भी आप गुरु बने. यशोदा भगवान्के गुरुत्वका भार, वैसे सहन न कर सकी, जैसे पृथ्वी कोटि पर्वतोंका भार नहीं सहन कर सकती है. यह(यशोदा) अदिति[६] है और आधिदैविकरूप होते हुए भी भार न सह सकी. इसलिए पृथ्वीका दृष्टान्त दिया है. यदि यों न होता, तो ऐसा अयोग्य दृष्टान्त कभी न देते. भगवान्ने अपनेमें गुरुत्व धीरे धीरे(क्रमपूर्वक) प्रकट किया इससे यशोदाके किसी भी अंगका भंग न हुआ।।१८।।

६. योजनाकार लालूभट्टजी यहां यशोदाको अदिति कैसे कहा? इसको समझाते हैं कि(१।५।२१)के अनुसार जैसे आधिदैविकरूप वसुदेवजीने नन्दजीमें पधराया था वैसे ही देवकीजीका आधिदैविकरूप भी यशोदाजीमें स्थापित हुआ था अतः यशोदा देवकीरूप होनेसे 'अदिति' मानी गई हैं क्योंकि देवकी पूर्व जन्ममें 'अदिति' थी.

जहां तक सहन हो सका वहां तक भारको सहन किया, जब सहनेसे अधिक लगा तब भगवान्को गोदीसे उतारकर पृथ्वीपर विराजमान किया. इसका वर्णन 'भूमौ निधाय' श्लोकमें किया गया है.

भगवान्को पृथ्वीपर विराजमान करने जैसा, अविवेकी कार्य, यशोदाने क्यों किया? उसका कारण शुकदेवजीने 'गोपी' विशेषण देके बताया है. आचार्यश्री कहते हैं कि यद्यपि यशोदा महती(महान् गुणोंवाली सयानी) है तो भी शुकदेवजीने कहा कि गोपभार्या है, अर्थात् गोप जाति अविवेकी होती है, उस जातिकी होनेसे यह भी अविवेककी निधि है इसलिए भगवान्को पृथ्वीपर विराजमान किया. पृथ्वीपर स्थापित करनेके पीछे भारके स्मरणसे विस्मित (चकित) हुई. यदि पुत्र भारी होता है तो माताको उसके भारीपनसे प्रसन्नता होती

है. यशोदा चकित क्यों हुई. इस शंकाके निवारणार्थ शुकदेवजीने यशोदाका विशेषण 'भार पीड़िता' कहकर बताया है कि 'भारसे पीड़ित' हुई. यह भार लौकिक पुत्रके भारके समान नहीं था; किन्तु अलौकिक भार था, इसलिए यशोदा चकित हो गई कि किस प्रकारका भार है. 'अलौकिक भारसे' भयभीत[७] भी होगी. 'अग्रे' पदका भावार्थ कहते हैं, क्रमसे माहात्म्यज्ञान होनेसे विचारने लगी कि क्या करना चाहिए? विचारमें आया कि कोई उत्पात न हो इसलिए सर्व अनिष्टकी निवृत्तिकेलिये महापुरुष(पुरुषोत्तम स्वरूप)का ध्यान करने लगी. अथवा यह ही महापुरुष है यों समझ ध्यान करने लगी. करोड़ों ब्रह्मांडोंका भी यही स्वामी है यह सकल जगतोंमें महापुरुष है. गुरुत्वसे अन्य पुरुष समझा, किन्तु पातिव्रत्य व्रत क्षति होनेके भयसे, भीताके समान भीत हो, इसको हि परम पुरुष सबका भर्ता समझने लगी. क्योंकि ऊपरके १८वें श्लोकमें यशोदाको शुकदेवजीने 'सती' कहा है. यह महापुरुष है या नहीं है इस प्रतीति(जानने)केलिये, सब प्रकारसे ध्यान करने लगी. इससे यह भगवान् हैं, यों जानकर उनकी परिचर्या(सेवा)केलिये, स्नानादि कर्मोंको करनेका प्रारम्भ किया. यदि सेवार्थ भगवत्सम्बन्धी स्नानादि कार्य न करती तो भगवान्से वियोग होता. निरुद्धका क्षण वियोग भी प्राणोंको हरण करनेवाला होता है. भगवान् आएंगे, तो यशोदाको फिर मोह हो जाएगा. अर्थात् भगवान्के आनेपर यशोदाका यह भाव(भगवद्भाव) मिटकर, पुत्र भाव हो जाएगा. आचार्यश्री कहते हैं कि ऐसा होवे तो भी कोई असंगति[८] नहीं है. पुत्रको लाड़ लड़ाना यह फल और यह ज्ञान तो गौण है. अथवा अज्ञानके कारण जगत्के भर्ता भगवान्का ध्यान कर, घरको चली गई अर्थात् घरके कार्योंमें संलग्न हुई. इन दोनों अर्थोंमेंसे पहला अर्थ श्रेष्ठ है।।१९।।

७. 'जृम्भण लीला' (उबासी लेनेकी लीला)में भयभीत होगी. लेख.

८. टिप्पणी: भगवान्का गोकुलमें प्राकट्य सर्वसुखदानार्थ हुआ है. इसलिए जैसे सबोंको सुखकी प्राप्ति हो वैसी ही लीला भगवान् करेंगे. जैसे गोचारण लीला, रात्रि विहार लीला, माताको वात्सल्य रसनादिमें किसी प्रकार भी प्रतिबन्ध न होवे इसलिए भगवान् आकर यशोदाको मोहित करेंगे जो इसमें किसी प्रकारकी अयोग्यता नहीं है.

वहांसे माताके चले जानेपर तृणावर्त आया. इसका वर्णन करते हैं.

दैत्यो नाम्ना तृणावर्तः कंसभृत्यः प्रणोदितः।।
चक्रवातस्वरूपेण जहारासीनम् अर्भकम्।।२०।।

कंसका सेवक, उसीका भेजा हुआ, तृणावर्त नामवाला दैत्य, वायुके बवंडर स्वरूपसे, आके पृथ्वीपर बैठे हुए बालकको उडा ले गया ।।२०।।

इस श्लोकमें तृणावर्तका माहात्म्य चार धर्मोंसे कहा गया है.

१.दैत्य है, इसलिए जातिसे क्रूर धर्मवाला है.

२.नामसे ही तृणावर्त है, बवंडरके समान जगत्को तिनकेकी तरह घुमा सकता है. ऐसे धर्मवाला है इसलिए अप्रतीकार है.

३.कंसका भृत्य(सेवक) है इससे अनिष्ट करना भी इसका धर्म है.

४.'प्रणोदितः' कंसका भेजा हुआ है, दुष्ट बुद्धिका भेजा हुआ दुष्ट धर्मवाला ही होगा.

इस प्रकार उसके चार धर्म बताकर, उसका माहात्म्य वर्णन इसलिए किया गया है कि भगवान् इसका नाश करेंगे, तो इसके माहात्म्यका ज्ञान भी देवताको हो जावे. उसकी विशेष स्पष्टता, आचार्यश्री करते हैं. दैत्य है, इससे ज्ञात होता है कि यह देवताओंका विरोधी है. नामसे, उसके विशेष बलिष्ठ होनेका ज्ञान होता है. कंसका सेवक है, इसलिए वह स्वामीका(भगवान्को ले जानेका) कार्य करना यह अपना धर्म समझता है. कंसने कहकर भेजा है इसलिए कंसके वचनोंका पालन करना इस(तृणावर्त)का उससे भी आवश्यक धर्म है. सत्त्व, रज एवं तमोगुणादिके प्रत्येक समुदायके भेदसे, इसका(दैत्य तृणावर्तका) विरोधीपन बताया. भगवान् तृणावर्तका तिनकेके समान निराकरण(दमन) करेंगे, क्योंकि तृणावर्त चारों प्रकारके पुरुषार्थोंका बाधं करनेवाला है. इस प्रकारका वह तृणावर्त सबको ठगनकेलिये कृत्रिम वेष धारणकर बालकको ले गया. बनावटी रूप धारण करनेका प्रकार बताते हैं कि 'चक्रवातस्वरूपेण' इस पदका अर्थ आचार्यश्री तीन प्रकारसे करते हैं:

१.गोल स्वरूपवाले वायुके रूपसे.

२.चक्करके समान गोल वायुमें छिपे हुए स्वरूपसे.

३.बवंडररूप वायुसे.

इस प्रकार पृथक् पृथक् प्रकारके रूपोंसे भ्रम पैदा कर, उसके साथ आकर पृथ्वीपर स्थित बालरूप भगवान् निधिको जैसे चोर ले जावे, वैसे उड़ाके ले गया. भगवान् महान् हैं उनको कैसे ले जा सका? तो कहते हैं कि 'अर्भकं' भगवान् उस बालकरूपमें विराजमान थे और वेगके कारण तृणावर्त महाबली था

एवं दैत्योंके उपास्य(मायारूप) भगवान्‌के बलसे भगवान्‌को ले जा सका. तृणावर्त अपने सहज बलसे तो भगवान्‌को उठा भी न सकता था. अथवा यदि भगवान् अपने सहज(स्वाभाविक) बलको प्रकट करते तो भी तृणावर्त भगवान्‌को उठा नहीं सकता था इसलिए कहा जाता है कि भगवान् अक्लिष्ट कर्मा हैं।।२०।।

१. भक्तोंके चारों पुरुषार्थोंका निरास करनेवाला. प्रकाश.

मायारूप भगवान्‌के[१] उपासक तृणावर्तका माहात्म्य निम्न पांच श्लोकोंमें वर्णन करते हैं. क्योंकि माया(अविद्या[२]) पांच प्रकारकी है इस तृणावर्तका यह माहात्म्य मायारूप भगवान्‌ने किया है. यह तृणावर्त उस पांच प्रकारकी मायाका रूप है.

१.'अविद्या रूपः तेषाम् इति' इस पंक्तिका भावार्थ यों करते हैं कि तृणावर्तका उपास्य मायारूप भगवान् गोकुलवासियोंके अविद्याका निरूपक हुआ अर्थात् उस मायारूप भगवान्‌ने गोकुलमें अविद्या कार्यको प्रकट किया. 'लेख'

२.जो अपनी उपास्य मायाको कार्य द्वारा प्रकाशित करता है वह अविद्यारूप(तृणावर्त) है. वे कार्य उपरोक्त कारिका द्वारा आचार्य श्री निरूपण करते हैं. 'योजना'

गोकुलं सर्वमावृण्वन् मुष्णंश्चक्षूंषि रेणुभिः ।।
पूरयन् सुमहाघोरं शब्देन प्रदिशो दिशः ।।२१।।

वायुके बबूलेसे कुल गोकुलको घेरता हुआ रजसे सबके नेत्रोंकी दृष्टिको अपहृत करता हुआ, 'महाघोर' शब्दसे दिशाओं और कानोंको शब्दायमान करता हुआ तृणावर्त उस बालकको उडाकर ले गया।।२१।।

अयोग्यतादर्शने हि हरेश्चादर्शनं ततः ।।
सर्वाज्ञानं ततः स्वस्मिन् यशोदास्नेह एव च ।।का.१।।

कारिकार्थ : कारिकामें २१वें श्लोकके भावको प्रकट करते हुए कहते हैं कि भगवान्‌के दर्शनकी अयोग्यता हुई, यह अविद्याका प्रथम पर्व, २२वें श्लोकसे अविद्याका कार्य दूसरा पर्व प्रकट किया, जिससे भगवान्‌को दर्शन न हुए, २३वें श्लोकसे अविद्याका कार्य तीसरा पर्व प्रकट किया, जिससे सर्व पदार्थोंका अदर्शन(अज्ञान) हुआ, अर्थात् अपनेको भी न देख सके(न जान सके) २४वें श्लोकसे अविद्याका कार्य चौथा पर्व प्रकट किया, जिससे यशोदाका भगवान्‌में स्नेह हुआ. २५वें श्लोकसे अविद्याका पांचवा पर्व प्रकट किया जिससे गोपियोंका भगवान्‌में स्नेह हुआ. इस प्रकार तृणावर्तने कार्य द्वारा गोकुलमें अविद्या स्थापित

की. अविद्या कार्य तो भगवान्‌से विमुख करानेवाला है. यहां अविद्या कार्यमें दिखाया है यशोदा और गोपियोंका भगवान्‌में स्नेह हुआ. यह असंगति[३] जचती है.

प्रथम तृणावर्तने आते ही जो अज्ञानका[४] विस्तार किया उसका वर्णन करते हैं. ज्ञानमें तीन अंश हैं: १.वेद्यांश, २.इन्द्रियांश, ३.करणांश.

इन तीनोंको तृणावर्त कृत दोषोंका सम्बन्ध हुआ, उसका वर्णन करते हैं. तृणावर्त भगवान्‌को चुपचाप नहीं ले गया किन्तु समग्र गोकुलको बगुलेके रूपसे घेरकर अर्थात् गोकुलमें घोर अन्धकार करते हुए बालकको ले गया यह कार्य तमोगुणका है. अब रजोगुणके कार्यका वर्णन करते हैं. रजका अर्थ धूल है. धूलसे सबकी दृष्टि हर ली. दृष्टि[५] देवता है, उसको तृणावर्तने ले ली. जिससे वह भगवान्‌को देखकर उड़ा ले गया. तृणावर्तने दृष्टि ले ली, इसलिए वह तो देख सकता था परन्तु वे(गोकुलवासी) देख नहीं सकते थे. केवल दृष्टि तिरोहित नहीं हुई किन्तु जैसे मडोलेमें आग्रहसे धान भरा जाता है वैसे तृणावर्तने सब दिशाओं एवं कानोंको 'महाघोर' शब्दसे गर्जना करते हुए भय उत्पन्न करनेके साथ गोकुलवासियोंके अन्तःकरणमें भी व्यग्रता(घबराहट) पैदा कर दी. मूल श्लोकमें 'सुमहाघोरं' पद वाक्यमें तीन पद 'सु' 'महा' और 'घोरं' पद हैं. उनके भावार्थको प्रकट करते हुए आचार्यश्री आज्ञा करते हैं कि इससे शुकदेवजीका यह आशय है कि आधिदैविकादि तीनों भय उत्पन्न किये. 'प्रदिशः' शब्दका भाव बताते हुए आचार्यश्री कहते हैं कि इसमें 'प्र' अक्षर देकर यह बताया कि ये दिशाएं देवताओंकी सम्बन्धिनी हैं, इसलिए इससे देव सम्बन्धियोंको ही भय है न कि दैत्योंके पक्षवालोंको भय है।।२१।।

३.यशोदा और गोपियोंका स्नेह अविद्या कार्य इसलिए कहा गया है कि इनका स्नेह लौकिक स्नेह था. लौकिक प्रकारका स्नेह अविद्यासे ही होता है. इसलिए किसी प्रकारकी असंगति नहीं है. 'टिप्पणी'

४.'अज्ञान' शब्दका भावार्थ लेखकार गो. श्री वल्लभलालजी समझाते हैं कि 'जिससे जाना नहीं जाय' इस प्रकार अर्थ करनेसे यह तात्पर्य निकलता है कि 'अज्ञान' शब्दका भावार्थ है कि देखनेकी अयोग्यता, इस अयोग्यतासे सब गोकुलवासी भगवान्‌को देख नहीं सके. 'लेख'

५.यदि दृष्टि देवता न होती तो तृणावर्त ले नहीं सकता था. जो दृष्टि न ली होती तो दर्शनाभावसे निराकार 'निरिन्द्रय भगवान्‌का हरण नहीं कर सकता था'. लेख.

इस निम्न श्लोकमें यशोदाको भगवद्दर्शन न हुवा उसका वर्णन करते हैं.

मुहूर्तमभवद् गोष्ठं रजसा तमसावृतम् ।।
सुतं यशोदा नापश्यत् स्वयं न्यस्तवती यतः ।।२२।।

एक मुहूर्त पर्यन्त गोकुल धूलि तथा तमोगुणरूप अन्धकारसे घिर रहा था. यशोदाने जहां पुत्रको विराजमान कराया था वहां नहीं देखा ।।२२।।

इस श्लोकमें दृष्टान्त देकर समझाया गया है कि जब, जो मनुष्य गोकुलसे बाहर थे उनको भी धूलि और अन्धकारसे घिरे हुए गोकुलके दर्शन नहीं हुए, तो जो मनुष्य बहिर्मुख(जिनके मन आदि विषयोंमें आसक्त है भगवान्से विमुख है) हैं उनको भगवान्के दर्शन कैसे होंगे? उस समयकी गोकुलकी स्थितिका वर्णन करते हुए कहते हैं कि 'गोकुल' धूलिसे और तमोगुणरूप अन्धकारसे घिरा हुआ था, अथवा धूलिसे हुए अन्धकारसे घिरा हुआ था. इस कारणसे यशोदाने अन्तःस्थित भगवान्को नहीं देखा. भगवान्का दर्शन सबको दुर्लभ है तो यशोदाको न हुआ तो कौनसी आश्चर्यकी बात है. इसके उत्तरमें श्रीशुकदेवजीने कहा है कि यशोदाको आश्चर्य इसीलिए हुआ कि मैं स्वयं अपने सुतको विराजमान करके गई हूं, वह कहां गया? अपने हाथसे रखी हुई वस्तु रखनेवालेको दिखनी ही चाहिए. वह यदि दृष्टिगोचर न हो तो आश्चर्य होगा ही. यशोदाने पुत्रको वहां विराजमान कराया था इसलिए भ्रम नहीं था।।२२।।

वेदमें कहा है कि भगवान्का ज्ञान होनेसे सब जाना जाता है. वैसे ही भगवान्के अज्ञानसे सबका अज्ञान होता है. इसका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं. श्लोकमें दिए 'यतः' पदका अर्थ सप्तमीकी तरह किया गया है.

नापश्यत् कश्चनात्मानं परं चापि विमोहितः ।।
तृणावर्तविसृष्टाभिः शर्कराभिरुपद्रुतः ।।२३।।

तृणावर्त द्वारा प्रक्षिप्त कंकरोसे घबराए हुए और भ्रान्त बने हुए मनुष्य अपनेको अथवा दूसरेको नहीं देख सके ।।२३।।

किसीने भी अपने शरीर और दूसरोंके शरीरको नहीं देखा. आचार्यश्री बताते हैं कि 'च' अक्षर देनेका श्रीशुकदेवजीका यह भाव है कि केवल शरीरोंको नहीं देखा सो नहीं, किन्तु घटपटादि पदार्थोंको भी नहीं देखा. 'शब्द' आदिसे भी किसीकी प्रतीति न हुई, क्योंकि वे तृणावर्तके प्रक्षिप्त कंकरोंसे पीड़ित एवं भ्रान्त हो गये थे जिससे उनमें अज्ञानका कार्य तामस, पीड़ा हुई थी. इसीलिए वे शरीर

और वस्तु मात्रको न देख सके एवं सर्व प्रकारके शब्दादिकोंको भी न सुन सके।।२३।।

इस प्रकार कार्य सहित अज्ञानके स्वरूपका वर्णनकर, उस(अज्ञान)के निवृत्यर्थ यशोदा तथा गोपिकाओंके भगवान्में अतिशय स्नेहका वर्णन अन्य २४वें व २५वें श्लोकमें करते हैं.

यशोदाका भगवान्में पुत्र भावनासे अतिशय स्नेह हुआ है उसका वर्णन २४वें श्लोकमें करते हैं.

इति खरपवनचक्रपांशुवर्षे सुतपदवीमबलाविलक्ष्य माता ।।
अतिकरुणमनुस्मरन्त्यशोचद् भुवि पतिता मृतवत्सका यथा गौः ।।२४।।

इस प्रकार तीक्ष्ण स्पर्शयुक्त पवनके बगुलेकारूप धारण करनेवाले तृणावर्त द्वारा उत्पन्न की हुई धूलिकी वर्षासे माता यशोदाको पुत्रके मार्गका पता नहीं लगा, अत्यन्त दयासे पुत्रको स्मरण करती हुई शोकातुर हो गई और मृतवत्सा गौके समान पृथ्वीपर गिर पडी ।।२४।।

ऊपरके श्लोकोंमें कथित तृणावर्तके उपद्रवोंसे जो कुछ हुआ उसके अनन्तर क्या हुआ सो इस श्लोकमें वर्णन करते हैं. तीक्ष्ण स्पर्शयुक्त पवनके बगुलेके रूप(तृणावर्त)की धूलिकी वर्षासे गोकुलके मार्ग ऐसे हो गये जैसे वर्षा पड़नेसे होते हैं. उस समय किसी वस्तुके चिह्न पृथ्वीपर दृष्टिगोचर नहीं होते थे. इस धूलि वृष्टिसे भी मार्गकी इसी प्रकारकी दशा हो गई. इसलिए माता यशोदा इधर-उधर पुत्रके जानेका मार्ग मिले, तदर्थ पुत्रके पाद चिह्नोंको पृथ्वीपर देखने लगी, किन्तु पुत्रका कोई भी वज्र, अंकुश, कमल चिह्न पृथ्वीपर न देखकर, माता जो स्नेहका अधिकरण(स्नेहका घर, स्नेहके ठहरनेका स्थान) है वह विचारने लगी कि क्या कन्हैया(भगवान्) मुझे छोड़कर चला गया? इस प्रकार जैसे भगवान्को मुझपर दया उत्पन्न हो, वैसे अत्यन्त करुणा पूर्वक स्मरण करती हुई शोकाकुल हुई. अपने हृदयमें शोक करने लगी कि मैं अभागिन हूं जो मेरा कार्य(पुत्रके चिह्नोंकी प्राप्ति) न हुआ. इस कारणसे भगवान्केलिये विरह बढ़ा, जिससे पृथ्वीपर गिर गई. पृथ्वीपर गिरनेसे यशोदाकी क्रिया(कार्य करने)की शक्ति लोप हो गई. कारण कि गिरते ही मूर्छित हुई. गिरनेसे क्रिया शक्तिका लोप हुआ और मूर्छासे ज्ञान शक्तिका लोप हुआ. यशोदाके गिरने और मूर्छित होनेको दृष्टान्त देकर समझाते हैं कि जैसे मृतवत्सा गौ गिर पड़ती है. गौ अविवेकी पशु

है, वह भी बछड़ेके जानेपर गिरकर मूर्छित हो जाती है, तो यशोदाका विवेकवती होनेसे, गिरना स्वाभाविक ही था. आचार्यश्री कहते हैं कि यदि यहां 'अमृतवत्सा' पद रखा जाय तो उसका विशेष स्वारस्य होगा, क्योंकि गौ, मृत बछड़ेको चाटते हुए अपने दुःखका शोषण करती है किन्तु जिसका जीवित बछड़ा चला जाय, तो वह गौ अपने दुःखका शोषण नहीं कर सकती. इस प्रकार यशोदा भी पुत्रके न मिलनेसे दुःखित हुई जिस दुःखका निवारण पुत्रका मिलन हो, तब हो इसलिए यशोदाकी क्रिया-शक्ति तथा ज्ञान-शक्ति दोनों नष्ट हो गई थी ।।२४।।

इस प्रकार उपरके २४वें श्लोकमें परमस्नेहसे मूर्छा पर्यन्त यशोदाकी अवस्थाका वर्णन करके अब २५वें श्लोकमें गोपिकाओंके स्नेहका वर्णन किया जाता है.

रुदितमनुनिशम्य तत्र गोप्यो भृशमनुतप्तधियोऽश्रुपूर्णमुख्यः ।।
रुरुदुरनुपलभ्य नन्दसूनुं पवन उपारतपांशुवर्षवेगे ।।२५।।

पवन प्रेरित धूलिका वेग जब कम हुआ तब (भी) गोपियां नन्दनन्दनको न देखकर रोने लगी. वह परस्परका रोदन सुननेसे गोपीजन अतिशय तप्त बुद्धिवाली हुई जिससे उनके नेत्र आंसुओंकी बूंदोंसे भरपूर हो गए ।।२५।।

गोपियां स्वयं ज्ञानवान् थीं, भगवान्को ले जानेपर रोने लगी. वे अपना रोना तो सुनती ही थीं साथ ही उन्होंने दूसरी गोपियोंका भी रोना सुना. वहां भगवान्के गृहमें जो गोपियां थीं वे भगवदीया थीं. इसलिए अतिशय तापसे तप्त बुद्धिवाली हुई और कहने लगी कि यह हमारी बुद्धिका दोष है. यदि हम भगवान्को लेकर अपने पास रखतीं, तो वह जाते नहीं, इस विचारसे विशेष ताप तप्त होने लगीं, जिससे नेत्रोंके आंसुओंका पौंछना भी न कर सकीं, इससे नेत्र आंसुओंसे पूर्ण हो गये(भर गये). गृहमें जब भगवान्को न देखा ओर जहां तहां टटोलनेपर भी स्वामीके पुत्रको न पाया, तब सब मिलकर, लौकिक दोष निवृत्यर्थ रोने लगी. इस प्रकार रोनेसे नेत्रके देवता अन्तर्हित हो गए. देवताके अन्तर्हित होनेपर पवन भी शान्त हुआ और उसमें धूलिका वर्षावाला वेग भी न रहा।।२५।।

वायुके वेगके साथ धूलि वर्षा शान्त हो गई तो उसके साथ तृणावर्त भी शान्त हुआ, उसका वर्णन इस श्लोक 'तृणावर्तः शान्तरयो'में करते हैं.

तृणावर्तः शान्तरयो वात्यारूपधरो हरन् ।।
कृष्णं नभोगतो गन्तुं नाशक्नोद् भूरिभारभृत् ।।२६।।

जब झक्खड, आंधीका रूप धारण करनेवाले तृणावर्तका वेग शान्त हुआ तब कृष्णको हरणकर आकाशमें गया अर्थात् अपने उठानेकी शक्तिसे अधिक भारको धारण करनेवाला वह(तृणावर्त्त) आगे नहीं जा सका ।।२६।।

प्रचण्ड वायुरूपधारी तृणावर्तकी शक्ति भगवान्को आकाशकी तरफ ऊपर ले जानेमें ही समाप्त हो गई. ऊपर ले जानेका बल भी तृणावर्तको उसके उपास्य देवता(मायारूप)से प्राप्त हुआ था. तिर्यक(टेढे) जानेकी शक्ति उसमें नहीं थी. तृणावर्त जब शान्त हो गया तब उनको(श्रीकृष्णको) आगे ले जानेकी सामर्थ्य तृणावर्तमें नहीं हुई क्योंकि तृणावर्तने पहले ही अपनी शक्तिसे अधिक भार उठा लिया था।।२६।।

इस प्रकार उस(तृणावर्त)की शक्ति जब कम हो गई, तब भगवान्को ले जानेमें असमर्थ हो गया, उसका वर्णन 'तमश्मानं' इस श्लोकमें करते हैं.

तमश्मानं मन्यमान आत्मनो गुरुमत्तया ।।
गले गृहीत उत्स्रष्टुं नाशक्नोदद्भुतार्भकम् ।।२७।।

तृणावर्तने उस(बालक)को अपनेसे भारी बोझवाला अर्थात् जो उठाया नहीं जा सकता है ऐसा पत्थर समझा. गलेसे पकडा हुआ तृणावर्त अद्भुत बालकसे अपने आपको छुडा नहीं सका ।।२७।।

उस छोटे बालरूप भगवान्को, तृणावर्त बहुत भारवाला हीरक वा नीलमणि पत्थर समझने लगा. ऐसा समझनेका कारण यह था कि उस(तृणावर्त)ने अपनेसे भी भारी बोझवाला उनको देखा और उसकी गुरुमाताके गौरवको जानना तृणावर्तकी बुद्धिसे बाहर था. इसलिए उसको भारी पत्थर समझ उससे अपनेको छुड़ानेका विचार करने लगा. किन्तु भगवान्ने उसे गलेसे पकड़ लिया था, इसलिए वह छुड़ा भी न सका. हाथोंको दूर कर क्यों नहीं छुड़ा लिया? इस शंका निवारणकेलिये शुकदेवजीने कहा है कि यह बालक साधारण बालक नहीं है किन्तु अद्भुत(अलौकिक) अर्भक बालक है, इसकी लीला अलौकिक है. इसको जो छोड़ता है उससे यह सम्बन्ध जोड़ता है कारण कि भगवान्की लीला अलौकिक(लोकसे विपरीत) है. जैसे कि जो कहता है कि भगवान्को मैं अपने साधनसे प्राप्त करूंगा, उसको भगवान् प्राप्त नहीं होते हैं एवं जो कहता है कि भगवान्से दूर हो जाऊंगा अर्थात् भगवान्को अपने बलसे छोड़ दूंगा तो वह भगवान्से अपनेको नहीं छुड़ा सकता है।।२७।।

इसके(ऊपरके श्लोकमें कहे हुए चरित्रके) पश्चात् जो कुछ भगवान्ने किया उसका वर्णन इस निम्न श्लोकमें करते हैं.

गलग्रहणनिश्चेष्टो दैत्यो निर्गतलोचनः ।।
अव्यक्तरावो न्यपतत् सहबालो व्यसुर्व्रजे ।।२८।।

कंठ पकडनेसे चेष्टा रहित, बाहर निकल आए नेत्रवाला, स्पष्टता रहित वाणीवाला तृणावर्त प्राण रहित होकर बालक सहित गोकुलमें गिरा ।।२८।।

जब तृणावर्त भगवान्को ऊपर ले गया, तब बालक स्वभाव(जब कोई बालकको ऊपर उठाते हैं तो बालक अपने हाथ उसके गलेमें डाल देता है)को प्रकाशित करनेवाले भगवान्ने तृणावर्तको गलेसे पकड़ लिया. भगवान्ने तृणावर्तको गलेसे पकड़ लिया, उसका भाव प्रकट करते हुए आचार्यश्री कहते हैं कि तृणावर्तको गलेमें बाहु डालकर पकड़ रखनेका आशय यह था कि मेरा जो प्रियत्व धर्म है उसको इसने देह और प्राणोंमें स्थापित किया है इसलिए जब तक यह प्रियत्व धर्म[१] इनमें(देहप्राण)में है तब तक मैं छूट नहीं सकता हूं. भगवान्ने तृणावर्तको जब गलेसे पकड़ा तब वह चेष्टा रहित हो गया. भगवान् दयालु हैं, उसकी निश्चेष्टता देखकर उसको छोड़ देंगे? किन्तु छोड़ा नहीं अपनी दयालुता क्यों प्रकट न की? इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि तृणावर्त दैत्य[२] था. दैत्य होनेके कारण भगवान्ने उसपर दया तो न की किन्तु उसके गलेको विशेष जोरसे दबाया जिससे उसकी आंखें बाहर निकल आईं. तृणावर्तने मनमें विचारा कि 'घोर' शब्दसे इनको डराऊंगा इस आशयको अन्तर्यामी सर्वज्ञ भगवान्ने समझ लिया अतः उससे भी विशेष दबानेसे उस(तृणावर्त)का चिल्लाना भी बन्द हो गया, साफ साफ बोल नहीं सका. तब विवश(प्राणरहित) हो, हृदयस्थित बालकके साथ गोकुलके बीचमें गिर पड़ा. श्रीकृष्ण गोकुलका सर्वस्व(सब कुछ धन) है कोई भी उसको दूसरे स्थानपर नहीं ले जा सकता है. श्लोकमें 'न्यपतत्' क्रियाके सन्धि विच्छेद करनेसे नि+अपतत् होता है इसमें 'नि' उपसर्ग है, 'अपतत्' क्रिया है. जिसका भावार्थ बताते हुए आचार्यश्री कहते हैं कि 'नि' नितरां(विशेष रीतिसे) 'अपतत्'(गिरा) अर्थात् इस प्रकारसे गिरा जैसे तृणावर्तके शरीरके सकल अंगोंका पृथ्वी(व्रज भूमि)से सम्बन्ध(स्पर्श) हुआ ।।२८।।

१.योजनाकार लालूभट्ट इसका विशेष स्पष्टीकरण करते हुए कहते हैं कि मैं(भगवान्) जीवोंका प्रिय आत्मा हूं. मेरे लिये ही देहादि प्रिय लगते हैं. इसलिए मुझमें जीवकी

वास्तविक रति करनी चाहिये, किन्तु अज्ञानसे देहादिको आत्मा समझकर उसे जीव प्रिय समझते हैं, उसमें रति करते हैं. यदि आत्मरूप प्रिय भगवान्‌को छोड़ते हो तो जिस देह और प्राणोंको आत्मरूप समझते हो, उनको क्यों नहीं छोड़ते हो? सारांश यह है कि भगवान्‌का प्रियत्व धर्म आरोपित किया गया है उन देह और प्राणोंको भगवान् लेना चाहते हैं तदर्थ तृणावर्तको भगवान्‌ने गलेसे पकड़ रखा है. योजना.

२.दैत्य पर दया करना जीवोंकेलिये विपत्तिकी रक्षा करनी है. दैत्य तो दूसरोंको दुःख देनेवाले होते हैं इसलिए उनका नाश करना ही धर्म है. अनुवादक.

तब मायाके(असुरोंके देवता मायारूप भगवान्‌के) चले जानेपर, गिरे हुए तृणावर्तको सबने देखा. इसका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

तमन्तरिक्षात् पतितं शिलायां विशीर्णसर्वावयवं करालम् ।।
पुरं यथा रुद्रशरेण विद्धं स्त्रियो रुदन्त्यो ददृशुः समेताः ।।२९।।

रुद्रके बाणसे विद्ध(वेधा गया ताडित) त्रिपुरासुरके समान शुष्क, सर्व अवयवोंवाला वह विकराल(भयानक) अन्तरिक्ष(आकाश)से शिलापर गिरा. उसको रोती हुई स्त्रियोंने देखा. उसको देखते ही सब इकठ्ठी हो गईं ।।२९।।

निरालम्ब(आधार रहित) दूर आकाशसे शिलापर गिरे हुए तृणावर्तको भगवान्‌में आसक्त स्त्रियोंने देखा. गोकुलमें एक शिला रखी हुई है, जिसपर बैठकर नन्दरायजी गौओंके दोहने आदि कार्यकी देख–रेख करते थे. वह शिला ब्रह्मपुत्रीकी[१-३] तरह स्थित थी. उस शिलाके कारण तृणावर्तके सर्व अवयव, निर्बल एवं चूर्णके समान हो गये. मरनेपर भी, सबकेलिये भयानक है क्योंकि कराल है, इसलिए कदाचित् मरनेका ढोंग किया हो, पुनः जीवित हो जाय. अतः भगवान्‌ने कराल क्रूरको ऐसे मारा, जिस प्रकार सर्व लोक पीड़ाकारक, त्रिपुरासुरको सर्व देवताओंकी प्रार्थनासे भगवान्‌ने स्वयं नारायणने रुद्रशर द्वारा नाश किया था. यदि स्वयं भगवान् उसका नाश न करते तो वह अदृश्य हो जाता किन्तु जाता नहीं और उसके द्वारा लोक सदैव पीड़ित होते. विकल होनेपर भी मारनेका कारण बताते हैं कि मारनेके योग्य दुष्टोंपर दया करनी अनुचित है. त्रिपुरासुर, जिस प्रकार शरसे विद्ध होकर ही परिभ्रमण करता हुआ गिरा वैसे ही यह भी गलेके पकड़नेसे गिरा. गिरते हुएको रोती हुई स्त्रियोंने जो देखा, तो रोना भूल गईं और तुरन्त सब जहां जहां थीं, वहां वहांसे आकर इकट्ठी हो, उसको देखने लगीं।।२९।।

१.'ब्रह्मपुत्री' शब्दका भाव प्रकाशकार पुरुषोत्तमजी कहते हैं कि राक्षसोंका नाश करनेवाली सरस्वती रूप ऋक् हैं. यों भासता है. प्रकाश.

२.'ब्रह्मपुत्री इव' अहिल्याके सदृश अर्थ करते हैं कि जैसे अहिल्या शिला होकर रही वैसे ही यह शिला है. दृष्टान्तका इतना ही तात्पर्य है. लेख.

३.श्रीलालूभट्टजी 'ब्रह्मपुत्री'का अर्थ अहिल्या करते हैं और विशेषमें कहते हैं कि जैसे भगवान् मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामने शिलारूप अहिल्याका उद्धार किया(मनुष्योंने उसको पहचाना नहीं था,) वैसे ही इस शिलाका, श्रीकृष्णने उद्धार किया, इसका भी कोई स्वरूप समझना चाहिए, यह केवल शिला नहीं थी किन्तु कोई दैवी जीव थी. शापादिके कारण यमलार्जुनकी तरह(उद्धारार्थ) यहां स्थित थी. उस दैवी जीवका शिला भाव भगवान्ने छुडाया. योजना.

एकत्र स्थित होकर रोदन बंदकर आश्चर्यसे देखती हुई गोपीजनोंने जो कुछ किया उसका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं.

आदाय मात्रे प्रतिहृत्य विस्मिताः कृष्णं च तस्योपरि लम्बमानम् ।।
तं स्वस्तिमन्तं पुरुषादनीतं विहायसा मृत्युमुखात् प्रमुक्तम् ।।३०।।

राक्षस द्वारा आकाशमें पहुंचे हुए, उस राक्षसकी छातीपर लिपटे हुए मृत्युके मुखसे मुक्त, सकुशल श्रीकृष्णको लेकर, माता(यशोदा)को दे, सब गोपियां विस्मित हुईं ।।३०।।

उस तृणावर्तकी छातीपर लिपटे हुए भगवान्को लेकर माता(यशोदा)को दे दिया. माताने लेकर स्तन पान आदि कराया. यह देख गोपियोंने समझा कि यह बालक(कृष्ण) तो स्वस्थ है. इससे विस्मित हुई अर्थात् अत्यन्त आश्चर्यमें पड़ गई. राक्षसका स्पर्श ही स्वाभाविक दोषजनक है, किन्तु इस बालकको तनिक भी दोषका स्पर्श नहीं हुआ था. दोषके स्पर्शका अभाव तो निष्पापोंमें ही होता है. इस बालकको दोषोंने क्यों नहीं स्पर्श किया? इससे भी विस्मित हुई, गोपीजनोंको अब तक यह ज्ञान नहीं था कि यह बालक निष्पाप है, अतः विस्मयमें पड़ गई थी. कृष्णको तृणावर्तके ऊपर(छातीपर) लिपटे देखकर भी, आश्चर्ययुक्त हुई, क्योंकि इनको ज्ञान था कि श्रीकृष्ण गुरु और वायु (तृणावर्तरूप होने)से लघु है. लघु वायु तो नीचे(मरा) पड़ा है और भारी यह बालकृष्ण है. जैसे पत्थरपर गिरे हुए पत्र, पत्थरको स्पर्श नहीं करते हैं, वैसे ही श्रीकृष्ण इस दैत्यपर, अस्पृष्ट ही लिपट रहे थे. आचार्यश्री कहते हैं कि भगवान्की यह लीला थी कि नीचे आनेके समय आप गुरु ऊपर होते हुए भी धीरे-धीरे आते थे, जिससे गोपियोंने कृष्णको

तृणावर्तके पृथ्वीपर गिरनेसे पहले(मध्यमें) ही उठा लिया था. अतः लेकर विस्मित हुई, तथा माताको देखकर भी विस्मित हुई. 'च' अक्षरका भाव बताते हुए कहते हैं कि गिरे हुए दैत्यको देखकर भी विस्मित हुई अथवा भगवान् ऐसे दैत्यके साथ आकाशमें गये तो भी डरे नहीं हैं, पूर्ववत् निडर हैं. यह देखकर भी विस्मयको प्राप्त हुई. इस प्रकार आन्तर(भीतरके) अलौकिक दोषोंके अभावके कारण तीन प्रकारसे गोपियां विस्मित हुईं. अब बाह्य(बाहरके) लौकिक दोषोंके अभावके कारण भी तीन प्रकारसे गोपियां विस्मय युक्त हुईं. राक्षस द्वारा आकाशमें लिया जाना भी मृत्यु मुख(मृत्यु स्थान) था, वहांसे भी मुक्त हो आए. राक्षसका नाम ही 'पुरुषाद' है अर्थात् पुरुषोंको भक्षण करनेवाला, मृत्युरूप है जिससे शरीर नाश व अंगोंका नाश अवश्यम्भावी(अवश्य होनेवाला) है तथा आकाशमें ले जानेपर वहांसे छोड़नेसे भी खेद-कार्य(नाश) होता है. ये दोनों ही मृत्युरूप अर्थात् मृत्युके कारण थे और इन दोनोंका दूसरे प्रकारसे होना(मृत्युसे बच जाना) भी सम्भव नहीं था. यदि पूर्ण सम्बन्ध न हो, तो मृत्यु टल भी जावे, किन्तु यहां जो पूर्ण रीतिसे सम्बन्ध हुआ था. इसको बतानेकेलिये श्रीशुकदेवजीने कहा कि 'मृत्यु मुखात्-प्रमुक्तं' जिसका अर्थ है, मृत्यु मुखमें जाकर निकल आए हैं. मृत्यु तो दैत्य था और मुख आकाश था, भगवान्ने अपनी इच्छासे मृत्युको मारकर अपनेको मुक्त किया. इस प्रकार त्रिविध मृत्युसे मुक्त हुए, ये तीन लौकिक प्रकारके आश्चर्य हैं. ऐसा(मृत्यु मुख प्राप्त हुआ) भी अब स्वस्तिमान् कुशल है. इससे भगवान्की शोभा व हर्षमें न्यूनता न आई ।।३०।।

इस प्रकार ऊपरके श्लोकोंमें गोपियोंका आश्चर्यान्वित होना बताया, जिससे उन्हें प्रपञ्च विस्मृत हो गया और भगवान्में आसक्ति होनेसे वे परमानन्दको प्राप्त हुई. इसका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं.

[१]गोप्यश्च गोपाः किल नन्दमुख्या लब्ध्वार्भकं प्रापुरतीव मोदम् ।।३१।।

गोपियां और नन्द प्रमुख सर्व गोप, बालकको पाकर अत्यन्त आनन्दित हुए ।।३१।।

गोपियां एवं ('च' अक्षरका आशय है कि) अन्य स्त्रियां भी आनन्दको प्राप्त हुई. मूलमें केवल 'गोप्यः' अर्थात् 'गोपियां' कहा गया है तथा गोप भी बालकको पाकर अत्यन्त आनन्दको प्राप्त हुए. गोपियोंको विस्मय हुआ था इसलिए उन्हें आनन्द हुआ. गोप तो विस्मित हुए नहीं, तब इनको प्रपञ्चकी तो

विस्मृति हुई नहीं तो फिर उनको परम आनन्द कैसे हुआ? इसके उत्तरमें आचार्यश्री आज्ञा करते हैं कि युक्ति न होनेपर भी प्रमाण बलिष्ठ होता है, इसलिए गोपोंको भी परमानन्दकी प्राप्ति हुई. इसलिए श्लोकमें निश्चयवाचक 'किल' शब्द दिया गया है और गोपोंके हर्षित होनेको हेतु पूर्वक सिद्ध करते हुए कहते हैं कि शुकदेवजीने श्लोकमें गोपोंको नन्द प्रमुख कहा है अर्थात् गोपोंमें नन्दजी मुख्य थे. इसलिए मुख्य नन्दजीके प्रपञ्चकी विस्मृतिसे गोपोंकी भी प्रपञ्च विस्मृति होना सिद्ध है अतः गोपोंको परमानन्द हुआ यह कहना उचित ही है. अवस्था भी परमानन्दको प्रकट करनेवाली थी. क्योंकि मृत्यु मुखमें प्रविष्ट बालककी सकुशल प्राप्ति, परमानन्दको स्वतः उत्पन्न करनेवाली है अतः निःसीम आनन्दको प्राप्त हुए।।३१।।

१.अन्यत्र छपे हुये कितनेक भागवतके पुस्तकोंमें यह आधा श्लोक भागवतके ३०वें श्लोकके साथ दिया गया है. और निम्न ''समेत्य चैकत्रकृताशिषोमलाः'' आधा श्लोक है ही नहीं. आचार्यश्री 'समेत्य चैकत्र' श्लोकका आधा भाग न मिलनेसे कहते हैं कि आधा श्लोक न होनेसे अर्थ स्पष्ट नहीं समझा जाता है.

समेत्य चैकत्र कृताशिषोमला विचारयामासुरुपायमत्र ।।३२।।

आशीर्वाद देनेवाले दोष रहित गोपादि यहां एक स्थानपर इकट्ठे होकर उपायका विचार करने लगे ।।३२।।

इस श्लोकका आधा भाग मिलता नहीं है. इसलिए इस आधेके सम्बन्धकी योजना पूर्ण नहीं हो सकती है. अतः आधेका ही शब्दार्थ दिया जाता है. नन्द यशोदा जिनके आगेवान है वैसे गोप तथा गोपियां, एक स्थानपर बैठकर विचार करने लगे. उस विचारका वर्णन निम्न दो श्लोकोंसे किया जाता है।।३२।।

अहो बतात्यद्भुतमेष रक्षसा बालो निवृत्तिं गमितोभ्यगात् पुनः।।
हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलः साधुः समत्वेन भयाद् विमुच्यते।।३३।।

यह बालक राक्षस द्वारा आकाशमें गया और वहांसे सकुशल स्वस्थ दशामें यहां पृथ्वीपर वा अपने स्थानमें, सकुशल आ गया. अहो! यह समग्र चरित्र अत्यन्त अद्भुत है, इसमें किसी तर्कसे सिद्ध करनेकी आवश्यकता नहीं है ।।३३।।

जगत्में आश्चर्य उत्पन्न करनेवाले कार्य अन्य भी देखे जाते हैं, जैसे कि नट–विद्या अथवा जादूगरका खेल, माया और स्वप्नमें जो देखा जाता है वह सब

आश्चर्य है; किन्तु यह आश्चर्य तो उनसे भी विशेष होनेसे 'अत्यन्त अद्‌भुत' है. मायामें तो केवल दिखावा होता है, जैसा कि जो होता(बनता) है, वह अद्‌भुत होता है; फिर अन्य प्रकारसे न होकर वैसा ही रह जाता है. जो कभी भी न हुआ है, कहीं भी नहीं हुआ है, वह हो जाय तो, इसको उससे भी विशेष अत्यन्त अद्‌भुत कहा जाता है. वह अत्यन्त अद्‌भुत कार्य, अपने लिये अति ही अनिष्टकारी है, इसका स्मरण कर कहते हैं 'बत'(खेद है). यह बालक अपने आपको इस प्रकार बिना आघात और बिना घबराया हुआ प्रत्यक्ष दिखला रहा है, इससे हेतुकी विपरीतता दृढ़ होती है. जैसे कि क्रूर स्वभाव राक्षस, तो इस अति सूक्ष्म बालकको बहुत दूर ले गया. दूसरा तो ले गया और यह स्वयं अपने आप ही आ गया यह आश्चर्य है क्योंकि यह बालक है. बालक यों कर नहीं सकता है कि कोई दूसरा दूर ले जावे और वहांसे आप सकुशल लौट आवे. इसलिए कहा है कि यह आश्चर्य है. फिर ले जानेवाला भी साधारण व्यक्ति नहीं था किन्तु राक्षस था, जिससे बालककी क्रिया भी बन्द हो गई थी. ऐसी दशा होनेपर भी, स्वतः स्वयं बालक आ गया, इसमें क्या उपपत्ति(युक्ति) है. युक्ति बताते हुए शुकदेवजीने मूलमें कहा है कि वह हिंसक(मारनेवाला) था इसलिए उस (हिंसक तृणावर्त)को उसके पापोंने ही नष्ट कर दिया. इसको आचार्यश्री स्पष्ट करके समझाते हैं कि तृणावर्तमें 'मृत्यु'(काल) तो दूसरोंको मारनेकेलिये रहती ही थी और वह मारनेकी क्रिया वहां करता है, जहां पाप होता है. तृणावर्तने इससे पहले बहुतोंके बधरूप अनेक पाप किये ही थे अतः कालके आधार, तृणावर्तमें पाप हैं. वह ऐसा पापी, जब निष्पापमें मृत्युकी प्रेरणा करता है, तब मृत्यु उस निष्पापको न पकड़ किन्तु लौटकर अपने आश्रयको ही पकड़ती है. इसीलिए मूल श्लोकमें कहा गया है कि घातक(हत्यारा) अपने पापोंसे नष्ट होता है. मृत्यु भी अपना आश्रय, यदि अत्यन्त दुष्ट होता है तो उसमें नहीं ठहरती है. इस कारणसे भी मृत्युने अपने आश्रय(तृणावर्त)का भक्षण किया. अतः शुकदेवजीने तृणावर्तकेलिये 'खलः' विशेषण दिया. 'खल' विशेषण देकर शुकदेवजीने यह बताया कि जगत्‌में सबसे अधिक दुष्ट खल(नीच निर्दयी) ही है. खलसे विशेष कोई दुष्ट नहीं होता है.

विषय(प्रसंग)में (तृणावर्तने मारनेकेलिये मृत्युकी प्रेरणा की थी) इस प्रकरणमें कहते हैं कि जिसको मारनेकेलिये मृत्युको भेजा था वह निष्पाप था. उसकेलिये शुकदेवजीने 'साधु' विशेषण दिया है. साधु सब शत्रु मित्र आदिमें

समदृष्टिवाले होते हैं इससे वह भयसे छूट जाता है अर्थात् उसको कोई भयभीत नहीं कर सकता है. निष्पाप तो ब्रह्म ही है. उस (ब्रह्म)के भी बहुतसे रूप हैं; उन रूपोंमें भी जो 'समरूप' है वह सर्व दोष विमुक्त है जैसा कि कहा है कि ''निर्दोषं हि समं ब्रह्म'' सम ब्रह्म निर्दोष है जो सबमें समदृष्टि रखता है. वह निर्दोष होनेसे किसीसे भी नहीं मारा जाता है. जो साधु है वह समदृष्टिवाला ही होता है. अतः यह बालक भी समदृष्टि साधु है इससे यह साधु समान दृष्टि होनेसे उपस्थित(आए हुए) भयसे विशेषरूपसे छूट जाता है. वहां जो ज्ञानमें निष्ठावाले थे, उन्होंने यह निर्णय किया कि इस बालकमें जो भगवत्व दिखता है, वह साधनोंसे हुआ है न कि अकृत्रिम(स्वाभाविक) है।।३३।।

३३वें श्लोकमें ज्ञाननिष्ठोंका निर्णय बताकर इस ३४वें श्लोकमें कर्मनिष्ठावालोंने जो निर्णय किया उसका वर्णन करते हैं.

किं नस्तपश्चीर्णम् अधोक्षजार्चनं पूर्तेष्टदत्तम् उत भूतसौहृदम् ।।
यत् सम्परेतः पुनरेव बालको दिष्ट्या स्वबन्धून् प्रणयन् उपस्थितः ।।३४।।

हम लोगोंने तपस्या, भगवत्पूजा, पूर्त(कुआ वापी-बावड़ी खुदवाना), इष्ट(पञ्चयज्ञ, अग्निहोत्रादि करना), दान(तुलापुरुषादि दानादि), और जीवोंपर दया ऐसा जो कुछ किया है, उसके प्रभावसे वह बालक मृत्यु-मुखमें जाकर भी फिर अपने बान्धवोंके नामको सर्व लोकमें अमर यशस्वी करनेकेलिए आ गया है, तदर्थ बधाई है ।।३४।।

पहले, कर्ममें निष्ठावाले राजसोंका निर्णय बताते हैं. राजस कर्मी कहते हैं कि हम लोगोंने पूर्व जन्ममें कुछ तपस्या की है. जिससे इस प्रकारका निधिरूप बालक हमारे घरमें रहता है. अब सात्त्विक कर्मनिष्ठोंके विचार प्रकट करते हैं. सात्त्विक कहते हैं कि हमने अधोक्षज भगवान्का पूजन किया है जिससे यह अलौकिक बालक मिला है. ऐसा अलौकिक बालक तपस्यासे नहीं मिलता है; किन्तु जब भगवान् प्रसन्न होकर कृपा करते हैं, तब प्राप्त होता है. विष्णु पूजित होनेपर प्रसन्न होते हैं. उसमें भी साधारण रूपसे पूजित हुआ साधारण फल देता है. हम लोगोंने तो अलौकिक प्रकारसे पूजन किया है. इसलिए शुकदेवजीने मूल श्लोकमें 'अधोक्षजार्चनं' पद दिया है. जो इन्द्रियोंके ज्ञानसे नहीं जाना जाता है. उस अलौकिक परमात्माका हम लोगोंने अर्चन किया है. शास्त्र-दृष्टि पवित्र होनेपर, अलौकिक हुई इन्द्रियोंसे जो पूजन होता है, वह पूजन है. भगवान्का

पूजन लौकिक इन्द्रियोंके बलसे होता है. वहां इन्द्रियोंके बलका कार्य नहीं अर्थात् इन्द्रिय बल वहां काम नहीं देता है.

अब तामसी कर्मनिष्ठोंके निर्णयको कहते हैं कि तामसी कर्मनिष्ठ दो प्रकारके हैं एक बहिर्मुख(जो भगवत्पूजन वा भगवान् हैं, इन दो बातोंको नहीं मानते हैं). दूसरे अन्तर्मुख(जो प्रतिमा पूजन आदि नहीं मानते हैं, केवल पूर्त, इष्ट, दान करना मानते हैं) हैं. किन्तु सर्वभूत स्थित भगवान्को समझकर भूतोंपर दया करते हैं उनकी सेवा करते हैं. पूर्त, इष्ट, दान ये लौकिक प्रकार हैं जो अत्यन्त बहिर्मुख है उनका यह निर्णय है. अब अन्तर्मुखोंका निर्णय कहते हैं कि सकल प्राणिमात्रसे सौहार्द करना, कारण कि सब भूतोंमें भगवान् हैं इसलिए दान मानादिसे, उनसे सौहार्द प्रकट करना अर्थात् भूतमात्र पर दया करनी. वह (भूत दयादि) तो ज्ञान मार्गियोंके सिद्धान्तमें प्रवेश न हो, इसलिए श्लोकमें 'उत' दिया है जिसका अर्थ है 'या तो' अर्थात् यह कथन विकल्पसे कहा है. अर्थात् कर्म-मार्गी, लोकके समान पूर्त, इष्ट, दानादि सर्व कर्मोंके साथ यह भूत सौहृद किये हैं उनका यह फल है.

इस प्रकारकी कल्पनामें हेतु(कारण) कहते हैं कि कर्मी(कर्मके सिद्धान्त माननेवाले) लौकिक होते हैं इसलिए अमंगल वचन(भगवान्केलिये कहे हुए असभ्य वचन) लोकोक्ति होनेसे लोकमें निन्दित नहीं माने जाते हैं फिर भी पूर्वके समान, स्वभाग्य(अपने भाग्य)से बालक अपने घरमें पिता आदि अपने बान्धवोंको सर्वलोकमें प्रसिद्ध(यशस्वी) करता हुआ आकर उपस्थित हुआ. यह भी बधाई है।।३४।।

इस प्रकार ज्ञाननिष्ठ तथा सात्त्विक, राजस और तामस(बहिर्मुख एवं अन्तर्मुख) कर्मनिष्ठोंका निर्णय कहकर अब नन्दरायजीने उत्पातोंका कारण जिस अन्य प्रकारसे[१] समझा था वह दूसरोंने नहीं जाना था, जिसका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं.

दृष्ट्वाद्भुतानि बहुशो नन्दगोपो बृहद्वने ।।
वसुदेववचो भूयो मानयामास विस्मितः ।।३५।।

बृहद्वनमें नन्दगोप अनेक अद्भुत कर्म देखकर वसुदेवजीके वाक्योंकी सत्यता मानने लगे एवं विस्मयमें पड गए ।।३५।।

अनेक अद्भुत घटनाएं देखकर नन्दजी वसुदेवजीके वाक्य सत्य मानने

लगे. इन अद्‌भुत कार्य करनेवालोंमें, पूतना, शकट और तृणावर्त तीन मुख्य एवं प्रसिद्ध थे. दूसरे भी इस प्रकारके सैकडों थे. इन अद्‌भुत कार्योंसे जो रस प्रकट हुआ, उसने अन्य रसोंको भुला दिया था. शुकदेवजीने नन्दरायजीका 'नन्दगोप' नाम देकर यह भाव बताये हैं कि नन्दरायजीमें ज्ञान एवं क्रिया दोनों शक्तियां हैं. ज्ञान शक्ति होनेसे भगवान्‌के परमैश्वर्यका ज्ञान था इसलिए नन्दरायजीको आश्चर्य न हुआ. यह सर्व बृहद्‌वनमें ही होता है, इससे वसुदेवजीके वाक्योंको फिर सत्य प्रमाणरूप मानने लगे. नन्दरायजी ज्ञानको ही महत्त्व देते थे, न कि क्रियाको. भविष्यमें होनेवाले कार्य भी(जैसे वसुदेवजीने कहे थे) वैसे होंगे इसमें क्या आश्चर्य है, क्योंकि वसुदेवजीका ज्ञान अलौकिक था. वसुदेवजीके कहनेसे पूर्व किसीको ज्ञान न था. ज्योतिःशास्त्रमें भी प्रसिद्ध नहीं है. यों वसुदेवजीका ज्ञान अलौकिक है इसको स्मरण करते हुए विस्मित हुए।।३५।।

१. कंसकी प्रेरणासे ये उत्पात होते हैं. लेख.

भक्तिर्ज्ञानं तथा पूर्णं विस्मयश्च ततः परम् ।।
जातो लौकिकभावस्य दृढत्वादिति रूप्यते ।।१।।

भक्ति, ज्ञान, पूर्ण ज्ञान और उसके बाद लौकिक भाव दृढ होनेसे विस्मय हुआ. इसका वर्णन क्रम पूर्वक चार श्लोकोंमें करते हैं जैसे कि ३६वें श्लोकमें भक्तिका, ३७वें श्लोकमें ज्ञानका, ३८वें श्लोकमें पूर्णज्ञानका और ३९वें श्लोकमें विस्मयका वर्णन है.

पांचोंमेंसे इस प्रकार एक उपाख्यान कहा अब ३६-३९ इन चार श्लोकोंसे दूसरा उपाख्यान कहते हैं.

एकदार्भकम् आदाय स्वांकमारोप्य भामिनी ।।
प्रस्नुतं पाययामास स्तनं स्नेहपरिप्लुता ।।३६।।

एक दिन स्नेहसे भरपूर यशोदा बालकको ले अपनी गोदीमें बिठाकर, दूध टपकनेवाले स्तनसे दूध पिलाने लगी ।।३६।।

पहले स्वतन्त्र पूतनाका वध किया, तदन्तर परतन्त्र भी उस शकटको तोड़ डाला, उसके बाद सर्व नाशक तृणावर्तका नाश किया. इन तीनोंके नाश करनेमें कोई दूसरा कारण नहीं दिखाया है. इतनी अद्‌भुत लीलाओंको देखकर भी जो असम्भावना दोष नष्ट नहीं होगा, तब तक भगवान्‌में दृढ़ आसक्ति नहीं होगी. अतः असम्भावना दोषका निवारण करनेकेलिये भगवान्‌ने अपनेमें ही ऐसे रूप

दिखानेकी लीला की, जिससे उस दोषका नाश हो जाए. अपने धर्म अर्थात् भगवद्धर्मका ज्ञान भक्तिसे ही होता है. इसलिए पहले इस श्लोकमें भक्तिका वर्णन करते हैं. एक दिन यशोदा जब गृह-कार्यसे निवृत्त हो गई थी और उसका भगवान्में ही चित्त लगा हुआ था तब मीठी बोली बोलनेवाले एक वर्षसे कुछ अधिक उमरवाले खेलते हुए बालकृष्णको उसने बलसे स्वयं पकड़के अपनी कोमल गोदीमें जो सर्वोत्तम आसन था बिठा लिया. श्लोकमें यशोदा नाम न देकर, 'भामिनी' कहा है, उसका भावार्थ आचार्यश्री बताते हैं कि यशोदा परम सौभाग्यवाली थी इसलिए शुकदेवजीने उसके परम सौभाग्यको प्रकट करनेकेलिये इस शब्दका प्रयोग किया है. वह स्त्री, परम सौभाग्यवती कहलाती है, जिसकी सब बातें पति माने. नन्दरायजी यशोदाकी सब बातें मानते थे अतः यशोदाको परम सौभाग्यवती कहा गया है. वह सब प्रकारके आभूषण पहने हुए थी और बहनोईवाली थी जिससे उसके बहिन होनेका सौभाग्य भी दिखाया गया है. इस प्रकार परम्परासे(सब प्रकारसे) भाग्यवती थी और कर्मोंसे भी उत्तम थी. स्नेहके कारण विशेष प्रकारसे दूध टपकने लगा. इससे यशोदा प्रेम परिप्लुत(भरपूर) हो गई. स्नेहका कार्य पूर्ण होनेसे अर्थात् स्तनसे दूध स्रवित होनेसे स्तन पिलाने लगी. 'भामिनी' पद देनेका यह भी आशय है कि यशोदामें प्रयतात्मत्व(जितेन्द्रिय) भी था अर्थात् यशोदा संयमवाली थी 'प्र' शब्दसे 'भक्तिमती' कहा. स्नेह परिप्लुत होनेसे भक्तिसे भगवान्को स्तन दिया. यद्यपि भगवान्के अन्तःस्थित बालक पूर्ण तृप्त न हुए थे एवं भगवान् स्वतः पान करते न थे. बालकोंको तृप्त करानेकेलिये दूधकी अपेक्षा भी थी तथापि अन्यकी प्रेरणासे पान किया अतः भगवान्ने सब दूधका पान नहीं किया क्योंकि अधिक पान करनेसे अन्तःस्थित बालकोंको कष्ट होता. प्रयोजककर्ता यशोदाने जो व्यापार(स्तन पान कराना) प्रारम्भ किया था, उससे यशोदाकी निवृत्ति करानेकेलिये और उसे भक्तिमें मग्न करनेकेलिये[१] भगवान्ने स्वधर्म दिखाया. गीतामें कहे हुए इस न्यायसे कि जो जैसे मेरी शरणमें आते हैं वा मुझे भजते हैं, मैं भी उनसे वैसे ही प्रकारसे वर्तता हूँ. भक्तिसे प्रकट, यशोदाके धर्म(दूध या भक्ति)को ग्रहणकर, आप भी यशोदाकी कृपासे फलरूप स्वधर्म(स्व स्वरूप)का ज्ञान प्राप्त कराते हैं. अर्थात् असम्भावना दोष निवृत्त्यर्थ एवं अपनेमें दृढ आसक्ति करानेकेलिये अपने भगवत्व धर्म 'मैं भगवान् हूँ और मुझमें सब कुछ करनेकी सामर्थ्य है. इसलिए मैं जो लीलाए करता हूं उसमें विस्मय

या संशय नहीं करना चाहिए''का ज्ञान यशोदा माताको प्राप्त कराते हैं।।३६।।

१.योजना : भक्ति परायणका भाव है कि यशोदाको शुद्ध पुष्टि भक्तिरूप मुखारविन्दके दर्शनमें तत्पर किया.

स्तनपानरूप दानका आग्रह छोड, कौतुकोविष्ट(आश्चर्यमें पडी हुई) यशोदा भगवान्के धर्म परायण हो, जो भगवान्ने जृम्भा(उबासी) लेते हुए अपना धर्म प्रकट किया, उसको देखने लगी जिसका वर्णन निम्न श्लाकमें करते हैं.

पीतप्रायस्य जननी सा तस्य रुचिरस्मितम् ।।
मुखं लालयती राजन् जृम्भतो ददृशे त्विदम् ।।३७।।

थोडासा स्तन पान किये हुए(बालकृष्ण)के सुन्दर हास्यवाले मुखको यशोदा प्यारसे लडाती थी, हे राजन् ! उस समय जो बालकने जम्भाई ली तो यशोदाने उसके मुखमें यह जगत्, जो निम्न श्लोकमें स्पष्ट करेंगे, देखा ।।३७।।

भगवान्ने पूर्णतया स्तन-पान नहीं किया, किन्तु थोड़ासा पिया, क्योंकि जननी है. यशोदामें जो यह भाव था कि इसको मैंने ही उत्पन्न किया है, इसलिए यह मेरा पुत्र है, इसलिए स्तन-पानसे इसको तृप्त करुं. यशोदामें यह भाव, भगवान्ने ही पैदा किया था इसलिए यह भी भगवच्चरित्र है. यशोदामें माताका भाव है. यशोदाके इस मातृ-भावको स्थिर करनेकेलिये, थोड़ासा स्तन-पान किया था, नहीं तो, भगवान् तो न खाते हैं और न पीते हैं एवं अन्तःस्थित बालकोंको भी भूख नहीं थी, अतः केवल माताकी प्रसन्नताकेलिये थोड़ासा स्तन-पान किया. वह यशोदा पूर्व श्लोकमें कही गयी भक्तिवाली थी. कार्यकेलिये, कार्य दशामें, सद्भावना दिखानेके अर्थ, फिर अनुसन्धान(चिन्तन) किया गया है. पुनः कार्य दशामें भक्तिका अनुसन्धान किस लिये किया जा रहा है. वहां कहते हैं कि उसकेलिये(जो निरोध करनेकेलिये ही प्रकट हुआ है) निरोधार्थ प्रकटितका मुख मधुर मनोहर मुसकानवाला है और वह मुसकान मोह सहित, स्नेह पैदा करनेवाली थी. जिससे यशोदा उस मुखमें परम सौन्दर्यका अनुभव करती हुई, उसको लडाने(प्यार करने) लगी. यहां परीक्षितको 'राजन्' सम्बोधन इसलिए किया है कि आप सावधान हो जाओ क्योंकि यद्यपि राजलीलामें इसका(मुखके लाड लड़ानेका) अनुभव हुआ ही है. आगे जो कहा जाएगा, वह अपूर्व(नवीन) होगा. भगवान्को अपने मुखमें, यशोदाको 'जगत्' दिखाना था, इसे देखनेके योग्य, यशोदा तब हो, जब उसमें ज्ञान और क्रिया

शक्ति विद्यमान हो. इसलिए भगवान्ने पहले जम्भाई ली, जिससे भगवान्के मुखमेंसे, उत्पन्न उष्णतारूप अग्नि एवं, वायुका प्रवेश भगवान्ने यशोदामें कराया. भगवान्की उष्णता, अग्नि प्रकाशरूप होनेसे, ज्ञान शक्ति थी एवं वायु क्रियारूप थी. इन दोनों ज्ञान एवं क्रियारूप शक्तिका, यशोदामें प्रवेश होनेसे, वह भगवान्के मुखारविन्दमें जगत्(जिसका वर्णन निम्न श्लोकमें होगा) देख सकी. यदि भगवान्, इस प्रकार जम्भाई ले, ज्ञान और क्रिया शक्ति यशोदामें प्रविष्ट न करते तो यशोदा मुखमें जगत् नहीं देख सकती थी. श्लोकमें दिया हुआ 'तु' शब्द क्यों दिया है. उसका स्वारस्य(आशय) प्रकट करते हुए आचार्यश्री कहते हैं कि शुकदेवजीने 'तु' शब्द इसलिए दिया है कि किसीको यह भ्रम नहीं करना चाहिए कि यशोदाने भगवान्के मुखमें जो 'जगत्' देखा वह मायिक अथवा दूसरा (भगवान्के बनाये हुए इस प्रत्यक्ष जगत्से कोई दूसरा) जगत् था. यह सामने दीखता हुआ जगत्, जम्भाई लेनेवाले भगवान्से उसके मुख द्वारा भगवान्में देखा. इस समय तो केवल ब्रह्माण्डका प्रदर्शन कराया क्योंकि यशोदाका अभी इतना ही अधिकार था. जब पूर्ण अधिकारिणी होगी तब सबके दर्शनका वर्णन करेंगे।।३७।।

''द्युभ्वाद्यायतनं स्वशब्दात्'' इस ब्रह्मसूत्रसे जगत्का आधार ब्रह्म है अतः जगत् भी ब्रह्मातिरिक्त कोई दूसरी वस्तु नहीं है. ब्रह्म अचिन्त्य शक्तिमान है. वह सब कुछ हो सकता है एवं कर सकता है. इसलिए भगवद्लीलामें कोई आश्चर्य नहीं. यों समझ भगवत्परायण चित्तवाली होकर, यशोदाने जो कुछ देखा वह भ्रम नहीं था, इससे एक-एक वस्तुका नाम लेकर इस श्लोकमें वर्णन करते हैं.

खं रोदसी ज्योतिरनीकमाशाः सूर्येन्दुवह्निश्वसनाम्बुधींश्च ।।
द्वीपान् नगांस्तद्दुहितृर्वनानि भूतानि यानि स्थिरजङ्गमानि ।।३८।।

आकाश, स्वर्ग, पृथ्वी, तारामण्डल, दिशा, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, समुद्र, द्वीप, पर्वत इनकी पुत्रियां(नदियां) वन, स्थावर(जड) जंगम(चेतन) सब प्रकारके जीव देखे ।।३८।।

पहले विपुल(फैला हुआ) आकाश देखा. इसके अनन्तर, स्वर्ग और पृथ्वी देखी. वह आकाश तो स्वर्ग एवं पृथ्वीका आधार[१] है इस प्रकार स्वर्ग और पृथ्वी, तारामण्डलके आधार हैं. तारामण्डलके कारण दिशाएं दश हुई हैं. सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि ये तीन प्रकारके प्रकाश हैं. वायु, समुद्र(जल) पृथ्वी आकाश

ऊपर कहे हुए ही हैं इस प्रकार पांच भूत बताए. द्वीपादि(टापू इत्यादि) भूमिके ही भाग हैं. अलौकिकता जतानेकेलिये सात द्वीप कहे हैं. द्वीपोंकी सीमा करनेवाले तथा उनके भीतरी पदार्थोंका ज्ञान करानेवाले 'पर्वत' और उनकी पुत्रियां(नदियां), बनों और पर्वतोंके कारण छोटे-छोटे बन ही बन देखे और उससे भी छोटे-छोटे पदार्थ देखे. उनका वर्णन करते हुए कहते हैं कि भूतमात्र देखे और जो प्रसिद्ध पदार्थादि थे वे भी देखे जैसे कल्पवृक्ष, नारदादि तथा ब्रह्मादि देखे. यशोदाको इस समग्र दृश्य जगत्के आधाराधेयकी प्रतीति तो न हुई, अचानक भगवान्की जम्भाईके अनन्तर देखे ।।३८।।

१. प्रकाश: आकाश, स्वर्ग पृथ्वीका आधार इसलिए कहा गया है कि जो आकाशमें अवकाश खोखलापन(पोल, खाली स्थान) है अतः इस पोलमें स्वर्ग पृथ्वी रह सकते हैं, नहीं तो कहां रहते थे जिससे आकाश, स्वर्ग एवं पृथ्वीका आधार है.

जगत्, अग्नि एवं वायु रूप है. इस स्वरूपको समझने और देखनेकी अब तक यशोदा पूर्ण अधिकारिणी नहीं हुई है. भगवान्ने यशोदाको अधिकारिणी बनानेकेलिए क्षणमात्र जगत् दिखाया. जगत् देखकर यशोदाने ज्यों नेत्र बन्द किये, तो भगवान्ने जगत्को तिरोहित कर डाला, जिससे यशोदा विस्मित हो गई. इस प्रकार भगवान्ने यशोदाको विस्मित किया[१] इसका निम्न ३९वें श्लोकमें करते हैं.

सा वीक्ष्य विश्वं सहसा राजन् सञ्जातवेपथुः ।।
सम्मील्य मृगशावाक्षी नेत्रे आसीत् सुविस्मिता ।।३९।।

हे राजन्! मृगके बच्चेके समान नेत्रवाली यशोदाने अचानक विश्वको देख, कम्पायमान हो, आंखे बन्द कर लीं एवं आश्चर्यमग्न हो गई ।।३९।।

यशोदाने विश्व है, यह केवल कानोंसे सुना था. आंखोंसे देखा नहीं था, वह विश्व जो सुना था, उस(विश्व)को आंखोंसे अब देखा. कैसे देखा? विश्वके सब स्थलोंपर जाकर विश्व देखा वा अन्य प्रकारसे देखा, इस शंका निवारणकेलिये आचार्यश्रीने कहा है कि बिना गमन आदि क्रिया करनेके(जाने फिरने आदि क्रिया करनेके) वहां बैठे ही बैठे भगवान्के मुखारविन्दमें समग्र विश्व देख लिया. किन्तु यशोदा यह न समझ सकी कि ये दोनों कार्य[२] भगवान्ने किये हैं. क्योंकि यशोदा इस अलौकिक कार्यको पूरी तरह समझनेके योग्य नहीं हुई थी. भगवती श्रुतिने कहा है कि ''तस्माद् जञ्जृभ्यमानाद् अग्नीषोमौ निरक्रामताम्'' जम्भाई[३] खाते हुए अग्नि और सोम वृत्रके मुखसे निकले[४]. इस विषयका

स्पष्टीकरण विश्वको तिरोहित करनेसे भी यह बताया कि जगत् सिद्ध ही था. अचानक विश्वको देखनेसे यशोदा कम्पित हो गई. यद्यपि विश्व सुन्दर सत्यरूप था, तो भी अधिकारके अभावके कारण यशोदा भयभीत होकर कांपने लगी. भयके कारण आंखे बन्द कर लीं. इतनी यशोदा क्यों भयभीत हुई, जबकि जो विश्व देखा, उसमें भयानक पदार्थ कोई नहीं था. वहां कहते हैं कि स्वभाव सबसे बलवान् कारण है. यशोदा स्वभावसे डरपोक थी. उसकी सिद्धि करते हुए शुकदेवजी कहते हैं कि यशोदाके नेत्र मृगके बच्चेके समान थे अर्थात् जैसे मृग डरपोक होते हैं उनके बच्चे पितासे भी अधिक डरपोक होते हैं, वैसे ही यशोदाके नेत्रोंसे ज्ञात होता है कि यशोदा मृगके बच्चोंके समान डरपोक स्वभाववाली थी इसलिए वह डरकर कांपने लगी. आचार्यश्री(यशोदाकी आंखे हरिणके बच्चेके समान थीं) शुकदेवजीके इस प्रकार नेत्रोंकी उपमाका दूसरा आशय कहते हैं कि इससे शुकदेवजी यह बताना चाहते हैं कि यशोदाके नेत्र भगवान्के दर्शनके योग्य हैं. उसके पश्चात् अन्तःकरणमें अधिक विस्मय उत्पन्न हुआ. पहले कार्य(भगवान्को भारी) देखनेसे फिर कारण(भगवान्का भारीपन) तथा उनके भीतर विश्वका होना देखनेसे अधिक विस्मित हुई ।।३९।।

१. प्रभुचरण यशोदाको विस्मित करानेका आशय बताते हैं कि यद्यपि यशोदाका भाव पुत्रके कारण लौकिक था, फिर भी वह भगवान्में होनेसे अलौकिक ही था. उस अलौकिक भावको दृढ करनेकेलिए, भगवान्को, यशोदाको अपने अलौकिकत्व धर्म दिखाने हैं परन्तु एक साथ दिखानेसे यशोदा स्नेहके कारण डर जावे, वा उसके प्राण भी चले जाय, इसलिए धीरे-धीरे धर्म दिखाते हैं; जिससे यशोदामें धैर्य रहे. अब धैर्याभाव ही अनधिकार है, धैर्य आनेसे अधिकार होगा.

२.(१) विश्व दर्शन. (२) जम्भाई ये दो कार्य. प्रकाश.

३. अग्निका और सोम(वायु)का प्रादुर्भाव ये दोनों कार्य. लेख.

४. श्रुतिमें, जो जम्भाई लेते हुए वृत्रके मुखसे 'अग्नि(प्राण वायु) और सोम(अपान वायु) निकले थे. ऐसा कहा है कि वे वृत्रकी शक्तिसे नहीं, किन्तु वृत्रमें विराजमान भगवान्की शक्तिसे उत्पन्न हुए थे. वहां तो स्वयं भगवान्ने जम्भाई ली, जिससे 'अग्नि-सोमात्मक' विश्व प्रकट हुआ है. लेख.

पूतनासुपयःपाता बालदुखनिवारकः ।।
प्रपञ्चस्मृतिहन्ता च गोकुले राजते हरिः ।।का.१।।

कारिकार्थः पूतनाके प्राणरूप दूध, पान करनेवाले बालकोंका दुःख

मिटानेवाले प्रपञ्चकी स्मृतिको मिटानेवाले हरि, गोकुलमें शोभा देते(विराजते) हैं।।१।।

स्वासक्त्यर्थं शकटभित् तृणावर्तविनाशकः ।।
सामर्थ्यज्ञापनार्थाय विश्वाधारः प्रसीदतु ।।का.२।।

अपनेमें आसक्ति करानेकेलिए शकटका भंग करनेवाले और अपनी सामर्थ्य जतानेकेलिए तृणावर्तका नाश करनेवाले विश्वके आधार श्रीकृष्ण प्रसन्न हों।।२।।

इति श्रीमद्भागवत दशमस्कन्धकी श्रीवल्लभाचार्यविरचित सुबोधिनी टीकाके तामस प्रकरणके 'प्रमाण' अवान्तर प्रकरणके यशनिरूपक अध्याय ३ का (स्कन्धानुसार अध्याय ७) का हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण.

अध्याय ८

श्रीकृष्णका ऊखलसे बांधा जाना

येनैव तु चरित्रेण सत्त्वं शुध्यति सर्वथा ।।
सर्वस्य मूलं यद्यस्मात् तदष्टम उदीर्यते ।।का.१।।

कारिकार्थ : अन्तःकरण शोधक, सब साधनोंसे उत्तम(मूल) साधन, भगवान्‌के चरित्र हैं. अतः जिन चरित्रोंसे अन्तःकरण शुद्ध होता है, वे चरित्र इस अध्यायमें कहे जाते हैं.

यद्यपि अगले कहे गए चरित्रोंसे अविद्याका नाश और भगवदासक्ति हुई है, तो भी, जब तक अन्तःकरण पूर्णरूपसे शुद्ध नहीं हुआ है एवं अन्तःकरणमें स्वल्प भी अविद्याका लेश रह गया हो, तो निरोध पूर्ण एवं परिपक्व नहीं होता है. इसलिए इस अध्यायमें वे चरित्र वर्णित होंगे जिनसे अन्तःकरण पूर्ण शुद्ध हो और अविद्या कार्यका रहा हुआ लेश भी नष्ट हो जाए।।१।।

नामान्यग्रे शोधकानि ततो रूपाण्यनेकशः ।।
ज्ञानं भक्तिश्च भाग्यं च पञ्चार्थाः सर्वशोधकाः ।।का.२।।

कारिकार्थ : अन्तःकरणको शुद्ध करनेवाले पांच पदार्थ हैं: १. भगवान्‌के नाम, २. अनेक प्रकारके भगवान्‌के रूप, ३. ज्ञान, ४. भक्ति और ५.भाग्य.[१]

प्रकाश: देह, इन्द्रिय, प्राण, अन्तःकरण और आत्मा इनकी पुष्टि करनेसे अविद्याके कार्यका नाश हो जाता है. इनके(देहादिके) शोधक पांच पदार्थ कहे गए हैं. १. नाम नामस्मरणसे (१०।७।२के प्रमाणानुसार) अन्तःकरण शुद्ध होता है, २.भगवान्‌के स्वरूप दर्शनादिसे, इन्द्रियां शुद्ध होती हैं, शुद्ध हुई इन्द्रियां भगवत्स्वरूप एवं भगवल्लीलाओंमें आसक्त हो जाती हैं, ३.ज्ञान देहाध्यास(देहको ही अपना स्वरूप समझना)को नाशकर, देहको शुद्ध करता है और स्वरूपका यथार्थ ज्ञान कराता है, ४.भक्ति देह, प्राण और इन्द्रियोंसे प्रेम एवं आसक्तिको हटाकर वह प्रेम तथा आसक्ति भगवान्‌में कराती है, ५.भाग्य पूर्व जन्ममें किये हुए कर्म सबके मूल हैं, अतः यदि पूर्व जन्ममें सुकर्म किये गए हैं तो भाग्य श्रेष्ठ होनेसे आत्मा शुद्ध होती है, जिससे उसकी शुभ विचार एवं शुभ कार्य (भगवत्सेवा स्मरणादि)में रुचि होती है. यद्यपि पूर्वजन्म कृत कर्मसे भाग्य बनता है तो भी वह भाग्य फलीभूत तब होता है, जब इस जन्ममें गुरुकी कृपा हो. गुरुकी

कृपा बिना ईश्वरकी कृपा भी नहीं होती है.

योजना: इस अध्यायमें १ से २१ श्लोक तक नाम प्रकरण है, २२ से ३१ श्लोक तक भगवान्‌के रूपोंका वर्णन है. भगवान्‌के नाम ग्रहणसे जिनके हृदय शुद्ध होते हैं, उनको ही भगवत्‌दर्शनसे हृदय शुद्धिका लाभ होता है. ३२ से ४२ श्लोक तक 'मृत्स्ना भक्षण' लीलाका वर्णन है, जिससे ज्ञान प्राप्ति होती है. इस ज्ञान प्राप्तिसे अन्तःकरण शुद्ध होता है. ४३ से ४५ श्लोक तक भक्तिका वर्णन है, ४६ से ५२ तक नन्दजीके भाग्यका निरूपण किया गया है. इस प्रकार इस अध्यायमें पांच उपप्रकरण किये गए हैं. आध्यात्मिक रीतिसे भगवान्‌के नाम, रूप, ज्ञान, भक्ति तथा भाग्य ये पांच अन्तःकरणशोधक हैं।।२।।

संस्कृतान्येव नामानि शोधकानीति संस्कृतिः ।।
स्वेच्छालीलाविशिष्टं हि रूपमानन्दभावतः ।।का.३।।

कारिकार्थ : नामकरण संस्कार इसलिए कहा जा रहा है कि नामोंका जब संस्कार होता है, तब वे नाम शुद्धि करते हैं. भगवान् अपनी इच्छासे(न कि अन्य देवादिकोंकी इच्छासे, भूमिभारहरणादि कार्यकेलिए जो रूप प्रकट करते हैं; क्योंकि वह रूप अंश कला वा व्यूहोंका है) जो लीला करते हैं उस लीलार्थ जिस रूपको प्रकट करते हैं वह पूर्णानन्दरूप होनेसे, शुद्धि करनेवाला होता है.

टिप्पणी: अन्तःकरणकी शुद्धिका कार्य मर्यादा मार्गीय है, इसलिए मर्यादा मार्गमें पुरोहित द्वारा उपदिष्ट संस्कृत(संस्कार किये गए) नाम ही शोध कहलाते हैं. (प्रभुचरणके कहनेका स्वारस्य यह है कि पुष्टिमार्गमें भगवन्नामोंके संस्कारकी आवश्यकता नहीं है पुष्टिमार्गमें भगवन्नाम सहज संशोधक है. अनुवादक. और जब तक अन्तःकरण पूर्ण शुद्ध न हुआ हो तब तक भगवान्‌के रास सम्बन्धी लीलाओंवाले रूपकी भावना नहीं करनी चाहिए, अन्तःकरण शोधक वह रूप है, जो अपनी इच्छासे की हुई लीलामें प्रकट होता है, वह ही आनन्दमय होनेसे शोधक है।।३।।

अन्येच्छया कृतान्यत्र चरित्राणि ततोन्यथा ।।
ज्ञानं प्रत्यक्षतो दृष्टं माहात्म्यज्ञानपूर्वकम् ।।का.४।।

कारिकार्थ : अन्यकी इच्छासे किये हुए चरित्रोंसे इस अध्यायमें किये हुए चरित्र अन्य प्रकारके हैं. भगवान्‌के माहात्म्य ज्ञानसे, भगवत्स्वरूपका ज्ञान प्रत्यक्ष हो जाता है.

टिप्पणी: भगवान् आनन्दस्वरूप हैं, इसलिए भक्तोंको भगवान्के सम्बन्धसे आनन्द ही प्राप्त होता है, इसलिए इस अध्यायमें कहीं भी भक्तोंको कुछ भी दुःखकी प्राप्ति नहीं हुई है, क्योंकि, भगवान् जब स्वतन्त्र अपनी इच्छासे लीला करते हैं तब भगवान्का रूप भक्तोंको आनन्द देनेवाला आनन्दरूप ही है, किन्तु जहां अन्यकी इच्छासे लीला करते हैं, उस समय भक्तोंको कुछ दुःख भी होता है. इसलिए इस अध्यायमें वर्णित चरित्र दूसरे प्रकारके हैं।।४।।

स्नेहश्चालौकिके तद्वद् हेतुश्च महतां कृपा ।।
पूर्वस्मिन् हृदये सिद्धे स्वत एवाग्रिमं भवेत् ।।का.५।।

कारिकार्थ: भगवत्स्नेह भी उसी प्रकार, अन्तःकरण शोधक है. अन्तःकरण शोधक नाम, रूप, ज्ञान, और भक्तिकी प्राप्तिमें महत्पुरुषोंकी कृपाका कारण है. चारोमेंसे पहले(नाम)की हृदयमें सिद्धि होनेसे, दूसरोंकी सिद्धि आप ही हो जाएगी.

लेख: महापुरुषोंकी कृपा परम्परासे शुद्धिकर्त्री है. इसलिए महापुरुषोंकी कृपा भी ५वीं शोधक पदार्थ है. लेखकारने यह आशय कारिकामें दिए हुए 'च' शब्दसे बताया है. पहले नामके श्रवण कीर्तनादिसे भगवत्स्वरूपके दर्शन हो जाते हैं, स्वरूप दर्शनसे माहात्म्य ज्ञानका प्रकाश हृदयमें होता है, ज्ञान प्रकाशसे भक्ति सिद्ध होती है.

तत्राङ्गं द्वितयं प्रोक्तं गुरुर्दुःसङ्गवर्जनम् ।।का।।

कारिकार्थ : उसमें दो अंग कहे हैं १. गुरु और २. दुःसंग त्याग.

नामकरण संस्कार उत्सव जो किया गया उसके दो अंग हैं. १.गुरु गर्गाचार्यजी, जिन्होंने आकर संस्कार कराया और २.दुःसंगत्याग अर्थात् संस्कार निर्विघ्न और शुद्धि पूर्वक सम्पूर्ण होकर आनन्ददायी हो, इसलिए दुष्टों(नास्तिक एवं शत्रु आदि)से छिपाके संस्कार करना चाहिए. जैसे गर्गाचार्यजीने भगवान्का नामकरण संस्कार दुष्टबुद्धि कंससे छिपाकर किया था.

निरोधमें(दशम स्कन्धमें) भगवदासक्तिके सिद्ध्यर्थ और अन्तःकरणकी शुद्धिकेलिए २१ श्लोकोंसे भगवान्के नामकरणोत्सवका वर्णन करते हैं.

श्रीशुकः उवाच
गर्गः पुरोहितो राजन् यदूनां सुमहातपाः ।।
व्रजं जगाम नन्दस्य वसुदेवप्रचोदितः ।।१।।

श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि हे राजन्! महातपस्वी और यदुवंशियोंके पुरोहित गर्गाचार्यजी वसुदेवजीकी प्रेरणासे नन्दजीके व्रजमें गए ।।१।।

भगवान्‌की प्रेरणासे नन्दजीको यही विचार हुआ कि मुझे वृद्धावस्थामें पुत्र हुआ है, इसलिए इसका संस्कार(नामकरण) न किया जाए. बिना नामकरणके ही रहे. यों विचारकर नन्दरायजीने बालकका नामकरण नहीं किया. बालकके नामकरण संस्कारका काल, अतिक्रमण हो गया(बीत गया). वसुदेवजीने जब यह जाना कि नन्दरायजीने बालकका नामकरण संस्कार अब तक नहीं किया है, तब अपने पुरोहित गर्गाचार्यजीको, बालकके नाम संस्कार करनेकेलिये गोकुलमें भेजा. यद्यपि संस्कारका काल बीत गया था, तो भी वसुदेवजीने समझा कि भगवान्‌के नामकरण संस्कारमें काल निमित्त नहीं है, इसलिए काल बीत जानेपर भी संस्कार करनेमें कोई दोष नहीं है. वसुदेवजीने स्वयं न जाकर गर्गजीको इसलिए भेजा कि क्षत्रियोंका संस्कार पुरोहित ही करते हैं. नन्दरायजी वसुदेवजीके पुत्रों(बलराम और कृष्ण)को अपने पुत्र समझते थे यों समझ वह सर्व संस्कारादि कार्य पितृरूपसे करावें तो उसमें नन्दरायजीको कोई दोष न लगे, इसलिए वसुदेवजीने अपना आधिदैविक[१] स्वरूप नन्दरायजीमें स्थापित कर दिया. भयकी निवृत्तिकेलिये भी प्रसंगवश बोध कराना अपेक्षित था. कंसको यह ज्ञान था कि मेरा मारनेवाला गोकुलमें है. मैंने(वसुदेवने) कपट किया है कि बालकको गोकुल पहुंचा दिया है. इससे उत्पन्न भयको मिटानेकेलिये गर्गको नाम संस्कार करनेकेलिये भेजा. अर्थात् वहां नन्दरायजीके घरमें 'नाम' करण संस्कार होगा तो कंस उस बालकको मेरा पुत्र नहीं समझेगा. इस प्रकार भयोंकी निवृत्ति हो जायेगी और नन्दरायजी जो गांवके रहनेवाले हैं उनको भी यह ज्ञान हो जाएगा कि मेरा पुत्र है. यदि नन्दजी उनको पुत्र न समझे और अलौकिक बालक समझे तो वह बुद्धि सुख(हर्ष)को बाधक करनेवाली हो जाती अर्थात् दुःख देती. अतः भय निवृत्ति एवं पुत्रत्व बुद्धि स्थिर करानेकेलिये वसुदेवजीने अपना आधिदैविक स्वरूप नन्दजीमें स्थापित किया एवं गर्गाचार्यजीको भेजा. श्लोकमें 'राजन्' कहनेका भाव यह है कि राजाओंके सर्व कार्य गुप्त होते हैं, इसलिए यह संस्कार भी गुप्त रीतिसे किया. गर्गाचार्यजी यदुओंके समग्र वंशके पुरोहित हैं, अतः बिना कहे हुए वे यदुवंशका हित करनेवाले हैं इससे गर्गाचार्यजीके अन्तःकरणकी शुद्धि भी कही गई है. गर्गजीकी महानुभावता बतानेकेलिये कहा है कि गर्गजी महान् तपस्वी हैं.

अचानक सुन्दर श्रेष्ठ मुहूर्त समझकर नन्दजीके व्रजमें गए. 'गए' ऐसा क्यों कहा. व्रजमें आए ऐसा कहना था. इस शंका परिहार(दूर करने)केलिये कहते हैं कि शुकदेवजी गोकुलसे अन्यत्र बैठे कह रहे थे इसलिए 'गए' कहा. पुत्रका कोई भी संस्कार पिताकी आज्ञा बिना नहीं होता है इसलिए श्लोकमें कहा है कि गर्गाचार्यजी वसुदेवजीकी प्रेरणासे आए थे यही पिताकी आज्ञा थी।।१।।

१.वसुदेवजीका आधिदैविक स्वरूप 'निगम' रूप है. प्रकाश.

इस श्लोकमें गर्गाचार्यजीके स्वागत सत्कारका वर्णन करते हैं.

तं दृष्ट्वा परमप्रीतः प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः ।।
आनर्चाधोक्षजधिया प्रणिपातपुरःसरम् ।।२।।

उन(गर्गाचार्यजी)को देखकर अति प्रसन्न नन्दरायजीने खडे होकर, हाथ जोडे और उनकी इन्द्रियातीत ब्रह्मकी बुद्धिसे(भगवान् समझ) साष्टांग दण्डवत् करते हुए पूजा की ।।२।।

मनमें जिस वस्तुकी चाह होती है, उसकी प्राप्तिपर अत्यन्त हर्ष होता है. गर्गाचार्यजी जैसे महान् तपस्वीके दर्शन होनेसे नन्दरायजी अत्यन्त प्रसन्न हुए. देखते ही उठकर खडे हो गये, जिससे नन्दरायजीने अपनी धर्म-निष्ठता बताई. 'हाथ जोडे' इससे नम्रता बताई, जिससे नन्दरायजीका अन्तःकरण शुद्ध है यह भी जाना गया. यह अतिथि है इसलिए इनको भगवान्के समान समझ इनका पूजन किया. घरमें आए हुएका अतिथिबुद्धिसे एवं भगवद्बुद्धिसे पूजा करनी चाहिए. उत्तम विप्रकी पूजा आतिथ्यसे यह भी वाक्य है. किन्तु नन्दरायजीने तो गर्गाचार्यका पूजन भगवान् समझकर किया. 'अधोक्षज' शब्दका भावार्थ आचार्यश्री बताते हैं कि गर्गाचार्यजीको चतुर्भुज स्वरूप समझ पूजा. वह पूजा भक्तिमार्गानुसार की, पहले साष्टांग दण्डवत् की, जिससे सब अपराध दूर हो गये. नित्य सेवा करनेवाले शरणागत दासके ही अपराध दूर(क्षमा) हो जाते हैं न कि दूसरोंके अर्थात् जो सेवक नहीं हैं, उनके अपराध क्षमा नहीं होते हैं।।२।।

यह अतिथि सत्कार जिस प्रकार आगे शेष रीतिसे पूर्ण हो वैसे नन्दजीने प्रार्थना करनेकेलिए कुछ कहा जिसका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं.

सूपविष्टं कृतातिथ्यं गिरा सूनृतया मुनिम् ।।
नन्दयित्वाब्रवीद् ब्रह्मन् पूर्णस्य करवाम किम् ।।३।।

अतिथि सत्कारके अनन्तर, मार्गकी थकावट दूर होनेसे, सुख पूर्वक बैठे

हुए, मुनिसे अभिनन्दन पूर्वक मधुर वाणीसे कहा कि हे ब्रह्मन् ! आप परिपूर्ण हो, आपकेलिए हम क्या करें? ।।३।।

मथुरासे गोकुल जानेके क्लेश(थकावट) मिट जानेपर अन्तःकरणकी व्यग्रता(उदासी) भी नष्ट हुई. तब आतिथ्य सत्कार किये हुए अर्थात् गृहस्थका कर्तव्य–घरमें आये हुए अतिथिकी स्नानादि भोजन पर्यन्त सकल परिचर्या की गई थी. गर्गाचार्यजीको स्वस्थ होकर आनन्दपूर्वक विराजमान देख, नन्दजीके भक्तिमार्गानुसार पूजन करनेसे गर्गाचार्यजीमें विशेष प्रेम बढ़ गया था; अतः नन्दरायजी गद्‌गद् वाणीसे(प्रेम भरित वाणी एक साथ नहीं निकलती है, रुक–रुककर कही जाती है, वह वाणी अस्पष्ट होती है) कहने लगे. जिससे (नन्दरायजी प्रार्थनामें जो शब्द कहेंगे, उसको सुनकर) गर्गाचार्यजी अवश्य अपनी सामर्थ्य इस नामकरण संस्कारमें लगाएंगे अर्थात् यह नामकरण संस्कार पूर्ण विधिसे कराएंगे. अन्योंके समान कपटकर अधूरा संस्कार न कराएंगे क्योंकि 'मुनि हैं' मुनियोंमें कपट नहीं होता है. मुनि होनेसे वे सर्वज्ञ हैं तब ही सब जानते हैं. यदि ये(गर्ग) सर्वज्ञ(भगवद्रूप मुनि) न हों तो, भगवद्‌बुद्धिसे किया हुआ स्तोत्र आरोपित विषय(एक वस्तुमें दूसरी वस्तुकी कल्पना करना) समान होगा. वह आरोपित विषय नहीं है इसलिए सच्ची और प्रिय वाणीसे गर्गाचार्यजी सन्तुष्ट हुए हैं. नन्दरायजी ऐसा समझकर गर्गाचार्यजीको 'ब्रह्मन्' कहते हैं. यह 'ब्रह्मन्' शब्द ब्राह्मणका परमोत्कर्ष प्रथित करता है. इतना ही नहीं; किन्तु यह 'ब्रह्मन' शब्द परब्रह्मवाचक भी है. इससे यह जताया कि गर्गाचार्यजी साधारण मनुष्य वा केवल उत्कृष्ट ब्राह्मण नहीं हैं; किन्तु ब्रह्मरूप हैं. इसलिए नन्दरायजीने कहा है कि जो दशों दिशाओंमें व्याप्त हैं और सबसे बडा एवं सबोंका पोषक है उसके लिए मैं क्या कर सकता हूं? ऐसेका उपकार दूसरा करे तो किसी प्रकारकी सम्भावना नहीं है अर्थात् ब्रह्मकी किसी प्रकारकी अपेक्षा(आवश्यकता) नहीं. अपेक्षा तो वहां होती है जहां न्यूनता(कमी) हो, यह तो पूर्ण है, तो उनका उपकार दूसरा क्या कर सकता है? कुछ भी नहीं यदि कुछ कृत्रिम नाममात्र भी किया जाय तो वह हीन है. तथा उस(ब्रह्मरूप मुनि)को क्या चाहिए? उसका भी ज्ञान नहीं है तो क्या करें. यदि जब ब्रह्म स्वरूपका उपकार नहीं कर सकते हो तो देह इन्द्रिय और अन्तःकरण न्यून हैं. उनको अपेक्षा भी रहती है, उनका उपकार करो. ऐसी कोई शंका करे तो उसका निवारण करते हुए कहते हैं कि गर्गाचार्यजी ब्रह्मभूत हैं. अतः

उनकी देहादिकोंके अध्यासकी निवृत्ति हो गई है, अतः देहादिकोंमें किया हुआ उपकार भी निष्प्रयोजन होगा।।३।।

ऊपरके श्लोकमें नन्दजीने गर्गजीके स्वरूपका वर्णन करते हुए कह दिया कि हम तो आपका कुछ भी उपकार कर नहीं सकते. इस श्लोकमें नन्दरायजी कहेंगे कि आप तो बिना याचनाके सबोंका उपकार करते हो.

महद्विचलनं नणां गृहिणो दीनचेतसाम् ।।
निःश्रेयसाय भगवन् कल्पते नान्यथा क्वचित् ।।४।।

हे भगवान्! महात्माओंका विचरना, दीन चित्तवाले गृहस्थियोंके कल्याणकेलिए ही होता है, स्वार्थकेलिए कभी भी वे विचरण नहीं करते हैं ।।४।।

महापुरुषोंका जगत्में कोई भी कार्य नहीं रहता है; जिसकेलिये विचरण करें, इसलिए वे कहीं भी नहीं जाते हैं. यदि ऐसे महापुरुष कहीं जाते हैं तो परोपकार करनेकेलिये जाते हैं. श्लोकमें 'चलनं' शब्द न देकर उसके साथ 'वि' भी दिया है. उसका आशय आचार्यश्री प्रकट करते हैं कि स्नानादिकेलिये नदीपर जाना तो होता है; किन्तु महात्मा लोग ग्रामान्तर नहीं जाते हैं, वे बाहर दूसरे ग्राममें जाते हैं तो परोपकारकेलिये जाते हैं अतः 'वि' उपसर्ग(अक्षर) 'चलनं'के साथ जोड़ा है. बाहर जाते हैं तो वहां भी जिनके हितकी इच्छासे जाते हैं उनके ही घरमें पधारते हैं, पधारकर उनके कार्य सिद्ध करते हैं. यह निश्चयसे समझा जाता है. यदि उनके हित करनेकी इच्छा न हो, तो गृहासक्त चित्तवाले वृद्ध एवं जो अत्यन्त दुःखसे पीडित दीन चित्तवाले हैं उनके घरमें जावे ही क्यों? अर्थात् न जावें. वहां जानेका मुख्य प्रयोजन उनके दुःखकी निवृत्ति करना ही है. उससे परमानन्दकी प्राप्ति होती है, इसलिए महात्माओंका गृहस्थीके घर जाना उनके निःश्रेयस[ं] ही है. ऐसे फल देनेकी आपमें(गर्गजीमें) शक्ति है इसको प्रकट करनेकेलिये, गर्गजीको 'भगवान्' कहा है. यद्यपि वे गृहस्थ, महात्माओंको अपने हितार्थ, प्रार्थना नहीं करते हैं तो भी महात्माओंके स्वतः जानेसे यह बात जानी जाती है कि ये हितकेलिये पधारते हैं; क्योंकि उनको तो कोई अपना स्वार्थ है ही नहीं. स्वार्थ बिना कोई भी कहीं नहीं जाता है. महात्माओंका 'परोपकार' करना ही स्वार्थ है; अतः वे विदेश पधारकर दीन गृहस्थोंका बिना प्रार्थना हित करते हैं. इस परोपकाररूप फलके उद्देश्यके अतिरिक्त महात्माओंके कहीं भी जानेकी कल्पना (अनुमान) नहीं कर सकते हैं।।४।।

१.दुःखसे छुडाने, आनन्द देने और मोक्ष प्राप्ति करानेकेलिये.

आप(गर्गाचार्यजी) ब्रह्मवित् होनेसे सर्वज्ञ एवं परोपकारी हैं. इस प्रकारकी स्तुतिकर अब श्लोकमें यह बताते हैं कि यह सर्वज्ञता जो कि ब्रह्मवेत्ताओंका लक्षण है, वह सर्वज्ञता गुण, अन्य ब्राह्मणोंमें चाहे वे ब्रह्मवेत्ता न भी हों तो भी उनमें भी रहे जिससे ब्राह्मण ज्ञाति, पूजनीय एवं लोकहित कर्त्री हो. इसलिए आपने(गर्गाचार्यजीने) वैसा उपाय भी किया है. नन्दजी उस प्रकारकी स्तुति इस श्लोकमें करते हैं.

ज्योतिषामयनं साक्षात् यत् तद् ज्ञानम् अतीन्द्रियम् ।।
प्रणीतं भवता येन पुमान् वेद परावरम् ।।५।।

जो ज्योति:शास्त्र, इन्द्रियोंके अगोचर ज्ञानका[१] साधन है. उस शास्त्रके आप रचयिता हो. जिस(शास्त्र)से मनुष्य तीनों कालोंमें जो हो रहा है. उसको पूरी तरह जान सकता है ।।५।।

नन्दरायजी कहते हैं कि हे आचार्य! आप उनके समान शास्त्र 'रचयिता' नहीं हैं, जो दूसरोंके बनाये शास्त्रोंके सहारेसे शास्त्र रचकर 'रचयिता' कहलाते हैं. आप तो साक्षात् ब्रह्मा और सूर्यके समान साक्षात् ज्योतिष शास्त्रके स्वयं रचयिता हैं. जिस शास्त्रसे यह ज्ञान हो जाता है कि यह ग्रह इस समय इस स्थानपर है. जिन(ब्राह्मणों)में इस प्रकार कहनेका बल नहीं है(जो स्वतः नहीं बता सकते हैं कि यह ग्रह इस स्थानपर है) उनमें भी आपके रचे हुए शास्त्रके पढनेसे वह बल अर्थात् ज्ञान शक्ति आ जाती है.

आपका रचा हुआ ज्योतिष शास्त्र, सर्ववादी सम्मत है. कोई भी वादी इस शास्त्रकी न्यूनता नहीं बता सकता है. वह आपका रचा हुआ शास्त्र केवल ज्ञान स्वरूप होनेसे ब्रह्मरूप है. अतः ''यस्मिन् विदिते सर्वम् इदं विदितं भवति'' इस श्रुतिके अनुसार जिसके ज्ञान होनेपर सबका ज्ञान हो जाता है, वह ब्रह्म है. तो इस शास्त्रके ज्ञान होनेपर भी सबका ज्ञान होता है, इसलिए आपका बनाया हुआ शास्त्र ब्रह्मरूप है. अतः यह शास्त्र गुरूपदेशके बिना अपने इन्द्रियजन्य बुद्धिसे समझमें नहीं आता है. आचार्यश्री श्लोकमें कहे हुए 'परावर' शब्दका दूसरा भावार्थ प्रकट करते हुए कहते हैं कि इस शास्त्रसे मनुष्य 'पर' अर्थात् पुरुषोत्तम भगवान् तकका ज्ञान प्राप्त कर सकता है और 'अवर'से छोटेमें छोटे परमाणु तक सूक्ष्म पदार्थोंको जान सकता है।।५।।

१. जिस वस्तुका इन्द्रियोंसे ज्ञान नहीं होता है उस वस्तुके ज्ञान .

नन्दरायजी इस प्रकार गर्गाचार्यजीकी स्वरूप एवं गुणों द्वारा स्तुतिकर पुत्रोंके नामकरण संस्कार करानेकेलिए इस श्लोकमें प्रार्थना करते हैं.

हे आचार्य! आप सर्वज्ञ ब्राह्मणोत्तमोंसे भी उत्तम हैं, अतः दोनों पुत्रोंके संस्कार करानेके योग्य हैं इसलिए कृपाकर संस्कार कराइए.

त्वं हि ब्रह्मविदां श्रेष्ठः संस्कारान् कर्तुम् अर्हसि ।।
बालयोरनयोर्नणां जन्मना ब्राह्मणो गुरुः ।।६।।

आप ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हो इसलिए इन दोनों बालकोंके संस्कार करानेके योग्य हो. ब्राह्मण जन्मसे ही मनुष्योंके गुरु हैं ।।६।।

ब्रह्मवेत्ता ही ब्राह्मण है और वह निश्चयसे सर्वज्ञ होता है, आप तो अन्योंको भी ज्ञानी बनानेमें प्रयत्नशील होनेसे, ब्रह्मवेत्ताओंमें परमोत्तम हो. इस कारण इन दोनों बालकोंके संस्कार करनेकेलिये आप योग्य हो. जिस प्रकार शास्त्रोंमें नामकरण, एक संस्कार है वैसे ही दूसरे भी कर्म(संस्कार) विद्या एवं भाग्य फलप्रद संस्काररूपसे कहे गये हैं. जैसे जातेष्टि[१] आदि और ''ऐन्द्राबार्हस्पत्यादि'' कर्म और अन्य भी प्रसिद्ध हैं; किन्तु वे अब लोकमें लुप्त हो गये हैं अर्थात् नहीं होते हैं. ये दोनों बालक असंस्कृत हैं, अर्थात् इनके अब तक संस्कार नहीं हुए हैं. नन्दजीके मनमें विचार आया कि गर्गजी यों न कह दें कि संस्कार तो पुरोहितसे कराना चाहिए, मैं आपका पुरोहित नहीं. इसके उत्तरमें नन्दजीने कहा कि मनुष्योंका प्रत्येक ब्राह्मण जन्मसे ही गुरु(पुरोहित) है अतः आप गुरु होनेसे संस्कार कर्म करो ।।६।।

१.गो.पुरुषोत्तमजी कहते हैं कि पुत्र जन्म समय द्वादश कपालवाले वैश्वानरको आहुति देना 'श्रुति'में लिखा है. इसको जातेष्टि यज्ञ कहते हैं इसके करनेसे पवित्रता होती है. प्रकाश.

गर्गाचार्यकी इच्छा थी कि संस्कार गुप्त होना चाहिए क्योंकि श्रुतिमें कहा है कि वैदिक कर्मका ज्ञान असुरोंको नहीं होना चाहिए; किन्तु नन्दरायजी ग्रामीण हैं, यों कहनेसे मानेंगे नहीं, इसलिए उनको लौकिक भय बताना चाहिए. लौकिक भय बताए बिना वे(नन्दरायजी) संस्कार गुप्त करनेकी बात मानेंगे नहीं. निम्न श्लोकोंसे भय बताते हैं.

गर्गः उवाच

यदूनाम् अहम् आचार्यः ख्यातश्च भुवि सर्वतः ।।
सुतं मया संस्कृतं ते मन्यते देवकीसुतम् ।।७।।

गर्गजी कहते हैं कि मैं यादवोंका आचार्य हूं. यह बात सर्वत्र पृथ्वीपर फैली हुई है यदि मैं तुम्हारे पुत्र(पुत्रों)का संस्कार करूंगा तो कंस तुम्हारे पुत्रको देवकीका पुत्र समझेगा ।।७।।

सर्वज्ञ जो कुछ कहते हैं, वह बहुत आशयोंवाला होता है, सब स्पष्ट कहते हैं और न भी कहते, कहा हुआ भी, न कहे जैसा भासता है. ''द्रव्य और संस्कारमें जहां विरोध हो, वहां संस्कारसे द्रव्य बलवान् समझना चाहिए'' इस न्यायके अनुसार खुला संस्कार करनेसे द्रव्य(पुत्र)का विरोध होता है. द्रव्य(पुत्र) के विरोधमें कारण कंस है. कंसके विरोधी होनेमें कारण देवकी पुत्र हैं अर्थात् यदि मैं संस्कारकर्ता होकर प्रत्यक्ष(खुला) संस्कार करूंगा तो कंस इस तुम्हारे पुत्रको निश्चयसे देवकीका पुत्र समझेगा क्योंकि मैं यादवोंका कुल पुरोहित हूं यह सर्वत्र प्रख्यात है. कंस भी इस बातसे अनभिज्ञ नहीं है और मैं मथुरासे यहां आया हूं, यह बात भी छिपी हुई नहीं है. इससे तुम्हारे पुत्रको देवकीका पुत्र मानेगा यह निर्णय निश्चित समझो।।७।।

कंसः पापमतिः सख्यं तव चानकदुन्दुभेः ।।
देवक्या अष्टमो गर्भो न स्त्री भवितुमर्हति ।।८।।

कंस पाप बुद्धिवाला है आपकी और वसुदेवजीकी परस्पर मित्रता है और देवकीका आठवां गर्भ स्त्री हो नहीं सकता ।।८।।

गर्गाचार्यजीने फिर समझाते हुए नन्दरायजीको कहा कि मैं यादवोंके अतिरिक्त किसी दूसरेका संस्कार नहीं करता हूँ. यदि आप कहो कि इसमें(दूसरोंके संस्कार करनेमें) क्या दोष है? इसके उत्तरमें गर्गजी कहते हैं कि मेरे संस्कार करानेसे पापमति कंस समझ जायेगा कि नन्दरायका कन्हैया वसुदेवका पुत्र है. यों समझना अनिष्टकारक है क्योंकि कंस मारक है. मेरे संस्कार करानेसे यह अनिष्टकारक दोष है. यदि आप(नन्दरायजी) कहो कि देवकीके पुत्रका क्या सम्बन्ध है? इसका समाधान करनेकेलिये गर्गाचार्यजीने कहा है कि आपकी और वसुदेवजीकी आपसमें मित्रता है, यह ज्ञान कंसको है जिससे वह कंस समझेगा कि वसुदेवजीने अपना आठवां बालक नन्दजीके घर स्थापित किया है. श्लोकमें दिये हुए 'च' अक्षरका आशय बताते हैं कि यह 'च' अक्षर विशेष अर्थ प्रकट

करनेवाले हैं. श्लोकमें आपके और वसुदेवजीके परस्पर(गाढ) सम्बन्ध बतानेकेलिये दोनोंके पर्यायवाची शब्द सम्बन्ध बतानेवाली षष्ठी विभक्तिमें दिया है. यदि नन्दजी यों कह दें कि कंसने देवकीका आठवां गर्भ प्रत्यक्ष कन्या देखा, फिर उसको यह संशय कैसे होगा कि आठवां गर्भ वसुदेवजी नन्दजीके यहां स्थापित कर आए हैं. गर्गाचार्यजी इस शंकाका भी समाधान करते हुए कहते हैं कि कंसने आकाशवाणी द्वारा सुना था कि देवकीका आठवां गर्भ तेरे मारनेवाला होगा और देवीरूप कन्याने तो यह कह दिया था कि तेरा नाशक प्रकट हो गया है एवं नारदजीने भी बता दिया है इत्यादि. यह सब सुन लिया है कि देवकीके आठवें गर्भसे मेरी मृत्यु होगी. इसलिए कंसको यह निश्चय है कि देवकीका आठवां बालक, वास्तविक कन्या नहीं हुआ होगा।।८।।

१.प्रकाश: रोहिणीके पुत्रकी उत्पत्ति.

इति सञ्चिन्तयन् श्रुत्वा देवकीदारिकावचः ।।
अपि हन्तागताशङ्कस्तर्हि तन्नोनयो भवेत् ।।९।।

कंस इस बातका विचार करते हुए, यदि देवकीकी कन्याके सूने वचन भी स्मरण करेगा तो उसको निश्चय होगा कि यह बालक ही आठवां गर्भ है यों समझ कर इसका घातक बनेगा तो अपनी हानि होगी ।।९।।

जब कंसको ज्ञात होगा कि गर्गजीने इस बालकका संस्कार किया है तब कंस बिचारेगा कि आठवां गर्भ स्त्री कैसे? यह विचार निःशङ्क हो, इसको आठवां गर्भ समझकर मारेगा, यह सम्बन्ध है. कंसको देवकीके आठवें गर्भसे कन्या होनेमें, देवकीकी कन्याके वचन सुननेसे शंका है ही, जो कन्याने हस्तसे निकलकर आकाशमें जाके कहा था कि 'हे मन्द ! मेरे मारनेसे तुझे क्या लाभ होगा? तेरा नाश करनेवाला तो प्रकट हो चुका है.' अतः इस कन्याके वचन एवं आकाशवाणीके वचनोंका तात्पर्य एक ही है. ऐसा समझ कंस इस निर्णयपर पहुंचेगा कि वास्तवमें देवकीके पुत्र ही हुवा था, जिसे वसुदेवने रात्रिमें ही नन्दके घर पहुंचा दिया है और उसकी कन्या यहां ले आया है. यह निश्चयकर निःशंक हो, इसको यदि मार डालेगा तो अपनेसे भारी अन्याय होगा, अर्थात् अपनी महती हानि होगी. इस प्रकार गर्गाचार्यजीने जो तीन श्लोकोंमें नन्दरायजीको समझाया, उसका फलितार्थ(परिणाम) यह है कि गर्गजीने स्पष्ट कहा कि मैं इस तुम्हारे पुत्रका संस्कार गुप्त करना चाहता हूं ।।९।।

इस निम्न(नीचेके) श्लोकमें नन्दरायजी उसका उपाय बताते हैं.

श्रीनन्दः उवाच

अलक्षितोस्मिन् रहसि मामकैरपि गोव्रजे ।।

कुरु द्विजातिसंस्कारं स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ।।१०।।

नन्दरायजीने कहा कि इस गोव्रजमें मेरे सम्बन्धियोंसे भी गुप्त रहकर, एकान्तमें स्वस्तिवाचनादि करके इस द्विजातिके संस्कार करो ।।१०।।

ज्ञापितं च हरेस्तत्त्वं स्नेहाधिक्यान्न बुध्यते ।।

अतो निरोधः कर्तव्यः शास्त्रं तत्राप्रयोजकम् ।।का.१।।

कारिकार्थः हरिका तत्त्व बताया गया, किन्तु अधिक स्नेहसे समझमें नहीं आया. इसलिए निरोध करना चाहिए. यहां शास्त्र निरर्थक है.

इस कारिकामें आचार्यश्री आज्ञा करते हैं कि गर्गाचार्यजीसे ''मैं यादवोंका पुरोहित हूं, संस्कार करनेकेलिए आया हूं क्योंकि यह 'तुम्हारा पुत्र' वास्तविकमें वसुदेवका पुत्र है, यदि आपका होता तो संस्कारकेलिए मुझे वसुदेवजी नहीं भेजते.'' इतना सुननेपर भी नन्दरायजीको यह ज्ञान नहीं हुआ कि यह मेरा पुत्र नहीं है किन्तु वसुदेवजीका है. ज्ञान न आनेका कारण बताते हैं कि नन्दरायजीका इसमें अत्यन्त स्नेह(मोह) था इसलिए गर्गाचार्यजीका कहा हुआ शास्त्र(ज्ञान) निरर्थक हुआ. नन्दरायजीका निरोध करना चाहिए.

नन्दरायजीने गर्गाचार्यजीको कह दिया कि आप इस गोष्ठ(गुप्त स्थान)में इस प्रकार गुप्त रीतिसे संस्कार करो जो मेरे सम्बन्धी देख तो न सकें; किन्तु अनुमान भी उनको ज्ञात न हो. नन्दरायजीके इन वाक्योंसे जाना जाता है कि गर्गजी और नन्दजीने इस प्रकार संस्कार एकान्तमें ही करनेका निश्चय किया था. गौओंके व्रजमें नागरिकोंके समान कोई मनुष्य चतुर नहीं होता है, बैलोंके सदृश बुद्धिवाले ही होते हैं. मेरे सम्बन्धियोंका स्वरूप मैं जानता हूं इसलिए इनके अज्ञानका लाभ उठाइये. इससे(अपने सम्बन्धियोंसे छिपकर संस्कार करनेकेलिये कहनेसे) दूसरोंसे भी गुप्त होकर संस्कार करनेका कह दिया. द्विजातियों(ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों)के संस्कार वेद मन्त्रोंसे होते हैं. अन्यों(शूद्रादिकों)के संस्कार बिना मन्त्रोंके होते हैं. इस कारणसे आप जो यह संस्कार करा रहे हो, वह मन्त्र प्रधान कराना न कि उत्सव प्रधान कराना, क्योंकि यह संस्कार द्विजाति संस्कार हैं. मंगल आवश्यक है यह विचारकर वह भी कराना; किन्तु वह मंगल वैदिक हो

सो कराना यह बतानेकेलिये नन्दरायजी स्पष्ट कहते हैं कि स्वस्तिवाचन पूर्वक संस्कार कराना. आजका दिन व आजके दिनका किया हुआ यह संस्कार मंगलरूप, पुण्यरूप एवं ऋद्धि(समृद्धि) रूप हो. इसलिए स्वस्तिवाचन, पुण्याह वाचन और ऋद्धि वाचनकी तीन तीन आवृत्ति की जाती है. स्वस्तिवाचन सर्व शुभ कर्मों(संस्कारों)में आवश्यक कर्तव्य है।।१०।।

इस प्रकार नन्दजीके कहनेसे गर्गाचार्यजीका मनोरथ(संस्कार गुप्त किया जाए) सिद्ध हुआ, तब गर्गाचार्यजीने संस्कार किया, जिसका वर्णन श्रीशुकदेवजी निम्न श्लोकमें करते हैं.

श्रीशुकः उवाच

एवं स प्रार्थितो विप्रः स्वचिकीर्षितमेव तत्।।

चकार नामकरणं गूढो रहसि बालयोः ।।११।।

इस प्रकार नन्दरायजी द्वारा प्रार्थना किये हुए गर्गाचार्यजीने अपनी इच्छानुकूल एकान्तमें गुप्त रीतिसे रहकर, दोनों बालकोंका नामकरण संस्कार किया जिसके करनेकी इच्छासे आप (गर्गजी) आए थे ।।११।।

श्रीनन्दरायजीको गुप्त संस्कार करनेकी प्रार्थना होते ही गर्गाचार्यजीने जो यादवोंके पुरोहित थे, जिनकी गुप्त नामकरण संस्कार करनेकी इच्छा थी, शीघ्र ही संस्कार कर्म प्रारम्भ कर दिया. कुछ समय ठहरकर विचार भी नहीं किया, क्योंकि ब्राह्मण पाछिल मतिवाले और उतावले होते हैं. इसलिए श्रीवसुदेवजीने गर्गजीको 'विप्र'[1] कहा. उतावलसे कार्य करनेसे लोकमें यदि प्रसिद्धि हो जायगी तो मैं उसका प्रतीकार करूंगा. शीघ्रता करनेमें उनका यह आशय था कि अपना अभीष्ट नामकरण संस्कार, सर्वत्र प्रसिद्ध है तो भी छिपाकर किया. छिपानेकेलिये संस्कार करनेका स्थान गुप्त रखा. सामग्री आदि भी गुप्त रीतिसे मंगवाई. इतना ही नहीं किन्तु जब तक आप वहां ठहरे तब तक अपना भी वेश बदल दिया था. दोनों बालकों[2]का संस्कार उनके योग्य शुभ मुहूर्तमें किया गया।।११।।

१.लेखः 'पाछिल मतिवाले'को 'विप्र' कहा है.

२.'बालक' शब्द इसलिए दिया है कि उनके मस्तकोंपर बड़े बड़े बाल थे. प्रकाशकार श्रीपुरुषोत्तमजी 'बालक' शब्द कहनेका आशय बताते हैं कि केशान्त संस्कार तक 'बालक' कहा जाता है. इस दोनोंका केशान्त(मुण्डन) संस्कार नहीं हुआ था. इसलिए इनको बालक कहा गया है.

ज्येष्ठके क्रमानुसार नामकरण करते हुए पहले ज्येष्ठ(बडे) पुत्रके तीन नाम डेढ श्लोकसे कहते हैं.

गर्गः उवाच

अयं वै रोहिणीपुत्रो रमयन् सुहृदो गुणैः ।।
आख्यास्यते राम इति बलाधिक्याद् बलं विदुः ।।१२।।

यह निश्चय रोहिणीका पुत्र गुणोंसे सुहृदोंको(मित्रों) रमण करानेके कारण(आनन्द देनेके हेतु) 'राम' नामसे पुकारा जाएगा, विशेष बलिष्ठ होनेसे इसे 'बल' नामसे जानेंगे ।।१२।।

जगत्में जो मनुष्यादिकोंके नाम रखे जाते हैं वे एक प्रकारके संकेत हैं. उन संकेतोंसे वे व्यक्ति पहचाने जाते हैं इसलिए उनके नाम स्वरूपानुसारी व्यवहारिक होते हैं. किन्तु ब्रह्म तो अव्यवहार्य(व्यवहारमें न आनेवाला) है. अतः भगवान्में स्वरूपसे नामका अभाव है एवं सांकेतिक नाम न बननेसे गुणोंके योगसे अर्थात् गुणानुकूल ही उनके नाम[१] होते हैं. यहां दोनों ही(श्रीकृष्ण व बलराम) पुत्र वसुदेवके हैं. उनमें एक(बलराम) माताके नामसे और दूसरा(श्रीकृष्ण[२]) पिताके नामसे प्रख्यात है. इस प्रकार यदि कहीं कहीं श्रीकृष्णचन्द्रको 'देवकीसुत' कहा है तो उसका आशय यह है, समास विच्छेद करनेसे वे दोनों पद पृथक् हो जाते हैं. इसी प्रकार यह श्रीकृष्ण एवं देवकी दोनों अलग हैं अतः इनका ऐक्य नहीं है.

अब पहले ज्येष्ठ पुत्रके तीन नाम कहते हैं. पहला नाम बताते हुए कहते हैं कि निश्चयसे रोहिणीका पुत्र है इसलिए इसको सब 'रौहिणेय' कहेंगे. यह नाम माताके नामसे कहनेका आशय यह है कि यदि 'वासुदेव' नाम कहें तो कंसको ज्ञात हो जाय तो उपद्रव हो, इस भयसे पिताके नामको गुप्त रखा. दूसरा आशय प्रकट करते हुए कहते हैं कि रोहिणीमें आविर्भूत स्वरूपका यह आवेश होनेसे 'रौहिणेय' है. यहां निश्चय कहनेसे भगवान्(श्रीकृष्ण)के यशोदा पुत्र होनेमें सन्देह है यह बताया है. जो भगवान् श्रीकृष्ण किसी भी अंशसे प्राकृत होते तो उनके नाम 'याशोदेय'(यशोदासे उत्पन्न पुत्र) वा दैवकेय(देवकीसे उत्पन्न पुत्र) होते जैसे 'रौहिणेय' हुआ है, वैसे यहां नहीं है.[३] इससे निश्चय है कि यह ज्येष्ठ पुत्र ही रोहिणी पुत्र[४] है और इन्हींका योनिकृत(माताके) सम्बन्धका अध्यास दृढ़ था, यह बताते हुए कहते हैं कि इस दृढ़ अध्यासके कारण सब सुहृदों(सम्बन्धियों)को अपने गुणोंसे अर्थात् स्वसामर्थ्योंमेंसे पालन-पोषण, प्रीणना(प्रसन्न करने)से

आनन्दित करते हुए अर्थात् रमण कराते हुए लोकमें 'राम' कहलाएंगे, अथवा 'गुणैः'का दूसरा आशय कहते हैं कि अपने सुन्दर स्वभावादिसे रमण करानेसे 'राम' कहलाएंगे और यह बलिष्ठ होगा. बल अधिक होनेसे इनको 'बल'(शक्ति)का रूप यह है यों कहकर 'बलदेव' कहेंगे. दूसरोंकी यह सम्मति है कि इसके ग्रह ऐसे हैं इसलिए इनमें विशेष बल होगा जिससे ये 'बल' नामसे प्रख्यात होंगे।।१२।।

१.टिप्पणी: मनुष्योंके नाम जन्मते ही रखे जाते हैं, उस अवस्थामें बालकके गुणोंका ज्ञान न होनेसे नाम केवल सांकेतिक होते हैं अर्थात् जिस चिह्नसे वे पहचाने जावें. किन्तु भगवान्के नाम इस प्रकारसे नहीं होते हैं भगवान्के नाम तो उनके प्राकट्य गुणानुसारी ही होते हैं. १६वें श्लोककी सुबोधिनीजीमें कहेंगे कि जैसे 'रूप' भगवान्से पृथक् नहीं है; किन्तु भगवत्स्वरूप ही है, इसी प्रकार 'नाम' भी भगवान्से पृथक् नहीं है. नामी और नाम एक ही है अतः भगवान्के नाम रूप दोनों नित्य एवं सत्य हैं. जिस प्रकार भगवान्की 'देह'को लौकिक पुरुष अपनी दोष दृष्टिसे प्राकृत देह समझते हैं वैसे ही नामको भी 'वर्ण वा अक्षर' मात्र समझते हैं, वास्तवमें तो वे भगवान्के नाम अलौकिक और नित्य हैं. तात्पर्य यह है कि 'नाम और रूप' भी ब्रह्म ही है.

२.लेख: श्रीकृष्ण पिताके नामसे प्रख्यात हैं जैसा कि श्रीकृष्णको 'शौरि' कहा गया है न कि माता नामसे, 'दैवकेय' कहीं भी नहीं कहा गया है. बलरामको तो शौरि न कहकर 'रौहिणेय' कहा गया है. इसलिए यह माताके नामसे प्रसिद्ध है यदि कहीं कहीं बलरामको शौरि कहा है तो उसका आशय यह है कि बलराममें वासुदेवका आवेश है.

३.भगवान् अजन्मा है इससे यशोदा या देवकीका पुत्र नहीं है किन्तु अंश(प्रद्युम्नांश)से ही पुत्र हुआ है.

४.लेख: 'वै' अर्थात् निश्चयसे यह रौहिणेय हैं. निश्चयसे कहनेका तात्पर्य यह है कि देवकीके गर्भमें रहा था तो भी यह दैवकेय(देवकीका पुत्र) नहीं कहा जायेगा कारण कि रोहिणीमें वसुदेवका आवेश हुआ था इसलिए रोहिणीका पुत्र कहा जायेगा.

भगवदाज्ञासे जो कर्म (देवकीके गर्भसे गर्भको खेंच कर, रोहिणीके गर्भमें पधराना) मायाने किया. वह कर्म लोकमें स्मरण रहे इसलिए इस लोकमें इस प्रकारके नामका प्रकाशन करते हैं.

यदूनाम् अपृथग्भावात् सङ्कर्षणमुशन्त्युत ।।१३।।

इसमें यदुओंसे पृथक्ताके भाव न होनेसे इसको संकर्षण भी कहते हैं ।।१३।।

यद्यपि, भगवान्के वाक्योंसे 'गर्भ संकर्षण'(गर्भ खेंचने)से इसका नाम संकर्षण है. ये भगवान्के वचन, देव गुह्य होनेसे लोकमें नहीं कहने चाहिए. अतः श्लोकमें दूसरे प्रकारसे इसका भावार्थ कहते हैं. इसका यदुओंमें पृथक्पनेका भाव नहीं है, किन्तु सर्वत्र आत्मभाव(अपनेपनके भाव) हैं. इसलिए भगवान्ने इसकी दो माताएं बनाई हैं. जिससे इसका सबमें प्रेम हो और भिन्न माताओंके पुत्रोंमें बैरका अभाव जतानेकेलिये भी दो माताएं की हैं. अतः गर्गजी जो भगवान्ने किया है उसका वर्णन करते हैं, जिससे कोई दोष भी नहीं है, अथवा यदुओंकी बुद्धि भी इसमें पृथक्ताकी नहीं थी. 'संकर्षण' शब्दकी व्युत्पत्ति करते हुए कहते हैं कि 'सम्यक् सर्वेषां आकर्षणं आकारणं यस्मिन् इति संकर्षणं' जिसका अर्थ होता है कि जिसमें सबोंके आकर्षण(अपनी तरफ मनको खींचने)की शक्ति है, उसको संकर्षण कहते हैं. श्लोकमें 'उत' अपिका भाव आचार्यश्री बताते हैं कि इसलिए 'संकर्षण' पदका दूसरा अर्थ मुख्य है. अर्थात् व्युत्पत्तिसे किया हुआ अर्थ गौण है और श्रीकृष्णका कहा हुआ अर्थ मुख्य है. सारांश कि गर्भमें कर्षण(खींचने)से ही यह 'संकर्षण' नाम पड़ा है।।१३।।

चतुर्मूर्ति(व्यूह चार हैं) भगवान्के चार नाम कहने चाहिए. उनमेंसे दो नाम कहते हैं: दो नाम अनेक भेद पूर्वक गुप्त रीतिसे कहेंगे. चारों नामोंका दो नामोंमें अन्तर्भाव है[१]. प्रारम्भमें यह 'कृष्ण' है यों नाम कहना चाहिए[२]. इस बालकका नाम भगवन्नाम कैसे? इस शंकाको मिटानेकेलिए कहते हैं कि यह नाम वर्ण(रंग) परत्व है, सत्य है. यह निम्न श्लोकमें वर्णन करते हैं.

आसन् वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोनुयुगं तनूः ।।
शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः ।।१४।।

प्रत्येक युगमें आकृति प्रकट करते हुए इसके शुक्ल, रक्त और पीत ये तीन वर्ण हुए. अब इसका कृष्ण वर्ण हुआ है ।।१४।।

यह(बालक) प्रत्येक युगमें देह ग्रहण करता है. यदि देह धारण न करे तो 'युग' बने ही नहीं क्योंकि 'युग' शब्दका अर्थ है 'दो'. जगत् एक है तो उस एकको तो युग कह नहीं सकते अतः जब कोई अन्य प्रकट होगा, तब वह दूसरा होगा. तब जगत् एवं भगवान् दो होंगे ऐसा होनेपर ही युग होता है. 'युग' शब्द 'युज्' धातुसे बना है. उसका अर्थ है 'जोड़ा'. यदि भगवान् समयानुसार अवतार न लें तो 'युग' शब्दके अर्थकी व्यर्थता हो जाये, अतः भगवान् प्रत्येक युगमें अवश्य

अवतार लेकर 'युग' शब्दको सार्थक कहते हैं. उस समयमें युगधर्म प्रसिद्ध करनेकेलिये वैसा ही रूप धारण करना चाहिए नहीं तो लोकोंको प्रतीति न हो सके. उसकी प्रतीति करानेकेलिये ही उनके शुक्ल, रक्त और पीत तीन वर्ण हुए थे. आगे कलियुग होगा इसलिए अब उन्होंने कृष्ण वर्ण धारण किया है. इनको काले रंगने वा कलिने प्राप्त नहीं किया है; किन्तु वे स्वयं काले हुए हैं. इन रंगोंके रूपोंको प्रकट करते हुए भगवान्ने अपनी सर्वव्यापकता एवं सब कुछ मुझमें है, यह प्रमाणित किया है, जिससे इनकी परब्रह्मता कही गई है. उपनिषद् भी इनके इस नामसे ही परब्रह्मता कहते हैं जैसे कि ''कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृत्तिवाचकः, तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते'' अर्थात् 'कृष' शब्द सत्तावाचक है और 'ण' आनन्दवाचक है इन दोनों 'कृष' और 'ण'को मिलानेसे 'कृष्ण' बनता है. जिसका भावार्थ हुआ जिस स्वरूपमें आनन्दकी सत्ता सदा स्थित है वह स्वरूप 'कृष्ण' है. यद्यपि सदैव कृष्ण(आनन्द स्वरूप) है तो भी जिन जीवोंमें प्राकृत सत्त्व भी नहीं है ऐसे[३] जीवोंमें भी अपना स्वरूपात्मक सत्त्व प्रकट करनेसे और स्वरूपानन्द दान देनेसे अब ही अपना 'कृष्णत्व'(आनन्दत्व-आनन्दपन) प्रकट किया है. इस गुप्त रहस्यको न बतानेकेलिये शब्द 'च्छल'से वर्णक्रम गर्गजीने कहा है(अथवा भगवान्ने गर्गजीसे यों कहलाया है) इससे यह(श्रीकृष्ण) कालके अनुरूप गुणवाले होनेके कारण संकर्षणरूप भी कहे गए हैं तथा सबसे कृष्णका समन्वय है इससे इनको पुरुषोत्तमरूप भी कहा है।।१४।।

१. बलदेवमें वासुदेव और संकर्षण व्यूह है एवं श्रीकृष्णमें चारों व्यूह प्रविष्ठ हैं. लेख. चारोंका दोमें अन्तर भाव है. प्रकाश. २. कृष्ण ब्रह्म है, ऐसा कहना चाहिए. प्रकाश . ३. ऐसे अर्थात् तामसः प्रकाश

निम्न श्लोकमें दूसरा नाम कहते हैं.

प्राग् अयं वसुदेवस्य क्वचिद् जातस्तवात्मजः ।।
वासुदेव इति श्रीमान् अभिज्ञाः सम्प्रचक्षते ।।१५।।

पहले किसी स्थलमें(किसी समय) यह तुम्हारा श्रीमान् पुत्र वसुदेवके यहां उत्पन्न हुआ था जिससे ज्ञानी लोग इसको 'वासुदेव' कहते हैं ।।१५।।

किसी देश विशेषमें, आपके घर आनेसे पहले ही वसुदेवके यहां पुत्ररूपसे यह प्रकट हुआ. इस प्रकार कहनेसे समझा जायेगा कि यह नन्दरायजीके गृहमें केवल आया है. उसका वास्तविक रीतिसे, नन्दरायजीसे प्राकट्य नहीं हुआ

अर्थात् यह नन्दजीका पुत्र नहीं है किन्तु वसुदेवजीका पुत्र है. इस शंकाको निवारण करनेकेलिये श्लोकमें कहे हुए 'वसुदेवस्य' और 'तव' दोनों शब्दोंका सामान्याधिकरण करते हुए दोनोंका एक ही रूप दिखाते हैं अर्थात् यह जो गर्गजीने वसुदेवजीके वहां कृष्णका प्राकट्य कहा है. वह नन्दजी ही हैं क्योंकि आधिदैविक वसुदेवजी तो नन्दजी[१] हैं. आधिदैविक कृष्ण स्वरूपका प्राकट्य आधिदैविक वसुदेवजी(अर्थात् नन्दजी)के यहां ही हुआ है इससे यह भी जता दिया कि पुत्रत्वके कारण प्रद्युम्नरूपसे प्राकट्य भी यहां हुआ है. वसुदेवजीमें शुद्ध सत्त्वके आविर्भावसे इसमें अनिरुद्धका प्रादुर्भाव हुआ है. श्रीनन्दरायजीको बुद्धिमें इस प्रकार आया कि गर्गाचार्यजीने कहा है कि सचमुच यह(कृष्ण) तुम्हारा पुत्र है. वसुदेवजीके यहां तो क्वचित्(कभी) हुआ था. 'वासुदेव' यह है इसका कारण बताते हैं कि यह लक्ष्मीपति[२] है.

इस गूढाभिसन्धि(गुप्तं तात्पर्य)को वे कहते हैं जो इसके स्वरूपको जो है जितना है और जैसा है इस प्रकार जानते हैं।।१५।।

१.कृष्णोपनिषद्में नन्दको परमानन्द कहा है वहां आधिदैविक वसुदेव समझना: प्रकाश.

२.देवताओंकी देवी लक्ष्मी वह जिसकी है वह वसुदेव वासुदेव है. यह सत्य अर्थ इसलिए कहा है कि नन्दजीका कृष्णमें विशेष स्नेह होवे: प्रकाश.

इस प्रकार श्रीकृष्णके दो नाम कहे अब इस श्लोकमें कहते हैं कि गुणोंके योगसे इनके अनन्त नाम हैं. उनका सर्व शास्त्रोंमें वर्णन है वहांसे आप ही स्वयं जान लें.

बहूनि सन्ति नामानि रूपाणि च सुतस्य ते ।।
गुणकर्मानुरूपाणि तान्यहं वेद नो जनाः ।।१६।।

आपके पुत्रके गुणों तथा कर्मोंके अनुसार बहुत नाम हैं उन्हें मैं जानता हूँ अन्य मनुष्य नहीं जानते ।।१६।।

श्रीकृष्णके नाम और रूप अगणित एवं नित्य हैं, जो यों न होवे तो पाचक तथा पाठकके समान क्रिया समाप्त होते ही नाम भी न रहे. जो वैसा रूप दूसरे प्रकारका क्रिया बन्द होते हुए भी रहनेवाला(क्रिया आदिके अनुकूल) होता है, तब क्वचित्(कभी भी) गुणोंके योग होनेपर, उस प्रकारके भगवत् रूपका प्रादुर्भाव होते ही उसका नाम भी अवश्य होगा. जैसे गौ आदिके गुणानुसारी रूप

होते हुए नाम भी सर्वदा होते ही हैं. आचार्यश्री कहते हैं कि शुकदेवजीने श्लोकमें 'च' अक्षर और 'सन्ति' सत्तावाचक क्रिया देकर भगवान्के 'नाम' 'रूप' और 'क्रिया'का नित्यत्व स्पष्ट प्रतिपादन किया है. जिससे भगवान् गोवर्धनको धारण करते हुए सर्वदा विराजते हैं इसलिए आप(भगवान्)को गोवर्द्धनोद्धरण धीर क्रिया और नाम दोनों सहित गोवर्द्धनोद्धरण सर्वदा है. इसलिए अभी तक भी भक्तोंको उस स्वरूपके दर्शनका अनुभवानन्द होता ही है अतः इस भगवान् कृष्णके अनन्त नाम और रूप हैं. श्रीनन्दरायजीमें आधिदैविक वसुदेव स्वरूप होते हुए भी इस अर्थका बोध नहीं होता है अर्थात् यह अर्थ असत्य नहीं हो सकता है और स्तुतिकेलिये गुण एवं कर्मके बिना भी, कल्पित नाम और रूप कहे जाते हैं. इन दोनों शंकाओंके मिटानेकेलिये कहते हैं कि इस(श्रीकृष्ण)के जो नाम और रूप हैं वे गुण और कर्मानुकूल ही हैं. जैसे कि अलौकिक औदार्यादि(उदारता आदि) गुण और कालीयदमन आदि अलौकिक कर्मोंके कारण नाम भी अलौकिक हैं. इन गुण, कर्म और नामोंकी अलौकिकताको मैं जानता हूं, सामान्य लोग नहीं जानते हैं. यद्यपि जनसमूह इन नामोंका उच्चारण करते हैं, व्यवहारमें लाते हैं तो भी उनमें इनकी अलौकिकताको समझनेकी विचारशक्तिका अभाव है इसलिए नहीं जान सकते हैं. क्योंकि 'जनाः' शब्द देकर श्रीशुकदेवजीने बताया है कि जन्म आदि भाव एवं धर्मवाले हैं इसलिए आचार्यश्री कहते हैं कि 'क्लिष्ट' हैं अर्थात् दुःखी हैं. जो दुःखी होते हैं उनमें अलौकिक वस्तुके विचार करनेकी शक्ति नहीं होती है. विचारके स्वरूपका वर्णन करते हैं कि जो क्रियाएं अनित्य होती हैं और जो रूप कालादिके आधीन होते हैं वे प्रतिक्षण बदलते रहते हैं ऐसी क्रियाएं अनित्य एवं कालाधीन रूपोंसे जिन नामोंका सम्बन्ध होता है, वे नाम निश्चित सत्यसे सम्बन्ध रहित होनेसे निरर्थक(व्यर्थ) होते हैं. जिनका कोई अर्थ(फल) नहीं. ऐसे नाम अन्तःकरणको भी शुद्ध नहीं कर सकते हैं किन्तु भगवान्के स्वरूप कालाधीन नहीं है और उनकी क्रियाएं नित्य हैं अतः उनके नाम भी नित्य एवं सत्य हैं. यदि विचारपूर्वक भगवान्के नाम रूप एवं कर्म(क्रिया) स्वरूपको सत्य एवं नित्य समझकर, जो मनुष्य नाम लेता है, उसको फल मिलता है; किन्तु जो यों न समझकर, स्वरूपके सम्बन्ध बिना नामोंको लौकिक अक्षरमात्र जानकर उनका केवल उच्चारण करते हैं, उनका इस प्रकारके नाम उच्चारणसे प्रपञ्च(संसार) नष्ट नहीं होता है जैसे 'अग्नि' कहनेसे कोई जलता नहीं है. नाम रूप भगवान्के

रूपके समान नाम भी रूप हैं. जैसे दर्शककी दोष दृष्टिसे दर्शकोंको भगवदाकार प्राकृत तुल्य दीखते हैं वैसे ही कहनेवालेकी दूषित बुद्धिसे, उनको भगवन्नाम भी लौकिक वर्ण युक्त प्रतीत होते हैं. निर्दोष बुद्धिसे विचारा जाय तो भगवन्नाम वास्तविक अखण्ड(नित्य) है. इस प्रकार ज्ञानपूर्वक शुद्ध भावसे वस्तुतत्त्व(नाम, रूप वस्तुका तत्त्व) समझ, उस बुद्धिसे नामका उच्चारण किया जाये तो सर्व पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं. दूसरे प्रकारसे(लौकिक प्रकारसे) उच्चारण करनेसे कोई फल नहीं होता अथवा दोष भी होता है. इसके सिद्ध करनेमें उपपत्ति(हेतुपूर्वक युक्ति) भी है. इस(नाम)के ही भेद[२] से नाम लेते लेते चित्तकी अतिशय शुद्धि होती है. जो नहीं, तो जब तक आधिदैविक स्वरूपका उद्‌बोध हो, तब तक बार बार नाम लेता ही रहे, डिगे नहीं तो किसी समयमें फलीभूत हो जाता है. कालको भगवान्‌के नामका माहात्म्य ज्ञान है, इसलिए काल, नामोच्चारण करनेवालेको पकड़ता नहीं, छोड़ देता है. भगवान्‌के नामके समान किसीका नाम हो वह नाम भी, सारूप्य[३] (उन्हीं अक्षरोंसे बन जाने)के कारण फलदाता हो जाता है. वह नाम भगवान्‌में प्रवृत्ति करानेसे मोक्ष देता है, इसलिए अजामिलका चरित्र भी व्यर्थ(असत्य) नहीं है. यदि लौकिक मनुष्यके कृष्णादि नाम भी लेनेवालेको भगवान्‌के नामकी तरह फल दाता होते, तो अजामिलको उसी समय सीधा वैकुण्ठ मिल जाता; किन्तु यों हुआ नहीं अतः लौकिक नाम एक प्रकारके उपायरूप हैं. इस कारणसे गर्गाचार्यजीने बहुत अच्छा कहा है कि उन(नामों)को मैं जानता हूं, मनुष्य नहीं जानते हैं. इससे गर्गाचार्यजीने यह समझाया है कि भगवान्‌(श्रीकृष्ण) के उपास्यरूप और अन्तःकरण शोधक अनन्त नाम हैं. भगवान्‌के जो जो नाम लिये जाएं, वे नाम भगवान्‌की जिस अवस्था(लीला)के हों उस लीला एवं स्वरूपका ध्यान धरते हुए नाम लेना चाहिए. इसलिए नामकरण प्रसंगमें रूप वर्णन किया गया है. यदि नाम स्मरणके समय रूपके ध्यानकी आवश्यकता न होती तो यहां व्यर्थ रूप वर्णन न किया जाता।।१६।।

१.प्रकाशकार: भगवान्‌से सम्बन्धित नाममें इतनी शक्ति कैसे आई इसको समझाते हुए कहते हैं कि एक तो शास्त्रोंमें अ-क-म आदि अक्षरोंको शब्दब्रह्मरूप कहा है. इस प्रकार शास्त्रीय सिद्धान्तसे स्पष्ट होता है कि भगवान्‌से सम्बन्धित नामके अक्षर ब्रह्मरूप हैं. इसलिए ब्रह्मके रूपमें जो शक्ति सामर्थ्य है, वह नाममें भी सामर्थ्य है; क्योंकि नाम भी उसके ही रूप हैं अतः ऐसे भगवान्‌के नाम-पुरुष तथा जगत्‌को

नमाते हैं अर्थात् पुरुष और जगत् नामोच्चारण करनेवालेके अधीन हो जाते हैं. जिस प्रकार वृष आदि पशुओंके नथुने(नाकमें रस्सी आदि डालनेसे)से, वे डालनेवालेके चलानेसे चलते हैं अर्थात् उनके आधीन रहते हैं. वैसे ही भगवान् भी नामरूप रज्जुसे नाथे हुए हैं. नामोच्चारणसे, नामोच्चारण करनेवालेके निकट, स्वतः बिना विलम्ब पधारते हैं.

प्रकाश: २.नामके स्वरूपका ज्ञान एवं भक्ति आदिके स्वरूपका ज्ञान इत्यादि भेद वा तारतम्य.

टिप्पणी: ३.लौकिक मनुष्यका नाम भगवान्के नाम सदृश 'कृष्ण–गोपाल' आदि हो तथापि उन नामोंमें भगवान्के सदानन्दादि धर्म नहीं होते हैं. इसलिए वे लौकिक शब्द हैं, उनके लेनेसे, किसी किसीका मोक्ष जो हुआ है वह भगवान्के नाम सारूप्यके कारण हुआ है; किन्तु वे उपाख्यान, नाममाहात्म्य प्रकट करनेकेलिये हुए हैं. उनका तात्पर्य यह है कि जो मनुष्य भगवान्का नाम नहीं लेते हैं, उनकी नाम लेनेमें प्रवृत्ति हो.

प्रकाश: गुरुकी कृपासे जिसको लौकिक नाम और भगवान्के नामके तारतम्यका ज्ञान हो जाता है, वह मनुष्य स्वरूपज्ञान सम्बन्धित भगवान्का नाम लेता है, उसको शीघ्र ही फल मिलता है. जिसको ज्ञान नहीं, यों ही नाम लेता है, वह निरन्तर दृढतासे लेता रहेगा, तो आधिदैविकका उद्भव(प्रबोध) होकर, आधिदैविक फलकी प्राप्ति होगी. वह आधिदैविक उद्बोध न हुआ और नाम लेनेवालेकी मृत्यु हो गई, तो यमके दूत उनसे दूर भाग जाते हैं अर्थात् वह नरकमें नहीं जाता है, उसको भगवान् स्वेच्छासे फल देते हैं.

गर्गाचार्यजी ज्योतिःशास्त्रके पूर्ण ज्ञाता हैं, इसलिए भविष्यमें मनुष्योंको भगवान्के रूप और नाम ज्ञानार्थ, निम्न चार श्लोकोंमें उनका वर्णन करते हैं. पहले दो श्लोकोंमें भगवान्के कर्मोंका वर्णन करते हैं.

एष वः श्रेय आधास्यद् गोपगोकुलनन्दनः ।।
अनेन सर्वदुर्गाणि यूयमञ्जस्तरिष्यथ ।।१७।।

यह(श्रीकृष्ण) आपका कल्याण करते हुए गोप और गोकुलको आनन्ददाता होंगे इससे आप सब सर्व प्रकारोंके संकटोंसे तर जाओगे ।।१७।।

यह भगवान् जो सामने दर्शन दे रहे हैं, वह आपके श्रेयका धारण और पोषण करनेवाले हैं. जैसा कि इन्होंने पूतनाके प्राणरूपी दूधका पान आपके हितकेलिये किया है. पञ्चपर्वा अविद्याका नाश किया, संसारात्मक शकट तोड़ा,

अविद्या कार्यरूप और मोहात्मक तृणावर्तका वध किया. इस प्रकार तीन प्रकारके दोषोंका नाश करनेसे एवं ज्ञानोत्पादन करनेसे चारों तरफ श्रेय किया. स्वयं भगवान् सर्व पुरुषार्थरूप(धर्म,अर्थ,काम,मोक्ष) हैं तो भी जीव दोष वश होनेसे उनको ग्रहण नहीं कर सकते हैं. भगवान् कृपा कर दोष दूर करण द्वारा श्रेय धारण कराते हैं. न केवल सकृत्(एक बार) श्रेय दान कर देते हैं; किन्तु उस श्रेयको धारण करते हुए स्थित रहते हैं. श्लोकमें धास्यत्के आगे 'आ' उपसर्ग दिया है उसका आशय, आचार्यश्री प्रकट करते हैं कि अतः आगे भी शुभ देंगे(करेंगे) जब तक आप उस (श्रेय)को ग्रहण करते रहोगे, तब तक देते रहेंगे. इससे यह बताया कि आप(नन्दादि)का श्रेय सिद्ध हो गया है. अब आपके रक्षार्थ, भगवान् अनेक कर्म करेंगे. इस प्रकार कर्म कहे जिन कर्मोंसे दोषोंका अभाव होगा. उन कर्मोंका वर्णन कर अब कहते हैं कि न केवल दोष दूरीकरण कर्म कर शान्ति करेंगे, किन्तु आगे परमानन्द-प्रद कर्म भी करेंगे. इसको स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि गोपोंको और गोकुलको आनन्द देंगे. यहां 'गोप' शब्दसे गोपियोंको भी समझना चाहिए. 'गोकुल' शब्द कहनेसे उससे सम्बन्ध रखनेवाले और उससे आजीविका चलानेवाले भी आ गए ऐसा समझना. दोनों प्रकारवालोंको आनन्दित करेंगे. यह भगवान्की क्रीड़ा कही और क्रीड़ामें विघ्नकर्ताओंका वध करना भी कहा. नन्दजीके मनमें यह भय नहीं रहे कि आप(गर्गजी)ने कहा था कि कंसको ज्ञात होगा तो वह इसको मारेगा. इस नन्दके भयको मिटानेकेलिये कहते हैं कि इस बालकके द्वारा तुम सर्व प्रकारके संकटोंसे, जो जो कंस द्वारा उपद्रव होंगे, वा अन्योंसे होंगे, उन सबको बिना आयास(यत्न) सब तर जाओगे. अतः कंसादिकोंका भय नहीं करना चाहिए. मैंने जो पहले कहा था कि कंसको ज्ञात होगा तो हानि होगी वा उपद्रव होगा. मेरे उस कहनेका तात्पर्य यह था कि वह हानि वा उपद्रवका भय मुझे(गर्गजीको) और वसुदेवजीको होनेको कहा था न कि आपको. इसलिए आप किसी प्रकारके भयकी शंका न करें।।१७।।

इस (कृष्ण)से ही आपके सब प्रकारके दुःखोंकी निवृत्ति तथा सर्व पुरुषार्थोंकी सिद्धि होगी अतः इस विषयकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए. ऐसा कहकर अब इस श्लोकमें कहते हैं कि मोक्ष भी इससे ही होगा तथा मोक्षकेलिए इन्द्रियोंको जीतनेकी जो आवश्यकता है उसकी पूर्ति भी आपकी ये ही करेंगे. पूर्वोक्तका प्रमाण भी इस श्लोकमें कहते हैं.

पुरानेन व्रजपते साधवो दस्युपीडिताः ।।
अराजकेऽरक्ष्यमाणा जिग्युर्दस्यून् समेधिताः ।।१८।।

जब कोई राजा न था, तब चोरोंसे पीडित एवं किसीसे भी अरक्षित साधुओंकी, इस तुम्हारे पुत्रने रक्षा और वृद्धि की जिससे वे दस्युओंको जीत सके ।।१८।।

हे व्रजके स्वामी! चोरोंसे पीड़ित(दुःखी) भी, साधुओंने इस तुम्हारे पुत्र भगवान्से सब प्रकारसे वृद्धिको पाकर, बलिष्ठ हो, उन चोरोंको जीता. इससे आप निश्चयपूर्वक निश्चिन्त रहो और समझो कि चोरोंके समान कंसादिक थोड़ासा भी उपद्रव नहीं कर सकेंगे क्योंकि इस(श्रीकृष्ण)की स्वभाव कृति(स्वभाव सिद्ध कर्म) ही वैसी है. श्लोकमें श्रीशुकदेवजीने नन्दरायजीको 'व्रजपते' कहा है उसका भाव स्पष्ट करते हुए आचार्यश्री कहते हैं कि इस नाम देनेका तात्पर्य यह है कि न केवल आपका कुशल करेगा, किन्तु जिसमें यह विहार करेगा और जिसके आप(नन्दराय) पति हो उस समग्र व्रजका इससे कुशल होगा. इससे आप समग्र व्रज मण्डलमें कहीं भी अपना निवास स्थान बनाओ, किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं है, यह भाव है. श्लोकमें 'पुरा' शब्दका भाव आचार्यश्री बताते हैं कि आप(नन्दराय) यों न समझना कि यह मेरे यहां प्रकट हुआ है, इसलिए यह केवल अब है, नहीं, यह तो 'सनातन' सदैव है. श्लोकमें दिये 'अनेन' शब्दका भाव स्पष्ट करते हैं कि यों ना जानना कि यह बालक उसका(अंशकलादि) अवतार है; किन्तु यह वही है अर्थात् जिसने दस्यु पीड़ित साधुओंको सब प्रकारसे बलिष्ठ बनाकर उनसे दस्युओंको पराजित करवाया था वह यही है. 'व्रजपते' यह सम्बोधन (८वीं) विभक्ति देनेका आशय आचार्यश्री बताते हैं कि(नन्दरायजीको) यह अंश कलादि अवतार नहीं है किन्तु पूर्वकालमें साधुओंसे दस्युओंको पराजित करनेवाला यही था इस प्रकारका ज्ञान न था. इसको बतानेकेलिये सम्बोधन देकर नन्दरायजीको प्रबुद्ध किया. दस्यु कौन थे कि रावणादि नृपति दस्यु थे. जैसा कि भागवतके पञ्चम स्कन्धके १३ वें अध्यायके द्वितीय श्लोकमें कहा है कि यह छः नरदेव(राजा) दस्यु हैं. इस प्रकार ये बाहरके दस्यु और संसाररूपी वनमें इन्द्रियां भीतरी दस्यु(लुटेरे) हैं एवं तृणावर्त आदि दैत्योंको भेजनेवाला कंस भी दस्यु है. इसने दस्युओंको मारा इसका प्रमाण क्या है? इसके उत्तरमें श्लोकमें कहा है कि 'साधवः' पृथ्वीपर अब तक साधुजन हैं.

यदि अन्तःकरणमें स्थित इन्द्रियादि चोरोंको एवं बाहर स्थित नरदेव दस्युओं(नृपतिरूप) का नाश न किया होता तो पृथ्वीपर 'साधु' ही न होते. विशेष कारणसे भी मारा है. जैसा कि दस्युओंने साधुओंका सब प्रकारसे धन लूट लिया, वे निर्धन निर्बल हो गए तब साधुओंको आगेसे भी विशेष सुखी और समृद्धि कर, बलिष्ठ बनाया जिससे वे साधु स्वयं उन दस्युओंसे जीत गये. अतः आप भी इसके द्वारा सुखी एवं समृद्धिशाली तथा बलवान् हो, स्वयं ही दस्युओंको जीतोगे. इस प्रकार भगवान्के (१) सर्व दोष नाशक, (२) सर्व सुख जनक एवं (३) सर्व सामर्थ्यजनक–तीन प्रकारके कर्म कहे. राजाओंके होते हुए दुष्टोंने साधुओंको दुःखी कैसे किया? इसके उत्तरमें कहते हैं कि उस समयमें 'अराजक' देश था. जैसे कि एक तो परशुरामजीने राजाओंको समाप्त कर दिया और दूसरा कालके प्रभावसे राजाओंके विवेक आदिका नाश हो गया, जिससे राजा भी नाममात्रके थे; वास्तवमें वे दस्यु ही थे. वे(साधु) अरक्षित थे, भगवत्कृपा होनेके कारण साधुओंने रक्षा करनेवालोंकी अपेक्षा(परवाह) भी न की. इससे यह उपदेश दिया कि आप भी कंसकी अपेक्षा न कर स्वतन्त्र राजाके समान रहो।।१८।।

इस प्रकार कर्मोंका वर्णन कर अब गुणोंका वर्णन करते हैं.

य एतस्मिन् महाभागाः प्रीतिं कुर्वन्ति मानवाः ।।
नारयोभिभवन्त्येतान् विष्णुपक्षानिवासुराः ।।१९।।

जिस प्रकार विष्णु भगवान्के पक्षवालोंका, असुर पराभव(हार) नहीं कर सकते हैं वैसे ही जो मनुष्य(श्रीकृष्ण)से प्रेम करते हैं उनका उनके शत्रु पराभव नहीं कर सकते ।।१९।।

भगवान्के गुण तो स्वयं सामर्थ्यवाले हैं उनको क्रिया(सामर्थ्य उत्पन्न करनेवाले कर्म)की कोई अपेक्षा(आवश्यकता) नहीं है. इसलिए जो भाग्यशाली मनुष्य इन भगवान्से प्रेम करते हैं उनको शत्रु तिरस्कृत(अपमानित) नहीं कर सकते हैं. यदि भगवद्गुणोंका ऐसा प्रभाव है तो सब मनुष्य स्वतः क्यों नहीं भगवान्से प्रेम करते हैं? इसके उत्तरमें कहते हैं कि यद्यपि गुण सामर्थ्यवाले हैं तो भी स्वरूप योग्यता और सहकारी योग्यताकी अपेक्षा रखते हैं. इसलिए शुकदेवजीने 'जनाः' न कहकर 'मानवाः' कहा है. मनुसे सद्धर्मरूप धर्म पालन केलिये ही वे लोग उत्पन्न हुए हैं. इससे इनमें 'मन्वन्तर सद्धर्म' है, इस प्रकार (भाग.२।१।४) के अनुसार स्वरूप योग्यता है. ये लोग भगवान्से प्रीति

करनेवाले, महाभाग्यवाले हैं, जैसा कि(पाण्डव गीतामें) कहा है. सहस्र वर्ष तपस्या, ध्यान तथा समाधिसे जिनके पाप नष्ट हो गये हैं. उन मनुष्योंको भगवान् कृष्णसे प्रेम होता है. इससे जाना जाता है कि परम भाग्यसे ही भगवान्में प्रेम उत्पन्न होता है. 'प्रीति' शब्द एक वचन देनेका आशय आचार्यश्री बताते हैं कि सदैव एक जैसा प्रेम करना चाहिए और वस्त्रके समान बढ़ाते जाना चाहिए. अथवा वस्त्रके समान कहनेसे यह समझाते हैं कि एक देशीय प्रेम नहीं करना चाहिए. 'जो' मनुष्य शब्दसे प्रेम करनेवाले हैं वे प्रसिद्ध हैं. वै कौन हैं? तो आचार्यश्री कहते हैं कि वे आप हो. 'इनके' कहनेसे यह बताया कि ये जो गोकुलस्थ दीख रहे हैं, उनको वे (शत्रु) अन्तर्यामीकी प्रेरणासे बाधा नहीं करते हैं यह अवश्य ही कहना चाहिए. भक्ति जो की जाती है वह शत्रुओंके अन्तर्यामियोंकी प्रेरणाकेलिये ही है. यह जो भगवान्के गुणोंके वर्णनका प्रकार कहा, इससे भगवान्के गुण स्पष्ट समझमें नहीं आते हैं. भगवद्गुणोंका प्रभाव स्पष्ट समझमें आवे, इसलिए दृष्टान्त देकर समझाते हैं कि 'विष्णुपक्षानिवासुराः.' जैसे असुर जब जानते हैं कि विष्णु भगवान् इन सुरोंके पक्षपाती अर्थात् इनका पक्ष लेकर इनकी रक्षा करते हैं तब वे असुर अपनी कृति(कोशिश) व्यर्थ जायेगी, यों समझ उनको पीड़ा नहीं देते हैं. उनका(असुरों) अन्तर्यामी दूसरे प्रकारसे प्रेरक नहीं बनता है. असुरोंको आसुरभावसे ही प्रेरणा देनेका नियम है. अतः विशेष प्रकारसे(अपने मनके अभिप्रायानुसार) ही अर्थात् विशेष प्रकारसे ही भगवान् अपने भक्तोंका पालन करेंगे. यह सर्व जन प्रसिद्ध है. अम्बरीषादि भक्तोंके चरित्रमें यह प्रसिद्ध है कि भगवान् अपने भक्तोंके पक्षपाती एवं रक्षक हैं. इस श्रीकृष्ण भगवान्की प्रीतिका यह ही प्रभाव है. गुण वे ही हैं जो प्रभाववाले हों, परस्परसे ही प्रभाव[१]को सम्पादित करते हैं. इससे यह समझना चाहिये कि भगवान्के साक्षात् गुण अनन्त हैं इसलिए उनका वर्णन हो नहीं सकता है. यह सूचित किया।।१९।।

१.लेखः असुर प्रेमका नाश नहीं कर सकते हैं. यह प्रेमका प्रभाव है एवं प्रेम करनेवालेका नाश नहीं कर सकते हैं यह परम्परासे प्रेमके प्रभावका द्योतकहै.

इस प्रकार गुणोंको प्रदर्शनमात्र कहकर अब विशेष रीतिसे कहते हुए उपसंहार(समाप्ति)के मिषसे रक्षाका उपदेश देते हैं.

तस्माद् नन्दात्मजोयं ते नारायणसमो गुणैः ।।

श्रिया कीर्त्यानुभावेन गोपायस्व समाहितः ।।२०।।

इससे हे नन्दजी! आपका यह पुत्र गुणोंसे तथा श्री कीर्ति और प्रभावसे नारायणके समान है. आप सावधानतासे इसका पालन करो ।।२०।।

यह बालक(श्रीकृष्ण) महान् प्रभावशाली है इसके पहले कहे हुए कर्म भी, अलौकिक हैं. इससे हे नन्द!(सबको आनन्द देनेवाले) आप अपने नामकी सार्थकता करनेकेलिये इसका लालन-पालन करो. अर्थात् जब आप इसका पालन करते हुए इसको भी आनन्द दोगे. तब आपका नन्द(आनन्द देनेवाला) यह नाम सार्थक होगा.

यह तुम्हारा कुमार, गुणोंसे नारायणके समान है. नारायणके अक्षर, पुरुष और अन्तर्यामी ये तीन रूप हैं. इन तीनों रूपोंमें जो गुण हैं वे गुण इसमें भी हैं इसलिए यह उस(नारायण)के समान है किन्तु कर्म और प्रभावसे तो उस(नारायण)से यह विशेष(बढ़कर) है.

१.अक्षररूप नारायण: नारायणके इस(अक्षर) रूपसे जितने जीवगण सृष्टिमें उत्पन्न हुए हैं, वे सब भगवान्के गुणोंको प्रकट करनेवाले हैं. उन गुणोंको प्रसिद्ध करनेकेलिये भगवान्ने वैसा रूप धारण किया है.

२.पुरुषरूप नारायण: इस स्वरूपसे अपनेसे सम्बन्ध करने योग्य जीवोंको ग्रहण करते हैं, इसलिए उसके(पुरुषरूपके) गुण ऐसे प्रभाववाले हैं जो जीवोंके स्वभावका परिवर्तनकर(दोषोंको मिटाकर) अपने तुल्य बना लेते हैं.

३.अन्तर्यामीरूप नारायण: इस स्वरूपसे जीवाधीनवत्(जीवके आधीन जैसा) होकर जीवको सर्व कार्योंकी प्रेरणा करते हैं, जिससे जीव भगवद्भक्ति आदिमें प्रवृत्त होते हैं. इससे भक्तिजनक, असाधारण गुण कहे हैं. उपरोक्त तीनों स्वरूपोंके सर्वगुण श्रीकृष्णमें हैं. इसलिए श्रीकृष्णमें नारायणके समान गुण भी हैं. नारायणके समान उपरोक्त धर्मोंके अतिरिक्त श्री, कीर्ति और प्रभाव गुण भी श्रीकृष्णमें हैं.

नारायणके उपरोक्त तीन स्वरूपोंके अतिरिक्त, ब्रह्माण्डके भीतर अन्य तीन रूप हैं: १.जो वैकुण्ठमें लक्ष्मी सहित विराजते हैं अर्थात् वैकुण्ठवासी लक्ष्मीनारायण हैं. २.जो सूर्यमण्डलमें सर्व वेदोंके साथ विराजते हैं अर्थात् सर्वान्धकार निवारक सूर्यनारायण हैं. ३.पृथिवीपर सब ब्राह्मणोंमें सकल हितकारी यज्ञनारायण हैं. इस प्रकार ये तीन रूप ब्रह्माण्डमें नारायणके हैं. इन तीन स्वरूपोंके

गुणोंके समान गुण श्रीकृष्णमें हैं.

४. वैकुण्ठवासी नारायण: लक्ष्मीजीको, जगज्जननी, अक्षरानन्द रूप(जिसका आनन्द नाश नहीं हो.) एवं सर्व सौन्दर्यसे भी विशेष सौन्दर्य धारण करनेवाली बनाते हैं. जैसे वैकुण्ठवासी नारायण लक्ष्मीमें ये गुण प्रकट करते हैं, वैसे ही कृष्ण भी हैं.

५. सूर्यमण्डलस्थ नारायण: यदि यह सूर्यनारायण उदय(प्रकट) न हो तो जगत्से शीत, अन्धकार आदि अज्ञानका नाश न होता उनके उदयसे जगत् प्रकाशित होता है. सर्व कार्य सिद्ध होते हैं. इसलिए उस(सूर्यनारायण)की कीर्ति जगत्में फैली हुई वैसे ही जिस दिनसे श्रीकृष्णचन्द्रका प्राकट्य हुआ है उसी दिनसे आपकी कीर्ति(भक्तोंमें) भागवतादिमें प्रकाशित हो रही है.

६.यज्ञनारायण: जैसे यज्ञनारायण आधिदैविकरूपसे सर्व जनताका कल्याण करनेसे अपना माहात्म्य जनाते हैं वैसे ही महाप्रभावशाली यह भगवान् श्रीकृष्ण भी सर्वोद्धार करनेसे अपना माहात्म्य प्रकट कर रहे हैं.

इस प्रकार श्रीकृष्णमें नारायणके छः स्वरूपोंके षड्गुण भी हैं अतः ये उन(नारायण)के समान कहे जाते हैं.

टिप्पणी–प्रकाश सारांश:

नारायण स्वरूपके गुण भी, श्रीकृष्णमें हैं इसलिए श्रीकृष्णकी नारायणके साथ जो समानता दिखलाई गई है उसका स्पष्टीकरण श्रीप्रभुचरणने 'टिप्पणी'में एवं गो.श्रीपुरुषोत्तमजीने 'प्रकाश'में किया है जिसका सारांश पद टिप्पणीमें नीचे दिया है.

टिप्पणी: नारायणके तीन स्वरूप अक्षर, पुरुष और अन्तर्यामी हैं जिनका भाव आचार्यश्रीने तृतीय स्कन्धकी सुबोधिनीजीके १९ अध्यायके ३८वें श्लोकमें यों बताया है कि १.अक्षर स्वरूप जो स्वरूप(यह ब्रह्माण्ड विग्रह 'अक्षर' स्वरूप है प्रकाश) नरसे उत्पन्न तत्त्वोंमें रहता है. २.पुरुष स्वरूप–जो स्वरूप जलमें रहता है. ३.अन्तर्यामी: जो स्वरूप मनुष्यमात्रमें रहता है.

१.नारायणके प्रथम अक्षर स्वरूपसे उत्पन्न जीवोंसे ये जीव, जो गुणोंकी प्रसिद्धि करनेवाले हैं भिन्न प्रकारके हैं अर्थात् वे लीला सृष्टिके जीव हैं. इसलिए उनमें भगवान्ने दस रस सम्बन्धी सर्वभाव, स्थापन किये हैं. उन भावोंके पोषणकेलिये भगवान् भी, अपनेमें स्थित गुणोंको प्रकट करते हैं, जिससे वे लीला सृष्टिके जीव, भगवद्गुण प्रकाशक होते हैं. पर इससे यों न समझना चाहिये कि लीला सृष्टिके जीवोंमें कोई जीव वैसा(गुण प्रकाश करनेवाला) होगा, क्योंकि वास्तवमें भगवान् ही लीला

सृष्टिमें, जीव रूपसे प्रकट हुए हैं. अतः लीला सृष्टिके सकल जीव समान गुण प्रकाशक हैं. इससे यह समझाया कि प्राकृत सृष्टिको इस रसकी प्राप्ति नहीं होती है.

२.पुरुष ब्रह्माण्ड विग्रह अक्षर: जैसे जीवोंके दोष मिटाकर उनको ग्रहण करते हैं वैसे ही श्रीकृष्ण व्रजसुन्दरियोंमें अधिक रस उत्पन्न करते हैं जिससे वे पुरुषके समान धर्म प्रकट कर, लीलाएं करती हैं.

३.अन्तर्यामी: इस स्वरूपसे जैसे नारायण जीवाधीन होकर लीला करते हैं वैसे ही श्रीकृष्ण भी गोपीजनोंके अधीन होते हैं और वैसी ही लीलाएं करते और कराते हैं.

इस प्रकार भगवान्के गुणोंका वर्णनकर 'च' अक्षर देकर यह बताया है कि सत्य और शौचादि गुण जो प्रथम स्कन्धमें कहे हैं वे भी इस(श्रीकृष्ण स्वरूप)में हैं जिससे यह गुणनिधि है. अत: अन्त:करणको पूरी तरह सावधान करते हुए इसकी पालना करो. अन्य समग्र प्रपंचको भूल जाओ 'समाहितः' शब्दका भाव प्रकट करते हैं कि इसका अवेक्षण पूरी सावधानीसे करना अर्थात् इसको अकेला न छोड़ना और न इसको कहीं भी ले जाना. इस प्रकार पूरे ध्यानसे इसकी पालना करनी।।२०।।

श्रीगर्गाचार्यजी इतना कह कर चले गए उसके अनन्तर जो कुछ हुआ उनका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

श्रीशुकः उवाच

इत्यात्मानं समादिश्य गर्गे च स्वगृहं गते ।।

नन्दः प्रमुदितो मेन आत्मानं पूर्णमाशिषाम् ।।२१।।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि इस प्रकार नन्दजीको अच्छी तरह उपदेश देकर गर्गाचार्यजीके घर जानेपर नन्दजी अत्यन्त प्रसन्न हुए और अपनेको आशीर्वादोंसे पूर्ण समझने लगे ।।२१।।

गर्गाचार्यजीके नन्दजी (अथवा भगवान्)को अच्छी तरह उपदेश देकर, घर(मथुरा) जानेपर नन्दरायजी गर्गाचार्यजीके कहे हुए वचनोंसे अत्यन्त प्रसन्न होते हुए अपनेको आशिषोंसे पूर्ण समझने लगे, अर्थात् नन्दरायजीको निश्चय हो गया कि गर्गाचार्यजीने जो कुछ कहा है वह सत्य है अब मेरे सर्व कार्य निर्विघ्न सिद्ध होंगे. कोई भी संकट आएगा तो स्वतः टल जायेगा.

यद्यपि नन्दरायजी भगवान्के स्वरूपज्ञानके योग्य नहीं थे, तो भी गर्गाचार्यजीके वचनोंसे भगवत्स्वरूप(यह बालक पूर्णब्रह्म है) इस प्रकार स्वरूपके

ज्ञान होनेपर भी भयभीत न हुए और यह भगवान् मेरे पुत्र नहीं हैं इसका भी नन्दरायजीको दुःख नहीं हुआ. श्लोकमें दिये हुए, 'आत्मा' शब्दका भाव बताते हुए आचार्यश्री कहते हैं कि 'आत्मा' शब्द देकर श्रीशुकदेवजीने यह समझाया कि यह आपका बालक कृष्ण, भगवान् एवं आत्मरूप है, ऐसा बालक आपका पुत्र हुआ है. इससे नन्दजी आप भी कृतार्थ हैं. नन्दरायजी समझने लगे कि जैसे कैसे भी पुत्र प्राप्त वो हुआ है, अतः गर्गाचार्यजीके वचनोंको प्रमाण मानने लगे.

गर्गाचार्यजीने जो सुन्दर सत्य उपदेश दिया है, उसमें किसी प्रकारकी शंका नहीं करनी चाहिए, दूसरेसे भय भी नहीं है. इसकी रक्षा अच्छे प्रकारसे करनी, यह उपदेश आज्ञा है. यदि इस आज्ञाका पालन न किया जायेगा तो गर्गजी तो कोप करेंगे ही परन्तु भगवान् भी कुपित होंगे.

गर्गाचार्यजी अपने घर(मथुरा) पहुंच गये. इस प्रकार कहनेका शुकदेवजीका आशय यह था कि गर्गाचार्यजी नामकरण संस्कार कराके एवं उपदेश देकर रवाना हुए हैं. मार्गमें कंस द्वारा, किसी प्रकारका संकट गर्गजीको न हुआ, वह सुखपूर्वक घर पहुंच गये. इससे नन्दरायजीको इसकी चिन्ता भी न करनी पड़ी. श्लोकमें दिये हुए 'च'(और) अक्षरका आशय प्रकट करते हुए आचार्यश्री कहते हैं कि नन्दरायजीके मनमें यह चिन्ता थी कि गर्गाचार्यजी(वसुदेवजीके पुरोहित)का यहां आना और बालकोंका नामकरण संस्कार कराना, इन दोनोंका पता कहीं गोकुलमें लग तो नहीं गया? किन्तु गर्गजीके जानेपर, जब दोनों बालक(राम कृष्ण) नन्द एवं अन्य गोपादि जो जो अन्तरंग संस्कारके समय उपस्थित थे, वे सब कुशलपूर्वक(राहमें किसीने भी कुछ न कहा और न पूछा) घर पहुंच गये. तब नन्दरायजी अत्यन्त प्रसन्न हुए और मनमें समझने लगे कि आज मेरा नाम(सबको आनन्द देनेवाला) सार्थक एवं सफल हुआ. क्योंकि गर्गजीके आने और नामकरण संस्कार करानेका कहीं भी एवं किसीको भी पता न पड़ा है. यदि पता पड़ता तो कंस अवश्य उपद्रव करता, जिससे जनता दुःखी होती. ऐसा न हुआ, इससे मेरा नाम अब पूर्ण सार्थक हुआ. कारण कि मुझे 'महानिधि' प्राप्त हुई है. सर्व इच्छित पदार्थों एवं दूसरोंके वाञ्छित कामनाओंकी पूर्ति करनेकेलिये मैं समर्थ हुआ हूँ, जिससे उच्च स्थितिको पहुंचा हुआ हूं. यों अपने मनमें समझ अत्यन्त मुदित(प्रसन्न) हुए।।२१।।

इस प्रकार भगवान्के नामोंका चरित्र वर्णनकर अब रूप-चरित्र वर्णन

करनेकेलिए कहते हैं कि भगवान्‌की गति(शरीरका व्यापार, इधर-उधर चलना) कालरूप है. उसी ही आधिदैविक कालके जाते हुए भगवान्‌की गति होने लगी. उस गतिका वर्णन दश श्लोकोंसे करते हैं. भगवान्‌का अवान्तर अनन्त प्रकारके रूपों सहित दश प्रकारसे रूप वर्णन करते हैं.

कालेन व्रजता तात गोकुले रामकेशवौ ।।
जानुभ्यां सहपाणिभ्यां रिङ्गमाणौ विजह्रतुः ।।२२।।

कुछ काल व्यतीत होनेपर राम और केशव गोकुलमें घुटनोंसे और हाथोंसे रेंगनेकी क्रीडा करने लगे ।।२२।।

गतौ गतिविशेषे च भूमौ रूपद्वयं हरेः ।।
यशोदायां तथा रूपमुपविष्टं त्रिधा मतम् ।।का.१।।

कारिकार्थ : साधारण गति और विशेष गतिके कारण भगवान्‌के दो रूप पृथ्वीपर हैं. वैसे यशोदाकी गोदीमें विराजमान भगवान्‌का तीसरा रूप समझा जाता है.

२२वें श्लोकमें भगवान्‌की गति(रिंगणादि गति)का वर्णन है. २३वें श्लोकमें गतिके प्रकारोंका वर्णन है और २४वें श्लोकमें यशोदाकी गोदीमें विराजमान रूपका वर्णन है. इन तीनों श्लोकोंका सारांश इस कारिकामें आचार्यश्रीने प्रकट किया है कि भगवान् दो रूपोंसे भूमिपर बिराजे हैं और एक रूपसे माताकी गोदीमें बिराजे हैं. इस प्रकार तीनों श्लोकोंमें बैठे हुए तीनों रूपोंका स्पष्टीकरण कारिकामें किया गया है.

अन्याश्रितं स्वतश्चैव कथञ्चित् सर्वथा तथा ।।
उत्थितं तु त्रिधा रूपं युक्तं त्रिविधलीलया ।।का.२।।

कारिकार्थ : १. दूसरोंके आश्रित, २. कुछ स्वतः(अपने आपपर) आश्रित, ३. सब तरहसे अपने ऊपर आश्रित हो, इन तीन प्रकारकी खडे होकर लीला करनेसे भगवान्‌के तीन प्रकारके खडे रूप हुए.

भगवान्‌ने खडे होनेकी लीलाएं तीन प्रकारसे की हैं:

१. पराधीन होकर, जैसे बछडोंकी पूंछोंको पकडकर खडे होते थे. अथवा कभी माताके अथवा दूसरे किसीके हाथकी अंगुलियोंको पकडकर खडे होकर चलना सीखते थे. इस प्रकारकी लीला २५वें श्लोकमें वर्णित है.

२. इस लीलामें पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं थी. यद्यपि दूसरोंके आश्रय बिना

स्वयं लीला करते थे तो भी पूर्ण स्वतन्त्र न थे क्योंकि माता यशोदा कभी कभी खेलनेसे रोक देती थी. इस प्रकारकी लीलाका वर्णन २६वें श्लोकमें किया गया है.

३. ये लीलाएं भगवान्ने पूर्ण स्वतन्त्रतासे की हैं. न किसीका आश्रय लिया और न किसीने रुकावट डाली. इस प्रकारकी पूर्ण स्वतन्त्र लीलाओंका वर्णन २७वें श्लोकमें किया गया है.

तीन प्रकारकी लीलाओंके करनेसे इस कारिकामें भगवान्के खडे रूप भी तीन प्रकारसे बताए गए हैं.

बालकैर्मुग्धलीलाद्या धाष्ट्र्य-धौर्त्यसमन्विते ।।
निर्गुणावस्थरूपे च ज्ञापिते तु ततः परम् ।।का. ३।।

कारिकार्थ : पहला, बालकोंके साथ की हुई मुग्ध(सबको मोहित करनेवाली) बाल लीलावाला(तामस-सात्त्विक लीलाका) रूप, दूसरा धृष्टता(ढिठाईसे की हुई) लीलावाला(राजस-तामस लीलाका) रूप, तीसरा धूर्तता(चालबाजी)से की हुई लीलावाला(तामस-तामस लीलाका) रूप, इस प्रकार लीलाओं द्वारा त्रिविध रूप दिखाकर उसके पश्चात् निर्गुण अवस्थाके रूपका प्रदर्शन किया है.

भगवान्की लीलाएं भक्तोंके निरोधार्थ हैं अतः जैसा जैसा भक्त हो, भगवान् भी वैसे वैसे ही बनकर उस प्रकारकी लीलाएं कर, उन (भक्तों)का निरोध करते हैं. भक्त सात्त्विकादि भेदसे भिन्न भिन्न हैं अतः लीलाएं भी भिन्न प्रकारकी भगवान्ने तदर्थ की हैं. जैसे कि बालकोंका निरोध करनेकेलिए 'मुग्ध लीला' तामस-सात्त्विक रूपसे की है, क्योंकि बालक सात्त्विक एवं तामस थे. इस तरह धृष्टता लीला, राजस-तामस भक्तोंके निरोधार्थ होनेसे आपने भी राजस-तामस रूपसे यह ढिठाईवाली लीला की है. तथा तामस-तामस भक्तोंके निरोधार्थ धूर्ततापूर्ण लीलाएं कर, अपना वैसे ही तामस-तामस रूपका प्रदर्शन कराया है. इन लीलाओंसे जब सब प्रकारके भक्तोंका निराध हो गया तब अपने निर्गुण स्वरूपका उनके हृदयमें प्राकट्य किया, जिससे वे कृतकृत्य हो गए.

२२, २३ व २४वें श्लोकोंमें भगवान्की सात्त्विक लीलाका, २५, २६ व २७वें श्लोकोंमें भगवान्की राजस लीलाका वर्णन किया गया है. २८वें श्लोकमें 'मुग्ध लीला' सात्त्विक मिश्रित तामसी लीला है. (दूसरे २८वें श्लोकमें गोपियोंकी

उक्ति है उसमें रूप वर्णन नहीं है) २९वें श्लोकमें 'धृष्टता-लीला' राजस मिश्रित तामसी लीला है. ३०वें श्लोकमें 'धौर्त्य लीला' तामस-तामसी लीला है. इस प्रकार सगुण लीलाएं भगवान्ने नव प्रकारसे की हैं जिनका वर्णन २२वें श्लोकमें निर्गुण रूपका वर्णन किया गया है इस प्रकार श्रीशुकदेवजीने रूप प्रकरणमें, दश प्रकारके रूपोंका वर्णन दस श्लोकोंमें किया है.

सात्त्विकादिविभेदेन तत्तद्धृदयगामिनि ।।
तांस्तांस्तु क्रमशो भावान् दूरीकृत्यान्तिमे स्थिरा ।।का.४।।

कारिकार्थ : सात्त्विकादि गुणोंसे पृथक् पृथक् भावोंवाले जीवोंके हृदयोंमें भगवान् उसी प्रकारके रूपसे प्रवेश कर, क्रमशः उनके सात्त्विकादि भावोंकों दूर करते हैं, जिससे अन्तमें उनकी भगवान्के निर्गुण रूपमें स्थिर स्थिति हो जाती है.

इस कारिकामें समग्र प्रकरणका तात्पर्य(सारांश) कहा गया है कि भगवान्ने व्रजस्थों(व्रज वासियों)के सात्त्विकादि भावोंको लीलाओं द्वारा सगुण रूपसे क्रमशः दूर कर, अन्तमें निर्गुण स्वरूपमें हृदयकी स्थिति स्थिर कराई।।४।।

यशोदार्थमियं लीला प्रसंगादन्यगामिनी ।।
यदैव ता गृहे व्यग्रास्तदैवं दशधा हरिः ।।का.५।।

कारिकार्थ : भगवान्ने यह लीला, यशोदा माताकेलिए ही की है; किन्तु प्रसंगसे दूसरोंको भी इसका लाभ मिला है. जब ही वे व्रजभक्त घरके कार्यमें संलग्न होते हैं तब भगवान्(लीलाओं द्वारा) दश रूप धारण करते हैं.

इस कारिकामें यह बताया है कि यद्यपि भगवान्ने नाम लीला द्वारा, यशोदा आदि व्रज भक्तोंका निरोध किया था; किन्तु पूर्ण निरोध भावसे वे घरके कार्यमें इतने लीन हो जाते थे, जो भगवान्को उस समय भूल जाते थे. अतः भगवान्ने रूप लीला द्वारा उनका चित्त उस कार्यसे हटाकर अपनेमें आसक्त करानेकेलिए, दश प्रकारके रूप धारण किये हैं.

उन लीलाओंमेंसे पहले रिंगणरूप गति(चाल) लीलाका वर्णन करते हैं. अपने आप ही जाते हुए ँकालके साथ स्वल्पकाल(छोटी अवस्था)में ही गोकुलके भीतर, यशोदाके आंगनमें राम और केशव दोनों भाई नामकरण संस्कारसे, भगवदावेश आनेसे, भगवद्रूप हुए. राम योगियोंके ध्येय स्वरूप हैं और केशव ब्रह्मादिके वन्दनीय हैं. दोनों भगवद्रूप होते हुए भी लीलाके कारण इनका भेद है. 'केशव' शब्दमें जो 'व' प्रत्यय है वह सुन्दरता प्रकट करनेकेलिये है.

वास्तवमें यहां 'केशव'[२] शब्द लौकिक तद्धितान्त शब्द है न कि भगवद्वाचक है.

१. प्रकाश: 'यो अयं कालः तस्य ते अव्यक्तबन्धोः चेष्टाम् आहुः' यह प्रमाण देकर सिद्ध किया है कि भगवान्की 'गति'(चेष्टा) कालरूप है.

टिप्पणी: आच्छादन प्रकटन न्यायानुसार होनेसे बन्द करना(लीला छिपाना) और खोलना(लीला प्रकट दिखाना). इस न्यायानुसार भगवान्की लीला नित्य है. जिस जिस कालमें भगवान् लीलाका प्राकट्य करते हैं वही काल उस समय प्रकट हो जाता है. अर्थात् यह रिंगणादि लीला पहले जिस कालमें की गई थी, उस ही कालका यह उत्तरदल काल, अब प्रकट हुआ है. अतः भगवान्की गति(रिंगणादि लीला) कालरूप होनेसे कालवत् नित्य है.

लेख: साधारण काल सूर्यकी गति अनुसार जाता है, किन्तु यह काल वह नहीं है यह तो भगवद्रूप होनेसे भगवदिच्छाको जान उस प्रकार लीलानुसार जाता है.

२.टिप्पणी: कहते हैं कि 'केशव' शब्दका अर्थ श्रीसुबोधिनीजीमें आचार्यश्रीने भगवान् भी किया है. वहां प्रत्ययरूपसे नहीं है, किन्तु इस लीलामें आचार्यश्रीके मन्तव्य अनुसार शुकदेवजीने 'केशव' शब्द भगवद्वाचक नहीं दिया है. यहां रिंगण लीलाके समय केशोंकी सुन्दरतासे श्रीकृष्णकी विशेष शोभा प्रकट होती है, अतः 'केशव' बालोंकी सुन्दरतावाला 'केशव' शब्द लौकिक भावसे दिया है.

यद्यपि बलरामजी आयुमें बड़े हैं और श्रीकृष्ण छोटे हैं तो भी रिंगणलीलाकी गति दोनोंकी समान(एक जैसी) है, दोनोंकी आयुमें तारतम्य होते हुए भी रिंगण गतिमें समानता क्यों? इसका स्पष्टीकरण करते हुए कहते हैं कि नामकरण संस्कारके समय भगवान् उपस्थित थे. उनके सान्निध्यमें नाम द्वारा सम्बन्ध होनेसे बलरामजीमें भगवत्व प्रकट हुआ अर्थात् बलरामजीके स्वरूपमें भगवान्का आवेश हुआ, जिससे उनकी(बलरामजीकी) गति भी भगवान्की ही गति होनेसे दोनोंमें समानता थी. अतः दोनों हस्तों सहित घुटनोंसे धीरे-धीरे रिंगण करते हुए विहार करने लगे अर्थात् परस्पर खेलने लगे.

जानुभ्यां गमनं विष्णोर्दैत्यानां मर्दनाय हि ।।
बलिर्दैत्यपतिर्भूत्वा न निवारयति स्वतः ।।का.१।।

कारिकार्थ : भगवान्का घुटनोंसे गमन(रींगना) दैत्योंके मर्दन(कुचलना) केलिये था. बलिने दैत्यपति होते हुए भी अपने आप उसका निवारण नहीं किया.

इस कारिकासे आचार्यश्री स्पष्ट करते हैं कि श्रीकृष्ण ही मूलस्वरूप हैं, जिससे इस स्वरूपमें व्यूह एवं पुरुष स्वरूप भी अन्तर्हित है. अतः श्रीकृष्ण,

रिंगणलीलामें घुटनोंसे चलकर जो दैत्योंका मर्दन करते हैं, वह मर्दन कार्य संकर्षण व्यूहका है; किन्तु संकर्षण व्यूह भी आपके स्वरूपमें स्थित है और व्यूह आपकी ही स्वरूपात्मक क्रिया शक्तियां हैं अतः आपने(श्रीकृष्णने) मर्दन कार्य किया, इस प्रकार कहनेमें कोई दोष नहीं है. किन्तु यह कार्य तो संकर्षण द्वारा ही किया गया है. एवं 'विश्वमूर्ति पुरुषके दो घुटने सुतल हैं' इस वाक्यानुसार श्रीकृष्ण घुटनेसे रिंगण कर दैत्योंका मर्दन करते हैं, वे घुटने सुतल इसीलिए समझे जाते हैं. जो विश्वरूप पुरुष भी यह(श्रीकृष्ण) स्वरूपमें है अन्यथा श्रीकृष्ण स्वरूप तो आधिदैविक आनन्दमय ही है, उस स्वरूपकी लीलाएं तो आनन्दमय ही हैं.

आध्यात्मिक पक्षसे व्यूह लीला–पुरुष लीला भगवान्की ही लीला कही जाती है. आधिदैविक पक्षसे भगवान्की रिंगण लीला जिन घुटनोंसे की है वे घुटने भी आधिदैविक आनन्दमय हैं न कि सुतलरूप हैं. भगवान् अपने भक्तोंको बाल–लीला आदि लीलाएं आधिदैविक आनन्दमय स्वरूपसे दिखाते हैं.

बैठे हुए फिर नम्र होकर चलने लगे तो वह चलना पैरोंके अधीन ही है, इसलिए घुटनोंसे ही चलना कहा गया है. हाथोंका तो केवल साथ ही है, उनका पूर्ण आश्रय नहीं है. सम्पूर्ण शरीरसे भी रींगते थे, घुटनोंसे भी रींगते थे, पृथ्वीपर सो जाते फिर उठकर घुटनोंसे रींगते थे. इस प्रकार भगवान्की अनेक लीलाओंके अनेक रूप हैं. उनका ध्यान करना चाहिये. कभी चलते–चलते हंसने लगते हैं, कभी पृथ्वीपर लेट जाते हैं फिर कुछ चलते हैं, इत्यादि रूप एवं लीलाओंका अनुसन्धान करना चाहिए।।२२।।

पूर्व(२२वें) श्लोकमें कही हुई भगवान्की गति(रिंगण) लीलाका उत्तर (२३वें) श्लोकमें कही जानेवाली गति लीला पर्यन्त (तक) अनुसन्धान करते रहना चाहिए. क्योंकि यों करनेसे यह गति लीला धीरे धीरे पुष्ट(चित्तमें स्थिर) होती जाएगी. यह न्याय सिद्ध है कि जहांसे उत्तर(पीछे)का आदि होता है वहां पूर्व(पहले)का अन्त होता है. अब दूसरी गति लीलाका वर्णन करते हैं.

तावङ्घ्रियुग्ममनुकृष्य सरीसृपन्तौ घोषप्रघोषरुचिरं व्रजकर्दमेषु ।।
तन्नादहृष्टमनसावनुसृत्य लोकं मुग्धप्रभीतवदुपेयतुरन्ति मात्रोः ।।२३।।

ये दोनों भाई जिस समय व्रजके कीचोंमें घोष(शब्द) प्रतिघोष(प्रति शब्द) चरण युगलोंको खींचकर सर्पवत् रींगते थे, उस समय उनके पैरोकी पैंजनी और कटिकी किंकिणीयोंके नादसे हर्षयुक्त मनवाले होते थे और जाते हुए

लोगोंको देख दो-चार कदम उनके पीछे जाकर लौट आते. फिर मुग्ध(भोले) और डरे हुएके समान माताओंके पास आ जाते थे ।।२३।।

इस श्लोकमें भगवान्की गतिके विलासों(सुन्दर एवं आनन्द देनेवाली चालन(रमण) क्रियाओं)का वर्णन करते हैं. प्रथम अलस(पैरोंको खैंचकर चलना) और वलित(शीघ्रतासे चलना) गतिसे चलन क्रिया हुई. इस गतिमें दो होते हुए भी विलक्षणता न होनेका कारण यह है कि दोनों रूप एक ही भगवान्के हैं. दोनों स्वरूप घुटनोंसे चलते हुए बीच-बीचमें घुटनोंमें दर्द होनेका भाव प्रकट करनेकेलिये ठहर जाते और दोनों चरणोंको खींचकर उनके अग्र(आगेका) भागको नीचे कर घुटनों तक पृथ्वीपर रख देते अनन्तर फिर धीरे-धीरे उनको खींचकर सहसा(एकदम) शीघ्रतासे सर्पकी चालसे चलने लगते हैं. इस प्रकार द्रुत गतिसे जानेका कारण बताते हुए कहते हैं कि पहले जब चलने लगे तब पादोंमें पहने हुए नूपुरोंके और कमरकी क्षुद्र घण्टिकादिकोंकी धीमी आवाज कानोंमे पड़ी तो धीमे-धीमे चलकर विचारने लगे कि यह ध्वनि हमारे अपने आभूषणोंकी है अथवा अन्य किसीकी है. इसका निश्चय करनेकेलिये द्रुत गतिसे चलने लगे. तब जोरसे ध्वनि सुननेमें आने लगी. तो फिर उस ध्वनिका विचार करनेकेलिये ठहर गये. उस समय वह ध्वनि जैसे सुन्दर हो उसी प्रकार रेंगने लगे. फिर उस प्रकार घोष और प्रघोषोंसे भगवान्की गति विशेष एवं विशेषतम प्रकारके भावोंवाली हुई अर्थात् व्रजकी कर्दमों(कीचडों)में जाकर अनेक प्रकारकी गतिसे रमण करने लगे जिनके द्वारा भूमि और देहके सम्बन्धसे हुए शब्दोंकी विलक्षणता जानने लगे. उस समय भी ध्वनि आभरणोंकी है न कि दूसरे किसीकी है. यह निश्चय समझ उस ध्वनिसे दोनों भाई प्रसन्न मनवाले होते हुए कहने लगे कि हमारी गतिसे वह ध्वनि भी जो हमारी गतिको अनुगामी(पीछे चलनेवाली) है सुन्दर होती है. इस प्रकार गति एवं ध्वनिसे अपने मनको प्रसन्न करनेकेलिये दोनों भ्राताओंके चित्तकी अनेक प्रकारकी वृत्तियां होने लगीं. इस प्रकार उन दोनों भ्राताओंकी परस्पर गति लीलाओंको कहकर अब दूसरोंके अनुरोध(अभिलाषा)से भी जो लीलाएं कीं उनका वर्णन करते हैं. जिस किसी पुरुषको वा स्त्रीको जाते हुए देखते थे तो मनमें यह इच्छा करते थे कि ये जा रहे हैं हम क्यों न जावें. इस इच्छाकी पूर्तिकेलिये उनके पीछे-पीछे आप भी उसी प्रकारकी गति करते हुए जाते थे. थोड़ी दूर जानेपर देखते थे, देखनेपर ज्ञात होता था कि हम इतने दूर अकेले चले आये हैं तो

क्या करते कि आगे जाना बन्द कर मुग्ध(भोले) बालक और डरे हुए बालककी तरह डरते हुए शीघ्रतासे माताओंके पास लौट आते थे.

दोनों भाईयोंको जानेवालोंके पीछे जानेकेलिये दो विचार स्फुरित हुए. एक विचार यह आया कि जानेवालोंमें कोई कोई हमारे परिचित हैं तो हम भी इनके पीछे-पीछे जावें अथवा हमको भी जाना चाहिए, दूसरा विचार यह करने लगे कि अकेले तो नहीं जाना चाहिए. इस प्रकार विचार कर जानेवालोंमें हमारे भी हैं, यों समझकर उनके पीछे-पीछे जाने लगे, किन्तु कुछ आगे जानेपर ज्ञात हुआ कि इनमें तो हमारा परिचित कोई नहीं है, हम अकेले हैं हमारी यहां सहायता करनेवाला तो कोई नहीं है. इस प्रकारके विचार आते ही डरने लगे तब जानेवालोंके मुखोंसे पहचान करने लगे कि इनमें कोई हमारा है या नहीं. दूसरे प्रकारसे पहचान करनेकी, भोलेपनके कारण बुद्धि नहीं थी, अतः मुख द्वारा ही पहचानने लगे. जब देखा कि इनमें अपना कोई नहीं है, तो विशेष भयभीत होने लगे क्योंकि बालक मुग्ध(भोले) होते हैं. भोले अधिक डरते हैं. नहीं तो इसके अतिरिक्त डरका कोई कारण नहीं था. 'अकेला डरता है' अकेले होनेसे भय तो हुआ किन्तु विशेष भयका कारण भोलापन था. गमनागमनलीला(जाने और लौट आनेवाली लीला) तो शीघ्र सिद्ध हुई किन्तु उस लीलामें सुन्दरता तो एक-एकमें वा दोनोंमें मुग्ध भाव एवं भीत भावसे ही आई थी. यहां अब अकेले रहना नहीं चाहिये, ऐसा सोचकर वहांसे गमन किया(लौट आये). लौट आनेमें यद्यपि भय भी कारण है. तो भी सौन्दर्य प्रदर्शन विशेष भोलेपनके भावसे ही होता है. बालक भोले ही होते हैं और उनको विशेष परिचय माताका ही होता है, इसलिए माताके पास आनेकेलिये ही वहांसे लौट आए.

ऊपर कहे हुए सर्व विषयोंको जानकर भी लोकोंका अनुकरण करते हुए उनके पीछे गए और फिर लौट आए. इस प्रकारकी जो लीला मुग्ध भाव एवं भीत भाव प्रदर्शित करनेकेलिये की है, इससे यों न समझना चाहिए कि भगवद्रूप श्रीकृष्ण एवं बलराम भोले थे वे डरे हुए थे, किन्तु भक्तोंको लीलाका आनन्द देनेकेलिये उन्होंने ऐसे भाव प्रदर्शित किये थे. 'लोक' शब्दका अर्थ साधारणतया 'मनुष्य' होता है; किन्तु आचार्यश्रीने यहां 'लोक' शब्दका विशेष भाव बताते हुए अर्थ किया है कि जिनके स्वच्छ वस्त्र थे और तेजवाले मनुष्य थे, इस कारणसे ही उनके पीछे मुग्ध भावसे गए और भीत भावसे लौट आए. श्लोकमें 'अन्ति'

शब्दका अर्थ निकट है तो शुकदेवजीने 'उप' शब्द, जिसका अर्थ भी 'निकट ही है' क्यों दिया? उनके आशयको प्रकट करते हुए आचार्यश्री कहते हैं कि माताके पास आए तो सही, परन्तु भिन्न भिन्न प्रकारकी लीला करते हुए माताओंसे मिले. जैसे कि कभी माताओंके ऊपर गिरते थे फिर उठकर बीचमें(गोदीमें) बैठते तो कभी फिर दूर खड़े होते पुनः हंसते-हंसते मातासे आकर मिलते. इस प्रकार नाना प्रकारोंसे लीलाएं करते हुए भावुक भक्तोंको आनन्द प्रदान करते थे।।२३।।

इस प्रकार स्वतन्त्रापूर्वक, अनेक प्रकारकी गमनागमन लीलाएं बैठे हुए रूपोंसे की, उनका वर्णनकर, अब इस निम्न श्लोकमें माताके साथ भिन्न-भिन्न प्रकारकी क्रियाओंसे उपविष्ट होते हुए जो जो लीलाएं की हैं, उनका वर्णन करते हैं.

तन्मातरौ निजसुतौ घृणया स्तुवन्त्यौ पङ्काङ्गरागरुचिरावुपगूह्य दोर्भ्याम् ।।
दत्वा स्तनं प्रपिबतोः स्म मुखं निरीक्ष्य मुग्धस्मिताल्पदशनं ययतुः प्रमोदम् ।।२४।।

उनकी माताएं अपने पुत्रोंकी उत्कण्ठासे(चाह) स्तुतियां करने लगीं और कीच रूप अंग रागसे सुन्दर, उन दोनोंको अपनी दोनों भुजाओंसे आलिंगन करती हुई स्तन्यपान कराने लगीं. स्तन्य पान करते समय उनकी भोली मुस्कान और छोटे छोटे दांतोवाले मुखारविन्दको देखकर अत्यन्त आनन्दको प्राप्त हुईं ।।२४।।

उनकी माताएं(यशोदा और रोहिणी) कीचरूप अंगरागसे सुन्दर अपने अपने पुत्रकी उत्कण्ठासे स्तुति करने लगीं और दोनों भुजाओंसे आलिंगन कर उनके मुखोंमें स्तन दिये दूध पीते हुए, उनके मुखको देखकर, अत्यन्त हर्षको प्राप्त हुई.

अब माताके साथ भिन्न-भिन्न प्रकारकी जो लीलाएं कीं उनका वर्णन करते हैं:

१.माताके पास इस प्रकार आने लगे जैसे कोई नाचते हुए आते हों.

२.अथवा कभी कुछ हाथमें लेकर मानो नृत्य करते हुए आ रहे हों.

३.अथवा माताओंकी प्रेरणासे नाच करते हों.

४.अथवा दूसरोंकी प्रेरणासे नृत्य कर दिखाते थे.

५.वा कोई नाचते हैं उनको देख रहे हैं.

माताएं जो स्तुति, कीर्तन करती थीं उसका कारण ये विविध प्रकारकी नित्य लीलाएं थीं. और इन लीलाओंमें असङ्ख्य(अनन्त) भाव थे एवं रोष भाव

तीन प्रकारके थे.

स्तोत्र(स्तुति) दो प्रकारके होते हैं एक लौकिक रीतिके दूसरे परमार्थ(अलौकिक) रीतिके. माताएं जो स्तोत्र करती थीं वे लौकिक रीतिके नहीं थे, क्योंकि श्लोकमें दिये हुए 'घृणा' शब्दका सामान्य लौकिक अर्थ, 'नफरत या निन्दा' भी होता है. अतः आचार्यश्री कहते हैं कि श्लोकमें 'घृणयास्तुवन्त्यौ' इसके पदच्छेद करनेसे 'घृणया अस्तुवन्त्यौ' होगा, जिसका अर्थ होता है निन्दा वा नफरतसे स्तुति नहीं करती थी. जिसका सारांश यह है कि माताएं अलौकिक रीतिसे स्तुति करती थीं. इस प्रकार अर्थ करनेसे 'घृणा' शब्दका लौकिक अर्थ लेते हुए भी माताओंकी, की हुई स्तुतियां अलौकिक सिद्ध हो जाती हैं. माताएं स्तुति लौकिक करती थीं वा अलौकिक करती थीं. इस शंकाका मूल कारण है 'स्तुवन्त्यौ' शब्दसे 'घृणा' शब्दका जोड़ना. आचार्यश्रीको यह शंका ही न रहे, इसलिए इसका दूसरा ढंग बताते हैं कि 'घृणया' पदका अन्वय 'मातरौ'से कर लो जिसका अर्थ होता है कि दोनों भाईयोंने माताओंको दयापूर्ण देख, पहचान लिया कि ये हमारी माताएं हैं. क्योंकि ये दयायुक्त हैं. माताओंका उस समय भगवान्को सुन्दरतासे जो उन दोनोंमें प्रेम उत्पन्न हुआ था, जिससे दूसरोंको भगवान्से न्यून समझने लगीं. उन(दूसरों)की न्यूनता देख माताओंमें उन(दूसरों)के प्रति दया उत्पन्न हुई, जिससे आचार्यश्री कहते हैं कि माताएं दयायुक्त हुई थीं.

भगवान् स्वयं, जब माताका आलिंगनकर मिले, उस समयके आनन्दकी दशा, एक प्रकारकी थी और जब माताएं अपने पुत्रोंका आलिंगनकर मिलीं, उस समयके आनन्दकी दशा दूसरे प्रकारकी थी. इस मिलनके भी अनेक भेद होते हैं, अर्थात् भगवान् और माताएं परस्पर विविध प्रकारसे मिले थे जिससे उन्होंने विविध आनन्द रसका पान किया था. स्तनपानकी दशा अन्य प्रकारकी थी, स्वतन्त्र थी अथवा माताओंसे आलिंगित हो, उनकी गोदीमें बैठकर स्तनपान कर रहे थे, उस समय सर्व प्रकारसे अपनेको निर्भय समझते थे. इसलिए प्रेमसे दूध पीनेका आनन्द ले रहे थे और माताओंको दे रहे थे एवं भगवान् माताओंका निरीक्षणकर माताके सुखका अनुभव जता रहे थे और माताएं पुत्रोंकी चेष्टाओंका निरीक्षण, वात्सल्य रसका खूब पान कर रही थीं. इस प्रकारकी लीलाओंसे माताओं एवं बालकोंको अत्यन्त हर्ष हुआ. अत्यन्त हर्षसे यह निश्चय हुआ कि माताओंकी यह बुद्धि दृढ़ थी कि ये दोनों हमारे ही पुत्र हैं. इस प्रकार भगवान्की

भी माताओंमें भेद बुद्धि नहीं हुई थी. वे भी उनको अपनी माता ही समझते थे. इसलिए श्लोकमें 'निजसुतौ' पद दिया है. दोनों अपने पुत्र हैं.

इन लीलाओंके होते ही माताओंका भगवान्‌से सम्बन्ध हो गया तो भी उन(माताओं)को यह ज्ञान नहीं हुआ कि ये सर्व पुरुषार्थ, भगवद्रूप हैं अथवा भगवान्‌से भिन्न हैं. अतः घृणाका निरूपण किया है अर्थात् माताओंने अन्य पदार्थोंको न्यून समझकर उनपर दया की.

पृथ्वीसे उत्पन्न सर्व पदार्थ, अथवा भूमिके सर्व अवयव गन्धवाले होते हैं. विजातीय(जो पृथ्वीसे उत्पन्न नहीं हुआ हो) पदार्थोंसे उपहत होनेपर अन्यथा(दूसरे प्रकारके अर्थात् गन्धहीन) होते हैं. यदि अलौकिक तेज हो तो उनमें उत्तमता आ जाती है. उस कुङ्कुम चन्दनादिकोंको 'अंगराग' नाम दिया गया है. वास्तवमें कस्तूरी आदि तो मिट्टीके ही अवयव(भाग) हैं, परन्तु गन्ध और तेजके कारण कस्तूरी आदि नामसे व्यवहृत होते हैं. भगवान्‌से सम्बन्ध होनेपर दोषोंकी निवृत्ति और गुणोंका प्राकट्य होना उचित ही है. अतः कीचको अंगराग कहा गया है. पहले तो कीच थी; किन्तु भगवान्‌के श्री अङ्गसे सम्बन्ध होनेसे उस कीचके दोष निवृत्त हो गए उसमें गुण प्रकट हुए. जिससे शुकदेवजीने श्लोकमें 'पङ्काङ्गराग' पद देकर कीचको भगवत्संसर्ग सत्रसे अंगराग कहा है.

श्लोकमें दिये हुए 'सुन्दर' शब्दका भाव बताते हुए आचार्यश्री कहते हैं कि उत्तम पदार्थोंसे भी इस(कीच)की विशेष सुन्दरता प्रकट करनेकेलिये 'सुन्दर' पद शुकदेवजीने दिया है. यद्यपि मिट्टीमें इतनी सुन्दरता नहीं थी, किन्तु भगवान्‌ने स्वयं स्वतः ही अपने तेज और प्रभावसे उसमें सुन्दरता प्रकटकर अंगरागकी महत्ता प्रकट की. उससे भी अधिक तेजका प्रत्यक्ष आविर्भाव हुआ, जब वह भगवान्‌के श्रीअंगमें लपेटी हुई देखी गई. जिससे भगवान्‌के श्रीअंगकी सुन्दरता निःसन्देह निखरने लगी. इस सुन्दरतासे ही माताओंने दो भुजाओंसे श्रीअंगका आलिंगनकर सुन्दरताके अनुभवका रसास्वाद लिया.

भगवान्‌में सदैव निर्दोष भाव करना चाहिए, कभी भी भगवान्‌में किसी प्रकार भी दोष न देखना चाहिए. माताओंने पुत्रोंके अंगमें लगी हुई मिट्टीसे सौन्दर्यकी झांकी की. अतः उसी दशामें पुत्रोंको आलिंगनकर गोदीमें ले स्तन दिया. यदि माताएं लौकिक भावयुक्त होकर स्तनपान न करातीं तो अलौकिक भाव प्रकट होते ही मुक्त हो जातीं. माताओंने समझा कि बालकोंने आने जानेकी

इतनी दौड़ धूप की है, इससे यह भूखे होंगे, अतः इनको अच्छी तरहसे स्तन्य पान कराना चाहिए.

'श्लोक'में शुकदेवजीने 'स्म' क्यों कहा इसका आशय आचार्यश्री स्पष्ट करते हैं कि किसीको यह शंका होवे कि शुकदेवजीने स्त्रियोंके बाल-भावकी सर्व क्रियाओंका वर्णन किया है वह कैसे किया? शुकदेवजी स्वयं विरक्त थे. इसलिए उनको इस लौकिक विषयका ज्ञान नहीं था. तो क्या शुकदेवजीने योगमें वा ध्यानमें वह लीला देखी? योग और ध्यानमें तो मोक्षके आनन्दके अतिरिक्त और कुछ नहीं दीखता है. आना-जाना भी मोक्षमें नहीं, तो फिर शुकदेवजीने इसका वर्णन कैसे किया? ऐसी शंकाओंके निवारणकेलिये शुकदेवजीने 'स्म' शब्द देकर बताया कि ये लीलाएं सर्व लोक-प्रसिद्ध हैं, कारण कि नित्य हैं. इसलिए उन लीलाओंको जाननेकेलिये योग-ध्यानादि अलौकिक प्रकारोंकी आवश्यकता नहीं है. श्लोकमें 'मुखं' एक वचन क्यों कहा? उसका आशय आचार्यश्री बताते हैं कि दोनों ही रूप एक ही भगवान्के थे, इसलिए 'मुखं' शब्द एक वचन देकर दोनोंका एकत्व प्रतिपादन किया है. बलरामजीमें भी भगवान्का ही आवेश था. यह एकत्व आगे विस्तारसे कहा जायेगा.

मुख भक्तिरूप है, उसके निरीक्षणसे लौकिक भाव क्यों हुआ? उसको समझाते हुए कहते हैं कि मुखमें जो हास्य एवं दूध कणों जैसे सुन्दर छोटे-छोटे दांत थे, वे माया एवं स्नेहरूप होनेसे मोहक थे. सुन्दर स्मित(मन्द हास्य, मुस्कान) अपनेमें आसक्ति कराती है और उनका गुण मोहक दूसरेमें आसक्ति कराता है. इसलिए उनसें(मन्द-मन्द मुस्कान तथा दूधवाले दांतोंसे) दोनों भाव(लौकिक तथा अलौकिक) प्रकट होनेसे अत्यन्त मोद प्रकट हुआ अर्थात् माताएं इनसे अत्यन्त आनन्दमें मग्न हुईं।।२४।।

इस प्रकार ऊपरके श्लोकोंमें तीन लीलाएं(मुग्ध-सात्त्विक, धार्ष्ट्य-राजस, धूर्तता-तामस युक्त लीलाएं) फल सहित वर्णन की गई हैं. जिनसे तीन प्रकारके सात्त्विक, राजस और तामस प्रकृतिवालोंके दोष दूरकर, अन्तमें फलरूप निर्गुण स्वरूप हृदयमें स्थित किया. अब जो लीलाएं की हैं वे अपने आप ही स्थित हो, उनका वर्णन तीन श्लोकोंसे करते हैं.

यर्ह्यङ्गनादर्शनीय-कुमार-लीलावन्तर्व्रजे तदबलाः प्रगृहीत-पुच्छैः ।।
वत्सैरितस्तत उभावनुकृष्यमाणौ प्रेक्षन्त्य उज्झितगृहा जगृहुर्हसन्त्यः ।।२५।।

जब स्त्रियोंके देखने योग्य कुमार लीलावाले, वे दोनों भाई हुए, तब, जब कभी व्रजमें वे दोनों भाई, गौऔके पुत्रों(बछडों)की पूंछोंको पकडकर खेलते थे, उस समय वे बछडे दोनों भाईयोंको घसीट(खींच)कर इधर-उधर ले जाते थे, इस लीलाको देखती हुई उन अबला व्रजांगनाओंने अपना अपना काम छोड दिया और उसमें लीन होकर हंसती हुई उनको पकडने लगीं ।।२५।।

इस लीलामें सब स्त्रियां अधिकारिणियां(निरोधकी अधिकारिणियां) हैं. यशोदा और रोहिणीसे इतर स्त्रियोंका सामान्य रीतिसे निरोध न होनेसे उनके संगदोषसे, माताओंके निरोधका वर्णन नहीं कहा. राजस भाव(रसोंका उद्दीपन करानेवाला भाव) तो करोड़ों होते हैं. उन सब राजस भावोंका, स्त्रियोंके देखने योग्य कुमार लीलावाले स्वरूपोंमें, समावेश किया गया है. उन लीलाओंके करनेवाले, स्वरूपोंके दर्शनसे 'अंगना' तरुण स्त्रियोंमें रसोंका उद्दीपन(प्राकट्य) होता है. भगवान्की कुमार लीलाएं तीन प्रकारकी हैं:

१. कौतुकाविष्टा: आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली.

२. रसाविष्टा: रस, आनन्द उत्पन्न करनेवाली.

३. कामाविष्टा: पुनःपुनः दर्शनकी इच्छा उत्पन्न करनेवाली हैं.

इस प्रकार अधिकारानुसार इन त्रिविध लीलाओंके रस-पान करनेवाली तरुणियां भी तीन प्रकारकी थीं. जब भगवान् उन तरुणियोंको लीलाके दर्शन कराने योग्य हुए तब ही अपनी अति मुग्धता प्रकट करनेकेलिये बछड़ोंकी पूंछोंको पकड़के उठाकर खड़े हो जाते थे. आचार्यश्री कहते हैं कि इस लीलाका विशेष वर्णन श्रीशुकदेवजीने लौकिकाभिनिवेशके भयसे नहीं किया है. यों तो कुमार अवस्था पांच वर्ष तक है, किन्तु इस लीलाके करते समय भगवान् दो वर्षके थे, आचार्यश्रीकी यह सम्मति है, कारण कि ढाई वर्षकी आयुमें आप वृन्दावन पधारे हैं. इस प्रकार आचार्यश्री 'कुमार' शब्दसे आयुका निर्णयकर 'कुमार' शब्दका दूसरा भाव भी बताते हैं. आचार्यश्री आज्ञा करते हैं कि शुकदेवजीने 'कुमार' शब्द देकर यह बताया है कि लोकमें प्रसिद्ध है कि सौन्दर्यकी अवधि कामदेव है. इसलिए किसी पुरुषके रूपका सौन्दर्य बताया जाता है तो कहा जाता है कि भगवान्ने अपने सौन्दर्यसे 'काम'को भी कम कर दिया है इसलिए इसका अर्थ है 'कुत्सितो मारो यस्मात्' जिससे भगवान् श्रीकृष्णके स्वरूपसे 'काम'का स्वरूप भी हीन है. इसलिए भगवान्को कोटिकन्दर्प लावण्यसे भी सुन्दर कहा जाता है.

कामके सौन्दर्यके सर्वोत्तम भाव भी इस(श्रीकृष्ण)में निरूपण किये गये हैं. अर्थात् कामदेवमें जो सौन्दर्यकी उत्कृष्टता है, वह तो भगवान्में है ही, किन्तु उससे भी भगवान्में सुन्दरताका विशेष भण्डार है. लोकमें कहे हुवे 'यर्हि' शब्दका भाव आचार्यश्री बताते हैं कि भगवान् जब तक यशोदाजीकी गोदमें रमण करते थे और स्वयं उठकर बाहर खेलने नहीं आते थे, तब तक अंगनाओं(तरुण स्त्रियों)को भगवान्के दर्शन, अन्तराय बिना नहीं होते थे. तृणावर्त-वध और उसके पश्चात् भी, जब तक वह भाव प्रकट न हुआ, तब तक निरन्तर भगवान्के दर्शन नहीं होते थे. भगवान् जब कुमार लीला करने लगे, तब दोनों प्रकारकी अंगनाओं, जिनको अधिकार था और जिनको अब कुमार अवस्थाकी लीला देखकर भाव उत्पन्न हुआ था, उनको बिना अन्तरायके निरन्तर भगवान्के दर्शन होने लगे. इस प्रकारकी स्त्रियोंके देखने योग्य कुमार लीलाएं, दृष्टि, स्पर्श और सम्बन्धसे त्रिविध थीं; एवं सुख देनेवाली थी. ये लीलाएं भगवान्ने किस स्थानपर की? इसके उत्तरमें कहते हैं कि भगवान्ने विचारा कि मुझमें निष्ठावाली व्रज बालाएं निर्बल हैं, इसलिए दूसरे स्थानपर जानेके योग्य नहीं हैं अतः मैं ऐसे स्थानपर ये लीलाएं करूं, जहांसे सब देख सकें. वह स्थान व्रज ही है. इसलिए 'व्रजके मध्यमें' ये लीलाएं भगवान्ने की हैं. भगवान् जब मुग्ध भाव बनानेकेलिये बछड़ोंकीं पूंछोंको पकड़कर खड़े होते थे, तब वे बछड़े मूढ़ होनेसे भगवान् एवं उनके साथी बलरामादिकोंको भी घसीटकर ले जाते थे. यह देखकर अंगनाएं उनको पकड़ती थीं. आचार्यश्री बछड़ोंकी पूंछोंको पकड़नेका भाव बताते हैं कि भगवान् कर्मनिष्ठोंको, कर्म फल देनेकेलिये, कर्मके अंगरूप देवता बन जाते हैं, वा उसका आश्रय करते हैं. किन्तु कर्म, जड़(मूढ) होते हैं वे समझते हैं कि हमको यह फल देवता देता है इसलिए वे भगवान्से साक्षात् सम्बन्ध जोड़ नहीं सकते हैं. अर्थात् भगवान्की सेवा नहीं करते हैं एवं वे कर्मजड़ यह नहीं समझते कि हमको फल देनेकेलिये भगवान् लीलासे कर्मांग देव बने हैं. यों न समझनेके कारण वे उस ही स्थितिमें रहते हैं, आगे नहीं बढ़ सकते हैं. जैसे बछड़ोंको भगवान्ने पकड़ा(स्वीकार कर वरण किया) अपने श्रीअंगके स्पर्शसे आनन्द दिया, परन्तु मूढ़ होनेसे वे इस भावको न समझ, भगवान्को प्राकृत जान, उनसे अपने आपको छुड़ानेकेलिये भागने लगे, वे कर्मजड़ अस्थिर(चंचल) मति मूढ़ ऐसे हैं, जो यहां वहां भटकते हैं तथा नित्य कर्म और काम्य कर्ममें उसका सम्बन्ध कराते हैं.

दूसरोंको शांति हो, इस फलकी प्राप्तिकेलिये, गर्दभके पाद (कुछ भाग)का छेदनकर होम करते हैं. मूढ़ होनेसे भगवान्की लीलाका रहस्य गोवत्सोंकी तरह नहीं समझते हैं. भगवान्ने बछड़ोंकी पूंछोंको अच्छी तरहसे पकड़ा, जिससे वे दौड नहीं सकते थे, किन्तु भगवान्को तो लीला मात्र करनी थी जिससे इस प्रकारका प्रदर्शनकर भक्तोंको अपने मुग्ध भाव या आनन्द दान किया. इस प्रकारसे बछड़ोंके घसीटनेपर भी, भगवान् स्खलित न हुवे(गिरे नहीं). यह क्रीड़ा भगवान्ने दो रूपोंसे, मूलरूप स्वयं श्रीकृष्णसे और बलराममें आविष्ट स्वरूपसे की है. बछड़े भगवान्को, अथवा भगवान् बछड़ोंको धीरे-धीरे आकर्षण करते(खेंचते) थे इसलिए दोनोंकी इच्छाके अनुसार कार्य(ले जानेका कार्य) नहीं होता था अतः इधर-उधर परस्पर खींचते रहते थे. श्लोकमें 'वत्सैः' बहुवचन दिया हुआ है उसका आशय बताते हैं कि एकको पकड़ते समय यदि वह भाग जाता तो दूसरेको पकड़ते, यों कितने ही भाग जाते कितने ही पकड़े जाते थे, इसलिए बहुवचन दिया है. इस लीलामें इस प्रकारसे भगवान्की पराधीन गतिको देखती हुई अंगनाएं स्थिर स्थित हो गईं. जैसे भगवान्के स्वरूप एवं लीलाओंके रहस्यको जानकर उपनिषद् उनमें ही स्थित(मग्न) हैं वैसे ये तरुणियां लीलाके रसको पानकर, आनन्दित हो, स्थिर हो गईं. भगवान् अन्याधीन(बछड़ोंके आश्रित) हैं इसलिए वह प्राकृत है, ऐसा भाव उनके मनमें न आया, वे तो इसको भगवान् ही समझ रही थीं उनको यह रहस्य ज्ञात हो गया कि यह हमारे प्रियकी मुग्ध लीला है.

इस प्रकार लीलाके रहस्यको समझनेसे अन्तःकरण शुद्ध हो गया. तब कर्मनिष्ठाको अन्तःकरणसे निकाल दिया. अपने आनन्द प्राप्तिकेलिये भगवान्को हम तब ग्रहण(वश)कर सकेंगी जब(गृहस्थ)आश्रमका त्याग करेंगी इस निश्चयसे बिडालादिसे, व्याकुल भी घरको छोड़, उसकी परवाह न कर भगवान्को ही पकड़ा, अर्थात् भगवान्में आसक्त हो गईं. श्लोकमें दिये हुए ''प्रेक्षन्त्य उज्झितगृहा जगृहुर्हसन्त्यः'' इन तीनोंका भाव प्रकट करते हैं कि हमने भगवान्को पकड़ लिया अब बछड़ोंके समान स्खलन न होगा. इस कारणसे भगवान्की इस मुग्धलीलाको ज्ञानवाली देखती रहीं. इस प्रकार वे तीन प्रकारकी स्त्रियां थीं जिन्होंने भगवान्को ग्रहण किया था. भगवान्को ग्रहण करनेके पश्चात् जो भगवान्में विनियोग करना है वह तो इन्होंने पहले ही कर दिया था.

हम सब मिलकर भगवान्‌को पकड़ें तब भगवान् आप कहीं भी ले जावें, घर छोड़ दिया. इससे घरके अभावमें भगवान् दूसरे स्थानपर ले जा सकते हैं. हंसनेका भी यही भाव है कि भगवान् फलदानार्थ कहीं भी चलें. विशेष कहनेसे क्या उन्होंने सर्व प्रकारसे भगवान्‌को अपना लिया अब जिस प्रकार सबका अंगीकार हो, वैसे भगवान् करें, अर्थात् अंगनाओंके इच्छाधीन हो, लीला करें. गो पुच्छ धारण लीला पराधीन लीलाका यही भाव वर्णन किया गया है।।२५।।

इस श्लोकमें भगवान्‌की उन अनेक प्रकारकी गति(पैरोंसे चलनेकी) लीलाओंका वर्णन करते हैं जो लीलाएं भगवान्‌ने स्वच्छन्द होकर की हैं.

शृङ्ग्यग्निदंष्ट्र्यसिजलद्विजकण्टकेभ्यः क्रीडापरावतिचलौ स्वसुतौ निषेद्धुम्।।
गृह्याणि कर्तुमपि यत्र न तज्जनन्यौ शेकात आपतुरलं मनसोनवस्थाम्।।२६।।

जब सींगवाले, अग्नि, दाढोंवाले, तलवार, जल, पक्षी और कांटोंसे करते हुए खेलों 'में' तन्मय(लीन), अति चञ्चल अपने पुत्रोंको माताएं रोक न सकीं और अपने घरके काम भी न कर सकीं, तब दोनों माताओंके मनकी अनवस्था हो गई।।२६।।

गोपिकाएं निर्दोष थीं, क्योंकि उनको भगवान्‌में संसार सम्बन्धी लौकिक भाव नहीं था. वे अलौकिक भावसे वशीकृत थीं. भगवान् भक्तोंमें सूक्ष्मरूपसे विश्वास उत्पन्न करते हैं जिससे उन भक्तोंके विघ्न दूर होते ही भगवान् स्वकीय इष्टरूपका उनमें आविर्भाव करते हैं इसको इष्ट वा अलौकिक भाव कहा जाता है. घर त्यागसे उनको कोई विचार(सांसारिक विचार) न रहा, इसलिए रससे भी वश हुई थीं, तारुण्यके कारण, कौतुकसे भी वश हुई थीं. हंसती हुई गोपियां अन्य फल(कामेच्छा)से भी वश हुई थीं. इस प्रकार वे त्रिविध गोपियां भगवदासक्त होनेसे शीघ्र ही प्रपञ्चको भूल गईं अर्थात् उनका तो निरोध हो गया, किन्तु माताओंका निरोध न हुआ, कारण कि माताओंमें अब तक ये हमारे पुत्र हैं यह स्वत्वभाव(लौकिक भाव) था और उनकी गृहकार्यमें भी आसक्ति थी. अतः माताओंका निरोध करनेकेलिये(स्वत्त्वभाव एवं गृह कार्यासक्ति मिटानेकेलिये) छः गुणोंसे एवं अपने स्वरूपसे सात प्रकारकी लीला करने लगे।।२६।।

इष्टस्य दुष्टसम्बन्धे शिष्टः पुष्टिं विमुञ्चति।।
नान्यथेति हरिः प्रीतः सत्यः क्रूरगतोऽभवत्।।१।।

कारिकार्थ : इष्टका दुष्टके साथ सम्बन्ध होता है, तब शिष्ट अपने

पोषणको त्यागता है. यदि ऐसा नहीं हो(पोषणादि-गृह कार्य त्याग न हो) तो सत्य रूप हरि क्रूरके पास न जावे. किन्तु यहां शिष्टने अपना पोषण त्याग दिया है, अतः सत्य रूप हरि प्रसन्न होकर क्रूरके पास गए. क्योंकि भगवान्को शिष्टका निरोध करना था।।१।।

इस कारिकामें आचार्यश्रीने यह समझाया है कि भगवान्ने यह कुमार लीला करते हुए दुष्ट(सींगवाले अग्नि आदि)का संग इसलिए किया है कि माताओंकी जो अब तक गृह-कार्यमें आसक्ति है और मुझमें लौकिक भाव है वे दोनों ही छूटकर मुझमें इनका निरोध हो. अतः जब भगवान्ने दुष्ट संग किया, तो माताएं गृह-कार्य छोडकर भगवान्के पास गईं जिससे गृहाशक्ति छूटने लगी और भगवान्के अलौकिकत्वका ज्ञान भी होने लगा. इष्टका अर्थ है अपनेको जो प्रिय हो, तो यहां माताओंको प्रिय भगवान् हैं, अतः इष्टसे भगवान् समझना चाहिए. शिष्टका अर्थ है इष्ट(भगवान्)के अतिरिक्त जो शेष हो, वे माताएं हैं अर्थात् शिष्टसे यहां माताएं समझनी चाहिए. इसलिए इष्ट(भगवान्)का दुष्टों(सींगवाले, अग्नि आदि)से सम्बन्ध होते ही शिष्ट(माताओं)ने पोषणादि(गृह-कार्य) छोड दिया है।।१।।

शृङ्गिणो दंष्ट्रिणश्चैव पक्षिणश्च विघातकाः ।।
चेतनास्त्रिविधा एव ततोन्ये तु चतुर्विधाः ।।२।।
कृत्रिमाः सहजास्तेपि खड्गाग्निजलकण्टकाः ।।

कारिकार्थ : सींगवाले, दाढोंवाले और पक्षी ये तीन प्रकारके चेतन प्राणी विघातक(मारनेवाले) होते हैं, और चार प्रकारके अचेतन विघातक होते हैं.

वे अचेतन, खड्ग(तलवार) अग्नि, जल और कांटे भी कृत्रिम और सहज होनेसे दो प्रकारके हैं.

२ व २-१/२ कारिकामें कहा गया है कि मारनेवाले प्राणी चेतन और अचेतन दो प्रकारके हैं उनमें चेतन तीन प्रकारके हैं और अचेतन चार प्रकारके हैं. तीन प्रकारके चेतन सींगवाले, दाढवाले और पक्षी हैं और चार प्रकारके अचेतनोंमें दो बनावटी अग्नि और खड्ग और दो सहज कांटे तथा जल हैं ।।२।।

सींगवाले प्राणी गौऐं, धूएंकेलिये अथवा पसीना[१] लानेकेलिये जलाई हुई अग्नि[२], दाढ़वाले प्राणी वानर, असि,(तलवार आदि प्राण हरण करनेके साधन), कूप और खड्डेमें पड़ा हुआ और कलशसे गिराया हुआ जल, शुकादि पक्षी,

काण्टोंसे बनाई हुई बाड़, इन सातोंसे रमण करनेमें रत भगवान्‌को रोकना, केवल वचनसे नहीं होगा, आज्ञा दी जाय, तो भी वे रुकेंगे नहीं क्योंकि वे चञ्चल हैं. वास्तविकमें तो मन आज्ञा देनेकी प्रेरणा नहीं करता है अथवा सर्व प्रेरक भगवान् मनको आज्ञा देनेकेलिये प्रेरित नहीं करते हैं. इसलिए आज्ञा देनेमें वे असमर्थ हुईं जिससे आज्ञा देनेका विचार ही न हुआ. कारण कि भगवान्‌ने माताओंको गृह कार्यसे विरक्त कराके अपनेमें आसक्त करानेकेलिये ही ये लीलाएं की हैं.

१.दूधके बर्तनोंकी गन्ध निकालनेकेलिये अग्निसे तपाते हुए उन बर्तनोंमें पसीना आनेसे दूधकी गन्ध निकल जायेगी. प्रकाश.

२.अग्निके धूम(धूंए)से मच्छरोंका उपद्रव टल जायेगा, गौएं प्रसन्न रहेंगी और दूध गरम करनेकेलिये भी अग्निकी आवश्यकता होती है. लेख.

जब इस प्रकारकी उपद्रव वाणी क्रीड़ाओंके करनेका माताओंको ज्ञान हुआ तो माताओंको आग्रह वा प्रार्थनासे उनको रोकने चाहिये था. इस प्रकार रोकना भी योग्य नहीं था, कारण कि क्रीड़ामें भगवान् आसक्त थे. जब खिलाड़ी खेलमें लीन होते हैं तब उनपर क्रीड़ाका ही नियामकत्व रहता है. क्रीड़ाके अतिरिक्त दूसरोंकी प्रार्थना आदि सुनते ही नहीं. अतः माताओंने प्रार्थना वा क्रीड़ा छोड़नेका आग्रह करना योग्य न समझा. अच्छा यदि उसको क्रीड़ा करना ही श्रेष्ठ कार्य जंचता है, तो अन्य प्रकारके क्रीड़ाके साधन एकत्रितकर, अच्छे स्थानपर लाकर उन्हें देने थे. यों करनेसे भी कार्य सिद्धि अशक्य थी क्योंकि वे अत्यन्त चञ्चल थे अर्थात् एक स्थानपर वे एक प्रकारका खेल खेले वैसे नहीं हैं. भला, तो उनकी देखरेखकेलिये कोई निरीक्षक(देख रेख करनेवाला) रखना था. इसपर कहते हैं कि 'स्वसुतौ' ये बालक अपने उत्पन्न किये हुए हैं. इनके सब प्रकारके क्लेश हमने सहन किये हैं, इनमें हमारा स्नेह विशेष है. इसलिए जैसा निरीक्षण हम करेंगी, वैसा दूसरा नहीं करेगा. इसलिए दूसरा निरीक्षक भी नहीं रखा जा सकता है.

भगवान्‌को इन उपद्रवकारी पदार्थोंसे होती हुई लीलाओंसे रोकनेकेलिये, इस प्रकारकी क्रिया करो, जैसा कि वहांसे उनको स्वयं लाकर, अच्छे स्थानपर स्थापित करो वहां खेलते रहें. इसपर कहते हैं कि सदा यों करनेसे उनको घरके आवश्यक कर्तव्य, भोजन स्नानादि, भी सिद्ध न हो सकेंगे. क्योंकि लोकमें निष्ठा(श्रद्धा) और भगवान्‌में निष्ठा परस्पर विरुद्ध है. माताओंकी दोनोंमें

लोकमें एवं भगवान्में(घरके काम करनेमें और भगवान्की रक्षा करनेमें) समान आसक्ति थी कारण कि अब तक पूरा निरोध सिद्ध नहीं हुआ है. इसलिए इस लीलाको मध्य लीला कहते हैं, पांचवी लीला तो कहेंगे, उसकेलिये सर्व परित्याग है. दोनोंमें समान निष्ठाकेलिये श्लोकमें 'अपि=भी' शब्द दिया है. माताएं बालकोंकी इस प्रकारकी लीलाओंसे, घरके काम पूरा नहीं कर सकती थीं, तब व्यग्रताको प्राप्त होती थीं और बालकोंको साथमें भी नहीं रख सकती थीं. भगवान् स्वेच्छानुकूल, कालमें सर्व कार्य करते हैं. इस प्रकार माताओंका मन एक क्षण भी स्थिर नहीं रहता था।।२६।।

इस प्रकार माताओंके निरोधकेलिए अनेक प्रकारकी लीलाएं कहकर, अब भूमि मर्दन क्लेशको मिटानेकेलिए, स्वतन्त्र भगवान्ने जिस भांति चरणोंसे गति विलासकर, भूमिको चांपते हुए उसका क्लेश काटा, यह वर्णन करते हैं.

कालेनाल्पेन राजर्षे रामः कृष्णश्च गोव्रजे ।।
अघृष्टजानुभिः पद्भिर्विचक्रमतुरञ्जसा ।।२७।।

हे राजर्षे! थोडे ही समयमें राम और श्रीकृष्ण गोकुलमें, घुटना घिसे बिना, अनायास ही पैरोंसे फिरने लगे।।२७।।

जिस प्रयोजनार्थ यह लीला करती है, वह प्रयोजन अल्प ही है. अतः अल्प ही समयमें गोकुलमें अन्यकी अपेक्षा(आसरा) बिना, अनायास ही पैरोंसे फिरने लगे. जैसे काल, क्रीड़ामें करण(साधन) था, वैसे ही यहां चलनेमें भी कारण है. क्योंकि काल गतिरूप है. अल्पकाल कोमल होता है. अतः चरण कोमल थे. कोमल चरणोंके स्पर्शसे भूमिका खेद मिटेगा. शुकदेवजीने परीक्षितको राजर्षे कहा है. जिसका आशय आचार्य श्री कहते हैं कि परीक्षित्, आगे आनेवाले चरित्रोंके श्रवणका अधिकारी है और निरोधलीलाके अनुसन्धानका भी अधिकारी है. शुकदेवजीने श्लोकमें भगवान् एक वचनवाला नाम न देकर राम और कृष्ण पृथक्-पृथक् नाम दिये हैं. उसका आशय(भाव) यह है कि शुकदेवजीने 'राम' नामसे यह बताया है कि जब भगवान्का, योगीजन ध्यान करते हैं, तब भगवान् उनके बाहिरके लौकिक विषयका त्याग कराके, भीतर, अलौकिक रमण कराते हुए उनको आनन्द देते हैं, और भीतरके मनको बाहर लाते हैं, इसलिए भगवान्को 'राम' कहते हैं. इस आशयको बतानेकेलिये 'राम' नाम पृथक् दिया है. क्योंकि उस स्वरूपसे यहां यह लीला भी हुई है. जैसा कि

अन्तः स्थितरूपसे रतिके उत्पादनकी सामर्थ्य एवं मन आदिको बाहर निकालकर, परमानन्दरूप आनन्ददान-सामर्थ्य भी प्रकट की है. ये दोनों ही लीलाएं भूमिके सुखदानार्थ की हैं. स्वतन्त्रतासे भगवान् दोनों स्वरूपोंसे, यों लीला करते हैं. इसलिए पृथक्-पृथक् नाम दिये हैं श्लोकमें(च) देकर यह भी बताया है कि दोनों ही एक हैं. विषयोंको भीतर ले जानेमें और मनको बाहर[२] लानेमें दोनोंका विनियोग होता है.

दैत्यों द्वारा भूमिको क्लेश होता था, उसको मिटानेकेलिये पहले भगवान्ने घुटनोंसे चलके दैत्योंके नाशकी लीला की. किन्तु अब जो दैत्य-नाश शेष है, उनका नाश करनेकेलिये आप पादोंसे चलकर शेष कार्य सम्पूर्ण कर भूमिके मर्दन- क्लेशको मिटाते हैं. यहां घुटनोंसे न चलनेका कारण बताया गया है कि यह लीला गोकुलमें करनी है. पहले घुटनोंसे चलनेकी लीला भी गोकुलमें की है. किन्तु गोकुलमें भूमिपर गौओंके खुरोंके पड़नेके कारण उसके समतल न होनेसे घुटनोंमें कष्ट होनेसे भगवान् अब पैरोंसे चलकर, यह कार्य पूर्ण करते हैं, भगवान् अनेक प्रकारसे पाद विन्यास करते फिरते थे(पैरोंको धरते थे). यहां मूलमें 'विचक्रमतुः' क्रिया भूतकालकी दी है. आचार्य श्री कहते हैं कि भगवान्की लीला नित्य होनेसे, उसका समाप्त हो जाना कभी भी नहीं समझना चाहिए. काव्योंमें किसी भी कालकी क्रिया हो, तो भी उसका अर्थ, किसी भी कालमें लिया जाता है, अर्थात् काव्योंमें कालका प्रतिबन्ध नहीं है. यहां तो नित्य स्वरूप भगवान्की नित्य लीलामें कालका कोई प्रतिबन्ध हो ही नहीं सकता है।।२७।।

१-१. मूलमें राम और कृष्ण पृथक् पृथक् नाम दिए हैं इसलिए भगवान्से दोनों ही स्वरूप समझने. लेख.

२. 'बाहर' मतलब श्रीकृष्ण स्वरूप परमानन्दरूप होनेसे अपने सौन्दर्यसे दर्शकोंके मनको बाहर लाते हैं अर्थात् अपने स्वरूपमें लीन कर देते हैं. योजना.

इस प्रकार राजसी लीलाका[१] वर्णनकर अन्य लीलाओंका वर्णन तीन श्लोकोंसे करते हैं.

ततस्तु भगवान् कृष्णो वयस्यैर्व्रजबालकैः ।।
सहरामो व्रजस्त्रीणां चिक्रीड़े जनयन् मुदम् ।।२८।।

इसके अनन्तर तो राम सहित भगवान् कृष्ण, व्रज स्त्रियोंको आनन्दित करते हुए वयस्य(समान उमरवाले) व्रज बालकोंके साथ क्रीडा करने लगे।।२८।।

शुकदेवजीने राजस-तामसी और तामस-तामसी लीलाओंको अपने मुखसे कहना उचित न समझकर दूसरों(गोपियों)के मुखसे कहलानेकेलिये मध्यमें वाक्यान्तर(दूसरे प्रकारका विशेष वाक्य) श्लोक २८ में कहा है[३]. इसलिए चार श्लोकोंसे ये लीलाएं निरूपित समझनी चाहिए.

इस प्रकार भूमिके दुःखके निवारणानन्तर(मिटानेके बाद) सुखदायक समतल भूमिपर, अपने अंशरूप बालकोंके साथ महाराजने लीला की. इसका वर्णन 'ततस्तु' इस श्लोकमें करते हैं. श्लोकमें 'तु' (तो) शब्द देकर यह बताया है कि पूर्व लीला हो गई अब दूसरी लीला प्रारम्भ होती है. अब जो लीलाएं कृष्ण करेंगे, वे स्वतन्त्रतासे ही करेंगे. इसलिए श्लोकमें कृष्णका विशेषण 'भगवान्' देकर स्वतन्त्रतासे लीला करनेकी सामर्थ्य बताई है. बलराममें स्वतन्त्र सामर्थ्य दुर्बल(कम) है. अतःश्लोकमें रामकेलिये विशेषण 'भगवान्' शब्द नहीं दिया. राममें कृष्णका आवेश है. इसलिए सहभाव दिखानेकेलिये 'सहरामः'(रामके साथ) कहा. काल, भगवान्का सेवक है इसलिए भगवान्के साथ क्रीड़ा करनेवाले बालकोंको कालने समवयस्क बताया है, अतः 'वयस्यैः' समान वय-वालोंसे शब्द दिया है. जैसे आयु समान थी वैसे देश भी एक है. इसको बतानेकेलिये केवल 'बालकैः' न कहकर शुकदेवजीने श्लोकमें 'व्रज बालकैः'(व्रजके बालकोंसे) कहा है. इन भगवान् कृष्णकी क्रीड़ाओंमें वयस्य व्रज बालक मुख्य है. बलरामजीकी गणना तो भगवान्के साथ हो जाती है, इसलिए 'सहरामः' कहा है. इस लीला करनेका मुख्य तात्पर्य व्रज स्त्रियोंका साक्षात् निरोध करना है. (वे गोपिकाएं निरोध योग्य हैं. यशोदा सर्वथा प्रपञ्चमें मग्न है. उसका प्रपञ्च छुडाकर निरोध करना है.) वह ज्ञान द्वारा होगा. इसलिए उस प्रकारकी लीला करनी होगी. अब पहले गोपियोंका अपनेमें लौकिक प्रकारसे अनुराग उत्पन्न कराया. इसको व्रज स्त्रियोंमें आनन्द उत्पन्न करते हुए ऐसा कहा कि ये स्त्रियां(गोपिकाएं) व्रजकी हैं. अतः व्रजके सम्बन्धसे इनका निरोध करना आवश्यक है. जिस भी क्रीड़ासे, वा जिस प्रकारसे की हुई क्रीड़ासे उनका सन्तोष(प्रसन्नता) होवे उस प्रकारसे ही लीलाएं कर इनका निरोध करना है. इसलिए भगवान्ने इसी प्रकारकी लीलाएं की हैं न कि अपने-अपने सामर्थ्यसे इनका निरोध किया है. यदि इस प्रकारकी लीलाएं, अन्य प्रयोजनकेलिये, भगवान् करते, तो शुकदेवजी, व्रज स्त्रियोंको आनन्द देनेकेलिये भगवान् खेलने

लगे, इस प्रकारके शब्द नहीं कहते. निरोध करनेवाला धर्म भगवान्का ही है, इसलिए श्रीशुकदेवजीने श्लोकमें 'मुदं जनयत्' 'आनन्द उत्पन्न करता हुआ' यह भगवान्का विशेषण दिया है. अतः निरोध करनेमें प्रधानत्व भगवान्का ही है नि कि गोपीजनोंका है. इस निरोधरूप कार्यमें साधनके रूपमें बालकोंका उपयोग हुआ है और बलरामजीसे रक्षकका काम लिया गया है, स्वयं भगवान् भक्तोंमें सन्तोष उत्पन्न करते हैं. राजलीलामें भगवान्ने राजाका, रामने मन्त्रीका और बालकोंने सेवकके स्वांग किये थे. जितनी गोपियां थीं और जिस-जिस भाववाली थीं उनके अनुरूप उस-उस प्रकारके भावोंको पूर्ण करनेकेलिये भगवान्ने अनेक प्रकारसे अनेक लीलाएं की हैं।।२८।।

१. प्रकाशकार: राजसी लीला 'पाद विन्यास' लीलाको कहते हैं.

२. रूप प्रकरण, दश श्लोकोंका आचार्यश्रीने कहा है. इसलिये निर्भयराम भट्टजीने 'कृष्णस्य गोप्यो' '२८ अ' श्लोककी गणना दश श्लोकोमें नहीं की है. यह श्लोक आगे कही जानेवाली लीलाओंका केवल प्रसिद्धि बोधक है.

किन्तु जो गोपियां सर्व प्रकारसे प्राकृत स्वभाववाली[२] थीं और लौकिक वाक्योंमें(सास आदिके वाक्योंमें पति-सेवा और बाल-पालनमें)श्रद्धावाली थीं, उन गोपियोंकी प्रपञ्च विस्मृति, साधारण सात्त्विक लीलासे न होगी, अतः भगवान्ने उन गोपियोंके दूध, दही मक्खन आदि जिन पदार्थोंके सम्हालनेके कार्यमें उनकी आसक्ति थी उन कार्योंको नाश कर, उनका निरोध किया. वे गोपियां अपने कार्यनाशको, यदि सह सकतीं, तो सर्व प्रकारसे उनकी निरोध सिद्धि नहीं होती. किन्तु वह कार्य-नाश उनको असह्य था, इसको बतानेकेलिए उस प्रकार(लौकिक आसक्ति और प्राकृतत्वका नाश कार्य)की गोपियां श्रीकृष्णको उपालम्भ(उलाहना) देने लगीं. यह वर्णन इस श्लोकमें है.

कृष्णस्य गोप्यो रुचिरं वीक्ष्य कौमारचापलम् ।।
शृण्वन्त्याः किल तन्मातुरिति प्रोचुः समागताः ।।२८-अ।।

श्रीकृष्णके कुमार अवस्थाकी चञ्चलताको देखकर, मिलकर आई हुई गोपियां उनकी माताओंको सुना सुना कर स्पष्ट रीतिसे कहने लगीं ।।२८-अ।।

श्लोकमें बालकोंका अथवा रामका नाम न कहकर केवल श्रीकृष्णका नाम गोपियोंने इसलिए लिया है कि वास्तविक स्वतन्त्रकर्ता श्रीकृष्ण ही हैं, वे तो सहायक मात्र हैं. भगवान्की यह कुमार लीलाकी चपलता बहुत सुन्दर है. इससे

निरोध सिद्ध तो हुआ किन्तु हमारा मन इस प्रकार(कार्य नाश कराके) निरोध सिद्ध करानेका नहीं था. अपने दोषको छिपानेकेलिये यशोदाजीको यों कहने लगीं. आचार्यश्री श्लोकमें दिये हुए 'गोप्यः' शब्दका भाव बताते हैं कि भगवान्की कृपासे सर्व प्रकारकी सर्व सम्पदाएं प्राप्त होनेपर भी यशोदाजीको भगवान् श्रीकृष्णके इस प्रकारकी लीलाका उपालम्भ देती हुई कृष्णकी निन्दा करने लगीं; क्योंकि गोपोंकी स्त्रियां थीं. गोपियोंने भगवान्की यह निन्दा दोष दृष्टिसे नहीं की थी, यदि दोष-दृष्टिसे की होती तो निरोध सिद्ध ही न होता. दोष दृष्टिसे नहीं की तो किसलिए की? इसपर कहते हैं कि गोपियोंने माताको कृष्णका दोष नहीं है, यह बतानेकेलिये ही कहा है कि यह दोष, इस कुमार अवस्थाका है. ऐसी बुद्धि, गोपियोंकी थीं 'समागताः' पदका भी यही भाव है कि उपालम्भ देनेकेलिये नहीं आई थीं, किन्तु लोक न्यायसे सभी मिलकर यशोदाजीके पास आई थीं. माताके सुनते हुए ये भी आ गईं तो इस प्रकारके वचन अयोग्य थे, तो भी लोकमें प्रसिद्ध होनेसे कहे गये हैं. शुकदेवजीने इस कारण ही 'किल' शब्द कहा है कि अपनेमें(गोपियोंमें) दोषोंका अभाव है यह सबोंको ज्ञात हो जाय।।२८-अ।।

श्रीगोप्य ऊचुः

वत्सान् मुञ्चन् क्वचिदसमये क्रोशसञ्जातहासः।
स्तेयं स्वाद्वत्त्यथ दधि पयः कल्पितैस्तेययोगैः ।।
मर्कान् भोक्ष्यन् विभजति स चेन्नाति भाण्डं भिनत्ति
द्रव्यालाभे सगृहकुपितो यात्यनुक्रोश्य तोकान् ।।२९।।

किसी भी समय जब गायें दोहनेका समय नहीं होता है, तब भी यह(कन्हैया) बछडोंको छोड देता है. जो हम क्रोधयुक्त होकर कुछ भी कहती हैं तो हंसने लगता है. चोरीके उपायोंसे चुराया हुआ स्वादिष्ट दूध-दधि खाता है, खाते हुए वानरोंको बांट देता है. यदि किसी समय कोई भी वस्तु न मिले तो घरवालोंपर क्रोधकर, छोटे बच्चोंको रुलाके भाग जाता है ।।२९।।

जो दोष गोपियोंमें थे उनको दूर करनेकेलिये भगवान्ने जो निरोध लीलाकी उस निरोध लीलामें चित्तकी सम्पूर्ण आसक्ति होनेसे, अपने किये हुए दोषोंका मिट जाना गोपियां जान गई थीं, अतः भगवान्की कार्य लीलाओंको गुणरूप समझती(गिनती) हैं. ये दोष भगवान्के हास्यमें, चित्तके प्रवण(पिरो

देनेसे)से मिट गये और गोपियोंको भगवान्‌के स्वरूपका ज्ञान हो गया. अतः भगवान्‌के षड्गुणों[२]का वर्णन करती है. भगवान्‌केलिये तो ये छः कार्य गुणरूप हैं; किन्तु जीवोंकेलिये छः कार्य दोषरूप हैं. क्योंकि भगवान् हीन कर्म(दोषरूप कर्म) नहीं करते हैं. कितनेक कहते हैं कि बछड़ोंको छोड़ देना ईश्वरीय कर्म[३] नहीं है. भगवान् सर्व प्रकारके दुःखोंसे जीवोंको छुड़ानेवाले हैं और अक्षयनिधि(अखूट सम्पदा) देनेवाले हैं. अतः सारे दिनके भूखे बछड़ोंको देख माताके मिलनेपर भी दुःखी(भूखे) न रहें, यह विचारकर उनको ऐसे स्थानपर छोड़ दिया, जहांसे भरपूर भरनेसे पहले कोई बांधके न ला सके. भगवान्‌ने जब इस प्रकारसे(विचारकर) असमयमें बछड़ोंको कहीं भी छोड़ दिया, तब गोपियां अप्रसन्न होकर भगवान्‌पर क्रोधित हो उपालम्भ देने लगीं. स्वयं निरभिमान और अन्योंको मान देनेवाले भगवान् गोपियोंकी दुर्बुद्धि(यह ईश्वर नहीं है ऐसी बुद्धि) देख, उसका नाश करनेकेलिये मुस्कानसे उनको मोहित(अपनेमें आसक्त) तथा अपने स्वरूपका ज्ञान कराने लगे. भगवान्‌का हास्य मोहित करनेवाली माया है. वह उत्तरोत्तर बढ़ती गई, जिससे भगवान् बाहर(घरसे बाहर वा गौओंके गोष्ठमें) खड़े हुओं (वत्स और गोपीजनों)का दुःख(बछड़ोंका क्षुधासे उत्पन्न दुःख और गोपीजनोंका अज्ञानरूप मोहसे उद्‌भूत दुःख) नाश करते हैं. भगवान्‌के हास्यसे विशुद्ध मोह पैदा होता है जो मोह भगवत्सम्बन्धी होनेसे जिस किसी भी उपायसे मनका सारा व्यापार भगवत्स्वरूप वा भगवल्लीला परक हो जाता है. इसी भांति दोनों तरहके भक्तोंको कृतार्थ करके, अपने भक्तोंको, अपनेको ही भोजन कराना चाहिए. इससे अपने भीतर स्थित(जो पूतनाके प्राणोंको खींचते हुए अपनेमें स्थित किये थे) बालकोंको अन्नादिसे पोषण करनेकेलिये मानो वीर्यके विरुद्ध हो वैसे भगवान् चोरीसे भोजन करते हैं. इसलिए श्लोकमें 'स्तेयं' शब्द कहा है. जो हरण करता है. वह चोर है. निश्चयसे कहा जाता है कि स्मरण करनेसे ही भगवान् सब कुछ हरण कर लेते हैं इसलिए 'हरि'(चोर) हैं. चोरीसे प्राप्त वस्तुको 'स्तेय', चुराई हुई कहते हैं. पकाया हुआ अन्नादि, ओदन, व्यञ्जन(शाक, भाजी इत्यादि नमकीन पदार्थ) आदि खीरकी सामग्री तक सर्व पदार्थ उनसे भी जो रसीले और स्वादिष्ट थे, वे स्वयं गोपियोंके घरमें बैठकर और बालकोंको भी बिठाकर गोपीजनको दूसरे स्थानपर भेजके जो जो स्वादिष्ट लड्डू और मोदक आदि थे वे खाने लगे. तृप्त होनेपर वा भोज्य पदार्थोंकी समाप्ति होनेपर, दधि उसके अनन्तर दूध आदि

पान शनैः शनैः करने लगे. भगवान्ने चोरी करनेके बहुत उपाय काममें लाये थे. यदि कोई गोपी, भगवान् ले न जाय, इसलिए ऊंचे छींकेपर जलसे भरी थाली रख अन्य सामान भी घरके उसके नीचे आप सो जाती तो भगवान् उसकी चतुराईको व्यर्थ करनेकेलिये नवीन उपाय निकालते थे. जैसे कि नाल(नली)से, जल-पानकर, वंश(बांस)से चढ़कर, छींकेसे थालीको नीचे उतारकर उसको ले जाते हैं. इस प्रकार चोरीके अनेक नये नये उपाय आप निकालते थे. कुछ तो गोपियोंके परोक्षमें और कुछ प्रत्यक्षमें करते थे. जब प्रत्यक्ष(वहां) होती, तो ये चतुर चौर शिरोमणि जब देखते कि यह गोपी बड़ी सावधानीसे नवनीतके भाण्ड(बर्तन) एक साथ रखकर स्वयं उनके आगे खड़ी है तो आप अपने मुखमें दूध भरकर धीरे-धीरे उस गोपीके पास आकर फूत्कार करते हुवे उसकी आंखोंमें वह दूध डाल देते. जिससे उसकी आंखे बन्द हो जातीं और आप झट मक्खनके भाण्डोंको लेकर ऐसे भाग जाते जैसे आंखें खोलनेपर गोपी देख न सके. गोपियोंके पास कोई ऐसा उपाय न बचा, जिससे वे अपने पदार्थोंको भगवान्से छिपाकर सुरक्षित रख सकें.

इससे भी विशेष उपाय जो वाणी और मनसे भी कोई नहीं समझ सके, वैसे उपाय भगवान्ने इस लीलामें किये हैं, वे उपाय भगवान्के ही निकाले हुए थे. चौर्य-शास्त्रमें भी वे उपाय नहीं कहे गये हैं. कोई कहते हैं कि बालकोंके साथ भगवान् भी आरोगते हैं. वास्तविकरूपमें तो अन्तःस्थित बालकोंके प्रीत्यर्थ वैसे करते हैं. देखनेमें तो आप भोजन कर रहे हैं; किन्तु भगवान्को उस भोजनसे अन्तःस्थित बालक तृप्त करने थे, जब बालक उस भोजनसे तृप्त हो जाते थे, तब बंदरोंको बांटते हैं. क्योंकि वे पूर्वकालमें रामावतारके भक्त थे, उनकी तृप्तिके पश्चात् अध्यात्मभाव(सबकी आत्मा मैं हूं, ऐसा भाव) स्वीकृत करनेके कारण, आप भोजन करते हैं. यदि जगत्की आत्मा वह भी भोजन करे तो इस श्रुति (जिसके ब्रह्म और क्षत्र दोनों ही ओदन(भोजन) हैं. मृत्यु जिसका व्यञ्जन है वह कौन है और कहां है? इसको कौन पहचान सके?) अनुसार वह(स्वरूप) प्रसिद्ध है. उस(अध्यास) स्वरूपसे ही आप अत्यन्त शुद्ध(आसुरावेश रहित भोज्य) भोजन आरोगते हैं. श्लोकमें दिये हुए 'भाण्डं भिनत्ति' बर्तनोंको तोड़ते हैं इस पदका भावार्थ आचार्यश्री बताते हैं कि जब भगवान् देखते हैं कि अब शेष पदार्थ भोजन योग्य नहीं हैं; क्योंकि इस भोजनमें आसुरावेश है तब भोजन न स्वयं करते हैं न अन्योंको कराते हैं और बर्तनोंको तोड़ देते हैं. इससे यह भी शिक्षा देते हैं कि

आसुर भोज्यको कोई भी न खावे. भगवान्को तो भक्तोंका किसी भी प्रकारसे 'निरोध' होवे तदर्थ विविध प्रकारकी लीलाएं करनी थीं. इसलिए जब आप देखते थे कि कोई पदार्थ नहीं मिलता है, नित्य निश्चित् स्थानपर न रखकर, अन्य स्थानपर छिपाके रख दिये हैं तब घरवालोंपर क्रुद्ध होते हैं क्योंकि उन्होंने (घरवालोंने) यह कार्य(भोजनका अभाव व छिपाके रखना) अयोग्य किया है. अयोग्य कैसे किया है इसको आचार्यश्री समझाते हैं कि गृहस्थका गृह, धर्म करनेकेलिये है. गृहमें सदैव भोज्य रखा हो, कोई भी बिना भोजन किये भूखा न जाय. यदि गृहस्थ यों नहीं करता है तो वह घर व्यर्थ है (रहने योग्य नहीं है). धर्म-कार्य, द्रव्य-साध्य(द्रव्यसे सिद्ध) होता है द्रव्य लानेवाले पुरुष होते हैं. भगवान्ने कोपलीला इसलिए की कि भगवान्के कोपसे डरकर दूसरे दिन पदार्थ लाकर घरमें रखेंगे अथवा गृहस्थको इस अयोग्यताके कारण बाहर मारे व ताड़ना कर दे, इस प्रकार अलौकिक प्रकार बताते हैं. भगवान् क्रोध करके छोटे-छोटे बच्चोंको रुलाके जाते हैं. छोटे बालक वे हैं जो अभी माताके दूधका ही भोजन करते हैं. उनसे भी छोटे वे थे जो भगवान्में स्थित थे जहां उनकी भूख नहीं मिटती है वैसे स्थानपर ठहरना भगवान्ने योग्य न समझा. इसलिए क्रुद्ध होकर बच्चोंको रुदन कराया था. मेरे जानेपर रुद्र प्रवेश करेगा यों कहकर चले गए ।।२९।।

१.प्रकाश: वस्तुओंके लोभको दोष कहते हैं.
लेख: भगवान् नहीं हैं ऐसी बुद्धिको दोष कहते हैं.

२.लेख: वे षड्गुण ये बताते हैं: १.बछड़ोंको छोड़ देना, २.चुराई हुई वस्तुका भोजन, ३.खाद्य पदार्थ वानरोंको बांटना, ४.बर्तनोंको तोड़ना, ५.क्रोधित होना, ६.छोटे बच्चोंको रुलाना.

३.लेख: ईश्वरके विरुद्ध धर्माश्रयी होनेसे लीलार्थ वे सर्व प्रकारके(हीन, मध्यम, उत्तम) कार्य करते हैं तो भी ईश्वरकी ईश्वरता नष्ट नहीं होती है, वे तो सर्व अवस्थामें ईश्वर ही हैं.

इस प्रकार भगवान्के छः गुणोंका[१] तथा धौर्त्य लीलाकी क्रियाके प्रकारका उपरोक्त श्लोकमें वर्णनकर, अब भगवान्की पूर्ण विद्याका निरूपण किया जाता है.

हस्ताग्राह्ये रचयति विधिं पीठकोलूखलाद्यै
श्छिद्रं ह्यन्तर्निहितवयुनः शिक्यभाण्डेषु तद्वित्।।
ध्वान्तागारे धृतमणिगणं स्वाङ्गमर्थप्रदीपं

काले गोप्यो यर्हि गृहकृत्येषु सुव्यग्रचित्ताः ।।३०।।

जो हाथ नहीं पहुंचे तो चौकी, ऊखल आदि धरकर चोरीकी युक्ति लगाते हैं. बर्तन छींकोंमें रखे हों, तो उनमें रखी हुई वस्तुओंको अपने अन्तर्यामीपनेके ज्ञानसे पहचानकर, उनमें छेद करते हैं. यदि अंधियारे घरमें धरा हो तो अपने अंगमें पहने हुए अनेक प्रकारकी मणियोंसे वा अपने अंगके प्रकाशसे उन पदार्थोंको प्रकाशित करते हैं. यह सर्व लीला कार्य भगवान् उस समय करते हैं जब गोपियां अपने कार्यमें व्यग्र चित्तवाली होती हैं ।।३०।।

भगवान्की पूर्ण विद्या बतानेकेलिये कहते हैं कि पांच प्रकारके ज्ञान हैं जिनका भगवान्को पूर्ण ज्ञान है. पंचविध[२] ज्ञान बताते हैं.

१.सप्रकारक(चौकी ऊखल आदि साधनवाला).

२. निःप्रकारक(बिना साधन) अ.कालका ज्ञान, आ.वस्तुका ज्ञान.

३. स्वल्प असाध्य ज्ञान.

४. अत्यन्त असाध्य ज्ञान.

५. अन्धकारमें रखे हुए पदार्थके प्रकाशका अपेक्षित ज्ञान.

लौकिक बुद्धिसे जो ज्ञान होता है वह अन्योंको उपद्रवकारी होता है. उस ज्ञानके अंशों[३](विषयों)के ज्ञानसे उसका भी ज्ञान हो जाता है, जिससे वास्तवमें उपकार ही होता है. भगवान् जब देखते हैं कि इन्होंने अपनी वस्तु कोठेमें रखी है, जहांसे मैं हाथसे नहीं ले सकता हूं, तब चौकीपर ऊखल उल्टा धरके, उसपर चढ़कर, वस्तु ले लेते थे; यदि तब भी नहीं पहुंच सकते तो उसपर किसी बालकको बिठाकर उसपर चढ़कर वस्तु ले लेते अथवा घरमें रखे हुवे बांसोंको लेकर उनसे वस्तु निकाल लेते थे. आपको सब प्रकारका ज्ञान था. इसलिए समझते थे कि इन बर्तनोंमें कुछ नहीं है तो उनसे वस्तु लेनेकेलिये व्यर्थ प्रयत्न नहीं करते थे. जहां समझते थे कि इन छीकोंमें रखे हुए इन भाण्डोंमें दूध आदि रसवाले पदार्थ हैं तो उनमें छेदकर नीचे कोई बर्तन रख देते थे. जो ऐसे रसवाले पदार्थ न होते दधि आदि पदार्थ, जो छिद्रसे बह नहीं सकते थे वहां छेद न करते थे. इसी प्रकार शक्करादिसे भरे हुए बर्तनोंमें छेद नहीं करते थे. इन पदार्थोंको तो गिरा देते थे, वा ले लेते थे. यह सब उपाय जाननेके कारण शुकदेवजी आपको 'तद्वित्' कहते हैं.

जब भगवान् जानते थे कि पदार्थ अन्धकारवाले स्थानमें पड़े हुए हैं, तब

आप उन पदार्थोंको प्रकाशमें लानेकेलिये अनेक मणियोंसे विभूषित अपने श्रीअंगको वास्तविक दीपक बनाते हैं. जो पदार्थ इस समय दृष्टिगोचर नहीं होते थे वे भी अन्धकारयुक्त गृहमें ही भगवान्के भीतर पधारनेपर(न कि दूसरेके आनेसे) सूर्यके समान प्रकाशित होने लगे और मणियां भी प्रकाशित होने लगीं. अथवा भगवान्के प्रतापसे पदार्थ, ऐसे प्रकाशित हुए मानो दीपक जल रहे हैं. यह सर्व लीला भगवान् समय जानकर किया करते थे. इसलिए श्लोकमें कहा है कि 'काले' समयपर इसके भावको स्पष्ट करते हुए आचार्यश्री कहते हैं कि जिस समय गोपियां दूर कहीं गई हों, अथवा भोजन बनाने आदि गृह-कार्यमें लगी हुई हों, कभी अभ्यंग वा स्नानादिमें रुकी हुई हों अथवा बालकोंके रमणमें वा अन्य अत्यावश्यक कार्यमें फंसे हुए चित्तवाली हो, ऐसे समयको देखकर आप अपना कार्य साधते थे. जिससे आपके पधारनेका उन्हें ज्ञान न हो सके. कभी तो जब वे दधि-मन्थन कार्यमें व्यस्त होती थीं, उस समय आ जाते. जानते थे कि अब ये यह कार्य छोड़कर आयेगी नहीं, आयेंगी तो उनका मक्खन पिथल जायेगा और वह निकलेगा नहीं. ऐसे समयज्ञ(समयको जाननेवाले) होनेसे समय पहचानकर कार्य करते थे।।३०।।

१. श्रीपुरुषोत्तमजी प्रकाशमें इन छः गुणोंका विश्लेषण इस प्रकार करते हैं:

(१) वत्सोंको छोड देना(मोक्ष देना) यह ऐश्वर्य गुण है.

(२) गोपियोंको मोहित करना यह 'श्री' गुण है.

(३) मक्खनको विविध प्रकारसे चुरानेका कार्य यह वीर्य गुण है.

(४) बन्दरोंको देकर उनका(राम भक्तोंका) हित करना यह 'वैराग्य' गुण है.

(५) बर्तनोंको तोडना(यह कार्य सबोंका हितकारी है) यह 'यश' गुण है.

(६) कोप करना आदि कार्यसे 'ज्ञान' गुण दिखाया, इसलिए कहा है कि रुद्रका प्रवेश करूंगा.

२. योजनाकार लालूभट्टजी पांच प्रकारके ज्ञान बताते हैं:

(१) चोरीके समयका ज्ञान(किस समय चोरी करनी चाहिये).

(२) वस्तुका ज्ञान(कौनसी वस्तु कहां है, गृहमें कोई नहीं है).

(३) सरल असाध्य(श्रमसे साध्य).

(४)अत्यन्त असाध्य ज्ञान.

(५) अन्धकारमें रखी हुई वस्तुको ग्रहण करनेके साधनोंका ज्ञान.

प्रकाशमें श्रीपुरुषोत्तमजी इसका आशय कहते हैं कि हृदयमें विशेष अन्धकार

होता है तो वहां ज्ञानरूप दीपककी आवश्यकता होती है. इससे जहां अन्धकार है वहां भगवान् साधन सहित ज्ञानका उपयोग करते हैं.

३. श्रीप्रभुचरण टिप्पणीमें इसका स्पष्टीकरण करते हैं कि ज्ञान तो स्वयं अंश(विभाग) रहित है. इससे उस(ज्ञान)के विषयको ही अंश कहते हैं. अतः घरमें रखे हुए ऊखल आदि पदार्थ ज्ञानके अंश अर्थात् विषय हैं. ये पदार्थ घरमें होते हैं इसलिए इनका ज्ञान सदैव रहता ही है. इस कारणसे उनसे सम्बन्धित भगवान्का भी ज्ञान प्राप्त होता है. अतः यह उपकार ही है.

इस भांति ज्ञानका प्रकार कहकर अब इस श्लोकमें उसका परिणाम क्या हुआ वह कहते हैं.

एवं धाष्ट्र्यान्युशति कुरुते मेहनादीनि वास्तौ
स्तेयोपायैर्विरचितकृतिः सुप्रतीको यथास्ते ।।
इत्थं स्त्रीभिः सभयनयनश्रीमुखालोकिनीभिः
व्याख्यातार्था प्रहसितमुखी न ह्युपालब्धुमैच्छत्।।३१।।

हे कमनीयकान्ते! सुन तो सही, आपका यह लाला कैसे उद्धताई(ढिठाई)के कार्य कर रहा है, लीपे-पोते स्थान एवं सुन्दर पात्रोंमें, जहां वास्तु देवता स्थापित हैं, वहां मूत्रादि कर देता है और अनेक रूपोंको धारणकर चोरी करके भी, साधुओंके समान खडा रहता है. यह उपालम्भ देते समय स्त्रियां भगवान्के भयभीत नेत्रवाले मुखारविन्दके रसका पान कर रही थीं, उनके द्वारा की हुई, सुतका उलाहना सुनकर, यशोदाजीने पुत्रको उपालम्भ मात्र देनेकी भी इच्छा नहीं की; किन्तु बहुत हंसने लगी ।।३१।।

हे मनोहर नारी! यह(कन्हैया) शरीरसे वस्त्र त्यागकर नग्न हो, निर्बलकी तरह ढिठाईके कार्य करता है, जिस सुन्दर स्वच्छ पात्रमें, वास्तु देवताका पूजन हम करती हैं, उसमें मूत्रादि करता है. इसके अतिरिक्त अन्य भी चोरीके अनेक उपाय करता है. जैसे कि किसी वस्तु दूध, दधि आदिकी चोरी करनेकेलिये किसी भी गोपीके पतिका रूप, कभी किसीके पुत्रका रूप, कभी किसीके भाईका रूप धारणकर चौर्य कार्य पूर्ण करता है. फिर अपने अन्य कार्य सिद्ध्यर्थ साधुवत् मुग्ध बालकके समान आके पासमें बैठा जाता है.

भगवान्ने (१) ढिठाईके कार्य.
(२) मूत्रादि करनेके कार्य.

(३) चौर्य–कार्य.

(४) दूसरोंका रूप धारण करनेका कार्य, और

(५) सत्पुरुषका कार्य.

इस प्रकारकी पांच प्रकारकी क्रिया करते हुए पांच प्रकारके रूप धारण किये थे. ये पांच रूप भगवान्ने धारण किये, उसका कारण एवं किस प्रकार धारण किये, उसको समझाते हुए आचार्यश्री आज्ञा करते हैं कि अज्ञान(अविद्या)की देह, इन्द्रिय, प्राण, अन्तःकरण और आत्मा ये पांच विषयरूप आकृतियां हैं. इनको शुद्ध करनेकेलिये भगवान्ने धाष्ट्र्यादि पांच लीलाओंको करते हुए देहादिवत् पांच रूप धारण किये हैं. (जैसे श्रुति कहती है कि ''प्राणन्नेव प्राणो भवति'' अर्थ प्राण लेते हुए प्राण उत्पन्न होते हैं.) तात्पर्य यह है कि एक कार्य करनेसे दूसरे कार्यकी उत्पत्ति होती है. तदनुसार भगवान् ढिठाईके कार्य करते देहवत्, मूत्रादि कार्य करते इन्द्रियवत्, चौर्य्य भोजन करते प्राणवत् (प्राण–भोजनकर्ता है) अन्यरूप धारण करते अन्तःकरणवत्(अन्तःकरणकी अनेक वृत्तियां हैं) साधुवत्रूप धारण करते हए आत्मवत् होते है. यों लीला करते हुए देहादिकोंकी शुद्धिकर उनकी अपनेमें आसक्ति कराते हैं.

इस प्रकार क्रिया, ज्ञान एवं आकृति रूपोंका वर्णनकर शेष आधे श्लोकमें इस विषयका उपसंहार करते हैं कि इस प्रकार स्त्रियों(गोपीजनों)ने यशोदाजीके आगे कन्हैयाके कार्योंका वर्णन किया. वे सुनकर यशोदा मैया मुस्कुराती रहीं; किन्तु उसने कृष्णको कुछ भी उपालम्भ देना न चाहा. यदि कृष्णकी मैया, उपालम्भ देती तो दो कार्य होते एक जो स्त्रियां उलाहना देने आई थीं वे प्रसन्न होतीं और दूसरे बालकको भय होता. आगेकेलिये डरता, जिससे पुनः ऐसे निर्लज्जताके कार्य नहीं करता, किन्तु यशोदाने उपालम्भ न दिया तो भी उससे पहले ही ये दो कार्य स्वतः हो गए. स्त्रियोंका माताके पास आकर अपने किये हुए कामोंकी कहानी कहते हुए एवं समझकर भगवान् डर गये कि न जाने माता क्या दण्ड देगी? इससे सभय नेत्रवाले मधुसूदनके श्रीयुक्त मुखारविन्दके मकरन्दको पान करती हुई गोपियां उनमें आसक्त एवं आनन्दित हो रही थीं. भगवान्का मुखकमल तो श्री शोभायुक्त हो प्रफुल्लित हो रहा था. किन्तु नेत्र भयभीत थे. कारण कि भय, ज्ञान शक्तिको होता है, न कि क्रिया शक्तिको. इसलिए नेत्र ज्ञान शक्तिवान् होनेसे भयभीत थे. उलाहना देनेवालियोंकी दृष्टिको

भगवत्स्वरूपका पूर्ण ज्ञान न हो जाय, इसलिए बीचमें मूर्तिमती श्री स्थित थी. जिससे गोपियोंको भगवत्स्वरूपका केवल आनन्द मिला; किन्तु स्वरूप ज्ञान न हुआ जिससे वे लोकदृष्टिसे भगवान्की धाष्ट्र्यादि लीलाओंका स्मरणकर भय संयुक्त हुई. माता यशोदा भगवान् एवं गोपियां दोनोंको भयभीत देखकर, समझ गई कि कन्हैयाको मुझसे डर हुआ है और गोपियोंको भगवान्से डर हुआ है कि यदि उपालम्भके कारण यशोदा भगवान्पर खीजेंगी तो भगवान् हमसे रुष्ट हो जायेंगे तो हमारा नित्यका आनन्द चला जायगा. यह सब विचारती हुई अनेक रसोंमें मग्न, मैयाने हास्य संयुक्तमुखी हो पुत्रको कुछ भी उपालम्भ देनेकी इच्छा नहीं की. इस नाम लीलासे वसुदेव कृतार्थ हो गए. यहां वसुदेव नाम नन्दवाचक है क्योंकि अष्ट वस्तुओंमें श्रेष्ठ देव, वह वसुदेव हैं, यों अर्थ कर यहां नन्दका नाम वसुदेव दिया है. नन्द पूर्व जन्ममें द्रोण नामक वसु था. माता यशोदाने तो भगवान्के माहात्म्य ज्ञानके कारण श्रीकृष्णके दोषोंपर ध्यान नहीं दिया था किन्तु यशोदाका लौकिक भाव दृढ़ था. लौकिक न्यायवत् यशोदाके मनोरथ–कब मेरे नटखट नन्हासा लाला होयगा, जो अज्ञ बालवत् मेरे व्रजमें खेलेगा पूर्ण हुए थे. इसलिए पुत्रवात्सल्यके कारण पुत्रको उपालम्भ देनेकी इच्छा नहीं की. सुबोधिनीमें दिये हुए 'तु'(तो) शब्दका आशय(भाव) यह है कि नन्दजीको गर्गजीके वचनोंपर विश्वास था इसलिए श्रीकृष्णके माहात्म्यका उनको ज्ञान था, इसलिए वह लीलाओंको सुनकर कृतार्थ हो गये और समझ गये कि भगवान्ने लीलाएं भक्त–हितार्थ ही की हैं. किन्तु यशोदाको माहात्म्य ज्ञान न होने और लौकिक भाव दृढ़ होनेसे नन्दजीके समान कृतार्थता न हुई केवल लौकिक भाव दृढ़ हुआ।।३१।।

जब तक अत्यन्त आसक्ति नहीं होती है, तब तक भगवान् न किसी बातका उत्तर देते हैं और न अपना स्वरूप दिखाते हैं. इस रूप प्रकरणसे यशोदाको 'यह मेरा पुत्र है' इस प्रकारका जो अध्यास था, उससे यशोदामें यह भाव (अध्यास) उत्पन्न हुआ कि मैं इस(कृष्ण)की माता हूं. इसलिए यशोदाने उपालम्भ सहन किया, किन्तु पुत्रको कुछ भी न कहा. इस प्रकार यशोदाका पुत्रमें अध्यास(मोह) तो बढता गया किन्तु यशोदा माता होनेके कारण प्रेमके विरुद्ध भगवान्को शिक्षा देगी तो प्रेममें न्यूनता आनेसे वह अध्यास भी दूर होगा. मनकी एकादश वृत्तियोंके दोष दूर करनेसे अन्तःकरणकी शुद्धि होगी. अतः ११ प्रकारसे

ज्ञानोपदेश करणार्थ ११ श्लोकोंसे ज्ञानरूप दूसरा प्रकरण प्रारम्भ करते हैं.

दोषनिवृत्तये यत्नो वाक्यं वाक्यं च तस्य नुत् ।।
तत्साधिका कृतिर्विष्णोर्ज्ञानं पूर्वनिवारकम् ।।१।।
ज्ञानस्योत्कर्षसिद्ध्यर्थं विषयाणां च वर्णनम् ।।
ततो भयं तन्निवृत्तौ पूर्वपक्षस्य युक्तयः ।।२।।
सिद्धान्तेन प्रतिष्ठानं भीतायाः शरणागति ।।२१/२।।

कारिकार्थ :

(१) बालकोंके अज्ञानसे भगवान्में समझा गया मृत्स्नाभक्षण दोष.
(२) उस दोषको दूर करनेकेलिए किया गया यत्न.
(३) यशोदाके वाक्य.
(४) यशोदाको उत्तर कि मैंने मिट्टी नहीं खाई, ऐसे भगवान्के वाक्य.
(५) भगवान्ने अपने उत्तरको सत्य सिद्ध करनेकेलिए अपने मुखारविन्दमें जगत्के दिखानेका किया हुआ कार्य.
(६) भगवान्में प्रथम उत्पन्न दोष(भगवान्ने मिट्टी खाई है)के ज्ञानको मिटानेवाला(झूठा प्रमाणित करनेवाला) ज्ञान.
(७) ज्ञानके उत्कर्ष सिद्धिकेलिए इन विषयोंका वर्णन.
(८) विषयों और उत्पन्न भयका वर्णन.
(९) भयकी निवृत्तिकेलिए पूर्व पक्षकी युक्तियां.
(१०) सिद्धान्तसे निश्चय.
(११) भयभीत यशोदाकी भगवच्छरणागतिः.

इस प्रकार ३२ से ४२ वें श्लोक तक ११ श्लोकोंमें ज्ञान प्रकरणका निरूपण किया गया है जिनका सारांश आचार्यश्रीने कारिकाओंमें समझाया है.

भगवान्में यशोदाका दृढ अध्यास होनेसे, यदि भगवान् किसी अन्यका दोष करते(जैसे वत्सोंको छोडना, नवनीत उडाना आदि) तो यशोदाको उनका विचार भी न होता था. किन्तु जब भगवान्ने स्वयं मिट्टी खानेका अपराध किया जो अनिरुद्ध बालकोंने आकर कहा, उसको सुनकर चिन्तित होगी. बालकोंने जो कहा उसका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं :

एकदाऽऽक्रीडमानास्ते रामाद्या गोपदारकाः ।।
कृष्णो मृदं भक्षितवानिति मात्रे न्यवेदयन् ।।३२।।

किसी दिन रामादि गोप बालकोंने खेलते हुए देखा कि श्रीकृष्णने मिट्टी खाई. यह समाचार सबने मिलकर आकर माता यशोदाजीको कहा ।।३२।।

किसी दिन जब यशोदाका चित्त भगवान्में एकतान हो गया, एवं गोप बालकोंका आपसमें समानभाव जागृत हुआ, छोटे-बड़ेका ध्यान न रहा, तब चारों तरफ अथवा सब प्रकारसे क्रीड़ा करते हुए गोप बालक आनन्द मग्न हो गए. समान भाव होनेपर ही क्रीडकों(खिलाड़ियों)को क्रीड़ामें रस उत्पन्न होता है. इस प्रकार खेलते हुए और रस लेते हुए भगवान्में समानताकी स्फूर्ति बढ़ती गई, जिससे बालक समझने लगे कि जैसे हम हैं वैसे ही यह कृष्ण भी है. हम यदि मिट्टी खावें तो वह खाना दोष है. क्योंकि उससे उदरमें रोगादि उपद्रव होंगे यों समझनेसे उन्होंने श्रीकृष्णको जब चुपके-चुपके मिट्टी खाते देखा तो उनमें भी, अपनी जैसी दोष बुद्धि करने लगे. जिन गोप बालकोंको, स्त्रियोंके सुखार्थ, प्रथम ले जाकर वहां उन बालकोंके साथ, व्रज-स्त्रियोंको आनन्द दान करणार्थ क्रिया की थी उन बालकोंका निरोध नहीं किया था(जिससे उनकी प्रपञ्च विस्मृति होकर भगवान्में भगवत्स्वरूप ज्ञानपूर्वक आसक्ति नहीं हुई थी) अतः भगवान्में दोष दृष्टि होना स्वाभाविक था. वह(प्रथम की हुई क्रीडाका) कार्य दिखानेके (समझानेके)लिये वे रामादि कहे. 'राम' शब्दका तात्पर्य बताते हैं कि वह(राम) सर्व स्त्रियोंको रमण कराता है अतः रस रीति अनुसार, रमण कर्ताको ताम्बूल खाना रुचता है न कि मिट्टी खाना. रामको भगवान्में स्नेह था, जिससे भगवान्का मिट्टी खाना उसको अच्छा न लगा. इस कारणसे रामकी भी भगवदर्थ दोष दृष्टि हुई थी. गोप बालकोंमें तो भगवान्में दोष दृष्टि होनेके अन्य दो कारण थे. एक कारण यह था कि बालकोंका निरोध नहीं हुआ था. दूसरा कारण यह था कि गोप बालक थे, गोपोंका सदैव गौ आदि पशुओंके साथ सहवास होता है. अतः उनकी बुद्धि भी पशुओंके समान स्तब्ध दोषवती हो जाती है. इसलिए उनमें स्वरूपसे भी दोष दृष्टिका सम्भव था. भगवान्ने जैसे गौओंका एवं माताका स्तन्य चूंसकर अन्तःस्थ बालकोंको पुष्ट किया था, वैसे ही अपने चरण सम्बन्धी, भक्तिरस संयुक्त मृत्तिकाको खिलाकर, भक्ति-रस संप्लुत करनेकी इच्छासे मृत्तिका भक्षण की थी. इस आशयको न समझ, बहिर्मुख यों समझने लगे कि भगवान्ने दधि भक्षणवत् मृत्तिकाका भी भक्षण किया है. इस कल्पनासे मृत्तिका(मिट्टी) भक्षण अनिष्टकारक जान, बालक कहने लगे कि 'कृष्ण'ने मृत्तिका भक्षण किया.

समानतामें मित्रता होती है, मित्रोमें स्नेह होता है. स्नेही, स्नेहीके अनिष्टको सहन नहीं कर सकते हैं, अतः कृष्णको इस कार्यको दुबारा न करनेकेलिये शिक्षा दिलानी चाहिए. रामादि सबने इस प्रकारका विचार कर माता यशोदाके पास आकर कृष्णके मिट्टी खानेके समाचार सुनाये, क्योंकि पांच वर्ष तक माता पुत्रको शिक्षा देती है ।।३२।।

'श्रीकृष्णने मृत्तिका भक्षण किया' ये गोप बालकोंके वचन सुन यशोदाको श्रीकृष्णने मृत्तिका भक्षण किया होगा, ऐसी सम्भावना प्रतीत होने लगी. इससे देहका अपकार होगा, यों समझ दोष निवृत्तिके लिए यशोदा यत्न करने लगी, इसका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

सा गृहीत्वा करे पुत्रम् उपालभ्य हितैषिणी ।।
यशोदा भयसम्भ्रान्तप्रेक्षणाक्षमभाषत ।।३३।।

पुत्रकी हितेच्छु, वह माता यशोदा, सुतका कर पकडके उपालम्भ देती हुई, भयसे घबडाये हुए लाल नेत्रोंवाले श्रीकृष्णको कहने लगी ।।३३।।

जिस यशोदाका अब तक पूर्ण निरोध सिद्ध नहीं हुआ है; निरोध सिद्ध होता रहता है, अर्थात् जो मध्यम निरोधमें स्थितिवाली है, ऐसी यशोदाने, भगवान्के एक ही हाथको पकड़ लिया, हाथको क्यों पकड़ा? इसका भाव बताते हुए आचार्यश्री आज्ञा करते हैं कि भगवान्में यशोदाकी अब तक केवल लौकिकी क्रिया शक्ति ही दृढ़ हुई थी, इसलिए क्रिया करनेवाले कर्मेन्द्रिय 'कर'को ही पकड़ सकी. भगवान् तो इस समय यशोदाके, स्व-इच्छासे, भावरूप पुत्र हुए थे, अतः भगवान्को तो पुत्र-धर्म पालनार्थ माताको 'पुं' नाम नरकसे बचानेकेलिये लीला करनी थी. यदि 'पुं' नाम नरकसे माताको न निकाले तो पुत्रत्वकी निरर्थकता हो जाये. यहां 'पुं' नाम नरकमें 'पुं' पुरुषवाचक है सो केवल पुरुषकेलिये नहीं है; किन्तु स्त्री वाची भी है, अतः पिता और माता दोनोंको नरकसे बचावे वह पुत्र है. यहां पुत्र माता-पिताको कौनसे नरकसे बचाता है? आचार्यश्री उसका भी स्पष्टीकरण करते हैं, कि तामिस्रादि अनेक नरक हैं किन्तु उनसे विशेष मूल नरक यह अस्थि पुरीष आदिसे रचित शरीर है. क्योंकि इस शरीरके होनेके कारण, जीव पापादि कर्म करनेसे, तामिस्रादि नरकोंको भोगते हैं. यदि यह शरीर ही न हो, तो जीव पापादिक कर्म करे ही नहीं. अतः इस शरीरकी जड़ ही काटी जाय तो माता-पिता सदैव नरकसे मुक्ति पाकर आनन्दमग्न रहें.

अतः पुत्र स्वयं माता-पितामें प्रविष्ठ हो, उनका ही रूप बनकर उनके दोषों (अस्थि चर्म आदिसे बनी हुई देह)को ग्रहणकर, उन दोनों(माता-पिता)को उस देह सम्बन्धसे छुड़ाता है; इसलिए उसको पुत्र कहा जाता है. ऐसे(नरकसे छुड़ानेवाले) पुत्रकी उपालम्भ जैसे केवल क्रूर(कठोर) वचन माता-पिता कैसे कहें. मेरा सर्वस्व यह पुत्र है, अतः सर्व प्रकारसे, सदैव आरोग्यवान् रहे. इस प्रकार हितकी कामनावाली परम भाग्यवती यशोदा माता, ज्ञानकी भी अधिकारिणी है. तदर्थ उसकी बुद्धि भगवान्ने ऐसी उत्पन्न कर दी, जिससे उस(यशोदा)को यह विचार हुआ कि कृष्णको ताड़ना न करूं. भगवान्की ऐसी इच्छा क्यों हुई? भगवान्ने विचारा कि यदि यशोदा मुझे ताड़ना करेगी तो अन्तःस्थित बालकोंको कष्ट होगा और माताको महापुरुष द्रोहका दोष लगेगा तो माताको कदापि ज्ञान प्राप्ति न होगी.

भगवान्ने इस इच्छासे कि मुझे मारे नहीं, जो मारेगी तो महापुरुषोंके द्रोहवाली होगी और मैं उस(माता)के पास आ न सकूंगा. यह कुछ भी न हो, इसलिए आपने अपनी दृष्टिको भयभीत हो. सम्भ्रान्त इस प्रकारकी कि जिसको देख, माताको पुत्र स्नेहसे दयाभाव उत्पन्न हुआ, जिससे मारनेका विचार ही माताके मनमें उदय न हुआ. भगवत्प्रेरणासे केवल कायिक व्यापार किया. करसे कर पकड़के वाणीसे कहने लगी. जो कुछ माताने वचन कहे, उनका परिहार भगवान् करेंगे. यदि यशोदा भगवान्को ताड़ना करती तो, भक्त-द्रोहसे उसका उपाय हो नहीं सकता था ।।३३।।

यशोदोवाच

कस्माद् मृदमदान्तात्मन् भवान् भक्षितवान् रहः ।।
वदन्ति तावका ह्येते कुमारास्तेग्रजोप्ययम् ।।३४।।

हे असंयमी अन्तःकरणवाले ! तुमने एकान्तमें जाकर मृत्तिका भक्षण क्यों किया? तेरे ये मित्र एवं तुम्हारा बडा भाई भी कहता है कि इसने मृद् भक्षण किया ।।३४।।

यशोदाने कहा कि यदि तू कहे, कि मेरी इच्छा हुई कि मैं मृत्तिकाका रस लूं, तो वैसी हानिकारक इच्छाको रोकना योग्य था. ऐसा तुमने नहीं किया इसलिए समझा जाता है कि तू असंयमी है; मन तेरे वशमें नहीं है. अतः तू उपालम्भके योग्य है. यशोदाने कृष्णको इसलिए यह कहा कि तूने मृत्तिकाका

भक्षण किया है क्योंकि यशोदाको यह ज्ञान नहीं था कि कृष्णके अन्त:स्थित बालक हैं, तदर्थ भगवान्ने मृत्तिका खाई है. आचार्यश्री श्लोकमें दिये गये 'रह:' शब्दसे एकान्तमें मृद्भक्षणके भावको स्पष्टकर बताते हैं कि श्रीकृष्णने एकान्तमें इसलिए मृद्भक्षण कार्य किया, जो अन्त:स्थ बालकोंको बाहर प्रकटकर अपने चरणारविन्द रससिक्त मृत्तिका द्वारा उनको भक्ति-रसका दान करना था. यह रसदान एकान्तमें करना योग्य था. गोपकुमार इस भावको न समझनेके कारण वे माताजीको कहने लगे कि कन्हैयाने हमको ठगनेकेलिए,(जैसे हमको पता न लगे कि कन्हैयाने मृद्भक्षण किया है), इस प्रकार छिपकर मृद्भक्षण किया है. यशोदा कहती है कि तूने बराबर मिट्टी खाई है क्योंकि कहनेवाले दूसरे नहीं हैं, तेरे ही हैं, इसलिए वे तेरे हितकारी ही हैं, वे कभी झूठ नहीं बोलेंगे. झूठ बोलनेका कार्य आज तक इन्होंने नहीं किया है. ऐसी सामर्थ्य इनमें नहीं है. क्योंकि अब तक इनकी 'कुमार' अवस्था है. यदि कृष्ण कह दे कि वे जीव हैं तो कुमार अवस्थाके कारण इनको झूठी बात बनानी नहीं आती है. भ्रम तो हो सकता है. भ्रमसे उन्होंने ऐसा कहा है, इसपर माता उत्तर देती है कि वे कुमार हैं. उनको भ्रम हुआ ऐसा समझ भी लें, किन्तु तुम्हारे बडे भाई दाऊजीको तो भ्रम नहीं हुआ होगा. वह बडा है. इसलिए उसमें बुद्धि अधिक है वह भी तुम्हारे सामने कह रहा है कि कृष्णने मृत्तिका खाई है. इससे अधिक तुझे क्या प्रमाण चाहिए. इसलिए तेरे मृत्तिका खानेमें किसी प्रकारकी असम्भावना देखनेमें नहीं आती है ।।३४।।

भगवद्व्यतिरिक्तानामन्यधर्मः प्रवर्तते ।।
यदा यत्र हरिः स्वामी नाविष्टः सोन्यथा वदेत् ।।१।।

कारिकार्थ : कृष्णने मृद् भक्षण किया है, ऐसा बलरामजीने क्यों कहा? वे तो जानते थे कि कृष्णने अन्तःस्थ बालकोंको इस लीला द्वारा भक्ति रसपान कराया है. इस शंकाका निवारण आचार्यश्री इस कारिकासे करते हैं. जिस समय भक्तिसे विरुद्ध धर्म किसीमें भी देखनेमें आवे, तो समझना चाहिए कि ये अब भगवान्से पृथक् है. इस समय बलराममें भी भगवत्स्वरूपका आवेश नहीं है इस कारणसे इस लीलाके भावको उनके भी न समझनेके कारण कहने लगे कि कृष्णने मिट्टी खाई है. इन(बलरामजी)का यह कहना दोष बुद्धिसे नहीं था, किन्तु स्नेहके कारण था.

सत्यवक्ता भी कभी भ्रान्त हो जाते हैं, अतः भगवान् बलरामजीके

वाक्योंको भी विषयका बाधक समझ, प्रमाणरूप नहीं मानते हैं. और अपनी सत्यताको निम्न श्लोकसे प्रमाणित करनेकेलिए कहते हैं कि प्रत्यक्ष मेरा मुख देख लो.

श्रीकृष्णः उवाच

नाहं भक्षितवानम्ब सर्वे मिथ्याभिशंसिनः ।।

यदि सत्यगिरस्तर्हि समक्षं पश्य मे मुखम् ।।३५।।

हे अम्ब ! मैंने मृद् भक्षण नहीं किया है ये सब झूठ बोल रहे हैं. जो वे सत्य वाक्य कहते हैं तो मेरा मुख सामने प्रत्यक्ष देख लो ।।३५।।

श्रीकृष्णने यशोदाजीको 'अम्ब'(माता) सम्बोधन इसलिए दिया कि तू मेरी माता है, इसलिए तुझसे वञ्चना(जूठी बात) नहीं करूंगा. यह सम्बोधन देकर यशोदापर महती(यशोदापर महती कृपा लिखनेका यह आशय है कि श्रीकृष्ण यशोदाको माता कहकर बताना चाहते हैं कि मैं ईश्वर हूं, मेरी कोई भी नारी माता नहीं बन सकती है, न कोई पुरुष पिता हो सकता है क्योंकि मैं अजन्मा और अनादि हूं. ऐसा होते हुवे भी तुझे मैने माताकी पदवी दी है यह महती कृपा की है अनुवादक.) कृपा की है. मैंने तो नहीं खाई है इस कहनेका श्रीकृष्णका भाव यह है कि वास्तवमें मेरे अन्तःस्थित बालकोंने खाई है. इस प्रकार अपने पक्षको प्रमाणित किया. अब श्लोकके दूसरे पादमें विरोधियोंके कथनका असत्यपन सिद्ध करते हैं. राम सहित ये बालक एवं गोपियां जो कहती हैं कि मैने खायी है, न केवल मृत्तिका, किन्तु, दूध, दही और मक्खन आदि जब कभी कुछ भी खाया है, वह सब इनका कहना झूठ है. इनका यह कहना कि कृष्णने मृत्तिका खाई है किन्तु मैं कहता हूं कि मैने नहीं खाई है तो भी यदि झूठा हूँ तो इनका ऐसा कहना श्रुति विरोधी है क्योंकि श्रुति तो स्पष्ट कहती है कि (''अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति'' श्रुतिः) ब्रह्म स्वयं खाता नहीं है किन्तु खानेवालोंको देखता रहता है. इस कहनेसे कृष्णने अपना ब्रह्मत्व बताते हुए कह दिया कि जैसे जीव रूप खाता है, ईश्वर रूप देखता है वैसे ही यहां मैं साक्षीरूपसे देख रहा हूँ खानेवाले तो अन्तःस्थित भक्त बालक हैं.

यदि वे कहें कि उपरोक्त श्रुति 'ब्रह्म नहीं खाता है' यों कहती है किन्तु अन्य श्रुतियां ''**यस्य ब्रह्म च क्षत्रं**'' ''**अत्ता चराचरग्रहणात्**'' ''**भुङ्क्ते विश्वभुक्**'' आदि तो ब्रह्मको भोक्ता कहती है. अतः यदि तू ब्रह्म है तो भी तूने मिट्टी तो खाई है क्योंकि हमने प्रत्यक्ष देखा है. ऐसा बालक कह दे तो आचार्यश्री उपरोक्त

श्रुतियोंका तात्पर्य स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि ये ब्रह्मको भोक्ता कहनेवाली श्रुतियां आधिदैविक रूपके धर्मोंको प्रतिपादन करनेवाली हैं. जिनका तात्पर्य है कि देवरूपोंसे यज्ञमें यज्ञीय हव्यादि पदार्थोंको जो भक्षण करते हैं, उस भक्षणको प्रतिपादन करती हैं. शेष ये श्रुतियां, पुराण–पुरुष(जो पुराण–पुरुष अक्षर भी मैं हूं) केलिए भोक्तृत्वका प्रतिपादन नहीं करती हैं. अतः जो कोई भगवान्(कृष्ण)को भोक्ता समझते हैं वा इसी प्रकारका उपदेश करते हैं वे सब मिथ्यावादी हैं. भगवान्के आगे तो निवेदन किया जाता है, वह नैवेद्य भगवत्प्रसन्नतार्थ ही है. यदि निवेदन केवल तोषणार्थ है? तो ''पत्रं पुष्पं फलं तोयं'' भगवद्गीताके श्लोकमें भगवान्ने कहा है कि ''मैं अशन करता हूं'' इसका विरोध होगा. आचार्यश्री समझाते हैं कि इस श्लोकका भी विरोध न होगा क्योंकि 'पत्रं पुष्पं' श्लोकानुसार ही अरण्योत्पन्न पत्र पुष्प फलादि शुद्ध पदार्थोंसे अन्तःस्थित भक्तोंका सम्बन्ध कराकर उनको कृतार्थ करनेकेलिये है.

भगवान् भोजन करते हैं वा नहीं. इन दोनोंमेंसे कौनसा सत्य सिद्धान्त है?

पूर्वपक्षः भगवान् भोजन करते हैं यह सिद्धान्त सत्य है क्योंकि इस सिद्धान्तकेलिए बहुत स्पष्ट प्रमाण है और प्रत्यक्ष भी देखनेमें आता है कि भगवान् आरोगते हैं. जैसे कि ''**अत्ता चराचरग्रहणात्**'' अर्थ चर और अचरके भोक्ता हैं. ''**भुङ्क्ते विश्वभुग्**'' अर्थ विश्व भोक्ता भोजन करते हैं इत्यादि. ''**अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति**'' इस श्रुतिका आशय यह है कि जीव जो भोजन करता है और जिस प्रकार करता है उस प्रकार जीव भोगोत्पत्त्यर्थ आए हुए अन्तर्यामी भगवान् भोजन सिद्धान्त नहीं करते हैं. केवल इस आशयको समझानेकेलिए यह 'अनश्नन्...' श्रुति है. अतः अनेक श्रुतियोंके आधार और प्रत्यक्ष प्रमाणसे यह सिद्धान्त सत्य है कि भगवान् भक्षण करते हैं.

सिद्धान्तः आचार्यचरण इस पूर्वपक्षका खंडन करते हुए कहते हैं कि यदि कुमारोंका कहना सत्य हो, तो उसके युक्तिपूर्वक वाक्यका आधार होना चाहिए. वह आधार कुमारोंके कहनेमें नहीं है. इसलिए उनका कहना दोषयुक्त होनेसे असत्य है. सत्य परीक्षार्थ आप प्रत्यक्ष अपने नेत्रोंसे मेरे खुले हुएके मुखके अंदर देख लो. यदि मैंने मिट्टी खाई होगी तो उसके कण वा उसकी गंध मुखमें होगी. यदि मैंने कणमात्र भी इसी प्रकार खा लिये हों, जैसे उनकी गंध भी मुखसे न आवे तो उसपर आचार्यश्री विशेष आज्ञा करते हैं कि कृष्ण तो फिर कहते हैं कि केवल

अबकी खाई हुई मिट्टीकी शंकाको न मिटाओ, किन्तु आगे जो कुछ मक्खन, दही खाया उस शंकाको मिटा लो. हे माता! मेरे मुखमें यह भी देख लो कि भक्षणके प्रयोजनवाली वस्तु जिसकेलिये भोजन किया जाता है(भोजन रस लेनेकेलिये किया जाता है रस लेनेवाली इन्द्रिय जिह्वा है) वह मेरे मुखमें है ही नहीं अच्छी तरह देख लो. मैने मिट्टी क्या? कभी भी कुछ भी नहीं खाया है, अतः मैं वास्तविक अभोक्ता हूँ. जैसे मेरे मुखमें रस-ग्राहिका जिह्वा नहीं है, वैसे ही मुझे क्षुधा भी नहीं लगती है, जिसके मिटानेकेलिए भोजन करूं. क्षुधा जीवका धर्म है. मैं जीव नहीं हूँ, इसलिए मुझे न क्षुधा लगती है न मैं भोजन करता हूँ. इस प्रकार कृष्णके कहनेपर माताको शंका हुई कि हम प्रत्यक्ष देखती हैं कि कृष्ण खाता है और यह कहता है कि 'मैं नहीं खाता हूं' इस प्रकारकी माताकी शंकाको जानकर ही कृष्णने फिर कहा कि क्षुधावाले भोजन अपने लिये करते हैं. जिस भोजनसे वे अपनी क्षुधा मिटाते हैं; किन्तु मुझे क्षुधा नहीं है, जिसको मिटानेकेलिए मैं भोजन करूं. मैं तो भोजन भक्तोंके मनोरथपूर्त्यर्थ(पूर्ण करनेकेलिये) करता हूं, जैसे उनको मेरे अधरामृतकी प्राप्ति हो, और वे कृतार्थ हो जावें. इसलिए मैं भोजन करते हुए भी अभोक्ता हूँ. तात्पर्य यह है कि ज्ञान-मार्गकी रीतिसे ब्रह्म, भोजन न करनेके कारण अभोक्ता है. किन्तु पुष्टिमार्गरीत्यनुसार भोजन करते हुए भी भगवान् अभोक्ता हैं. यही ज्ञानमार्गसे भक्तिमार्गकी विशेषता है जो इस लीला द्वारा भगवान्ने बताई है ।।३५।।

लौकिक मनुष्य, युक्ति सिद्ध सिद्धान्तको स्वीकार करते हैं. यशोदाने भी कृष्णके युक्ति-युक्त वाक्य सुनाकर, उनको मान लिया और समझने लगी कि यदि यों है तो प्रत्यक्ष करानेकेलिए मुखका उद्घाटन(खुलवाना) अपेक्षित है. इसलिए भगवान्को कहने लगी कि 'मुख' खोल. भगवान्ने मुखारविन्दको विकसित किया(खोला) एवं यशोदा मैया देखनेको उद्यत(तैयार) हुई, भगवान् अपने मुखारविन्दको दिखाने लगे.

यद्येवं तर्हि व्यादेहीत्युक्तः स भगवान् हरिः।।
व्यादत्ताव्याहतैश्वर्यः क्रीडामनुजबालकः।।३६।।

यशोदाजीने कृष्णको कहा कि जो यों है तो अपना मुख खोल. माताके वचन सुन, पूर्ण ऐश्वर्यवाले क्रीडाकेलिए मनुष्य बालरूपधारी भगवान् हरिने अपना मुख खोल दिया ।।३६।।

हे कृष्ण! यदि तुम्हें वह वाक्य(कृष्णने मिट्टी खाई) प्रत्यक्ष प्रमाणसे ही असत्य सिद्ध करना है और दूसरोंके कहेनेसे उसकी सत्यता नहीं माननी है तो मुखको खोलो. इस प्रकार माताके कहनेपर मुरारिने अपना मुखारविन्द विकसित कर दिया. श्लोकमें 'स' शब्द देकर यह बताया है कि निरोध करनेकेलिये प्रकट हुआ है. यदि निरोधार्थ आप प्रकट न हुए होते तो लौकिक विषय और परमार्थ विषय भिन्न होते हुए भी लौकिकमें परमार्थदर्शन न कराते. यहां मिट्टी खानेकी वार्ता सत्य है वा असत्य है, इसको सिद्ध करनेकेलिए मुख दिखाना लौकिक कार्य है. उसमें कृष्णने माताको सारा विश्व दिखानेका जो अलौकिक कार्य किया उसका आशय था, यशोदाका निरोध करना. इसलिए शुकदेवजीने 'स' शब्दसे यह जता दिया कि उसने(निरोधार्थ आये हुएने) मुख खोला. उसमें निरोध करनेकी सामर्थ्य है इसलिए शुकदेवजीने उसको 'भगवान्' कहा है अर्थात् उसमें षडैश्वर्यादि गुण प्रकट थे. न केवल षड्गुणवाले हैं किन्तु वह हरि, दोषोंको हरण करनेवाले भी हैं. इन शब्दोंसे यह सिद्ध किया है कि पापहर्ता, प्रपञ्चविस्मृति पूर्वक निरोधकर्ता वह है. मान लिया जाय कि वह(श्रीकृष्ण) ऐसे ही हैं, किन्तु अब तो आपने प्राकृतपना स्वीकार किया है, इसलिए स्व-ऐश्वर्यादि धर्मोंका तो तिरोभाव आपमें होगा ही इस शंकाके निवारणकेलिये श्लोकमें शुकदेवजीने 'अव्याहतैश्वर्यः' पद दिया है. जिसका अर्थ है कि किसी प्रकारका भी आपका ऐश्वर्य इस समय भी कम नहीं हुआ है. वही आपका सम्पूर्ण ऐश्वर्य विद्यमान है. तब प्राकृत बालक रूपका स्वीकार किस लिये किया है? इस शंकाको मिटानेकेलिये शुकदेवजीने 'क्रीडामनुजबालकः' कहा है. दिखानेकेलिये प्राकृतवत् बालरूप धारण नहीं किया है, किन्तु इस स्वरूपसे क्रीडा करनेकी इच्छा थी, इसलिए यह रूप स्वीकार किया है. भगवान्में ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति सदैव रहती है, किन्तु जब लोकवत् लीला करनी होती है तब समयपर कभी-कभी केवल क्रियाशक्ति तिरोहित कर, लीला करते हैं. नहीं तो ज्ञानशक्तिकी तरह क्रियाशक्ति भी प्रकट रहती है. ज्ञानशक्ति तो सर्वदा प्रकट रहती है अतः कृष्णने अपने मुखमें विश्वरूपका दर्शन कराया ।।३६।।

जिस (यशोदा)का निरोध हो रहा है(पूर्ण निरोध अब तक नहीं हुआ है, इसलिए निरोधके मध्यमें स्थित है) जिसको भगवदिच्छासे ज्ञान-शक्ति प्राप्त हुई है वैसी माता यशोदाजी भगवान्की प्रेरणासे भगवान्के मुखके मध्यमें स्थित

जगत्को देखने लगी. इसका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

सा तत्र ददृशे विश्वं जगत् स्थाष्णु चरिष्णु च ।।
साद्रिद्वीपाब्धिभूगोलं सवाय्वग्नीन्दुतारकम् ।।३७।।

उस(यशोदा)ने मुखमें विश्व स्थावर तथा जंगम जगत्, वायु, अग्नि, चन्द्र, तारों, पर्वत, द्वीप और समुद्रों समेत पृथ्वीके गोलेको देखा ।।३७।।

निरोधके मध्यमें स्थित उस(यशोदा)ने मुखरूप बिलमें विश्वका दर्शन किया. श्लोकमें 'विश्व' और 'जगत्' दो शब्द देनेका भाव आचार्यश्री स्पष्ट समझाते हैं कि यशोदाने केवल ऊपर-ऊपरसे विश्वको नहीं देख लिया किन्तु विशेष प्रकारसे ज्ञानपूर्वक समग्र पदार्थोंको देखा. इसलिए श्लोकमें 'विश्व' और 'जगत्' दो शब्द दिये है. 'विश्व' शब्दसे यह बताया है कि यह समग्र विश्व भगवद्रूप है और वह भगवान्का आधिदैविक स्वरूप है. अर्थात् यशोदाने प्रथम भगवान्के आधिदैविक स्वरूप जगत्का दर्शन किया पश्चात् लौकिक, अन्य जगद्रूप, जो रूप भगवान्का प्रतिकृति रूप है, उसको देखा. जगत्रूपके वर्णन करनेवाले तीन प्रकारके हैं

(१)औपनिषदा: उपनिषदोंको जाननेवाले जगत्को भगवान्का प्रतिकृति रूप मानते हैं.

(२)ब्रह्मविद: ब्रह्मवादी जगत्को भगवान्का आधिदैविक स्वरूप समझते हैं.

(३)विचारका: विचारशील तत्त्व विचारक आचार्यचरण जगत्को 'कार्यकारण' रूप मानकर दोनों(औपनिषद और ब्रह्मविदों)का समाधान(एकता) करते हैं. (जगत् कार्य है, ब्रह्म उसका कारण है. कार्य कारण एक ही वस्तु होनेसे जगत् एवं ब्रह्ममें भेद वा द्वैत नहीं है. अत: जगत् प्रतिकृति होते हुए भी ब्रह्मरूप है. लौकिक प्रतिकृतिके समान जगत् ब्रह्मकी प्रतिकृति नहीं है.)

जगत्के भिन्न-भिन्न रूप भेदोंको कहते हैं: १.स्थावर(जड़), २.जंगम (चेतन) श्लोकमें दिये 'च' अक्षरसे उनके सब प्रकारके धर्म भी कहे हैं. इस श्लोकमें नीचेके खण्ड(भाग) पर्वत, द्वीप, समुद्र रूप भूगोलका वर्णन है. ऊपरके भागका वर्णन आगेके श्लोकमें करेंगे. जगत्का यह भीतरी भेद जान लिया. जैसे कि मेरू आदि पर्वत, जम्बू आदि द्वीप और लवणादि समुद्रोंके साथ भूगोलका ज्ञान प्राप्त किया. न केवल इतना ही ज्ञान सम्पादन किया, किन्तु इससे विशेष वायु, अग्नि, चन्द्र और तारकोंका भी ज्ञान पा लिया क्योंकि वे भी भूगोलके ही

अंग हैं. वायु और अग्नि तो भूगोलपर प्राप्त होते ही हैं और चन्द्रमा यज्ञमें दी हुई पहली आहुतिका रूप है. अतः श्रुतिमें कहा गया है कि "**सोमोऽस्माकं राजा**" चन्द्रमा हमारा राजा(रंजन करनेवाला) है अथवा यज्ञीयं रूपं(यज्ञ सम्बन्धी रूप जो भूमिपर) था, वह अब उसमें चन्द्रमामें) कलङ्क(कालासके) रूपसे बिराजता है. तारे भी पृथ्वीपर स्थितिवाले हैं किन्तु भोगके लिये वहां(ऊपरके भागमें) जाते हैं, भोगोंका भोग लेकर बाज, पक्षियोंकी तरह पृथ्वीपर आ जाते है. इसलिए ये सब भूमिष्ठ ही हैं ।।३७।।

निम्न श्लोकमें ऊपरके भागमें ज्योतिश्चक्र है जिसका वर्णन करते हैं.

ज्योतिश्चक्रं जलं तेजो नभस्वान् वियदेव च ।।
वैकारिकाणीन्द्रियाणि मनो मात्रा गुणास्त्रयः ।।३८।।

ज्योतिश्चक्र, जल, तेज, वायु और आकाश, वैकारिक, इन्द्रियां, मन, मात्राएं और तीन गुण, ये ऊपरके भागमें यशोदाने देखे ।।३८।।

ऊपरके भागमें आकाश और भूमिके मध्य भागमें 'जल' है. यह जल वृष्टि और आकाशगंगाके नामसे प्रथित(प्रसिद्ध) है. सूर्यसे लेकर ध्रुव तकके किरणोंको अथवा विद्युत आदिको तेज कहते हैं. ऊपरके भागवाले वायुको 'नभस्वान्' कहते हैं. वियत्(आकाश) वैकारिक अर्थात् सात्विक, सर्व प्रकारके विकारोंसे साध्य(प्राप्त करने योग्य) सकल इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवताओं और ब्रह्माण्डसे बाहर स्थित इन्द्रियां. इतना महान् ब्रह्माण्ड भी मुखमें यों देखनेमें आया जैसे गृहमें रखा हुआ घड़ा देखनेमें आवे. इन्द्रियां तो उससे बाहर किसी दूसरे पदार्थके समान दृष्टिगोचर होती थीं. इतना सारा ब्रह्माण्ड नीचे, ऊपर एवं बीचके भागमें स्थित सकल पदार्थोंको यशोदा पूर्ण रीतिसे ज्ञानपूर्वक देख सकी. क्योंकि सर्व पदार्थ देख सकनेकी शक्ति प्रथम ही परमात्माने यशोदाको दे दी थी. इन्द्रियां राजस, मन सात्विक मात्राएं तामस हैं इनके अहंकार प्रकृति और मायाके गुण आश्रयी भूत हैं. इनको भी यशोदाजीने देखा ।।३८।।

यशोदाने जो कुछ देखा उसका वर्णनकर, अब निम्न श्लोकमें वर्णन करते हैं कि ऐसे विचित्र दर्शन यशोदाने कभी नहीं किए थे. इससे उसे भय हुआ कि यह क्या?

एतद् विचित्रं सहजीवकालस्वभावकर्माशयलिंगभेदम् ।।
सूनोस्तनौ वीक्ष्य विदारितास्ये व्रजं सहात्मानमवाप शंकाम् ।।३९।।

पुत्रके शरीर एवं खोले हुए मुखारविन्दमें, जीव, काल, स्वभाव, कर्म, आशय, और लिंगोंके भेद सहित इस विचित्र(अनोखे) जगत्को एवं समग्र व्रज तथा अपनेको भी देखकर यशोदाको शंका हुई कि यह मैं क्या देख रही हूँ! (इससे वह डर गई) ।।३९।।

यशोदा यह देखकर इसलिए डर गई कि यह(जगत्) ऐसा विचित्र है कि जिसका युक्तिसे भी निर्णय नहीं किया जा सकता है. न केवल जगत्को देखा, किन्तु उसके करण(जिन साधनोंसे वह बना हुआ है वे) भी देखे. उन करणोंके नाम कहते हैं: १.जीव, २.काल, ३.स्वभाव, ४.कर्म, ५.आशय, ६.लिंग भेद.

इन छ: कारणोंका स्पष्टीकरण करते हैं:

१.जीव: देव, मनुष्य और दानव भेदसे तीन प्रकारके हैं.

२.काल: भूत, वर्तमान और भविष्य भेदसे तीन प्रकारके हैं.

३.स्वभाव: यह प्रकृतिका भगवद्रूप धर्म है.

४.कर्म: इसका विवरण(व्याख्यान) 'निबन्ध' ग्रंथमें किया गया है.

५.आशय: जिस हृदय कोशमें जीवोंका निवास है.

६.लिंग: स्थूल शरीर जिसमें बीजरूपसे स्थित है वह सूक्ष्म शरीर. अथवा जंगम् शरीरोंके स्त्री, पुरुष और नपुंसक भेद (चिह्न).

यशोदाको पहले इन सब स्थानोंका पूर्ण रीतिसे ज्ञान नहीं था. इसलिए श्लोकमें कहा है कि अब यह सब पुत्रके शरीरमें, उस(यशोदा)ने देखा. श्लोकमें 'तनौ'(शरीरमें) 'विदारितास्ये'(खोले हुए मुखारविन्दमें) ये दो पद शुकदेवजीने दिये हैं. उनका भाव आचार्यश्री बताते है कि यशोदाने यह सब केवल मुखके भीतर ही नहीं देखा किन्तु बाहर(कृष्णके शरीरमें) भी देखा. श्लोकमें शुकदेवजीने कहा है कि 'यशोदाने अपनेको भी देखा'. उसका भाव आचार्यश्री बताते हैं कि भगवान्ने अपने मुख और शरीरमें व्रज और माताका स्वरूप, यशोदा मैयाको दिखाकर यह ज्ञान दिया कि यह जो तू देख रही है, वह सत्य है, स्वप्न नहीं है, और न माया है. इस प्रकार यशोदाका सर्व भ्रम निवारण तो हुआ, किन्तु शंका हुई कि इतने छोटे बालकमें इतना विश्व कैसे है, इस कारण भयवती हो गई ।।३९।।

इस प्रकार देखनेमें और उसको सत्य समझ, भययुक्ता होनेसे यशोदाके मनमें लौकिक प्रकारकी अनेक शंकाएं होने लगीं. उन अनुमानित शंकाओंका परिहार(निवारण)कर सत्य सिद्धान्तका निम्न श्लोकमें प्रतिपादन करते हैं.

किं स्वप्नमेतदुत देवमाया किं वा मदीयो बत बुद्धिमोहः ।।
अथो अमुष्यैव ममार्भकस्य यः कश्चनौत्पत्तिक आत्मयोगः ।।४०।।

क्या? यह स्वप्न है? वा देवताकी माया है? अथवा मेरी बुद्धिका मोह है? किं वा इस मेरे बालकका ही कोई स्वाभाविक आत्मयोग है ।।४०।।

इस श्लोकमें जो लौकिक प्रकारसे अनुमानित शंकाएं की हैं उनके चार पक्ष कहे हैं: १.स्वप्न, २.देवमाया, ३.अपनी बुद्धिका मोह और ४.बालकका आत्मयोग. इनमेंसे पहले कहे हुए तीन पक्षोंका निराकरणकर चौथा पक्ष सत्य सिद्ध किया गया है.

१.पक्ष–स्वप्न, जो दृश्य कभी कभी दृष्टिगोचर होकर तीन प्रकारका हो वह स्वप्न है, क.प्रकार कुछ अलौकिक देखनेमें आवे, ख.प्रकार वह सन्ध्य(जो पहले भी न हो पीछे भी न हो) हो एवं शीघ्र नष्ट हो जाय, ग.प्रकार वह पूर्ण रीतिसे सम्पूर्ण देखनेमें न आवे. जिसमें ये तीन नमूने हो वह स्वप्न होता है. यह जो दृश्य है वह उसके समान नहीं है इसमें पूर्वापरका(आगे पीछेका) अनुसन्धान रहता है. अतः यह स्वप्न तो नहीं है.

२.पक्ष–देवमाया, माया मात्र मोह नहीं करती है, किन्तु देवमाया तो मनुष्योंको विशेष मोह कराती है. मोहके वश होनेसे, अन्य पदार्थोंका भान होना भी सम्भव है. यह देवमाया इतनी शक्तिमती है तो भी भगवान्पर उसका प्रभाव नहीं पड़ता है. यह दृश्य(विश्वरूपका दर्शन) यह भगवान्के प्रयत्नसे हुआ है, न कि देवमायासे, यह देखनेमें आया है. अतः यह देवमाया भी नहीं है. कदाचित् यह भगवान्की माया हो, भगवान्ने अपनी मायासे दिखाया हो, तो वह भी जंचता नहीं. क्योंकि मायासे जो मायिक पदार्थ देखनेमें आते हैं वे माया दृश्य बन्द होनेपर देखनेमें नहीं आते हैं. यहां तो वैसा नहीं है और मायासे जो पदार्थ देखे जाते हैं, वे बहुत समय तक नहीं रहते हैं. यहां तो जो कुछ देखा गया है, वह सब, अब भी विद्यमान है जैसे कि मैं और श्रीकृष्ण आदि . अतः श्रीकृष्णकी माया भी नहीं है.

३.मेरी बुद्धिका मोह–जो स्वप्न नहीं, देवमाया वा भगवान्की माया भी नहीं, तो जो देखा गया है, वह भ्रम होगा. बुद्धिके मोहसे हुआ होगा. यदि बुद्धिका मोह है, तो मुझे ही देखनेमें आता है, दूसरोंको क्यों नहीं आता है. दूसरोंको भी देखनेमें आता हो, तो वे भी मेरे समान कहने लगें. दूसरे नहीं कहते हैं. फिर

विचारकर कहती है कि जो वस्तु प्रत्यक्ष, पूर्ण रीतिसे देखी जाती है, उसमें अनुपपन्न कुछ नहीं होता है इस न्यायानुसार मेरी बुद्धिका ही मोह है. यदि यों है, तो मैं भाग्यवती हूं. इसलिए यशोदाकी प्रसन्नता प्रकट करनेकेलिये शुकदेवजीने श्लोकमें 'बत' हर्षवाचक पद दिया है.

४.अर्भकस्य आत्मयोग: इस प्रकार तीनों पक्षोंका निराकरण किया गया. अब चौथे पक्षके समर्थनमें कहती है कि यदि मेरी ही बुद्धिका व्यामोह हो, तो दूसरे बालकोंमें वा दूसरे स्थलोंपर भी, इस प्रकारका दृश्य मुझे देखनेमें आवे, अतः मेरी बुद्धिका व्यामोह भी नहीं है. किन्तु यह सब मेरे इस बालकका ही कोई प्रभाव ऐश्वर्य है. यह प्रभाव सूक्ष्म रीतिसे पूर्व भी देखा है. अब विशाल जगद् रूपमें देखा है. मेरा बालक कहकर अपने पुत्रभावकी दृढ़ता बताई. यदि पुत्र भाव अब तक दृढ न होता, तो यशोदा मुक्त हो जाती, वह न हुई उसका कारण यह है कि यशोदामें अब तक लौकिक पुत्रभाव कृष्णमें है. अतः वह निरोध योग्य है.

आचार्यश्री श्लोकमें कहे हुए 'यः कश्चन' पदोंका भाव स्पष्ट करते हैं. तेरे बालकका यह गुण कौनसा है? इसपर कहा गया है कि जो, कोई, है अर्थात् जिसकी व्याख्या कर नहीं सकते हैं कि 'वह है' वा इस प्रकारका है. यों भी न समझना कि अब किसी देवतान्तरके सम्बन्धसे इसका इतना प्रभाव हुआ है. इसका यह ऐश्वर्यादि प्रभाव तो स्वाभाविक जन्मसे ही इसमें है. इसके प्रभावका अनुभव इस जगत्के दिखानेके पश्चात् ही नहीं हुआ है किन्तु हम व्रजवासियोंको पहले भी हो गया है जैसा कि इसने पहेले पूतना-वध आदिसे अपने प्रभाव दिखाये हैं. यदि केवल मायावीके समान प्रदर्शक, जगत् दिखानेवाला होता तो यह पूतना आदिका वध नहीं कर सकता था. अतः यह इसकी अपनी ही आत्मयोग रूप विभूति(ऐश्वर्य) है ।।४०।।

जब यशोदाजीको यह निश्चय हो गया कि यह 'विश्वरूप दर्शन' स्वप्न, देवमाया, भगवत्माया वा मेरी बुद्धिका मोह नहीं है; किन्तु यह इस बालकका अपना ही विभूति योग है तब तो उसको जो करना योग्य था, वह कृत्य करने लगी. उसका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

अथो यथावन्न वितर्कगोचरं चेतोमनःकर्मवचोभिरञ्जसा ।।
यदाश्रयं येन यतः प्रतीयते सुदुर्विभाव्यं प्रणतास्मि तत्पदम् ।।४१।।

यह विश्वरूप(भगवान्) चित्त, मन, कर्म और वाणीसे पूरी तरह तर्कमें नहीं आ सकता है जिसकी कल्पना करनी भी अशक्य है. वैसा यह(विश्व) जिसमें आश्रित है जिससे यह प्रतीत हो रहा है उसके चरण कमलमें मैं प्रणत(शरणागत हूँ, नमन करती हूं) हूँ ।।४१।।

विश्वदर्शन करनेके पश्चात् जो(विश्वरूप) कल्पना करनेसे समझमें नहीं आता है और जो केवल भगवान्के सामीप्यसे कहीं प्रतीयमान हो रहा है. इससे निश्चयपूर्वक समझा जाता है कि वह(विश्वरूप) अलौकिक है. एवं भगवान्की योग्य विभूतिसे दृश्य हो रहा है. ऐसे(अलौकिक दृश्य दिखानेकी शक्तिवाले एवं स्वयं भी अलौकिक) भगवान्के चरणकमलमें मैं प्रणाम करती हूं. 'विश्वरूप'की अलौकिकता प्रतिपादन करनेकेलिये तर्क देते हैं कि लौकिक बुद्धिसे उसका ज्ञान नहीं हो सकता है. चित्त, मन, कर्म और वाणी द्वारा पूर्ण रीतिसे समग्र प्रकारसे जैसा कुछ है वैसा दृष्टि गोचर नहीं होता है. योगके प्रभावसे उत्तेजित चित्त भी इसको समझ(देख) नहीं सकता है तो लौकिक मन, कर्म और वचन इसको कैसे जान सकेंगे? अलौकिक बुद्धिसे भी यह ऐसा है वा वैसा है. इस प्रकारकी कल्पना उसकी नहीं हो सकती है, क्योंकि इस विश्वमें अलौकिक पदार्थ भी दृष्टिगोचर होते हैं, जिसको योगादिसे उत्कृष्ट(उत्तम) चित्त भी जान नहीं सकता है और मन भीतर तो स्वतन्त्र है किन्तु बाहर परतन्त्र है. कारण कि बाहर होते ही लौकिक विषयोमें आसक्त होनेसे उनके आधीन हो जाता है; जिससे वह मन भी इस विश्वकी कल्पना नहीं कर सकता है. 'कर्म' शब्दके प्रतिनिधित्वमें यहां 'कायिक' शब्द दिया है. जिसका आशय यह है कि कर्म कायासे किया जाता है तो काया ही कर्मका कारण है. उस(काया)से कर्म करनेपर जो फल होता है, उस फल शेषको, अदृष्ट, प्रारब्ध कहते हैं. उस अदृष्टसे भी इस विश्वके स्वरूपका निर्णय वा ज्ञान कहा नहीं जा सकता है. क्योंकि 'विश्व' अलौकिक है. वाणीसे भी 'विश्व'का वर्णन नहीं हो सकता है क्योंकि वाणी द्वारा कहनेसे उसमें 'विरोध' देखनेमें आता है. जैसे कि एक ही विश्वको 'मुख'में और 'मुख'से बाहर कहनेपर वाणीका परस्पर विरोध देखनेमें आता है. काम मात्र चलानेकेलिये कल्पनाएं करनेसे भी पूर्ण रीतिसे ध्यान गोचर नहीं होता है. इसी प्रकार मायिकादि पक्षोंकी कल्पनासे भी पूर्णतया समझमें नहीं आता है. मायिक पक्षमें तो अपना भी पूर्वापर सोचनेका ज्ञान नहीं रहता है तथा पदार्थोंके विचार करते समय उनमें स्थिरता नहीं रहती है

एवं अवस्था देश और कालका भी पता नहीं पड़ता है.

जो अपना माहात्म्य प्रकट करनेकेलिये सर्व विश्वको दिखाता है वह तो अपनेसे भिन्न स्थानपर दिखाता है. इतने भारको अपनेमें नहीं रखता है क्योंकि देखने वालोंको उसकी अवस्था, देश और काल देखकर भ्रम न हो जाय, इसलिए वह(प्रदर्शक) अपनेमें इतने सब पदार्थ नहीं रख सकता है.

यशोदा सब विचारकर अन्तमें निर्णय करती है कि जिस नेत्रसे यह(विश्वरूप) देख रही हूं वह नेत्र भी मेरे नहीं है क्योंकि यदि नेत्र मेरे होते तो ज्योतिश्चक्रमें स्थित पदार्थ जो अब मैंने देखे हैं वे मैं पहले भी देखती? पहले तो कभी भी देखे नहीं. अत: मुझे(मेरे नेत्रोंमें) सामर्थ्य देकर आपने ही अपनेमें विद्यमान विश्वरूपका दर्शन अपने माहात्म्य ज्ञान करानेकेलिये कराया है. इस लीलासे मुझे इस बालकके माहात्म्यका पूर्ण ज्ञान हो गया है. अतः इसके चरणोंमें प्रणाम करती हूं. प्रणाम करना ही सच्चा उपदेश एवं शिक्षा है. यही शास्त्रोंका तत्त्व है ।।४१।।

यशोदाने भगवान्‌को प्रणाम करनेके अनन्तर जो प्रार्थना की उसका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

अहं ममासौ पतिरेष मे सुतो व्रजेश्वरस्याखिलवित्तपा सती ।।
गोप्यश्च गोपाः सहगोधनाश्च मे यन्माययेत्थं कुमतिः स मे गतिः ।।४२।।

यह मैं हूँ, यह मेरा पति है, यह मेरा बेटा है, व्रजेश्वर(नन्द)के धनकी रक्षा करनेवाली पतिव्रता मैं हूं, गोपियां, गोप और गोधन ये सब मेरे हैं. इस प्रकार जिसकी मायासे मेरी ऐसी कुबुद्धि हुई है, वह मेरी गति हो ।।४२।।

जो भगवान्‌को प्रणाम करता है उसकी दुर्बुद्धि नष्ट हो जाती है. (यशोदा)ने भगवान्‌का माहात्म्य देखा, जिससे उसको कृष्णके स्वरूपका ज्ञान हो गया. ज्ञान उत्पन्न होते ही यशोदाने प्रणाम किया. प्रणाम करनेसे यशोदाको अपनी दुर्बुद्धिके दोषोंकी स्फूर्ति हुई. उनकी गणना करती हुई प्रार्थना करती है कि वह मेरी गति हो.

यशोदा दुर्बुद्धिकी गणना करती है. जीवमें अहन्ता और ममता ही दुर्बुद्धि है. पहले अहन्ता होती है पीछे ममता उद्भव होने लगती है अतः यशोदा पहले अहन्ता रूप दुर्बुद्धिको कहती है कि पहली मेरी दुर्बुद्धि यह है कि मैं अपनेको आत्मरूप भगवदंश न समझकर, यह समझती हूं कि 'मैं यशोदा हूं'. इस प्रकार

अपना अहंभाव प्रकटकर अब ममतास्पद पदार्थोंको बताती है कि यह नन्द मेरा पति है, विश्वका आधार भगवान् मेरा पुत्र है और मैं व्रजराज नन्दरायकी सारी सम्पत्तिकी रक्षा करनेवाली सती(पतिव्रता) हूं. इस वाक्यमें तीन बात बताई है: नन्द(मेरा पति) व्रजका राजा है, मैं उसकी स्त्री(रानी) हूं इसलिए उसके धनकी रक्षिका सम्पूर्ण रीतिसे मैं हूं और मुझमें विशेष गुण यह है, कि पूर्ण पतिव्रता हूं इसलिए मेरे लिये भगवान् भी पर पुरुष होनेसे अभजनीय हैं, क्योंकि शास्त्रोंमें कहा है कि ''स्त्रीणां पतिरेव विष्णुः'' स्त्रियोंका पति ही विष्णु है. ये गोप भार्याएं, गोप और उनके बालक एवं गौ धन आदि जो हैं वे सब हमारे हैं. इस प्रकारकी कुमति जिसकी मायासे मुझे हुई है वह मेरी गति हो, अर्थात् मेरा आसरा हो .

यशोदाने पहले 'अहं' मैं कहनेसे चार प्रकारका 'जाति, लिंग, कुल और देह' भेदसे अपना अहंकाररूप अध्यास प्रकट किया. पीछे 'मम'(मेरे) सैंकड़ों प्रकारसे ममता प्रकट की. पति, पुत्र, धन, गोप, गोपी, गौ आदि इन छःके भी उत्तम, अधम धर्मोंसे अनेक प्रकार हैं. ऐसी अहन्ता, ममतारूप कुबुद्धिवाली मैं जिस मायासे अपनी आत्माके(जीव वा ब्रह्मरूप) रूपको भूल गई हूं. उस मायाको वह(भगवान्) ही निवृत्त कर सकते हैं. यदि कोई कहे कि अपनी बुद्धिसे मायाको निवृत्त करो, बुद्धिके भी अनेक प्रकार हैं. उसके उत्तरमें यशोदा कहती है कि बुद्धिके जितने भी प्रकार हैं वे स्वयं मायाके ही खेल हैं. इनसे माया मिटाई नहीं जा सकती है. इस प्रकार बुद्धि बलसे मेरी बुद्धिकी निवृत्ति नहीं होगी.

श्लोकके उत्तरार्ध(दूसरे अर्ध)में 'मे' शब्द दो स्थानोंपर है. एकका सम्बन्ध कुमतिके साथ है दूसरेका 'गति' शब्दसे है. दोनोंके आशयको आचार्यश्री बताते हैं कि जो 'मे' शब्द कुमतिसे सम्बन्ध रखता है, उसका भाव है कि माया भिन्न है, मैं(जीव) भिन्न हूं, इसलिए मायाके मोहका विषय 'मैं' बनती हूं अर्थात् मायाधीन होनेसे संसारासक्त हो जाती हूं. दूसरे 'मे'का सम्बन्ध गति पदसे है. उसका तात्पर्य है कि जिस जीवका मायासे सम्बन्ध नहीं है वह जीव ही 'गति' पा सकता है अर्थात् फल प्राप्त कर सकता है. यशोदाकी नमन करनेसे दुर्बुद्धि गई इसलिए मायाका सम्बन्ध ढीला हुआ जिससे फलके लिये प्रार्थना करने लगी. इस प्रकार जो यशोदा आई तो थी भगवान्को उपालम्भ देनेकेलिये परन्तु ले ली भगवान्की शरण ।।४२।।

श्रीकृष्णने जब देख लिया कि यशोदाको मेरे ईश्वर एवं रूपका ज्ञान हो

गया है, इससे अब यह भक्ति(वात्सल्य स्नेहका आनन्द)का रस न ले सकेगी. ब्रह्मानन्दसे भक्तिमें विशेष आनन्द है, तब भगवान्ने भक्तहितार्थ उसमें अपनी वैष्णवी मायासे ज्ञानको तिरोहितकर, भक्ति उत्पन्न करनेकेलिए मोह(स्नेह) उत्पन्न किया. भगवान्ने मोह(स्नेह) उत्पन्नकर, यह बताया कि यशोदा अब भक्त है माता नहीं. अब भक्ति प्रकरण प्रारम्भ होता है, जिसका वर्णन तीन श्लोकोंसे करते हैं.

श्रीशुकः उवाच

इत्थं विदिततत्त्वाया गोपिकायाः स ईश्वरः ।।
वैष्णवीं व्यतनोन्मायां प्रजास्नेहमयीं विभुः ।।४३।।

इस प्रकार सर्व समर्थ उस ईश्वरने जब देखा कि इसको मेरे स्वरूपका ज्ञान हो गया है, तब उसने प्रजावात्सल्य उत्पन्न करनेवाली, आधिदैविक माया फैला दी ।।४३।।

इस प्रकार यशोदाने जब तत्त्व जान लिया और वह भगवान्के शरणमें आ गई, तब वह माता यशोदा नहीं रही. इसलिए श्लोकमें न यशोदाका नाम दिया है और न माता ही कही है किन्तु 'गोपिका' कहा गया है. भगवान्ने यशोदापर अपनी निरोधोपयोगिनी प्रजास्नेहीमयी वैष्णवी माया फैलाई, जिससे उसका ईश्वरीय ज्ञान जाता रहा और उसमें यह पूर्ववत् श्रीकृष्णमें पुत्र स्नेह उत्पन्न हो गया. भगवान्ने यशोदाको जो तत्त्व ज्ञान हुआ था उसे नष्ट क्यों किया? इस शंकाके निवृत्यर्थ श्लोकमें 'स'(वह) शब्द दिया है. जिसका तात्पर्य है कि भगवान् निरोधकर्त्ता हैं, अर्थात् निरोध करनेकेलिये प्रकट हुए हैं, यदि ज्ञानका तिरोभाव न करें, तो यशोदाका निरोध सिद्ध न होता. अच्छा, यदि ज्ञान होता तो निरोध सिद्ध नहीं होता, तो पहले ज्ञान उत्पन्न ही क्यों किया? ज्ञान देकर पुनः खेंच लेना, यह क्या? इन दोनोंका रहस्य जतानेकेलिए श्लोकमें कृष्णको 'ईश्वरः' कहा है, वह करनेकेलिये न करनेकेलिए और अन्यथा करनेकेलिए समर्थ है. तात्पर्य यह है कि चाहे जैसे वे कर सकते हैं, अतः इस विषयकेलिये किसी प्रकारके उपपत्ति(कारण सहित निर्णय)की खोज नहीं करनी चाहिए.

यह माया, शास्त्र मर्यादाके बन्धनमें बद्ध(बंधा हुआ) स्नेह उत्पन्न करनेवाली नहीं है. इसे बतानेकेलिये टीकामें 'प्रजास्नेहमयी' पद दिया है. स्वत्व होनेसे जो विशेष निर्बन्ध स्नेह उत्पन्न होता है और उस स्नेहसे, जो रस प्राप्त होता

है वह रस 'ईश्वर' जानकर प्रेम करनेसे नहीं होता. कारण कि ईश्वरभावके समय तो भय और ज्ञान रहते हैं वे दोनों ही उस निर्बाध(बाधा रहित) आनन्दके प्रतिबन्धक है. लौकिक प्रेममें भी, जो प्रजा रूप स्नेह है, वही उत्कृष्ट रस प्रद है. इसलिए भगवान्ने अपनी अनन्त प्रकारकी स्नेह उत्पन्न करनेवाली मायाओंके रहते हुए भी केवल 'प्रजास्नेहमयी' माया ही फैलाई.

अब यशोदाको, कृष्णमें जब ईश्वरत्व बुद्धि हो गई है. तब 'यह मेरा पुत्र है' ऐसी विपरीत बुद्धि कैसे होगी? एक ही पदार्थमें भिन्न भिन्न बुद्धि किसीकी भी नहीं हो सकती है. इस शंकाको मिटानेकेलिये 'श्लोक'में कृष्णका नाम 'विभुः' दिया है जिसका अर्थ है कि वह सर्वकरण समर्थ है अर्थात् एक ही वस्तुमें कोटि कोटि प्रकारकी बुद्धि उत्पन्न कर सकता है, जिससे दृष्टा एक ही वस्तुको भिन्न भिन्न प्रकारसे देख सकता है. ऐसी अनेक सामर्थ्यवाले भगवान् न होवे तो किसी भी वस्तुमें पहले कहे वा देखे हुए धर्म बदलकर दूसरे देखनेमें न आये. यह सर्व भगवान्की अनन्त सामर्थ्य है जैसे कि घट पहले जब कच्चा होता है. तब वह श्याम दीखता है, पक जानेपर लाल दिखाई देता है।।४३।।

प्रक्षिप्ता जालवन् माया तया ज्ञानं विनाशितम्।।
प्रमाणानां बलं दग्ध्वा मोहयामास गोपिकाम्।।का.१।।

कारिकार्थ : इस कारिकामें आचार्यश्रीने प्रथम पादमें ४३वें श्लोकमें कहे हुए माया फैलानेके भाव बताए हैं कि भगवान्ने जालकी तरह माया फैलाई है. द्वितीय पादमें ४४वें श्लोकमें कहे हुए ज्ञान-नाशका आशय कहा है कि भगवान्की माया फैलनेसे यशोदाकी स्मृति नष्ट हो गई. श्लोकके उत्तरार्द्धमें ४५वें श्लोकमें कहे हुए अर्थका तात्पर्य बताया है कि जिस हरिके वेद आदि शास्त्र गुणगान करते हैं उसको यशोदाने अपना पुत्र समझकर उसमें स्नेह कर लिया है.

भगवान्की मायासे उत्पन्न मोहके कारण यशोदाका ज्ञान जाता रहा और कृष्णमें पुत्र-भाव युक्त हृदयवती हो गई. यह वर्णन इस श्लोकमें करते हैं.

सद्यो नष्टस्मृतिर्गोपी सारोप्यारोहमात्मजम्।।
प्रवृद्धस्नेहकलिलहृदयासीद् यथा पुरा।।४४।।

भगवान्की दैवी माया फैलते ही उसी क्षणमें गोपी(यशोदा) उत्पन्न हुए, उस तत्त्व ज्ञानको भूल गई और पुत्रको गोदमें पधराकर, अत्यन्त बढे हुए गहन स्नेह युक्त हृदयवाली पहलेके समान पुत्र भाववाली हुई।।४४।।

उसी समयमें यशोदा उस ज्ञानको भूल गई. जिस समय, हम पदार्थोंको देखते हैं, उस समय हमारे मस्तिष्कमें उनके संस्कार उत्पन्न होते हैं. जब हम पदार्थोंका देखना बन्द करते हैं, तब वे उत्पन्न संस्कार मस्तिष्कमें ही स्थिर हो जाते हैं. वे संस्कार किसी समय उद्‌भूत(प्रकट) होते हैं. उन उद्‌भूत संस्कारोंको स्मृति कहते हैं. वह स्मृति कुछ कालके पश्चात् नष्ट हो जाती है. इस प्रकार अनुभवसे उत्पन्न संस्कारों द्वारा हुई स्मृतिका थोड़े समयमें नष्ट होना तो बन सकता है; किन्तु पदार्थोंका देखना बन्द हुआ, साथमें स्मृति भी नष्ट हुई, यह युक्तियुक्त नहीं है? आचार्यश्री इस शंकाका निवारण भगवान्‌के मतानुसार करते हैं कि अनुभव(पदार्थोंके देखने) और स्मृति(देखे हुए पदार्थोंके स्मरण)के मध्यमें किसी प्रकारके मस्तिष्कमें संस्कार उत्पन्न नहीं होते हैं. अनुभव ही स्मृतिको उत्पन्न करता है. जिस प्रकार पदार्थ और इन्द्रियोंका संयोग उत्तरोत्तर अनुभवका उद्बोधक(प्रकट करनेवाला) है वैसे ही स्मृति भी किससे उत्पन्न होती है और किससे नष्ट होती है. वेद विरुद्ध मतवालोंका यह सिद्धान्त है कि पदार्थोंके निरन्तर, नाश और उत्पत्ति होते रहते हैं, वह प्रामाणिक नहीं है. यशोदाकी मायासे स्मृति नष्ट हुई, तो तत्त्व ज्ञान स्वतः नष्ट हुआ, किन्तु यशोदाको विवेकसे फिर तत्त्व ज्ञान जाग्रत हो गया हो, तो इस शंकाके मिटानेकेलिये ही शुकदेवजीने यशोदाका जाति स्वभाव प्रकट करनेकेलिये उसको 'गोपी'(गोपकी स्त्री) कहा है. गोप, पशु-पालक होनेसे विवेकहीन होते हैं, उनकी स्त्रियां भी वैसे ही होनेसे यशोदाको पुनः तत्त्वज्ञान जागृत नहीं हुआ, एक तो इस कारणसे उसके हृदयमें तत्त्वज्ञान जागृत नहीं हुआ, फिर दूसरा कारण यह भी था कि यशोदाने पुत्र भावसे कृष्णको गोदमें पधराया, जिससे उसका हृदय बढे हुए गहन स्नेहसे ऐसा भर गया जो उस हृदयमें विवेक आदिको आनेका स्थान ही नहीं था क्योंकि वह पहलेकी तरह लौकिक स्नेह संयुक्त हो गई थी.

भगवान्‌को गोदमें लेकर भी बाहरका कार्य जो ज्ञानसाध्य(समझसे सिद्ध होता है) है, वह पहलेकी तरह सावधानतासे करने लगी. क्योंकि स्नेह तो आन्तरिक था . अर्थात् दिखावटी नहीं था, वह स्नेह प्रकट न हो, इसलिए बाहरका कार्य लौकिक ज्ञानपूर्वक करती थी. ज्ञान होनेके कारण आन्तरिक स्नेह बदल जाएगा?(मिट जायगा वा कम हो जाएगा) इस शंकाके मिटानेकेलिए ही कहा गया है कि यशोदाका हृदय कीचड़के समान मोह सहित, स्नेहसे ऐसा भर

गया था जो उस हृदयसे बहुत समयके पीछे भी वह गहन चिकना स्नेह रसायन निकल नहीं सकता, कैसे भी मिट नहीं सकता है. ऐसा गहन पड्किल स्नेह मर्यादा भक्तिमें नहीं होता है.

यदि पूर्ववत् जो कृष्णमें अविहित(लौकिक जैसा) स्नेह था उसे यशोदा छोड़ देती तो मायासे उसमें भक्ति तो आ जाती और वह साधारण भक्त हो जाती, किन्तु भगवान् यशोदाका जो निरोध कराना चाहते है वह निरोध न होता, इसलिए 'यथा पुरा' जैसे आगे लौकिक प्रेम था वैसा ही किया ऐसा श्लोकमें लिखा है।।४४।।

भगवान्की वैष्णवी मायासे जो यशोदाके विश्व रूप दर्शनकी स्मृतिका नाश हुआ वह स्मृति दूसरे प्रमाणोंसे भी फिर उत्पन्न नहीं हुई. उसका इस श्लोकमें प्रतिपादन करते हैं.

त्रय्या चोपनिषद्भिश्च सांख्ययोगैश्च सात्त्वतैः ।।
उपगीयमानमाहात्म्यं हरिं सा मन्यतात्मजम् ।।४५।।

तीनों वेद, उपनिषद्, सांख्य, योग और सात्वत शास्त्र, जिसके माहात्म्यका गान करते हैं उस हरिको वह अपना पुत्र मानने लगी।।४५।।

तीन वेद(यजुर्वेद, ऋग्वेद और सामवेद) भगवान्की क्रियाशक्तिका प्रतिपादन करते हुए भगवान्के माहात्म्यको समझाते हैं. उपनिषदोंमें ब्रह्मस्वरूपके प्रतिपादनसे ज्ञानशक्तिको बताया गया है. सांख्य शास्त्रमें, नित्य पदार्थ और अनित्य पदार्थोंके विवेकका वर्णन है. किन्तु सांख्य शास्त्रके दो भेद हैं. १.ईश्वरको माननेवाले, २.ईश्वरको न माननेवाले. योग शास्त्र भी निश्चिन्त बनकर भगवानके चिन्तनका उपदेश देता है. श्लोकमें 'च' अक्षरसे आचार्यश्री आज्ञा करते हैं कि 'च' अक्षरसे यह आशय है कि 'पशुपति मत'में भी भगवान्के माहात्म्यका निरूपण ही है, वैसे वैष्णव तन्त्रों(नारद पंचरात्र आदि)से भी भगवान्के माहात्म्यका ज्ञान वर्णित हुआ है. वेदके 'मन्त्र' और 'ब्राह्मण' दो भाग हैं और नित्य एवं काम्य दो प्रकारके कर्मोंका प्रतिपादन करनेसे भी वेदके दो भाग कहे जाते हैं. षड्दर्शन शास्त्रोमें भी भगवान्के माहात्म्यका वर्णन है. भगवान् ऐसे माहात्म्यवाले हैं. इस प्रकारके इतने प्रमाण सुनकर भी यशोदाको पुनः स्मृति न हुई और भगवान्को अपना पुत्र ही मानने लगी, अतः पुत्रभावके कारण उसकी भक्ति केवल शुद्ध स्नेहमयी लौकिक मानी गई है न कि शास्त्रविहित भक्ति मानी गई

।।४५।।

यशोदाको इतना उत्तम फल किस कर्मसे हुआ? अन्य गोपियोंको ऐसा उत्कृष्ट फल क्यों नहीं मिला है? इस प्रकारकी शंका मिटाते हुए कहते हैं कि यशोदाजी पर महापुरुषोंकी कृपा हुई है. इसका वर्णन निम्न सात श्लोकोंमें करते हैं.

राजोवाच

नन्दः किमकरोद् ब्रह्मन् श्रेय एवम्महोदयम्।।
यशोदा च महाभागा पपौ यस्याः स्तनं हरिः ।।४६।।

इस श्लोकमें राजा परीक्षितने श्रीशुकदेवजीसे दो प्रश्न किये. हे ब्रह्मन्! १.श्रीनन्दजीने ऐसा कौनसा उत्कृष्ट कर्म किया जिससे इस प्रकारका महाफल उनको मिला, और २.महाभाग्यशाली यशोदाने वैसा कौनसा श्रेष्ठ साधन किया जिससे उसका स्तनपान हरिने किया।।४६।।

राजा परीक्षितने शुकदेवजीसे दो श्लोकोंमें प्रश्न किए हैं और शुकदेवजीने पांच श्लोकोंमें उत्तर दिया है. उसका आशय(भाव) प्रकट करते हुए आचार्यश्री आज्ञा करते हैं कि वह उत्तर पांच श्लोकोंमें इसलिए है कि कर्म पांच प्रकारके हैं: १.अग्निहोत्र २.दर्श पौर्णमास ३.चातुर्मास्य, ४.पशु और ५.सोम.

इन पांचों प्रकारके कर्मोंका यह फल नहीं है. यह महापुरुषकी कृपाका फल है. शुकदेवजीको ब्रह्मन्! संबोधन देकर परीक्षितने यह बताया कि आप ब्रह्मरूप होनेसे सब कुछ जानते हैं, अतः इसका भी आपको अवश्य ज्ञान होगा. पहले नन्द विषयक प्रश्न इसलिए किया गया है कि नन्दजीका नाम प्रकरणमें पहले ही निरोध कहा गया है (हो गया है). नन्दजीने कौनसा धर्मरूप 'श्रेय' कर्म किया है. मैं इसलिए पूछता हूं कि लोक और वेदमें नन्दजीके उस धर्मकी प्रसिद्धि नहीं है. कर्म तो प्रसिद्ध नहीं है. किन्तु इतना महान् अभ्युदय(भगवान्) पुत्र हुए हैं. इससे अनुमान होता है कि नन्दजीने कोई उत्कृष्ट कर्म अवश्य किया होगा. उसको मैं जानना चाहता हूं. यशोदाका भी निरूपण होनेसे उसकेलिये पृथक् प्रश्न किया है. और यशोदाने कौनसा 'श्रेय' साधन किया? विशेषमें यशोदाको 'महाभागा'(बड़ भागिन) कहकर यह बताया है कि यशोदाका नन्दसे भी अधिक निरन्तर सम्बन्ध रहता है एवं नन्दसे अन्य विशेषता यशोदाकी यह है कि भगवान् जो स्वयं सर्व दुःखहर्ता होनेसे 'हरि' कहलाते हैं उनका क्षुधारूप दुःख मिटाकर 'हरि'की भी

यशोदा 'हरि' बनी है. भगवान्को तो क्षुधा लगती ही नहीं है. भगवान्ने यशोदाका स्तनपान बालकोंके सन्तोषार्थ किया. यदि यह पक्ष लिया जाय, तो भी यशोदाका उत्कर्ष हुआ क्योंकि भगवान्ने यशोदाके स्तनपानकर बालकोंका सन्तोष किया. (भूख मिटाई) ।।४६।।

जिस प्रकार वसुदेवजीके किए हुए सुकृत प्रसिद्ध हैं वैसे ही उनके भी प्रसिद्ध हैं. यदि यों है तो भी निम्न श्लोकमें वसुदेव और नन्द विषयक आनन्दका भेद बताकर नन्दके श्रेयका प्रश्न उपस्थित करते हैं.

पितरौ नान्वविन्देतां कृष्णोदारार्भके हितम् ।।
गायन्त्यद्यापि कवयो यल्लोकस्य मलापहम् ।।४७।।

श्रीकृष्णके उदार बाल चरित्र, लोकके मलोंको, नष्ट करनेवाले हैं, जिनको कविलोग आज भी गाते रहते हैं. उदार बाल-चरित्रोंका आनन्द, माता पिताको पश्चात् भी न मिला।।४७।।

यद्यपि वसुदेव और देवकी पिता एवं माता बने, किन्तु जैसा कृष्ण चरित्रोंके आनन्दका अनुभव, नन्द और यशोदाने किया वैसा आनन्द वसुदेवको प्राप्त न हुआ. इसके अनन्तर(मथुरामें जानेपर) भी उस आनन्दको माता-पिता(वसुदेव-देवकी) न पा सके, कारण कि यहां भगवान्ने व्रजके समान रस-प्रद एवं उदार लीलाएं नहीं की थीं. अन्य प्रकारकी ही लीलाएं की हैं. व्रजका यह आनन्द महान् आनन्द है. उसको बतानेकेलिये मूल श्लोकमें 'कृष्णोदारार्भके हितम्' वाक्य दिया है. श्रीकृष्णके बालचरित्र जितने उदार हैं उतने अन्य चरित्र उदार नहीं हैं. अतः उनमें जो महान् आनन्द है वह और उन बाल-चरित्रोंमें उदारता भी सकल चरित्रोंसे विशिष्ट है क्योंकि उस उदारतासे अनधिकारियोंको भी सर्व पुरुषार्थोंका दान प्राप्त हुआ है. वेद प्रोक्त साधनरूप कर्मोंसे लौकिक फल मिलता है वह हीन फल है. साधनोंसे जो फल मिलता है उस फलसे उत्तम फल 'परमानन्द'(कृष्ण) है. जैसे कि लोकमें १.धर्म-कर्मरूप है. २.अर्थ पशु आदि रूप है, ३.काम स्वर्गरूप है और ४.मोक्ष ब्रह्मभाव रूप है. परमानन्द इस अन्तिम ब्रह्मभावरूप मोक्षसे भी उत्तम है. जब वह ब्रह्मभावरूप, मोक्षसे भी उत्कृष्ट परमानन्दरूप(कृष्ण) साध्य(फलरूप) स्वर्गादिकोंका स्वयं साधन बन जाता है, तब पशु-पुत्रादिसे उत्पन्न अलौकिक और लौकिक सुख भी परमानन्दरूप ही हो जाता है. क्योंकि जैसा साधन वैसा फल होता है. यदि साधन उत्तम है, तो फल

उत्तम होगा ही. जैसे उत्तम सूतसे उत्तम वस्त्र बनते हैं एवं श्रेष्ठ शक्करसे श्रेष्ठ मिष्ठान बनता है. उस परमानन्दरूप साधनसे प्राप्त लौकिक फल भी कर्मादि साधनोंसे मिले हुए लौकिक फलसे अधिक होता है. क्योंकि परमानन्द साधनसे प्राप्त लौकिक फलमें आनन्द ही आनन्द रहता है. उसमें सांसारिक विषयोंकी गन्ध भी नहीं रहती है. जब परमानन्द साधनसे प्राप्त लौकिक फल ही ऐसा होता है तो उससे मिलनेवाले अलौकिक दिव्य पुत्र, पशु आदि उससे अधिक, स्वर्गादि फलमें कितना रसका अनुभव होता होगा, वह अकथनीय ही है. भक्ति मार्गमें परमानन्दरूप कृष्ण स्वयं साधनरूप कर्म होनेसे धर्म है. उसका बालरूप ही 'अर्थ' है एवं उसकी लीला अर्थात् लीलामें उपयोगी गौ पुत्र आदि सामग्री ही 'काम' है और कृष्णके भजनानन्दका अनुभव ही मोक्ष है. कृष्ण जो स्वयं परमानन्द है और वह ही अर्भक बालरूप हुए हैं. एवं उसकी लीला वह भी उदार है. जब यही दुर्लभ है तो साक्षात् लीलाके रस भरित व्याख्याका परम दुर्लभ होनेमें क्या कहना है?

यह चरित्र केवल शब्दसे सुननेपर भी आनन्द देता है. इसलिए अभी तक भी शब्द, रसको पूर्ण रीतिसे समझनेवाले, दोष रहित शब्दके अर्थके वक्ता व्यासादिक उस रसमें मत्त होकर गान करते रहते हैं. इतना काल बीत जानेपर भी वही रस उन लीलाओंके गान करनेसे प्राप्त हो रहा है और जो चरित्र लोकके मलको दूर करता है, जो चरित्र सुनते ही दोष निवृत्त करनेवाला और गुण देनेवाला है जबकि उसके सुननेवाले भाग्यशाली हैं तो साक्षात् उस लीलारसके भोग करनेवालोंके भाग्यकी क्या श्लाघा कही जा सकती है ।।४७।।

अत्र महापुरुषकृपैव कारणमिति ।।

वक्तुमुपाख्यानमारभते द्रोण इति पञ्चभिः।।का।।

कारिकार्थः नन्द यशोदाके ऐसे महोदय होनेका कारण, महत्पुरुषोंकी कृपा है. उसका वर्णन निम्नोक्त पांच श्लोकोंसे उपाख्यान द्वारा करते हैं.

श्रीशुकः उवाच

द्रोणो वसूनां प्रवरो धरया भार्यया सह ।।

करिष्यमाण आदेशं ब्रह्मणस्तमुवाच ह ।।४८।।

धरा नामवाली, अपनी पत्नीके साथ, ब्रह्माकी आज्ञाका पालन करनेवाला, वसु, श्रेष्ठ द्रोण, उसको(ब्रह्माको) कहने लगा ।।४८।।

प्रार्थना प्रश्नदाने च भक्तिरागमनं हरेः ।।का।।

कारिकार्थ : आचार्यश्रीने इस कारिकामें, सातों श्लोकोंमें जो कहा गया है उसका संक्षिप्तमें सार बताया है.

४६वें ४७वें श्लोकमें प्रश्न किया गया है, ४८वें ४९वें श्लोकमें प्रार्थना की गई है, ५०वें श्लोकमें वरदान वर्णन है, ५१वें श्लोकमें भक्ति, ५२वें श्लोकमें हरिके आगमनका वर्णन है. इस प्रकार इस प्रकरणमें सात श्लोक हैं.

पूर्वकालमें, आठ वसुओंमें, एक कोई द्रोण नामका वसु भी था, जिसकी पत्नी धरा नामकी थी. यद्यपि इस कल्पमें उसकी पत्नी धरा नामवाली न थी तो भी किसी अगले कल्पमें नामवाली पत्नी इसकी हुई थी. इसलिए कोई विरोध नहीं है. उस कल्पमें आठ वसु ब्रह्मासे पैदा हुए थे. उनको ब्रह्माने सृष्टि करनेकी आज्ञा दी थी. इस आज्ञानुसार द्रोण, स्त्री सहित सृष्टि करनेके आदेशका पालन करनेवाला था. उस समय ब्रह्माको प्रार्थना करने लगा, द्रोणने ब्रह्माको जो प्रार्थना की उसका वर्णन नीचेके श्लोकमें है, जिसमें द्रोणने भक्ति मांगी है. इसलिए श्लोकमें 'ह' अक्षर दिया है जिसका भाव बताते हुए आचार्यश्री कहते हैं कि 'ह' देकर शुकदेवजीने आश्चर्य प्रकट किया है कि द्रोणको आदेश सृष्टि करनेका ब्रह्माने दिया और वह उस आज्ञाके पालनार्थ तैयार हो गया तो भी ब्रह्मासे भगवान्‌की भक्तिकी याचना अचम्भेकी बात है. कहां सृष्टिका कर्तापन और कहां भक्तिकी याचना करना ।।४८।।

निम्न श्लोकमें द्रोणने ब्रह्मासे प्रार्थना की उसका वर्णन करते हैं.

द्रोणः उवाच

जातयोर्नौ महादेवे भुवि विश्वेश्वरे हरौ ।।

भक्तिः स्यात् परमा लोके ययाञ्जो दुर्गतिं तरेत् ।।४९।।

भूमिपर जन्मे हुए, हम दोनोंकी विश्वके ईश्वर, सबसे उत्कृष्ट देव हरिमें, परम-भक्ति होवे, जिससे हम जीव सरलतापूर्वक लोकमें पाई हुई, इस दुर्गतिसे पार पहुंच जांय।।४९।।

द्रोण ब्रह्मासे प्रार्थना करता है कि धरणीपर जन्म धारण किये हुए, हम दोनोंकी हरिमें भक्ति होवे[१]. साधारण भक्तिकी याचना न कर 'परमा' उत्तम भक्तिकी याचना की. शास्त्रसे प्राप्त ज्ञान, अल्प होता है तो उससे प्राप्त भक्ति भी परा(उत्तम) नहीं होती है. इस प्रकार कर्म भी अल्प हैं, उस कर्मरूप साधनसे जो भक्ति मिलती है वह परा भक्ति नहीं है. जो भक्ति महापुरुषोंके वरदानसे, अथवा

प्रसाद(कृपा)से प्राप्त होती है, वही भक्ति 'परमा' है. जब महापुरुषोंके वरदान वा कृपासे लौकिक पदार्थ भी उत्कृष्ट ही होते हैं तो अवश्य ही भक्तिका भी उत्कर्ष होगा. अतः द्रोणने बह्मासे 'परमा' भक्तिकेलिये प्रार्थना की है.

लोकमें देखा जाता है कि किसी भी देवताकी भक्तिसे भक्तका उपकार होता ही है. इसलिए किसी भी देवमें भक्ति हो जाती है (मनुष्य करते ही हैं) जैसे ब्रह्मामें वह भक्ति पुरुषार्थ रूप नहीं है. द्रोणके मनमें यह हुआ कि केवल परमा-भक्ति मांगनेसे कदाचित प्रसन्न हुआ ब्रह्मा, किसी देवताकी भक्ति प्राप्तिका वरदान दे देवे, तो मेरी मनः कामना निष्फल हो जाएगी. अतः स्पष्ट शब्दोंसे उस देवकी परमा-भक्तिका वरदान मांग लूं जिससे हम संसारसे पार हो जांय. यह विचारकर ही द्रोणने सबसे उत्कृष्ट देवकी परमा-भक्ति मांगते हुए कहा कि 'महादेव' जिस देवसे पर अर्थात् श्रेष्ट देव कोई नहीं है. जो देवोंमें परम पदधारी है वही 'महादेव' है. द्रोण स्वयं 'वसु' है और ब्रह्मा देवोंमें श्रेष्ठ है. उससे भी महान् जो महादेव है वह भगवान् पुरुषोत्तम ही है. यह महादेवका उत्कर्ष स्वतः है. अब भगवान् पुरुषोत्तम स्वरूप महादेवका कार्यसे उत्कर्ष बतानेकेलिये 'विश्वेश्वरे' और 'हरौ' दो नाम दिये हैं. 'विश्वेश्वरे' नामसे बताया है कि वह विश्वमात्रका ईश्वर होनेसे सबको सब प्रकारके फल देते हैं और 'हरि' नामसे यह प्रकट किया है कि सबके सर्व प्रकारके दुःख हरण करनेवाले हैं. इस प्रकार दो नामोंसे कार्य द्वारा भगवान्का उत्कर्ष सिद्ध किया गया है. इस कार्यके उत्कर्ष बतानेसे हम क्या समझे? उसपर कहते हैं कि ऐसे स्वरूप और कार्यसे उत्कर्षवालेकी ही पराभक्तिसे मनुष्य शीघ्र सरलतासे इस दुर्गतिसे छूटकर परमानन्दको प्राप्त करते हैं. आचार्यश्री दुर्गति' शब्दको समझाते हैं कि जीवका देहसे सम्बन्ध ही जीवकी दुर्गति है. कारण कि देहसे संबंध होनेसे ही देहाध्यास होता है जिससे स्वरूप विस्मृति होती है और स्वरूप विस्मृतिसे अन्य अध्यास एवं अहन्ता ममतात्मक संसार उत्पन्न होता है. जिस कारणसे जीव जन्म-मरणके चक्कर काटता रहता है. अतः देह सम्बन्ध ही दुर्गति है. इस दुर्गतिसे तरनेका अनायास(सहज) मार्ग 'भक्ति' ही है. भक्ति मार्ग, अनायास मार्ग कैसे है? इसको आचार्यश्री दृष्टान्त देकर समझाते हैं. जैसे कोई मनुष्य नौकामें यदि बैठ जाय तो उसको पार पहुंचनेकेलिये कोई परिश्रम नहीं करना पड़ता है क्योंकि नौकाको चलानेवाला नाविक नौकाको पार ले जानेका परिश्रम स्वयं करता है. उसी प्रकार जो

भगवान्‌की भक्तिरूप नावमें बैठ जाता है, उसको फिर अन्य कुछ भी नहीं करना पड़ता. उसका खेवट, स्वयं हरि उसको पार पहुंचाता है. द्रोणकी प्रार्थना सुनकर ब्रह्माके निम्न श्लोकमें 'तथास्तु' इतने ही वचनोंका उल्लेख है. इसपर आचार्यश्री कहते हैं कि ब्रह्मा भक्तिके साधन बताने और उपदेश देनेमें असमर्थ थे, इसलिए ब्रह्माने केवल 'तथास्तु' कहा जिसका आशय है कि आप जो भगवान्‌में 'परमाभक्ति' चाहते हो वह 'भगवत्कृपा'से आपको प्राप्त हो ।।४९।।

१. यहां जो 'स्यात्' पद दिया गया है वह व्याकरणानुसार 'अस्' धातुका विधि(लिङ्) लकार है यह व्याकरण नियमानुसार प्रार्थनाकेलिये दिया जाता है.

अस्त्वित्युक्तः स एवेह व्रजे द्रोणो महायशाः ।।
जज्ञे नन्द इति ख्यातो यशोदा सा धराभवत् ।।५०।।

ब्रह्माने विशेष न कहकर केवल 'अस्तु' इतना ही कहा, वह ही महायशस्वी द्रोण व्रजमें उत्पन्न हुआ और नन्द नामसे प्रख्यात हुआ तथा वह धरा यशोदा हुई ।।५०।।

ब्रह्माके वचन झूठे नहीं होते हैं. इसपर विश्वास कर, द्रोण अपने स्वर्ग लोकमें, सृष्टि उत्पादन कार्य करने लगा. जब द्रोणके अधिकारकी समाप्ति हुई और प्रलय हुई, तब द्रोण ब्रह्मलोकमें रहने लगा. वहां द्रोणने जाना कि भगवान् भूमिपर प्रकट होंगे. यह जानकर उस द्रोणने ब्रह्माकी प्रेरणासे व्रजमें जन्म लिया और नन्द नामसे प्रसिद्ध हुआ. क्योंकि पहले कल्पका नाम इस कल्पमें प्रकाशित नहीं करना चाहिए. इसलिए द्रोणका नाम विशिष्ट प्रकारसे प्रकट नहीं किया गया. भगवान्‌का नाम आनन्द है जिसमें 'आ' और 'नन्द' दो पद है. 'आ'का अर्थ है चारों तरफ और 'नन्द'का अर्थ है हर्ष करानेवाला; अर्थात् जो चारों तरफ प्रत्येक पदार्थको हर्षित करानेवाला है वह 'आनन्द'(भगवान्) है. उस आनन्द नामसे 'आ' अक्षरका त्यागकर शेष अंश 'नन्द'से द्रोण व्रजमें प्रसिद्ध हुआ है. शेष अंश 'नन्द'के ग्रहणका आशय यह है कि फल(आनन्द) ही ग्रहण करना है.

उस कल्पकी सृष्टि नष्ट हुई तो भी द्रोणको मिला हुआ वर क्यों नष्ट न हुआ? इसके उत्तरमें श्लोकमें द्रोणको 'महायशा' कहा गया है. द्रोणका यश स्वल्प नहीं है किन्तु महत् है. इसलिए जब तक यश है, तब तक वर भी रहेगा. न केवल द्रोण नन्द हुआ है, किन्तु 'द्रोण'की वही स्त्री, धरा भी आकर 'यशोदा' बनी है. यदि धरा, यशोदा न बनती और कोई अन्य स्त्री यशोदा होती, तो उसके

साथ संसर्ग करनेसे, द्रोण(नन्द)के कर्म(धर्म) क्षय(नाश) हो जानेसे, भक्तिकी प्राप्ति न होती।।५०।।

द्रोण और धराने व्रजमें नन्द और यशोदाके रूपमें जन्म लिया और किसी भी साधन(कर्म) किए बिना उनकी श्रीकृष्णमें भक्ति हो गई. जिसका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं.

ततो भक्तिर्भगवति पुत्रीभूते जनार्दने ।।
दम्पत्योर्निंतरामासीद् गोपगोपीषु भारत ।।५१।।

हे भारत ! ब्रह्माके वर मिलनेके कारण एवं उनके प्रसादसे नन्द यशोदाकी पुत्ररूपसे स्वीकृत किए गए जनार्दन भगवान्में अतिशय भक्ति हुई. गोप गोपियोंकी भी भगवान्में अतिशय भक्ति हुई. गोप गोपियोंकी भगवान्में भक्ति तो हुई किन्तु नन्द यशोदा जैसी नहीं हुई ।।५१।।

नन्द यशोदाकी श्रीकृष्णमें भजन सहित प्रेम लक्षणा भक्ति जन्म लेते ही हो गई. भजन दो प्रकारसे होता है, १.देव भावसे और २.पुत्र भावसे. देव भावसे भजन करनेमें 'सेवा' मुख्य है और पुत्र भावसे भजन करनेमें प्रेम मुख्य है क्योंकि शास्त्रमें पुत्रकी सेवा करनेकेलिये नहीं कहा गया है, पुत्रसे तो प्रेम करना है. अतः पुत्र–भावमें सेवा गौण है और प्रेम मुख्य है. अत: आचार्यश्रीने नन्द यशोदाको भजन सहित प्रेम लक्षणा भक्ति हुई, ऐसे कहा है. नन्द यशोदाने कोई साधन नहीं किया, फिर भी ऐसी प्रेम लक्षणा भक्ति हो गई; उसका क्या कारण है? इसके उत्तरमें श्री शुकदेवजीने श्लोकमें 'पुत्रीभूते' शब्द दिया है जिसका भाव आचार्यश्री बताते हैं कि भगवान् किसीके पुत्र हो नहीं सकते हैं, क्योंकि पुत्रके होनेमें, मुख्य कारण माता– पिताके रजो–वीर्य संयोगसे गर्भाधान होना है, इस प्रकार जो उत्पन्न होता है वह पुत्र कहा जाता है. भगवान्का प्राकट्य तो इस प्रकारसे नहीं हुआ है, अत: भगवान् पुत्र नहीं, किन्तु नन्द यशोदाके मनमें ऐसा भाव उत्पन्न कर दिया कि मैं आपका पुत्र हूं, जिससे वे उसको पुत्र समझने लगे. यह तो स्वभाव सिद्ध है कि पुत्रमें उसके जन्मते ही स्नेह और भक्ति स्वतः ही हो जाती है.

भगवान्ने किसलिए अवतार लिया? इसके उत्तरमें शुकदेवजीने भगवान्का 'जनार्दन' नाम दिया है जिसका भाव आचार्यश्री प्रकट करते हैं कि जो अविद्या संसार(आवागमन) कराती है; उसको भगवान् नष्ट करनेवाले हैं इसलिए वह जनार्दन कहलाते हैं. अत: अविद्याका नाशकर मोक्षदानार्थ ही आपने अवतार

लिया है. प्रसंगसे भक्तिदान कार्य भी आपने किये हैं. किन्तु प्रासङ्गिक कार्य भगवान्के प्राकटयमें कारण नहीं हो सकते हैं. भगवान् सबोंको मोक्ष देनेकेलिये प्रकट हुए हैं. यहां भक्ति-मार्गमें 'मोक्ष' शब्दका भावार्थ भजनानन्द है; जो ब्रह्मानन्दसे विशेष अगणित आनन्द है. नन्द और यशोदा गोप एवं गोपियोंके मध्यमें रहते थे. जिन गोप गोपियोंका निरोध नहीं हुआ था उनका संग था एवं किसी प्रकारका अन्य सत्संग भी नहीं था. तो भी सर्वधर्मनिष्ठ(अपने धर्ममें स्थित) होनेसे, भगवान्में अतिशय भक्ति हो गई. परीक्षितको शुकदेवजीने 'भारत' सम्बोधन देकर यह जताया है कि जैसे कुलमें बहुतसोंके उत्पन्न होते हुए भी 'भरत' ही एक 'अलौकिक' हुआ है, वैसे ही अनेक गोप गोपिकाओंके होते हुए भी नन्द यशोदाको ही भगवान्में पुत्र भावसे प्रेम लक्षणा अतिशय भक्ति उत्पन्न हुई ।।५१।।

यदि नन्द यशोदाकी भगवान्में भक्ति ब्रह्माके वाक्यसे हुई थी, तो भी भगवान् जिस निरोधको करना चाहते हैं वह सिद्ध नहीं होगा. इस शंकाके मिटानेकेलिए निम्न श्लोक कहा गया है.

कृष्णो ब्रह्मण आदेशं सत्यं कर्तुं व्रजे विभुः ।।
सहरामो वसंश्चक्रे तेषां प्रीतिं स्वलीलया ।।५२।।

ब्रह्माके वाक्यको सत्य करनेकेलिए, विभु, श्रीकृष्णने बलरामजीके साथ व्रजमें निवासकर, अपनी लीलासे उनके हृदयोंमें, अपनेलिए प्रेम उत्पन्न किया।।५२।।

भगवान् सबके कार्यको पूर्ण रीतिसे सिद्ध करनेकी सामर्थ्यवाले हैं. अतः ब्रह्माके दिये हुए वरको सत्य करनेकेलिये, व्रजमें पधारकर बलभद्रजीके साथ निवासकर, व्रजमें रहनेवाले सबका ही अपनी लीलासे अपनेमें प्रेम उत्पन्न किया. ब्रह्माका वाक्य भगवान्ने इसलिए सत्य किया कि वह भगवान्का अधिकारी है. अधिकारीका वाक्य सत्य करना ही चाहिए. दूसरे किसी साधनवाले देशमें वर सत्य करवाते तो वर फलीभूत होनेमें संशय रह जाता था कि ब्रह्माके वरदानसे भगवान्में भक्ति हुई कि किसी अन्य साधनसे हुई. ऐसा संशय किसीको भी न हो एतदर्थ भगवान्ने व्रजमें ही पधारकर ब्रह्माका वर सत्य किया.

भगवान्ने इस अयोग्य देशमें कैसे अवतार धारण किया? आचार्यश्री (व्रजको अयोग्य देश केवल इसीलिए कहते है कि वहां साधनहीन एवं अशिक्षित

गोपादि रहते हैं). इस शंकाके मिटानेकेलिये ही श्लोकमें भगवान्का 'विभुः' नाम दिया है जिसका भावार्थ, आचार्यश्री प्रकट करते हैं कि वह सर्व करणकेलिये समर्थ हैं. सर्व प्रकारके स्थानपर स्थित होकर भी चाहे वह कर सकते हैं. तात्पर्य यह है कि अयोग्य स्थानको योग्य बना सकते हैं; एवं अयोग्योंको भी योग्य करनेमें आपको श्रम नहीं होता है. भगवान् अयोग्य स्थानमें रहते हुए साधन रहित(अयोग्य) जीवोंके अधीन होकर लीला करते हैं, जो श्रुतिसे विरुद्ध समझी जाती है किन्तु वास्तवमें सूक्ष्म दृष्टिसे विचारा जाय तो वह आपकी लीला श्रुति विरुद्ध नहीं है, इसलिए आपने साक्षीकेलिये अपने साथ वेदात्मा श्रीबलदेवजीको लिया है कि देखो! मैं जो लीला करता हूं वह लीला ''यमेवैष वृणुते तेनैव लभ्यः'' जिसका वरण परमात्मा स्वयं निज इच्छासे करते हैं उसको ही परमात्माकी प्राप्ति होती है. अतः मैं(परमात्मा हूं, किसीका भी वरण, निज इच्छासे करनेमें विभु होनेसे समर्थ हूं. अत: मेरी यह लीला शास्त्र सम्मत है. इसका साक्षी, वेदात्मा बलरामजी है. श्लोकमें 'वसन् चक्रे' कहा है इसका भाव आचार्यश्री बताते हैं कि व्रजवासियोंका प्रेम अपनेमें करानेकेलिये भगवान्को वहां रहनेके अतिरिक्त अन्य कोई परिश्रम नहीं करना पड़ा. ब्रह्माने जो वरदान दिया था उससे भी आपने यह विशेष किया है कि जिन गोप, गोपी आदि व्रजवासियोंके मध्यमें नन्द यशोदाका निवास था उन्होंकी प्रीति भी लीला द्वारा अपनेमें करवाई. 'लीला' शब्दका तात्पर्य है कि सबका मनोरंजन करते हुए अपनेमें प्रेम कराना. व्रजमें भगवान् रहे और उन्होंने लीला की. इन दोनोंका प्रयोजन भिन्न-भिन्न था. व्रजमें रहनेका प्रयोजन था ब्रजवासियोंका अपनेमें प्रेम उत्पन्न करना और लीला करनेका तात्पर्य था स्वरूपानन्दका अनुभव कराना ।।५२।।

इति श्रीमद्भागवत दशमस्कन्धकी श्रीवल्लभाचार्यविरचित सुबोधिनी टीकाके तामस प्रकरणके 'प्रमाण' अवान्तर प्रकरणके यशनिरूपक अध्याय ४ का (स्कन्धानुसार अध्याय ८) का हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण.

अध्याय ९

यमलार्जुन उद्धार

शास्त्रार्थतो यथा भक्तिः हरौ भवति निश्चला ।।
तदर्थं नवमे प्राह चरित्रं परमाद्भुतम् ।।का.१।।

कारिकार्थ : जिस प्रकार शास्त्रार्थसे हरिमें दृढ भक्ति होवे तदर्थ(उसके लिए) इस नवम अध्यायमें भगवान्का परम अद्भुत चरित्र वर्णन करते हैं.

परीक्षित राजाने दशमस्कन्धके ७वें अध्यायके दूसरे श्लोकमें शुकदेवजीसे प्रश्न किया कि भगवत्कथाश्रवणमें प्रेमका अभाव और संसारके तृष्णादि सर्व दोष जिन चरित्रोंके श्रवणसे जीवके मिट जावें तथा अन्तःकरण शीघ्र शुद्ध होकर, भगवान्में दृढ भक्ति होवे वे कौनसे चरित्र हैं? वे मुझे सुनाओ. उस प्रश्नके उत्तरका इस नवमाध्यायमें वर्णन किया गया है. यह बतानेकेलिए आचार्यश्रीने इस प्रथम कारिकामें 'तदर्थं' ('उसकेलिए' अर्थात् उस प्रश्नके उत्तरके लिए पद दिया है). आचार्यश्रीने इस कारिकासे यह भी समझाया है कि नवम अध्यायमें जो भगवान्के परम अद्भुत चरित्र वर्णन किये हैं, उनसे चरित्र सुननेवालोंको, शास्त्रार्थ क्या है? यह समझमें आ जाएगा, कि शास्त्रका अर्थ भगवान् है और शास्त्रोंमें भगवान्के स्वरूपका वर्णन है, यह ज्ञान होनेसे जीवकी भगवान्में स्थिर दृढ भक्ति होगी।।१।।

स्वरूपं च कृपालुत्वं हरेर्ज्ञातव्यमञ्जसा ।।
अतो दयासुसंमिश्रं ज्ञानमत्र निरूप्यते ।।का.२।।

कारिकार्थ : भगवान्का स्वरूप और कृपालुपन पूर्णतया जानना चाहिए. इसका ज्ञान हो जावे, इसलिए नवम अध्यायमें दयासे पूर्णतया मिश्रित, ज्ञानका वर्णन किया जाता है.

राजा परीक्षितको ईशानुकथा पर्यन्त भगवान्की सात लीलाओंके श्रवणसे पूर्ण माहात्म्यका ज्ञान हो गया था, तो भी पुनः भक्ति सम्बन्धी स्कन्ध १०।७।२ में प्रश्न किया है. जिसका तात्पर्य यह है कि राजाको स्पष्टतया जाननेकी इच्छा थी कि भगवान् भक्तोंके शीघ्र दुःखहर्ता हैं वा नहीं एवं सबके उपर प्रसन्न होते हैं वा नहीं. इस प्रकार यशोदाने मुखारविन्दमें जगत् देखा, तो उसके मनमें भगवान्के स्वरूप एवं दयालुता जाननेकी इच्छा उत्पन्न हुई. इन

दोनों(राजा एवं यशोदा)की इच्छा पूर्ण करनेकेलिए भगवान्ने जो चरित्र किये हैं उनका वर्णन इस नवमाध्यायमें हुआ है जिससे भगवान्के स्वरूप एवं दयालुपनका ज्ञान हो जाता है अतः यह नवम अध्याय 'ज्ञान'का अध्याय है।।२।।

निरोधो यदि भक्तानां स्वस्मिन् स्वस्य च तेषु च ।।
तदोभयसुसम्बन्धाद् दृढो भवति नान्यथा ।।का.३।।

कारिकार्थ : जब भक्तोंका भगवान्में और भगवान्का भक्तोंमें निरोध हो जावे, तब दोनोंका परस्पर सुन्दर श्रेष्ठ सम्बन्ध हो जानेसे 'निरोध' दृढ हो जाता है, यदि इस प्रकारका निरोध नहीं है तो निरोध 'दृढ' न होगा.

कारिकामें कहा गया है कि निरोध तब दृढ होता है जब भगवान्का भक्तोंमें और भक्तोंका भगवान्में निरोध होगा. इससे यह शंका होती है कि 'निरोध' होनेपर, प्रपञ्चकी विस्मृति होती है. भक्तोंकी तो प्रपञ्चकी विस्मृति हो सकती है क्योंकि वे अल्पज्ञ जीव हैं, किन्तु भगवान् जो सर्वज्ञ एवं पूर्णज्ञानी हैं उसकी प्रपञ्चविस्मृति हो नहीं सकती है, अतः भगवान्का भक्तोंमें 'निरोध' कैसे होगा? इस शंकाका समाधान यह है कि भगवान् 'विरुद्ध धर्माश्रयी' हैं अर्थात् भगवान्में परस्पर विरुद्ध धर्म रहते हैं जैसे अणु भी है, महान् भी है, इत्यादिसे समझना चाहिए कि भगवान् लीलार्थ सर्वज्ञ होते हुए भी अज्ञवत्(अनजानकी तरह) क्रिया करते हैं. सर्वचतुर-शिरोमणि होते हुए भी माताके सम्मुख मुग्धवत्(भोले-भाले) विराजते हैं. वैसे प्रपञ्चका पूर्ण ज्ञान होते हुए भी भक्त निरोध दृढ करणार्थ आप भी भक्तमें निरुद्ध हो जाते हैं और प्रपञ्च विस्मृतिका नाट्य करते हैं।।३।।

ज्ञानवैराग्यरूपैर्हि स्वाधीनो भगवान् भवेत् ।।
अतोध्यायत्रये लीला जीवाधीना निरूप्यते ।।का.४।।

कारिकार्थ : भगवान् ज्ञान, वैराग्य और स्वरूपसे भक्तोंके आधीन होते हैं. इस कारण तीन अध्यायोंमें जीवोंके आधीन होकर भगवान्ने लीलाएं की हैं.

यहां 'ज्ञान' शब्द मर्यादा शुद्धाद्वैतज्ञानके भाव बतानेकेलिए नहीं दिया है. किन्तु भगवान्को केवल अपने निज-अन्तरंग भक्तका जो ज्ञान होता है कि यह मेरा है, उस ज्ञानकेलिए दिया है, यह 'स्नेहीभक्त'का ज्ञान सर्वत्र स्वतन्त्र भगवान्को भक्तके वश करता है. इस ज्ञानसे भगवान् [1]पुष्टिमार्गीयको अपना सम्बन्धी समझते हैं, स्व-सम्बन्धके कारण भक्तोंकी इच्छित कामनाओंको पूर्ण

करते हैं जैसे यशोदा मैयाको माता समझते हैं. जिससे इस अध्यायमें दामोदर लीलाकर, अपनी भक्तवश्यता और कृपालुपन बताया है एवं माताका मनोरथपूर्ण किया. 'वैराग्य' विषयोंकी तृष्णाको मिटानेको 'वैराग्य' कहते हैं; किन्तु यहां आचार्यश्रीने 'वैराग्य' पद उस अर्थमें न देकर इस आशयसे दिया है कि भगवान्का भक्तोंके बिना किसीमें भी राग(प्रेम) नहीं है, अतः भगवान्का भक्तोंमें राग होनेसे भक्तोंके वश होते हैं और भक्तोंके कैसे भी वचन हों तो भी आप उनको सत्य करते हैं जैसे नारदजी भगवान्के भक्त हैं, उनके दिए हुए वचनको सत्य करनेकेलिए 'यमलार्जुन'का उद्धार किया.

'स्वरूप' भगवान्के अनेक रूपोंमेंसे एक 'लीला पुरुषोत्तम' स्वरूप ही है जिसका अन्योंमें वैराग्य है केवल भक्तोंमें 'राग' है. जिस रागके कारण स्वरूपसे भी भक्तोंके वश हो जाते हैं.

इस प्रकार नवमाध्यायमें ज्ञान, दशममें वैराग्य और एकादशमें 'स्वरूप' द्वारा जो भक्तपारवश्य होना दिखाया है उन लीलाओंका वर्णन इन तीन अध्यायोंमें पृथक् पृथक् किया गया है।।४।।

१. पुष्टिमार्गीय वह है जो भगवान्को ही अपना शरण्य, स्नेही, सम्बन्धी सब कुछ समझता है और ''सन्त्यज्य सर्वविषयात्'' जिसने गोपीजनोंके समान सब विषयोंको छोड दिया है.

अतिपौरुषमेतद्धि जीवानामिति निश्चितम्।।
द्वादशाङ्गमतिक्रम्य षड्भिर्वश्यो भवेद्गुणैः।।का.५।।

कारिकार्थ : यह निश्चयसे समझना चाहिए कि जो भगवान् स्वतन्त्र हैं उनको भी वश कर लेना यह जीवोंका विशेष पौरुष है. भगवान् बारह अंगोंका अतिक्रमणकर, अपने छः गुणोंसे वश हो जाते हैं.

इस कारिकामें आचार्यश्री आज्ञा करते हैं कि पुरुषोत्तम नव[२] प्रकारकी सगुण भक्ति एवं दसवीं गुणातीत-भक्तिसे तथा वेदके दो काण्ड-पूर्व काण्ड(कर्म) एवं उत्तर काण्ड(ज्ञान)से भी आधीन नहीं होते हैं, बारहों(दश प्रकारकी भक्ति कर्म और ज्ञान)का अतिक्रमण करते हैं. अर्थात् इस मर्यादाका उल्लंघन करते हैं केवल गुणोंसे(अपनी इच्छासे) वश होते हैं ।।५।।

१.तामस-सात्त्विक, २. तामस-राजस, ३.तामस-तामस, ४.राजस-सात्त्विक, ५.राजस-राजस, ६.राजस-तामस, ७.सात्त्विक-सात्त्विक, ८.सात्त्विक-राजस,

९.सात्त्विक-तामस.

पञ्चपर्वामविद्यां हि लोकानामपि नाशयेत् ।।

अतः पञ्चभिरुक्तो हि विचारो भगवद्गतः ।।का.६।।

कारिकार्थ : भगवान् लोकोंकी पञ्चपर्वा अविद्याका नाश करते हैं. इस कारणसे भगवत्सम्बन्धी विचार पांच श्लोकोंसे कहे गए हैं.

इस कारिकामें जो पञ्चपर्वा अविद्या कही गई है, वह स्वरूप विस्मृति एवं देहाध्यास आदि अविद्या नहीं समझनी. यहां तो भगवान् रस-स्वरूप(लीला पुरुषोत्तम) पुष्टि(स्नेहात्मक प्रेमलक्षणा) भक्तिके हैं, जो बिना अन्य साधनोंसे वशमें होते हैं. यह लोकोंकी अविद्या है, इस प्रकारकी अविद्याका नाश भगवान्ने इस लीला द्वारा किया है. जिसका वर्णन इस अध्यायके १९से २३ श्लोकमें किया गया है.

नवम अध्यायमें २३ श्लोक हैं, उनका विभाग बताते हैं. प्रथम यशोदाका विशेष पौरुष(क्रियासे भगवत्प्राप्ति)का तथा भक्ति दश प्रकारकी है. नव प्रकारकी साधन-भक्ति, एक गुणातीत भक्ति. गुणातीत भक्तिसे भगवान्की प्राप्ति होती है. अथवा नव प्रकारकी भक्ति युक्त स्नेहसे भगवान्की प्राप्ति होती है. इसका वर्णन दस श्लोकोंमें किया गया है. दो श्लोकोंसे भगवान्को पकडनेके उद्यमका वर्णन है क्योंकि कर्म एवं ज्ञानके दो काण्डोंका उसमें समावेश है. छः श्लोकोंसे वशीकरणकी लीला बताई गई है और पांच श्लोकोंसे अविद्याका बोध किया गया है. इस प्रकार श्लोकोंका विषयपरत्वे विभाग बताया गया है।।६।।

निवारितापि संसारे मोहिता सङ्गता पुनः ।।

गुणगाने स कालोभूत् श्रमो द्वाभ्यां ततोभवत् ।।का.७।।

कारिकार्थ : भगवान्ने प्रथम यशोदाको ज्ञान देकर, उसकी मायासे उत्पन्न संसारासक्ति नष्ट की और अपने ब्रह्मत्वका ज्ञान कराया, फिर अपनी दैवी माया द्वारा वह ब्रह्मपनेका(यह मेरा पुत्र नहीं किन्तु ब्रह्म है इस प्रकारका) ज्ञान खेंच लिया, जिससे यशोदा फिर मोहको प्राप्त होकर संसारके कार्य करने लगी. कार्य करनेके समय भगवद् गुणगान करती थी. पीछे यशोदाके श्रमका दो श्लोकोंमें वर्णन है.

भगवान्ने दैवी मायासे ज्ञान खेंच लिया अर्थात् कृष्णमें यशोदाकी ब्रह्म बुद्धि उत्पन्न हुई थी, उसको मिटाकर अपनेमें स्नेहकी वृद्धि करा दी, जिससे

यशोदाका पुनः भगवान्में पुत्र-भाव उत्पन्न हो गया. ज्ञान मिटनेसे, जो गृह-कार्य दधिमन्थनादि करने लगी थी, उसको छोड भगवान्को फिर गोदमें लेकर स्तन्य पान कराने लगी. स्तन्य पान कराते हुए जब स्नेह स्निग्ध यशोदाजीके नेत्र, भगवान्के अलौकिक मुखारविन्दमें आसक्त थे तब भगवान्ने अपने माया रूप स्मित हास्य द्वारा यशोदामें पुनः संसारासक्ति उत्पन्न कर दी. अतः यशोदाको चूल्हेपर धरे हुए दूधका स्मरण आ गया कि दूधमें उफान आया तो दूध बह जाएगा बस भगवान्को भी नीचे विराजमानकर चली गई।।७।।

अतः कृतो निषेधो हि भक्तिसारं हरिः पपौ ।।
ततो रिक्ता पूर्वबुद्ध्या सङ्गतान्यत् चकार ह ।।का.८।।

कारिकार्थ : अतः(इस कारणसे) यशोदाको निषेधकर, हरिने भक्तिरसका पान किया इससे यशोदाकी पहली बुद्धि(गुणगानवाली) चली जानेसे संसारासक्त हो दूसरा गृह कार्य करने लगी.

दधिमन्थनके समय यशोदा भगवद्गुणगान करती थी. भगवान्ने दधिकी मथनी पकडकर बिलोना बन्द करा दिया. जिससे यशोदाका गुणगान करना भी बन्द हो गया. यह कार्य भगवान्ने योग्य नहीं किया. ऐसी शंका नहीं करनी चाहिए. क्योंकि भगवान् भक्तके दुःखको सहन नहीं कर सकते हैं. भगवान्ने देखा कि मेरी एक तरफ माता और उससे विशेष मेरी भक्त यह दधिमन्थन करते करते श्रमित हो गई है, जिससे मुखपर पसीनेकी बूंदे चमक रही हैं. इस यशोदाके श्रम(दुःख)को भगवान् सहन नहीं कर सके. इसलिए दधिकी मथानी पकडकर बिलोना बन्द करा दिया और भगवान्को मातासे भक्तिके सारका आस्वादन लेनेकी भी इच्छा थी, इससे भी बिलोना बन्द करवाया. मथानी पकडनेसे यशोदा माताने समझ लिया कि मेरे कन्हैयाको भूख लगी होगी. झट गोदमें लेकर स्तन्य पान कराने लगी. पुत्र स्नेहके कारण, माताके स्तनोंमें जो दूध आता है, वह नामका तो दूध है वास्तवमें वह माताके भक्ति(स्नेह)का सार है. भगवान्ने अपनी इच्छानुसार उस माताके भक्ति-सारका प्रेमसे खूब पान किया और भगवान्के स्मित हास्यरूप मायासे मोहित होनेके कारण यशोदाका सर्व स्नेह जाता रहा. जिससे फिर घरके अन्य कार्य करने लगी ।।८।।

एवं निरुद्धा चेद् भ्रान्ता कोपयुक्तो हरिर्भवेत् ।।
धौर्त्यं दृष्ट्वा लोकदृष्ट्या प्रीता तस्मान्न पश्यति ।।का.९।।

कारिकार्थ : जिसका निरोध हुआ है, वह भी यदि भ्रान्त हो(भूल जाय), तो भगवान्को कोप आना चाहिए. लोककी दृष्टिसे, भगवान्की धूर्तता देखकर, यशोदा प्रसन्न हुई, इससे उसने भगवान्को देखा नहीं.

भगवान्को विचार हुआ कि माताका मैंने निरोध सिद्ध करा दिया है तो भी वह भ्रान्त हो गई है? मुझे छोडकर दूध उतारने गई है. समझती है कि यह दूध कन्हैयाके कामका है; यह नष्ट न हो जाय, इसलिए उसकी रक्षाकेलिये चली गई. मुझे तो दूधकी आवश्यकता नहीं है. यह केवल यशोदाका भ्रम है, भगवान्ने यशोदाका इस प्रकारका भ्रम जान तो लिया, जिससे उसके ऊपर क्रोध आया किन्तु किया नहीं.

जैसे लोकमें पुत्रकी चपलता देखकर लौकिक मनुष्य प्रसन्न होते हैं, वैसे ही यशोदा भी भगवान्की धूर्तता देखकर प्रसन्न हुई, जिससे मनमें कहने लगी कि मेरा कन्हैया भी अब चतुर हो गया है ।।९।।

जिज्ञासायां ततो दृष्ट्वा प्राप्त्यर्थं यत्नमाचरत् ।।
विरुद्धांस्तान् हरिर्ज्ञात्वा तपसे निर्गतस्ततः ।।का.१०।।

कारिकार्थ : उसके पीछे जिज्ञासा(भगवान् कहां है, इसको जाननेकी इच्छा) होते ही, भगवान्ने दर्शन दे दिये, देखकर उसको पकडनेका यत्न करने लगी. उस (यशोदा)के यत्न(लकडी लेना आदि)को विरुद्ध(व्यर्थ अर्थात् इससे मैं इसके पकडमें न आऊँगा) समझ, भगवान् यशोदाको तपस्या(अपनी प्राप्तिका यत्न) करानेकेलिए वहांसे भाग गए.

इस कारिकामें आचार्यश्रीने यह बताया है कि जब यशोदा दूधको सम्भालकर लौटी, तो उसने कन्हैयाको वहां नहीं देखा, तब उसको जाननेकी इच्छाका यशोदाके मनमें प्रादुर्भाव हुआ अतः उसको पकडनेकेलिए एवं शिक्षा देनेकेलिए हाथमें लकडी लेकर यत्न प्रारम्भ किया. भगवान्ने उस समय दर्शन तो दिये, परन्तु माताके निकट न आए. कारण कि भगवान्ने समझा कि माताका अन्तःकरण दोषसे भरा हुआ है, तब उसको भ्रम हुआ है. यह दोष निवृत्त कराना चाहिए. दोष निवृत्तिका साधन तप है. जब दोष, पूर्ण निवृत्त होगा तब मेरी प्राप्ति होगी. भगवान्को प्राप्त करनेकेलिए किए हुए जिस कर्ममें, शरीरादिको कष्ट हो, वह तपस्या है. उस तपको भगवान्का 'वीर्य' गुण(धर्म) कहा जाता है. इस प्रकारकी तपस्यासे मेरी प्राप्ति होती है. अतः माताको तप कराना चाहिए, बस

यह विचारकर, माताको आते देख, दौडकर भागने लगे. यशोदा, भगवान्को पकडनेकेलिए पीछे शीघ्रतासे दौडी, परन्तु पकड न सकी. दौडते दौडते यशोदा माता बहुत श्रमित हुई(थक गई). इस तप करनेमें ज्यों ज्यों शनैः शनैः(धीरे धीरे) दोष निवृत्त होते गए, त्यों त्यों यशोदा अपने यत्नको त्यागने लगी, जैसे ली हुई लकडी छोड़ दी फिर दौड़ने लगी. इस प्रकार भगवान्ने यशोदाको अपनेको प्राप्त करानेकेलिए तपस्या कराई ।।१०।।

पूर्ण तपसि तत्प्राप्तिरेवं दशभिरुच्यते ।।
परोक्षवादा ऋषयः परोक्षं च हरिप्रियम् ।।का.११।।
आसक्तिं चेत् स्वतः कुर्यात् जीवः कृष्णः पलायते ।।
तदा दृढो निरोधः स्यान् नान्यथेत्येष निर्णयः ।।का.१२।।

कारिकार्थ : जब यशोदाने इस प्रकारकी तपस्या पूर्ण की, तब यशोदाको भगवान्की प्राप्ति हुई. यह चरित्र दश श्लोकोंमें कहा है. ऋषि लोक परोक्षवादी हैं, हरिको भी परोक्ष प्रिय है।।११।।

जब श्रीकृष्ण सान्निध्यमें(निकट) न हों उस समय यदि जीव अपने आप श्रीकृष्णमें आसक्ति करे तब निरोध दृढ़ होता है दूसरे प्रकारसे नहीं होता है।।१२।।

व्याख्या: जिसमें अपना प्रेम होता है वह यदि दूर हो तो दिनरात उसकी स्मृति होती रहती है और अन्य कार्य फीके लगते हैं मनमें यह रट लगी रहती है कि वह कब मिलेगा इस प्रकारसे जब उस प्रियमें आसक्ति बढ़ती जाती है तब दृढ़ निरोधकी सिद्धि होती है इसलिए ही भगवान्ने पलायन(दौडनेकी) लीलाकर यशोदाका निरोध दृढ़ किया है.

इससे पूर्वाध्याय (८)में भगवान्ने यशोदामें जो आधिदैविक मोह उत्पन्न किया उस मोहके कार्यका वर्णन इस प्रथम श्लोकमें करते हैं.

एकदा गृहदासीषु यशोदा नन्दगेहिनी ।।
कर्मान्तरनियुक्तासु निर्ममन्थ स्वयं दधि ।।१।।

किसी दिन जब नन्दकी गृहिणी(पत्नी) यशोदाने देखा कि सब गृह-दासियां अन्य कार्योंमें लगी हुई हैं तब वह स्वयं दधिमन्थन करने लगी।।१।।

जब भगवान्की इच्छासे गृहकी सब दासियां खेतोंका संस्कार(सुधारने) करनेकेलिये एवं खेंतोंमें लतादिकोंका गृह बनानेकेलिये गई तब यशोदा आप ही

दहीका बिलोना करने लगी. यशोदाके घरमें दासियां चार प्रकारकी थीं

(१)गोशाला और क्षेत्र की स्वच्छता रखनेका कार्य करनेवाली एवं प्रभु (कृष्ण)के कार्य करनेवाली. (२)यशोदाकी सखियां. (३)नन्दकी दासियां. (४)घरका काम करनेवाली, इन चारमेंसे जो घरके काम करनेवाली थी वे घरके काम करने लगीं.

समझा जाता है कि वे दूसरे घरके काम भी भगवान्के अभ्युदयकेलिये ही थे. दधिका बिलोना यशोदा आप ही क्यों करने लगी. इसलिए शुकदेवजीने श्लोकमें यशोदाको 'नन्दगेहिनी' कहा है जिसका भावार्थ है कि गेहिनी (घरवाली)का दधि बिलोना यह आवश्यक कर्तव्य है ।।१।।

भगवद्भक्तोंकी संसारासक्ति भी भगवद् गुणगानकेलिये ही होती है. उसका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं.

यानि यानीह गीतानि तद्बालचरितानि च ।।
दधिनिर्मथने काले स्मरन्ती तान्यगायत ।।२।।

यहां जो जो गीत एवं भगवान्के बाल–चरित्र प्रसिद्ध थे उनको स्मरण करती हुई यशोदा माता दही बिलोनेके समय गाती थी।।२।।

स्त्रियां सुने हुए चरित्रको छन्दोबद्धकर गीतरूपमें लानेकी शक्तिशाली होती हैं. आज तक भी उनमें यह शक्ति विद्यमान है. जो भगवत् चरित्र यहां(संसारमें) वा गोकुलमें शास्त्रसे अथवा लोकसे(शास्त्रमें लिखे हुए वा लोककी आख्यायिकाओं द्वारा मालूम हुए) प्रसिद्ध थे, अत्यन्त इच्छा होनेसे सब ही चरित्र यशोदाने गीतरूपमें गाए थे, जिनको वह उस समय गा रही थी. इससे समझना चाहिये कि यशोदाका मुख्य कार्य, भगवद्गुण गाना ही था और 'दधिमन्थन' गौण कार्य था. यदि दधिमन्थन मुख्य होता तो दधिमन्थनके समयमें, यशोदा सब गीत नहीं गा सकती थी. श्रीकृष्णके बालचरित्र जो यशोदाने प्रत्यक्ष देखे थे और जो गोपिका आदि व्रजवासियोंसे सुने थे, वे सब गीत. 'च' शब्द श्लोकोंमें जो दिया गया है, उसका आशय आचार्यश्री बताते हैं कि इसके अतिरिक्त दूसरे भी भगवत् चरित्र सम्बन्धी गीत थे, वे सब यशोदा गाती थी. जो समय दधिके बिलोनेका था, वही समय भगवद्गुणगानका भी है. इसका भाव यह है कि क्रिया शक्ति(काम करनेकी, किसी वस्तुको उठाने वा चलानेकी शक्ति) भुजाओं(भुजाओंके कहनेसे हस्त भी उसके साथ समझने)में रहती है.

उनका(भुजाओंका) आधिदैविकरूप इन्द्र है ''इन्द्रियं वै दधि'' इस श्रुतिके अनुसार, दही इन्द्रकी इन्द्रिय है. अतः दहीके मन्थनसे इन्द्रकी इन्द्रियका भी मन्थन होता है. इसलिए आधिदैविक इन्द्रियके मन्थन होनेके समयमें गीतोंका स्मरण होता है जिससे यशोदा दधिमन्थन समय(प्रातःकाल[१])में गीतोंको गाती थी।।२।।

१.भगवत्स्मरणकेलिये प्रातःकाल शास्त्रसिद्ध और लोकसिद्ध एवं अनुभवसिद्ध है, अब भी सर्वत्र सब लोग इस कालमें ही स्मरणादि करते हैं. अनुवादक.

इस निम्न श्लोक तीनमें श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि यशोदाने जो दधिमन्थन समयमें गुणगान प्रारम्भ किया था, वह गान अमृतरूप था, जिससे दधिमन्थन पूर्ण रीतिसे नहीं हो सकता था, इससे यशोदा गानको, गौण समझकर दधिमन्थनकी भौतिक एवं श्रम देनेवाली क्रिया विशेष प्रकारसे करने लगी. उस क्रियासे भगवान्के भजनमें उपयोगी देहको भी कष्ट हुआ, भगवान्के उपभोगमें(भोजनमें) आनेवाले रस भी रुक गए और रस उत्पन्न करनेवाले देवता भी हट गए स्नेहरूप भक्तिको भी पीडा हुई, मुक्तोंको भी क्षोभ हुआ.

क्षौमं वासः पृथुकटितटे बिभ्रती सूत्रनद्धं
पुत्रस्नेहस्नुतकुचयुगं जातकम्पं च सुभ्रूः ।।
रज्ज्वाकर्षश्रमभुजचलत्कंकणौ कुण्डले च
स्विन्नं वक्त्रं कबरविगलन्मालती निर्ममन्थ ।।३।।

सुन्दर भौंवाली यशोदाजीने पुष्ट नितम्बोंपर पहने हुए रेशमी वस्त्रको सूत्र(कटिमेखला)से बांध लिया था, पुत्र स्नेहसे जिसके स्तनोंसे दूध टपक रहा था और वे स्तन भी कांप रहे थे. रज्जु खींचनेके परिश्रमसे भुजाओंमें पहने हुए कंकण और कानोंमें पहने हुए कुण्डल चलायमान हो रहे थे. मुख कमलपर पसीना आ रहा था और गुंथी हुई चोटीमेंसे मालतीके पुष्प निकल निकलके गिर रहे थे, ऐसी वह यशोदा दधिमन्थन करती थी ।।३।।

पट वस्त्र खिसकनेवाले होते हैं. पुनः पुनः अपने स्थानसे सरक जाते हैं. यशोदाने पट वस्त्र पहिने थे. वे खिसक जाते थे. इसलिए यशोदाने उस वस्त्रको जो शरीरसे खिसक जाता था, सूत्र(कटि मेखला, कर्धनी या कन्दोरा)से बांध दिया था. यशोदा उठकर(खड़ी होकर) मन्थन करने लगी. जिससे मथनेमें इस प्रकार आवेशवाली हो गई थी जो यशोदाको वस्त्रका भी भान(सुध) न रहा, इसको बतानेकेलिये श्लोकमें कहा है कि यशोदाके नितम्ब स्थूल थे, इसलिए

कृश(पतली) कटिपर बांधा हुआ वस्त्र गिरता नहीं था. शुकदेवजीने वस्त्रकी सुन्दरताका वर्णन इसलिए किया है कि यशोदाके पास अनेक दासियां हैं, उनमेंसे किसीको बुलाकर मन्थनका कार्य कराती, वैसा न कर, स्वयं करती है, वह योग्य नहीं है. श्लोकमें 'तट' शब्दका भावार्थ आचार्यश्री बताते हैं कि जैसे तटोंके मध्यमें नदीका जल चंचल(चलता ही रहना) है वैसे यशोदा भी चंचल है. जिससे यशोदाको यह ध्यान नहीं आया कि मैं दधिमन्थन इस प्रकार करुं जैसे मेरा सौन्दर्य दृष्टिगोचर न हो. ऐसा विचार न कर, दधिमन्थन करते हुए शरीरकी भी अपेक्षा(परवाह) न की. यशोदा दधिमन्थनमें इतनी लीन हो गई कि माताके सहज धर्म, स्नेहके कारण, जो दूध स्तनोंमें विशेष आनेसे बाहिर बहने लगा, उसका भी उसने विचार न किया. स्तनोंसे जो दूध टपककर बहने लगा, वह दूध नहीं था किन्तु माताका स्नेह था. इस स्नेहके व्यर्थ नष्ट होनेसे उनके अभिमानी देवताने डरकर, दोनों स्तनोंको कम्पित किया. स्तनोंके अभिमानी देवता कहनेका आशय कञ्चुकी(चोली)से है. वह स्तनोंको नियममें रखती है, किन्तु जब स्नेह बढ़नेसे स्तनोंमें दूध विशेष हो जाता है, तब वे फूलते हैं और दूध टपकने लगता है. जिससे वह चोली, भयसे ढ़ीली पड़ गई तो स्तन कम्पित होने लगे. इस भावको बतानेकेलिये श्लोकमें(पुत्रस्नेह-स्नुतकुचयुगं जातकम्पं) कहा है. कम्पित स्तनोंको धारण करती हुई अर्थात् उनकी अपेक्षा न कर दधिमन्थन करती रही. इसका रहस्य आचार्यश्री बताते हैं कि यशोदाने इस प्रकार मन्थन करनेसे आधिभौतिक आध्यात्मिक और आधिदैविककी भी अपेक्षा नहीं की. श्लोकमें दिये हुए 'च'(और) शब्दका भावार्थ आचार्यश्री बताते हैं कि 'अन्तर्यामीकी प्रेरणा'की भी अपेक्षा(अनादर,त्याग) कर दी.

जब यशोदाने इस प्रकार किसीकी भी अपेक्षा न कर स्वच्छन्द कार्य करने लगी, तब भगवान्ने रक्षार्थ, जो मृत्यु और यमको दण्डकेलिये स्थापित किया है, उन्होंने दण्ड क्यों नहीं दिया? इसका उत्तर श्लोकमें 'सुभ्रूः' पदसे यशोदाके गुणको बताकर दिया है. यशोदाकी दो 'भौं' मृत्यु और यमरूप हैं. 'भौंओं'के सिकुड़नेसे दर्शकोंको क्लेश होता है. यदि 'भौओं'का संकोचनकर 'भौं' द्वारा सुन्दर दिखावट हो तो क्लेशका अभाव हो जाता है. अतः दण्डधरोंने देखा कि यशोदाजीके सुष्ठु प्रकारसे चलायमान सुन्दर 'भौंओ'के दर्शन मात्रसे, सबके क्लेश कट गये हैं, तो हम किसलिए दण्ड देवें और 'भौंओं' सुशोभित नहीं

रहीं इससे यह भी आशय निकलता है कि यशोदाको भी दधिमन्थनसे क्लेश नहीं हुआ था.

नेतके खेंचनेसे, उत्पन्न श्रमसे भुजाओंमें पहने हुए कंकण हस्त पर्यन्त आ जाते थे. जिससे यों समझा जाता था कि यशोदाने कंकण हाथमें पहने हैं. वैसे(कंकणवाले) हस्तोंको धारण करनेवाली यशोदा हुई. इससे भक्तिमार्ग और कर्म-मार्ग एवं उनके देवता तथा नियम भी क्लेशयुक्त हुए इसका तात्पर्य यह है कि नेतको खेंचनेवाली दो भुजाएं हैं उनमेंसे दक्षिण भुजा भक्ति-मार्ग और वाम भुजा कर्म मार्ग है. इस दधिमन्थनमें दो क्रियाएं हैं एक भगवान्‌से सम्बन्ध रखनेवाली और दूसरी गृहस्थाश्रमसे सम्बन्ध रखनेवाली है. भगवान्‌से सम्बन्ध रखनेवाली क्रिया मुख्य होनेसे दक्षिण भुजा(मुक्ति मार्ग)से की जाती है अर्थात् भगवत्सम्बन्धी कार्य, मुक्ति मार्गसे सिद्ध होता है. गृहस्थाश्रमसे सम्बन्ध रखनेवाली क्रिया, गौण होनेसे वाम भुजा(कर्म मार्ग)से की जाती है, अर्थात् गृहस्थाश्रम सम्बन्धी कार्य कर्म मार्गसे सिद्ध करते हैं. दक्षिण भुजामें पहने हुए कंकण, भक्ति मार्गके नियम हैं. वाम भुजामें पहने हुए कंकण कर्म मार्गके नियम हैं. इन कंकणोंको पहननेका भाव यह है कि भक्ति मार्गपर चलनेवालोंको भक्ति मार्गके नियम धारण करने हैं और कर्म मार्गके पथिकोंको कर्म मार्गके नियमोंका अनुगामी होना आवश्यक है. यशोदाने कानोंमें जो कुण्डल धारण किये थे, वे सांख्य और योगके रूप थे. दोनों क्लेशयुक्त हुए थे, यशोदाने जो भी आभूषण जहां भी धारण किये थे, वे क्लेशवाले हो गये थे. श्लोकमें आए हुए दूसरे 'च' अक्षरका आशय कहते हैं कि सिर भी कम्पायमान हो रहा था. 'जातकम्पम्' शब्द पृथक् देनेका यही भाव है कि सब क्लेशयुक्त बताने थे. यदि सबोंको क्लेशयुक्त नहीं बताना होता, तो 'जातकम्पम्' पद पृथक् नहीं देकर 'स्नुत-सकम्प-कुचयुगं' एक ही पद कर देते थे. मस्तक सत्य लोकका आधिदैविकरूप है, इसलिए उनके उपर जो केश हैं, वे ज्ञानी और मुक्त जीवोंके रूप हैं. अतः मस्तिष्कके कम्पित होनेसे वे ज्ञानी और भक्त भी क्लेशयुक्त थे. यशोदाजीका मुख भी क्लेशयुक्त होनेसे पसीनेसे भर गया था, इससे यह बताया कि यशोदाके इस प्रकारके मुखसे यह सिद्ध हुआ कि यशोदासे भक्तिका सार अलग हो गया है. यशोदाने अपनी चोटीमें जो मालतीके पुष्प गूंथे थे उनका भाव आचार्यश्री बताते हैं कि केशपाश(चोटी)वाला स्थान सिद्धोंका स्थान है. उस स्थानपर लगे हुए मालतीके

पुष्प, ब्रह्मविद्याके रूप थे, वे भी संसारासक्तिके कारण धीरे-धीरे गिरने लगे (ब्रह्मविद्या जाने लगी). इतना सब होते हुए भी, संसारासक्त यशोदा मन्थन कर रही थी. श्लोकमें जो वर्णन किया गया है वह यदि केवल यशोदाकी आकृतिका (वस्त्रोंसे सुन्दर हुई आकृतिका) वर्णन होता तो चौथे श्लोकमें जो शुकदेवजी कहेंगे, उसका विरोध होता. द्वितीय श्लोकमें यशोदा मन्थन करती हुई भगवद्गुणगान कर रही थी. तब किसीको भी क्लेश न हुआ और तीसरे श्लोकमें केवल यशोदाके स्वरूप एवं आकृतिका वर्णन है. इस प्रकारका अर्थ न कर 'मन्थन कार्य'को अयोग्य एवं सबको क्लेश हुआ, यह आशय आचार्यश्रीने जो बताया है, उसका कारण यह है कि चौथे श्लोकमें शुकदेवजी कहते हैं कि भगवान्ने दधि बिलोनेकी क्रिया करनेसे माताको रोक दिया, बिलोना करने नहीं दिया इससे यह भाव तीसरे श्लोकका स्पष्ट होता है कि तीन श्लोकमें कहे हुए बिलोनेसे सबको कष्ट हुआ और मुख्य भगवद्गुणगान गौण हो गया, जिससे भगवान्ने माताको इस दधि मन्थनसे रोका. इस रहस्यको आचार्यश्रीने ही समझा, इसलिए आचार्यश्रीने तीन श्लोकका भावार्थ इस प्रकार समझाया है कि भगवान्की लीलामें जो भी रहते हैं वे भक्त अलौकिक हो जाते हैं, अर्थात् वे भी भगवद्रूप हो जाते हैं. यशोदा भगवान्की लीलामें स्थित है, अतः जैसे भगवान्के मस्तिष्कमें ज्ञानी और मुक्त निवास करते हैं वैसे ही यशोदाके सिरमें भी केशरूपमें ज्ञानी और मुक्त निवास कर रहे हैं ।।३।।

पूतना-वधकर जिन बालकोंको अपने भीतर स्थापित किए थे, उनको स्तन्य पान करानेकेलिए पहलेकी तरह भगवान्ने स्तन्यकी चाहना करते हुए माता यशोदाको श्रम कार्यसे रोका. इसका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

तां स्तन्यकाम आसाद्य मथ्नन्तीं जननीं हरिः ।।
गृहीत्वा दधिमन्थानं न्यषेधत् प्रीतिमावहन् ।।४।।

दही बिलोती हुई माताके पास स्तन्य-पान करनेकी इच्छासे आकर प्रीति बढाते हुए भगवान्ने मथानीको पकडकर माताको बिलोना करनेसे रोक लिया ।।४।।

भगवान्ने माता यशादाको दोनों प्रकार(क्रिया और ज्ञान)से निरोध सिद्धि करानेकेलिये उनके निकट जाकर दर्शन दिये. निकट जानेकी क्रियासे यशोदाका क्रियारूप निरोध सिद्ध हुआ. जिससे भगवान्को स्तन्य पान कराने लगी और

दर्शनसे ज्ञानरूप निरोधकी सिद्धि हुई, जिससे भगवान्में आसक्ति हुई. आसक्ति होनेसे भगवान्के मुखारविन्दके दर्शनमें मग्न हो गई. (इनका वर्णन ५वें श्लोकमें होगा) यशोदा उस समय दधिमन्थन कर रही थी. भगवान्ने सोचा कि दधिमन्थनसे एक तो दधिमें विकार होगा और यशोदाको भी श्रम हो रहा है. यदि मैं मथानीको पकड़कर रोकूंगा, तो मुझे भी परिश्रम होगा, किन्तु यशोदाके हृदयमें मैंने अपने लिये पुत्रभाव उत्पन्न किया है जिससे वह मुझे पुत्र समझती है. इसलिए वह मेरी माता है. जब कि मैं हरि हूं, सबका दुःख मिटाता हूं तो माताका दुःख तो मुझे अवश्य नष्ट करना चाहिए. इसलिए माताकी संसारासक्ति छुडाकर निरोध कराना आवश्यक है. इस प्रकारका विचारकर श्रीकृष्णने दधि बिलोनेका जो साधन (मथानी) था उसको पकड़ लिया. इस प्रकारसे पकड़ा कि जिस क्रियाको देखकर माता कुपित न होकर प्रसन्न होने लगी. जिससे माताकी भगवान्में प्रीति बढ़ने लगी.

सर्वाङ्गं चालयन् हस्तौ पादौ चैव विचालयन्।।
मुखाब्जं मधुरारावं बिभ्रत् कृष्णः समागतः।।का.।।

कारिकार्थ : सब अंगोको चलाता(हिलाता) हुआ और हाथ तथा पैरोंको विशेष हिलाता हुआ, मीठे अस्पष्ट(तोतले) आवाजवाले मुखकमलको धारण करता हुआ श्रीकृष्ण आ गया.

भगवान् श्रीकृष्णको दधिमन्थनसे रोकनेकेलिये, माताकी मथानीको पकडना था. कृष्णने सोचा कि यों करनेसे माता कुपित होंगी. इसलिए मैं माताके निकट इस प्रकार जाऊं, जैसे मथानी पकडनेकी मेरी उद्धताई, माता भूल जाय, मेरी चतुराई चपलता देखकर प्रसन्न हो जाय. जिससे मुझमें विशेष प्रेम करने लगे. कारिकामें श्रीकृष्णकी उस धौर्त्यपूर्ण(छलकपट) चतुराई तथा चंचलताका वर्णन किया है. श्रीकृष्ण माताके पास जाते समय नर्तक(नाचनेवाले) के समान, अपने सर्व अंगोको सामान्य प्रकारसे हिलानेकी चेष्टा करने लगे एवं ज्यों ज्यों माताके पास पहुँचे, त्यों त्यों हाथ और पैरोंकों विशेष प्रकारसे हिलानेकी क्रिया करते थे. जिससे माताको यह इंगित(संकेत) करते थे कि मैं थक गया हूं मुझे झट उठाकर गोदमें ले ले और मुखकमलसे तोतले मीठे वचनोंसे माताको मोहित करते हुए आकर माताके पास पहुंचे।।४।।

भगवान्ने माताके हृदयमें अपनेलिए ऐसा प्रेम उत्पन्न किया कि जिससे

माता प्रपञ्चासक्तिका त्यागकर, कृष्णको स्तन्य पान कराने लगी. निम्न श्लोकमें इसका वर्णन करते हैं.

तमङ्कमारूढमपाययत् स्तनं स्नेहस्नुतं सस्मितमीक्षती मुखम् ।।
अतृप्तमुत्सृज्य जवेन सा ययावुत्सिच्यमाने पयसि त्वधिश्रिते ।।५।।

गोदमें चढे हुए उस(श्रीकृष्ण)को यशोदा स्नेह(दूध)वाले स्तनसे बहते हुए दूधको पिलाने लगी. उस वक्त भगवान्के मुस्कराहटवाले मुखारविन्दको यशोदा देख रही थी. इतनेमें चूल्हेपर चढे हुए दूधमें उफान आता देखकर वह भगवान्को अतृप्त ही छोडकर वेगसे वहां चली गई।।५।।

भगवान् माताका प्रेम बढाते हुए स्वयं(आप) ही गोदमें चढ़ बैठे. जिससे माताके स्तनोंमें स्नेह(दूध) आ गया. दूधसे माताके स्तन ऊंचे हो गये जो, उसने कन्हैयाके मुखारविन्दमें दे दिये. भगवान् उनको चूसने लगे. भगवान् स्वयं गोदमें क्यों चढ़े? पृथ्वीपर बैठकर ही स्तन चूसते. इसका आशय बताते हैं कि यद्यपि कृष्णने मातामें ऐसा प्रेम उत्पन्न किया था, जो माता आते हुए कृष्णको उठाकर गोदमें बिठानेवाली थी परन्तु कन्हैया स्वयं गोदमें इसलिए बैठ गया कि आपको भूमिपर स्थित दैत्योंका दमन करना था और माताकी गोद आधिदैविक भूमि है. इससे यह जताया कि जीव जब अपने हृदयको आधिदैविक बनाता है तब उस हृदयमें स्वयं आकर विराजमान होता हूं. जब बच्चा माताके स्तन्यसे दूध चूसता है, तब माताको कुछ क्लेश होता है; परन्तु यशोदाको वह क्लेश भी न हुआ कारण कि प्रेमसे स्तनोंमें आया हुआ स्तन्य(स्तनसे निकला हुआ दूध) स्वतः बह रहा था, इससे न माताको क्लेश हुआ और न कन्हैयाको दूध खेंचनेकेलिये परिश्रम करना पड़ा. यद्यपि मोहग्रस्त यशोदाकी प्रपञ्चमें विशेष आसक्ति थी, घरमें कार्य भी बहुत थे घरकी दासियां वहांपर नहीं थीं जो वे कार्योंको निपटा लें, ऐसा होते हुए भी यशोदा जो भगवान्को स्तन्य-पान करा रही थी, उसका कारण यह था कि यशोदा भगवान्की मोहिनी मन्द मुस्कानसे, मुखारविन्दके दर्शनमें मग्न हो गई थी. भगवान्ने इसलिए मन्द हास्य किया था कि यशोदा यहां स्थित रहकर मुझे स्तन्य-पान करावे. इस समय जो मोह उत्पन्न कराया, उससे आठवें अध्यायमें कराया हुआ मोह, संकोचको प्राप्त हुआ(सिकुड़ गया). यद्यपि भगवान्ने हास्य द्वारा यशोदाको रोक तो रखा, किन्तु मोहका स्वरूप ही दोषरूप है; अतः मोहरूप(संसारासक्तिरूप) दोष प्रबल होनेसे प्रबल-संसारासक्त वह

यशोदा, भगवान्के अन्तःस्थित बालक स्तन्यपानसे तृप्त भी नहीं हुए थे, तो भी भगवान्को गोदसे, नीचे पटककर वहां शीघ्र चली जानेका कारण लौकिक आवश्यक कार्य था, वह बताते हैं कि दूध आगवाले चूल्हेपर धरा था, उसमें आगके कारणसे विशेष उफान आ जाएगा, तो दूध डुलता हुआ बह जाएगा, जिससे द्रव्य नाश होगा, अथवा लौकिक दोष(जलनेसे स्वादरहित हो जाएगा). इस कारणसे जहां दूध चल्हेपर धरा था, वहां जल्दी पहुंच गई. श्लोकमें दिये हुए 'तु' शब्दका आचार्यश्री भाव बताते हैं कि यशोदाने जैसे पहले भगवान्के विचारानुसार दधिका बिलोना छोड़, भगवान्के प्रसन्नतार्थ उनको स्तन्य-पान कराया था, उस प्रकार यहां यशोदाने नहीं किया. यहां तो उससे विपरीत किया, अर्थात् भगवान्की इच्छा तो थी कि मुझे दूध चुसाती रहे, इसका अनुसरण (पालन) न कर स्वयं(भगवान्की इच्छाके विपरीत) दूध उतारने चली गई. इस भावको स्पष्ट करनेकेलिये श्लोकमें शुकदेवजीने 'तु' शब्द दिया है ।।५।।

स जातकोपः स्फुरितारुणाधरं सन्दश्य दद्भिर्दधिमण्डभाजनम् ।।
भित्त्वा मृषाश्रुर्दृषदश्मना रहे जघास हैयंगवमन्तरंगतः ।।६।।

भगवान्को इससे क्रोध हुआ, लाल होंठ फरकने लगे, झूठे आंसू आ गए और दांतोंसे होंठ डसकर, पत्थरसे मट्ठेकी मथनी फोड डाली. घरके अन्दर जाकर एकान्तमें मक्खन खाने लगे।।६।।

भगवान्ने अन्तःस्थित बालकोंको तृप्त करनेकेलिये स्तनपान किया था, वे बालक तृप्त हुए ही नहीं, तो यशोदा दूधमें उफान आते देखकर उसको उतारनेकेलिये भगवान्को पृथ्वीपर पधराकर त्वरा(शीघ्रता)से वहां चली गई. बालकोंके अतृप्त होनेसे भगवान् कुपित हुए कारण कि वे बालकोंके रक्षक हैं. यशोदाके जानेसे बालकोंकी रक्षामें विघ्न हुआ, जिससे विषमता प्रतीत होने लगी. उस समय भक्तिमार्गके आवेशसे(भक्तिमार्गमें शरण्यकी रक्षा करना भगवान्का प्रथम कर्त्तव्य है और इस मार्गमें भगवान् भक्तके पक्षपाती ही बनते हैं) भगवान्में अचानक क्रोध पैदा हो गया, भीतर स्थित[१] क्रोध ही निमित्तवश[२] बाहर प्रकट हुआ यह क्रोध यशोदाको मारेगा. यशोदाको मारना भगवान्को अभीष्ट नहीं था कारण कि भगवान्ने समझा था कि यह दोष[३] यशोदाका नहीं है किन्तु लोभका है, अतः लोभका ही नाश करना चाहिए. वह लोभ दधि भाण्डमें स्थित था, इसलिए भगवान्ने उसको पत्थरसे फोड़ डाला. उस समय स्वयं आधिदैविक[४]

लोभ, यशोदाको मारनेकेलिये आध्यात्मिक लोभके नाशकरणार्थ, भगवान्को प्रार्थना करनेकेलिये आ गया. जिससे भगवान्के अधर(लोभात्मक ओठ)में स्फुरण हुआ. भगवान्ने उसको दांतोंसे डस लिया उससे वह लालवर्ण हो गया. भगवान्को आधिदैविक लोभकी यह प्रार्थना स्वीकृत नहीं थी, अर्थात् यशोदाके अपराधकेलिये उसे मारना और आध्यात्मिक लोभको मूलतः नाश करनेकी इच्छा भी नहीं थी क्योंकि यों करनेसे आगे की जानेवाली लीलाएं हो न सकेंगी. इसलिए इन तीनोंका निवारण करना था और उस समय रजोगुण भी उत्पन्न हुआ जिसने दूसरे तीन कार्य पैदा किये (१.यशोदा दोष रहित है, २.उसका लोभ अपनेलिये नहीं है किन्तु भगवत्सम्बन्धी है, ३.भगवान्के उपयोगमें आनेवाले दूधकी रक्षा करनेकेलिये वह गई) इन तीनोंको भी रोकना था. इन दोनों कार्योंको रोकनेकेलिये ही आपने अधरको डसा था. भगवान्के दांत यशोदानिष्ठ स्नेहकी कलाएं हैं उनसे(यशोदानिष्ठ स्नेहकलारूप दांतोंसे) उन दोनों(आधिदैविक लोभके कार्य एवं रजोगुणके कार्य)का निवारण किया. अनुकरण[५] स्पष्ट है. छाछका बर्तन जिसमें विलोई हुई छाछ थी और मक्खन पृथक् हो गया था, उसको पीसनेकी सिलसे फोड डाला, जिससे जैसे मनुष्यसे आविष्ट दैत्य निकल जाता है वैसे ही तक्र बह गई. आधिदैविक दैत्योंको, यज्ञके[६] आयुधसे उत्पन्न शब्दसे ही निकालना चाहिए. पीसनेकी सिलसे भाण्डके फोड़नेसे महान् शब्द हुआ, जिससे प्रविष्ट दैत्य भाग गया. इस प्रकार यशोदापर उपकारकर बाहरी देखाव करते हुए, भगवान् झूठे आंसु बहाने लगे, कारण कि दधि-भाण्डके टूट जानेपर भी दोषका सम्भव होता है. यदि स्वयं भाण्डको तोड़ा जाय तो दोष नहीं, तो भी रुद्र आ गया, यह लोकोंको जतानेकेलिये आंखोंमें आँसुओंको लाये नहीं तो(रुद्र वा क्रोध न आया होता तो) भाण्डके देवताका भंग नहीं होता अर्थात् भगवान् तक्रके भाण्डको फोड़ते नहीं. आसूं झूठे थे, इसकी पुष्टि(समर्थन)केलिये कहते हैं कि श्रुतिमें कहा है कि भगवान्के आंसुओंसे रजत और सुवर्ण होते हैं ये दोनों अब न हुए. इससे जाना जाता है कि ये आंसू झूठे थे और दूसरे किसी निमित्तसे आंसू होते हैं तो यहां वह भी नहीं था तथा यशोदाके नाशकी शंकासे आंसू आये हों तो भी आंसू न आने चाहिए क्योंकि सर्व रक्षक विभु आप ही हैं तो उसका भय भी कारण न था. इसलिए यह निश्चित है कि आंसू झूठे ही थे. वास्तविक तो बात यह है कि तक्र भाण्डमें दैत्य आविष्ट था, उसको मारनेकेलिये ही भगवान्ने बर्तनको

खण्डित किया.

इस प्रकार लीला करनेके पश्चात् भगवान्ने सोचा कि यशोदा माताने श्रमकर नवनीत निकाला है उसका श्रम सफल हो तदर्थ भगवान् एकान्तमें आकर बालकोंको तृप्त करनेकेलिये मक्खन खाने लगे, अथवा बालकोंकेलिये मक्खन भीतर ले गए, भीतर ले जाऊँगा तो मुझे भी मक्खन[७] खानेकेलिये मिलेगा. इससे यह समझा जाता है कि भगवान्ने बालकोंसे भेद किया, जिससे यह प्रकट है कि उस समयसे बालकोंको अपनेसे अलग किया, मध्यमें[८] गए वहां भी एकान्त स्थानमें आधिदैविक दैत्य यहां न आ सकेंगे[९], यों निश्चय कर बालकोंकेलिये खाने लगे।।६।।

१.भगवान्के धर्म भगवान्के सदृश नित्य हैं अतः उनका नाश कभी भी नहीं होता है वे सदैव भगवानमें तिरोहित(छिपे) रहते हैं.

२.निमित्तवश उनका आविर्भाव(प्राकट्य) होता है जैसे यहां अकस्मात् क्रोधका आविर्भाव हुआ है.

३.भगवान्को छोड़ जाना, यशोदाका चला जाना निमित्त था. लेख.

४.अन्तःस्थित बालकोंकेलिये स्तनपान करनेका लोभ आधिदैविक लोभ है. लेख. उफननेवाले दूधकी रक्षाका, यशोदाका लोभ आध्यात्मिक लोभ है. लेख.

५.भगवान्के दांत, यशोदापर जो भगवान्का स्नेह है, उसकी कलाएं हैं. यशोदापर स्नेहके कारण भगवान्ने आधिदैविक लोभसे स्फुरित, रजोगुणसे लाल अधरको दांतोंसे दबाकर उन दोनोंके कार्योंका निवारण किया.

६.यशोदा पुत्रका त्यागकर, दूधकी रक्षार्थ जानेका, वास्तविक कारण दूध, स्नेहरूप कलामें आविष्ट दैत्य ही था. उस आधिदैविक दैत्यको भगवान्ने यज्ञके आयुध (पीसनेकी सिल–यज्ञके दस आयुधोंमें यह भी आयुध है)से भगाया. भाण्डके फोड़नेके शब्द सुननेसे दैत्य भाग गया और यशोदाजीको पुत्र स्मरण हुआ. सुबोधिनीमें 'इव' शब्द देकर यह बताया है कि यशोदामें दैत्य आविष्ट हो नहीं सकता है, वैसी दिखनेमें आती थी. टिप्पणी.

७.भक्तिसे जो कुछ भगवान्को धरा जाता है वह भगवान् खाते हैं, आगे होनेवाली लीलामें भगवान् भक्षण करेंगे. प्रकाश.

८.गुणगान करती हुई यशोदाने जो मक्खन निकाला उसको भगवान् ग्रहण करें यह योग्य ही है. भगवान्ने बालकोंको पृथक्कर यह बताया कि मैं भी भक्षण करता हूँ. लेख.

९.माता क्रोध न करे इसलिए एकान्त स्थल(जहां माता देखे नहीं)में जाकर मक्खन भक्षण किया. टिप्पणी.

उसके पश्चात् जो हुआ वह निम्न श्लोकमें कहते हैं.

उत्तार्य गोपी सुशृतं पयः पुनः प्रविश्य सन्दृश्य च दध्यमत्रकम् ।।
विलोक्य भग्नं स्वसुतस्य कर्म तद् जहास तं चापि न तत्र पश्यती ।।७।।

यशोदा दूधको उतारकर फिर उसको अच्छी तरह औटाने लगी, उसको (औटाए हुएको) उतारके लौटकर मन्थन मंदिरमें आई, वहां मट्ठेकी मथनी फूटी देखकर समझ गई कि यह मेरे बेटेका काम है और उसको वहां न देख हंसने लगी ।।७।।

श्लोकके 'पुनः' शब्दके गूढ आशयको प्रकट करते हुए आचार्यश्री कहते हैं कि यशोदाने प्रथम तो दूधमें एक ही उफान आया था तो उसको उतारकर पृथ्वीपर धरा, फिर दूधको चूल्हेपर धरकर खूब औटाके उतारा. मन्थन स्थानमें प्रविष्ट हुई(इससे समझा जाता है कि दूधको औटानेकेलिये आंगनमें रखा था और मन्थन घरके भीतर करती थी), वहां उसने टूटा हुआ छाछका बरतन देखा. श्लोकके 'च' शब्दका आशय आचार्यश्री प्रकट करते हैं कि मक्खनका अभाव और तक्रका बह जाना भी देखा तथा यह भी जान लिया कि यह कर्म मेरे पुत्रका है. जिससे यशोदाको कर्ता, कर्म और करणका पूर्ण ज्ञान हो गया, इस प्रकारके ज्ञानसे यशोदा लौकिक आवेशवाली हो गई. भगवान्ने दैत्यावेशको दूरकर[१] दिया था इससे यशोदाने क्रोध न किया किन्तु हंसने लगी।।७।।

१.तक्रमें दैत्यावेश था, भगवान्ने दैत्यको हटानेकेलिये तक्रपात्रको तोड़ डाला, जिससे तक्र बह गई, दैत्य हट गया. दैत्यके हट जानेसे यशोदाके हृदयसे वात्सल्य रस प्रकट हुआ. जिससे उसके हृदयमें यह भाव उत्पन्न हुआ कि मेरा लाला इतनी सामर्थ्यवाला हुआ है, इससे प्रसन्नचित्त होकर हंसने लगी, क्रोध न किया.

भगवान् चले जानेसे वहां देखनेमें नहीं आए. इसका भावार्थ बताते हैं कि यदि भगवान् बिराजे होते तो यशोदा हंसती नहीं, क्योंकि वह समझती थी कि मैं भगवान्की तृप्ति होनेसे पहले ही उनको छोड गई हूं, इसलिए वह अपनेको दोषी समझ चुप्पी साध लेती. भगवान् तो उसके(यशोदाके) गाढ़ लौकिक ज्ञानको मिटानेकेलिए अथवा यह जाननेकेलिए कि यशोदाको वह ज्ञान दृढ़ है या नहीं तथा उसमें तामस भाव उत्पन्न करनेकेलिए वहांसे घरके भीतर चले गए थे. वहां दैत्यके आवेशवाली तक्रमेंसे यशोदाने पहले जो मक्खन निकालकर छींकेमें धरा था, उसको ऊखलपर चढ़कर, निकालते हुए बंदरोंको खिला रहे थे, क्योंकि वह

मक्खन दैत्यावेशवाला था अतः भगवान्‌के भोज्य न था, इस कारण वानरोंको दे रहे थे वे भी दान्तवाले क्रूर प्राणी थे. छींकेपर रक्खा था वह भी मृत्युका पाश है. भगवान् ऊखलको उलटाकर उसके दोष नाश करनेकेलिए, उसपर यज्ञपुरुष होके अग्नि स्थापित करनेवालेके समान खडे थे. ऊखल अग्निकी नाभि[२] है जैसे अग्निकी नाभिमें यज्ञपुरुष स्थित है वैसे यहां आप यज्ञपुरुषरूप होकर स्थित हुए थे. शेष रहे हुएकी शान्तिकेलिए बचा हुआ मक्खन अन्योंको देते हैं.

उस समय यशोदाने आकर इस प्रकारकी लीला करते हुए पुत्रको देखा इसका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

उलूखलाङ्घ्रेरुपरि व्यवस्थितं मर्काय कामं ददतं शिविस्थितम् ।।
हैयङ्गवं चौर्यविशङ्कितेक्षणं निरीक्ष्य पश्चात् सुतमागमच्छनैः ।।८।।

उलटे ऊखलपर खडे छींकेमें धरे मक्खनको लेकर, बंदरको यथेच्छ दे रहे थे और चोरी करनेसे चकित(शंकाशील-भययुक्त) नेत्रवाले पुत्रको देखकर धीरे धीरे उसके पीछेसे आई. ।।८।।

यशोदाने प्रथम भगवान्‌को जैसे नहीं देखा, वैसे बंदर भी नहीं देखे, इससे उसके(यशोदाके) मनमें संशय भी होने लगा अतः भगवान्‌को ढूंढना चाहिए. इस विचारके आनेसे फिर चित्त भगवत्परायण हुआ. चित्त भगवत्परायण होते ही भगवान्‌के दर्शन हो गये. दर्शनमें यशोदाके दोष प्रतिबन्धक नहीं हुए. दोष विफल हो गए इनकी विफलता बतानेकेलिये ही भगवान्‌ने ऊखलको उलटा किया था, जिसका भावार्थ यह है कि जहां सर्व दोषदाहक अग्नि ही उलटी होनेके कारण जहां कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं वहां दोष क्या कर सकते हैं. 'कामम्' शब्दका भाव बताते हुए कहते हैं कि अपनी इच्छानुकूल दे रहे थे क्योंकि भगवान्‌को उनको देनेमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं था कि कोई मुझे रोकेगा, कारण कि मैं सर्व(सब पदार्थोंका) पति(स्वामी) हूं. यह मक्खन आगेका इकट्ठा किया हुआ है. ताजा नवनीत नहीं है यद्यपि भगवान् सर्व-पति होनेसे चोर नहीं हैं तो भी लौकिक दृष्टिमें यह कार्य चोरी मानी जाएगी अतः आप ऐसा नाट्य करने लगे इसको मूलकार 'चौर्यविशङ्कितेक्षणं' पदसे दिखाते हैं कि चोरीके कार्य करनेसे भगवान् अपनी आंखें शंकाशील(शंका व भयवाली) दिखाने लगे, इस लौकिक दोष दृष्टिका कारण बाल्यकाल है. अतः इस दोष दृष्टिका निवारण भी काल ही करेगा. तात्पर्य यह है कि यशोदा अब भगवान्‌को बालक ही समझनेके कारण

अज्ञ(नासमझ) समझती है. अज्ञतामें ऐसे(चोरीके) कार्य होते हैं जिस समय यशोदा उसके(भगवान्के) स्वरूपको समझेगी तब उस समय यह दोष दृष्टि स्वयं नष्ट हो जायेगी.

आचार्यश्री विशेष भाव बताते हैं कि 'चौर्यविशङ्कितेक्षणं'के दो अर्थ हैं: एक चोरी करनेसे भययुक्त नेत्रवाले भगवान् हो गए हैं और दूसरा यह है कि जिसके मनमें मेरे लिये 'मैं चोर हूँ' उसको भगवान् देख रहे हैं इन [३]प्रकारसे कोई भी अर्थ लेनेपर यशोदाका सत्य ज्ञान नाश होकर उसमें दोष-दृष्टि उत्पन्न हो गई है. पुत्रको चोर समझ और स्वयंने(चोरी करते) देखकर भगवान्के पीछे धीरे-धीरे आने लगी. इसका भावार्थ आचार्यश्री बताते हैं कि यशोदा दोषदृष्टिके कारण पापयुक्त हो गई थी. अतः भगवान्के सामने न आ सकी, पापी भगवान्के न सामने आ सकते हैं और न शीघ्र भगवान्के पास पहुंच सकते हैं ।।८।।

१. श्रुतिमें छींकेको यमका पाश कहा है . प्रकाशकार श्रीपुरुषोत्तमजी वह श्रुति लिखते हैं ''शिक्यम् उपदधाति नैर्ऋतो वैपाशः''.

२. ''उलूखलम् उपदधाति एषा वा अग्नेर्नाभिः'' इति श्रुतेः. प्रकाश.

३.यदि यशोदा यों समझती है कि भगवान्ने सत्य चोरी की है तो भी यशोदाको अज्ञान है, क्योंकि यशोदा, भगवान्ने चोरी किसलिए की है इसको न जान सकी. यदि यशोदाको भगवान्के चोरी करनेकी शंका है तो भी यशोदाको अज्ञान है क्योंकि उसको अब यह ज्ञान निश्चित नहीं हुआ है कि यह भगवान् है. अतः दोनों प्रकारके अज्ञान होनेसे दोषदृष्टि उत्पन्न हुई.

भगवान्ने जान लिया कि यशोदा आ रही है, किन्तु यह अब(पाप दृष्टि होनेसे) मेरा स्पर्श, करने योग्य नहीं है यों विचारकर वहांसे चले गए इसका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

तामात्तयष्टिं प्रसमीक्ष्य सत्वरस्ततोवरुह्यापससार भीतवत् ।।
गोप्यन्वधावन् न यमाप योगिनां क्षमं प्रवेष्टुं तपसेरितं मनः ।।९।।

उसके हाथमें लकडी देखकर वेगपूर्वक ऊखलसे उतरके डरपोकके समान भगवान् वहांसे भाग गए. तब गोपी(यशोदा) योगियोंकी तपस्यासे प्रेरित (शुद्ध) मन जिसके पास पहुंच नहीं सकता है, उसको पकडनेकेलिए उसके पीछे दौडी ।।९।।

यशोदाने भगवान्को बछड़े जैसा समझकर गौओंके बछड़ोंको अपने

वशमें करनेवाली लकड़ी हाथमें ली. ऐसी यशोदाको देखकर उसके बाहर और भीतरके भावोंको अच्छी तरह जान गए कि यह दोषयुक्त होनेसे निकट भी आने योग्य नहीं है इसलिए भाग गए न कि लकड़ीके भयसे भागे थे, भाग जानेका[१] दूसरा कारण यह भी था कि माता है. इसके दोष अवश्य दूर करने चाहिए. भगवान् त्वरासे ऊखलसे उतरकर इसी प्रकार भागे जैसे पापिष्ट-यशोदा भगवान्का मुखारविन्द भी नहीं देख सकी और न भगवान्ने उसका मुख देखा, क्योंकि भगवान्ने सोचा कि यशोदाके[२] दोषोंसे अन्तःस्थ(अन्दर स्थापित किये हुए) बालकोंको भी दोष(दुःख) होगा. डरपोकोंके समान इस दृष्टान्तका भाव बताते हैं कि जिस प्रकार डरनेवाला समझता है कि यह(डरानेवाला) मेरा अनिष्ट करेगा, उसी प्रकार भगवान्ने उसका(यशोदाका) भीतरका दोष समझा था, जिससे आप डरे नहीं थे, केवल डरने जैसा नाट्य किया था यह समझाया है. वह यशोदा भी गोपी है(अल्पबुद्धिवाली है क्योंकि गांवमें रहनेवाली है) इस कारणसे(अल्पबुद्धि होनेसे) भगवान्के पीछे दौड़ी. शुकदेवजी उसका अविवेक(विचारहीनता) बतानेकेलिये दृष्टान्त देते हैं कि जो भगवान्को पहुंचनेकेलिये 'योग' सिद्धकर योगी बने हैं और जिनका मन दोष-रहित होनेसे शुद्ध हो गया है तथा तपस्यासे प्रेरित, धर्मसे संस्कृत(पवित्र) भी हो गया है, उन योगियोंका मन भी भगवान्को नहीं पा सकता है तो यशोदा कैसे पा सकेगी अतः उसके पीछे पकड़नेकेलिये दौड़ना अविवेक ही है ।।९।।

१.यदि भगवान् भाग न जाते तो, यशोदा इससे भी विशेष दोष करती, अर्थात् भगवान्को पीटती. लेख.

२.यदि यशोदा भगवान्को पीटती तो अन्तःस्थ बालक दुःखी होते.

निम्न श्लोकमें यह बताते हैं कि भगवदीय भी यदि भगवान्में दोष दृष्टि करते हैं अर्थात् दोष देखते हैं तो वे भी भगवान्को प्राप्त नहीं कर सकते हैं. किन्तु(भक्तवत्सल) भगवान् उनपर भी कृपा करते हैं जिससे वे भगवान्को पा सकते हैं(जैसे यहां दोष-दृष्टिवाली यशोदापर कृपा की है जिससे उसने भगवान्को स्पर्श कर लिया).

अन्वञ्चमाना जननी बृहच्चलच्छ्रोणीभराक्रान्तगतिः सुमध्यमा ।।
जवेन विस्रंसितकेशबन्धनच्युतप्रसूनानुगतिः परामृषत् ।।१०।।

सुन्दर कटिवाली माता पीछे जाते हुए मोटे तथा चंचल नितम्बके भारके

कारण रुक जाती थी, वेगके कारण शिथिल चोटीसे गिरे हुए पुष्पोंके पीछे जानेवाली उसने भगवान्‌को पकड लिया. ।।१०।।

भगवत्प्राप्तिकेलिये किया हुआ प्रतिकूल(विरुद्ध) परिश्रम भी सफल होता है(उससे भी भगवान् मिल जाते हैं). जैसे बैल रथको खेंचते हुए विशेष भारके कारण रुक जाते हैं, वैसे ही यशोदा अपने भारी नितम्बोंको खींचती थी, किन्तु उनके भारसे अटकनेसे धीरे धीरे चलती थी. दुष्ट गति भारके कारण रुक गई इससे[१] बुद्धिके दोष भी निवृत्त हो गए भगवान्‌के पीछे चलने लगी. श्लोकके 'सुमध्यमा'(सुन्दर कटिवाली) शब्दसे यह (चलनेका) भाव बताया. श्लोकके 'जननी' शब्दका तात्पर्य स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि दूधवाले स्तन थे उनका भार भी था, किन्तु माता थी इसलिए उनका वर्णन नहीं किया है. वास्तविक(सचमुच) तो माता[२] नहीं थी क्योंकि यदि वास्तविक माता होती तो यों न करती. कोई भी माता इस प्रकार(पुत्रको मारनेका कार्य) नहीं करती है. 'सुमध्यमा' शब्दका दूसरा भी भाव बताते हैं कि यशोदाका मध्य(अन्तःकरण) सुन्दर(शुद्ध) था, इसलिए वह अन्दर भक्त थी केवल बाहिरसे मोहित थी. शुकदेवजीने नितम्बोंके भारसे रुकना यह दुःख भाव बताकर जो साथमें 'सुमध्यमा' विशेषण बता दिया वह इसलिए कि यशोदामें दोषोंका अभाव है और गुणोंका सद्‌भाव है,(क्योंकि उसका अन्तःकरण भक्तिमान् है) यशोदा निरभिमान है इसको बतानेकेलिये कहा है कि जैसे उसकी चोटीसे जल्दी जल्दी पुष्प गिरते थे, वैसे ही वह भी उनके पीछे चल रही थी इस प्रकार यशोदाके साथ फूल भी चल रहे थे. पुष्पोंकेलिये श्लोकमें 'सूना' शब्द है उसका भावार्थ बताते हैं कि पेड़से उतारते ही उनका नाश होता है किन्तु वह नाश देवोंके अर्थ होता है ऐसे(जो पुष्प देवोंकेलिये अपना नाश कराते हैं) पुष्पोंको उसने(यशोदाने) अपने केशोंमें बान्ध रखा है. वे उनमेंसे गिर रहे हैं. आचार्यश्रीके इस कहनेका भीतरी-भाव स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि यशोदाने अपने केशोंमें उत्पत्ति और प्रलयके देवताओंको बाँधा था, उनसे छूटनेपर(अलग होते ही) वे मुक्त हो गए फिर उनका जन्म नहीं होगा. उनके मोक्षका कारण बताते हैं कि भगवदर्थ क्रियासे मोक्ष होता है तो यहां यशोदा जो क्रिया कर रही थी वह भगवदर्थ ही थी. अतः उनका मोक्ष हो गया. इस प्रकार यशोदाने तीन धर्म सम्पादन किए १.दोषाभाव, २.गुणप्राप्ति और ३.मुक्तिके पीछे चलना जिनसे वह भगवान्‌को प्राप्तकर सकी अर्थात् भगवान्‌को आलिंगन किया.

यशोदाकी बुद्धिके अनुसार भगवान्ने तक्र-भाण्डके तोड़नेसे उसका (यशोदाका) विवेक नाशरूप अपराध किया है, जिससे भगवान् उसके सामने रोने लगे किन्तु भगवान् यशोदाके इस अत्यन्त मूर्खतारूप दोषको मिटानेकेलिये अपनी ज्ञानशक्तिका घर्षण करने लगे. (अपनी आंखोंको मसलने[३] लगे) कारण कि ज्ञानशक्ति ''यथायथात्मा परिमृज्यते''(जैसे-जैसे आत्माको शुद्ध किया जाता है). इस वाक्यानुसार भगवान्की अपनी कृति[४]से ही उज्ज्वल होती है. यशोदामें दोषभाव देखनेसे भगवान्को भय हुआ कि मेरा कार्य(निरोध) सर्वथा यशोदासे चला न जाय, इस भयसे भगवान्के नेत्रोंमें विह्वलता(भयकी घबराहट) दीखनेमें आई. यशोदाका दोनों प्रकारका ज्ञान(सोपाधिक और निरूपाधिक) चला न जाय इससे विह्वलता हुई थी ।।१०।।

१.प्रकाश: नितम्बोंके भारसे यशोदाका रुक जाना भी तपस्या हुई, जिससे दोष निवृत्त हुए और यशोदा पुनः भगवान्के पीछे चलने लगी.

लेख: पुत्र तो 'वासुदेव' है यदि ऐसा भाव पुरुषोत्तममें होता तो गोपियोंके समान इसका भी निरुपधि स्नेह होता वह नहीं है.

२.पुरुषोत्तम अजन्मा है अतः यशोदा माता नहीं है. प्रकाश.

३.भगवान्की ज्ञानशक्ति भगवान्के नेत्रोंमें रहती है.

४.भगवान् स्वयं जब कृपाकर अपनी ज्ञानशक्तिसे जीवके दोषोंको नाश करते हैं तब ही जीव निर्दोष ज्ञानवान् हो भगवद्भक्तिका पात्र बनता है और भगवान्के रस स्वरूप लीलाओंका रसपान कर सकता है. अनुवादक.

इस प्रकार परमदयानिधिको पकडनेके बाद जो कुछ उसने किया उसका वर्णन नीचेके श्लोकसे करते हैं.

कृतागसं तं प्ररुदन्तमक्षिणी कषन्तमञ्जनमषिणी स्वपाणिना ।।
उद्वीक्षमाणा भयविह्वलेक्षणं हस्ते गृहीत्वा भिषयन्त्यवागुरत् ।।११।।

अंजनसे भरी हुई आंखोंको हाथोंसे मसलनेवाले, भयसे विह्वल नेत्रवाले, अपराध करनेवाले और रोते हुए भगवान्का हाथ पकड़कर, घूरकर देखती हुई, यशोदा उन्हें डरानेकेलिए धमकाने लगी।।११।।

श्लोकके 'तं' शब्दका भाव बताते हैं कि कृष्ण व्यामोहरूप अपराध करनेवाले थे. यशोदाकी दृष्टिमें भाण्ड तोड़नेसे भी अपराधकर्ता थे. दोनों प्रकारसे अपराधी हैं. आप ईश्वर हैं, इसलिए आप कोई अपराध नहीं करते हैं तो भी

आपकी यह लीला 'व्यामोहिका लीला' है अतः आपने यशोदाको अत्यन्त मोहवाली बना दी, जैसे आगे की जानेवाली लीलामें(वह यशोदा) प्रतिबन्धक न हो. जो भगवान् व्यामोह लीला न करें तो अत्यन्त आसक्तिके कारण, वह लीलाओंमें प्रतिबन्धक ही बनती थी.

तच्चासुराणां मोहाय सतामपि च कुत्रचित्।।का.।।

कारिकार्थ : भगवान् रुदन[१] असुरोंकेलिए करते हैं किन्तु कभी सत्पुरुषोंकेलिए भी करते हैं.

१. जिससे मोह उत्पन्न हो वैसी लीला करनी(रोदनसे यशोदाको मोह कराया). प्रकाश.

''सा मां विमोहयति भीरपि यद् बिभेति''(१।८।३०) जिससे यम भी डरता है उनकी यह दशा मुझे मोहित करती है. इस वाक्यसे और भगवान् इस प्रकारकी लीलाएं क्यों करते हैं इस कारणके अज्ञानसे मोह होता है. भगवान् लोक दृष्टिसे जताते हैं कि यह मुझे पीटेगी इसलिए खूब जोरसे रोने लगे, यह रोना भी मोह करानेवाला है. आंखोंके मसलनेका तात्पर्य यह है कि पहले बालभावमें किए हुए मोहकी यशोदाकी बालभावसे दृढता हो. उसने ही आंखोंमें कज्जल शोभाकेलिए डाला था, जिससे आंखे कज्जलवाली हो गई थीं उन आंखोंको क्रमशः एक ही हस्तसे मसलते थे. एक ही हाथसे मसलनेका भाव बताते हैं कि भगवदीयकी भक्तिरूप क्रियासे ही नेत्र उज्ज्वल होते हैं. मसलनेका दूसरा भाव यह है कि मसलनेसे भगवान्ने नाशकर्ता रजोगुणको भी शान्त किया, साथमें नेत्रोंकी खाज भी मिटा दी. भगवान् वहां थे तो भी इन नेत्रोंके मसलनेके कारण यशोदाको देखा नहीं, वह उनके ऊपरके भागको देख रही थी, चरणारविन्दोंको नहीं. यदि चरणारविन्दमें दृष्टि हो तो भक्ति उत्पन्न हो जाय. भगवान् चारों तरफ स्थित अन्य गोपियोंको देख रहे थे, जिससे मनमें आई कि ये भी मुझमें दोषोंका आरोप भी करें, इसलिए भय प्रकट कर रहे थे. यह अन्तःस्थित भाव मोहनार्थ ही प्रकट किया. इस प्रकार तीन[२] धर्मोंसे मोहित[३] वह(यशोदा) इसके अनन्तर मोहसे अपनेको छुडा[४] न सकेगी. इसलिए ही आगेके चरित्रमें इस(यशोदा)के स्नेहकी किसी भी कलाका[५] वर्णन नहीं है ''श्रुण्वन्त्यश्रूण्यवास्राक्षीत्''(१०।४३।२८) (सुनती हुई आंसूओंको बहाया) इसमें तो भगवान्के गुणोंका माहात्म्य है न कि यशोदाके स्नेहकी कला वर्णित है. ''जनन्युपहृतं प्राश्य''(१०।१२।४६) (माताका लाया हुआ भोज्य आरोगके) ''तत्कथाश्रवणोत्सुके''(१०।११।३४)

(उसकी कथाके श्रवणार्थ उत्सुक) ऐसे स्थलोंपर रोहिणीके साथ होनेसे उसका भाव भी इसमें(यशोदामें) आ गया यह बताया है. नन्दरायजीकी ही मुख्यता है. इस प्रकारकी यशोदा भगवान्के सर्वांग सम्बन्ध त्यागकर, हाथसे पकडकर डराती हुई धमकाने लगी, किस प्रकार धमकाने लगी. इसको स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि जैसे पामर मनुष्य अनिष्ट आगूरण[६] करते हैं वैसे यह(यशोदा) भी इस प्रकारके आगूरणके संकल्प(विचार) करने लगी इससे यह असत्यवादिनी है इसका भी निरूपण(वर्णन) हो गया ।।११।।

२. क.रुदन ख.आंखोंको मसलना ग.यशोदाको न देखना. प्रकाश.

३. यह मेरा पुत्र ही है इस प्रकारके दृढ भाववाली. प्रकाश.

४. मोहके कारण यह भगवान् है इस प्रकारका ज्ञान होगा नहीं, अथवा घरके कार्योंमें अत्यन्त आसक्त होनेसे, पुत्रपर पूर्ववत् विशेष प्रेम नहीं करेगी. प्रकाश.

५. उपाधि रहित स्नेहकी कलाके किसी भी अंशका आगे वर्णन नहीं है. लेख.

६. ''मारनेका उद्यम प्रकाशकाराः 'मारूंगा' इस प्रकारके अनिष्ट शब्द कहते''. लेख.

तदनन्तर यशोदाने क्या किया? इस आकांक्षा(अभिलाषा)की पूर्ति केलिए निम्न श्लोक कहते हैं.

त्यक्त्वा यष्टिं सुतं भीतं विज्ञायार्भकवत्सला ।।
इयेष किल तं बद्धुं दाम्नातद्वीर्यकोविदा ।।१२।।

पुत्रपर प्रेम करनेवाली, भगवान्के वीर्य(पराक्रम, शक्ति)को न जाननेवाली यशोदाने अपने पुत्रको भयभीत समझकर लकडी फैंक दी और उनको रज्जुसे बांधनेकी इच्छा की।।१२।।

यशोदाने लकड़ी छोड दी इससे जाना जाता है कि भगवान्को मारनेकेलिये पहले लकड़ी ले आई थी, अब उसको छोड़ दिया. लकड़ी ले आनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि उसका मन दोष-पूर्ण था, जिससे वह मनोदुष्टा थी, इससे उसके मनमें भगवान्को मारनेका संकल्प उदय हुआ था. लकड़ी छोड देनेसे ज्ञात होता है, कि उसने उस मनःसंकल्पको छोड़ दिया है क्योंकि मनोदोष मिट गया है. अन्य तीन दोष जो मिटाने जैसे हैं वे हैं: १. लकड़ीका छोड़ना, २.भगवान्के धर्म भय आदिको जानना, और ३. पुत्रमें प्रेमवाली हो जाना.

तो भी उसके सब प्रकारके दोषोंकी निवृत्ति न हुई. इसको प्रमाणित करनेकेलिये शुकदेवजी डरते हुए कहते हैं कि उसने भगवान्को रज्जुसे बांधनेकी

इच्छा की. यह लीला प्रसिद्ध है. शुकदेवजीने 'किल' प्रसिद्ध है यह शब्द कहकर अपना भयभीतपना दिखाया है कि यह मैंने आंखोंसे नहीं देखा और न उसका विचार भी किया है, केवल प्रसिद्ध होनेसे मैंने कहा है कि उसने रज्जुसे बांधनेकी इच्छा की है. बांधनेकी इच्छासे उसके(यशोदाके) अन्तःकरण, शरीर और परिकरके दोषोंको प्रकट किया है.

जब जगत्में मनुष्य अनिष्ट करनेमें तो मस्त होते हैं किन्तु जो असाध्य है ऐसे कार्योंमें प्रवृत्त नहीं होते हैं, तब यशोदा असाध्य कार्यमें कैसे प्रवृत्त हुई? इस शंकाको मिटानेकेलिये श्लोकमें 'अतद्वीर्यकोविदा' कहा है (उस भगवान्के वीर्यको वह नहीं जानती है). यदि भगवान्के वीर्यको जानती होती कि पूतना, तृणावर्त आदिको इसने मारा है तो मुझे मारनेमें इसे(भगवान्को) कौन सा प्रयास करना पड़ेगा? इस प्रकारके अज्ञानसे ही उसने भगवान्को बांधनेकी इच्छा की।।१२।।

शुकदेवजी भी उसे(यशोदाको) दूषित जैसी करते हैं और सत्ययुक्ति देकर बताते हैं कि भगवान् यशोदाके बन्धनमें क्यों नहीं आए? वह वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

न चान्तर्न बहिर्यस्य न पूर्वं नापि चापरम् ।।
पूर्वापरं बहिश्चान्तर्जगतो यो जगच्च यः ।।१३।।

जिसके अन्तर बाहिर, आगे वा पीछे कुछ भी नहीं है जो जगत्के भीतर, बाहिर, आगे तथा पीछे हैं और जो जगत्रूप है।।१३।।.

यशोदा स्वयं भगवान्को क्यों न बान्ध सकी, शुकदेवजी उसके प्रथम दो कारण बताते हैं: १.भगवान्का स्वरूप क्या है? इसके विचार करनेसे और यशोदा जिस (पदार्थ)से भगवान्को बान्धना चाहती है उसका स्वरूप क्या है. २.इन दोमेंसे प्रथम भगवान्के स्वरूपका विचार किया जाता है. बन्धन दो काम करता है: १.बाहिर जानेसे रोकना और २.भीतर दुःख उत्पन्न करना. रुकावट और भीतर दुःख उसको होगा, जिसमें अन्तर और बाहिरके भाव होंगे. भगवान् तो पूर्ण हैं, सबमें व्याप्त होकर रहते हैं. इससे वे किसीके भी भीतर आ नहीं सकते हैं और [२]निरवयव(अवयव रहित होनेसे कोई भी उनका परिच्छेदक(सीमा बान्धनेवाला)) नहीं बन सकता है. श्लोकमें 'च' अक्षरका आशय बताते हैं कि 'अन्तर' शब्दसे 'आकाश' व्यवहारमें आता है वह 'अन्तर' शब्द भगवान्में प्रवृत नहीं होता है

क्योंकि अन्तर्यामी 'ब्राह्मण'[२] में कहा गया है कि भगवान् सबके भीतर बिराजते हैं भगवान्के अन्दर तो कोई नहीं है. जो सबके अन्दर है उसके अन्दर कोई भी नहीं रह सकता है और उससे कोई पृथक् पदार्थ है, ऐसा भी कहीं नहीं कहा गया है. किसी पदार्थका कोई वस्तु आधार हो, तो उससे वह वस्तु उसके भीतर समा गई है ऐसा सिद्ध नहीं होता है क्योंकि रूपादिकों[३] में इसकी प्रत्यक्ष उपलब्धि(ज्ञान) होती है. जैसे फलके अन्दर बीज है उसी प्रकार भगवान्का स्वरूप किसी भी पदार्थमें भीतर नहीं है वैसे होते तो अदृश्य हो जाते. अतः भगवान् व्यापक होनेसे अन्तर, बाहिरके भेदसे रहित हैं. बाहिर रहा हुआ भी व्यापक आकाश जिससे बाहिर कोई भी नहीं है वह आकाश भगवान्के भीतर स्थित है. इससे यह समझाया कि भगवान्के अन्तःकरणमें खेद नहीं है और न किसी प्रकारकी रुकावट है.

बन्धनका कार्य घेरा डालना है वह वहां हो सकता है जहां दिशाओंका विभाग हो. यहां तो जिसको बन्धनमें लाये जानेका प्रयत्न किया जाता है वह तो निरवयव अतिरूप्य स्वयं प्रकाशमान, ज्ञाता और ज्ञेयभावका तिरोधान करनेवाले हैं उनका पूर्व और अपर भाव हो नहीं सकता है, इससे उसकेलिये दक्षिण और उत्तर(दिशाभाग) भाव भी नहीं होते हैं. क्योंकि आप सर्वत्र स्थित हैं अतः आपकेलिये पूर्व और अपर(सर्वत्र) ही है. अतः स्वरूपसे अथवा दिशाओंसे होनेवाले अन्तर आदि धर्म भगवान्में नहीं हैं इसलिए भगवान् बन्धनमें आएगा यह सम्भावना ही नहीं है[४].

जब जिससे भगवान्को बान्धनेका प्रयत्न किया जाता है, उस वस्तुके स्वरूपका वर्णन श्लोकके उत्तरार्धमें करते हैं बन्धनके साधन रज्जुके पूर्व भाग और पर भागमें अर्थात् आदि और अन्तमें ये(भगवान्) ही हैं, इसमें प्रमाणभूत(साक्षी) यशोदा स्वयं है, क्योंकि उसने सर्व वस्तुमात्र, भगवान्में देखे हैं. तथा सर्वत्र व्यापक होनेसे भगवान् सर्वके बाहिर भी है एवं सर्वान्तर होनेसे अन्दर भी है. आचार्यश्री 'च' अक्षरका आशय प्रकट करते हैं कि इस (च)के कहनेसे शुकदेवजीने यह बताया कि सर्व वस्तु स्वरूप भी भगवान् ही हैं और भगवान् जगत्के आगे-पीछे, अन्दर-बाहिर हैं और स्वरूप हैं. इस कारणसे ही इन दृश्यको 'जगत्' कहा जाता है जिसका अर्थ है 'जायते'(जन्मता) है. इसलिए 'ज' और 'गच्छति' चलता ही जाता है इसलिए 'गत्' है तात्पर्य यह है कि जो जन्मता है और चलता ही रहता है उसको जगत् कहते हैं. यदि भगवान् इतना न

होते तो 'जगत्' उत्पन्न कैसे होता? जो भगवान् जगत्से आदिमें, प्रथम न होते तो जगत्की उत्पत्ति हो नहीं सकती थी और जो अन्तमें न होवे तो जगत्का लय किसमें होवे? अर्थात् लय हो नहीं सकता था इस प्रकार भगवान् यदि जगत्के बाहिर न होते और केवल जगत्में ही होते तो जगत्के लय होते ही भगवान् भी लय हो जाते, किन्तु वैसा होता नहीं है क्योंकि आप सर्वान्तर हैं, सर्वान्तर होनेसे ही 'जगत्'की इस नामसे प्रसिद्धि हो नहीं सकती थी तथा जगत् सबके प्रतीतिमें नहीं आता. अब तो सर्व जगत्को प्रत्यक्ष देख रहे हैं, भगवान्के धर्म ही जगत्में स्थित हैं, जिससे जगत्में वे धर्म दृष्टिगोचर होते हैं. इसके अतिरिक्त फिर आप ही जगत् हैं इसलिए आप बन्धनमें आ नहीं सकते हैं कारण कि कोई भी अपने आपसे अपने आपको बान्ध नहीं सकता है, ऐसा होनेसे, बन्धन करनेवाली वस्तुकी व्यर्थता[६] होती है और यह भगवान् जगत्मय होनेसे सकल जगत्में व्याप्त होकर रहे हैं. इनकी आज्ञासे ही जगत् कार्य करता है. तो अपनेको बन्धनमें डालनेकेलिये जगत्को स्वयं वैसी प्रेरणा वैसे करेंगे. अतः किसी भी प्रकारसे भगवान्का बन्धन बन नहीं सकता है इससे भक्त निश्चिन्त है।।१३।।

१.ब्रह्मसूत्र (२।३।१)में आकाशको अवयववाला कहा गया है इसलिए घट उसकी सीमा कर सकता है. यदि आकाश निरवयव हो तो भी घट पदार्थ आकाशसे पृथक् अन्य है इसलिए वह आकाशकी सीमा कर सकता है अतः 'घटाकाश' बन सकता है किन्तु भगवान्से तो कोई पदार्थ पृथक् वा अन्य नहीं है अतः वे किसी प्रकार भी सीमामें आ नहीं सकते. प्रकाश.

२.अन्दर, बाहिरपना आकाशाधीन होनेसे 'अन्तर' शब्दसे 'आकाश' कहा जा सकता है किन्तु भगवान्केलिये 'अन्दर' शब्द नहीं कहा जा सकता है. लेख.

३.रूप वर्ण(रंग)को कहा जाता है. रंग किसीपर चढ़ाया जाय तो वह पदार्थ उस(रंग)का आधार होता है किन्तु रंग उसमें भीतर नहीं चला जाता है बाहिर ही देखनेमें आता है जैसे लाल पीले आदि वस्त्र. अनुवादक.

४.यहां तक भगवान्का स्वरूप कैसा है इसका विचार किया गया अर्थात् भगवान्का ऐसा स्वरूप है क्या जो बन्धनमें आ सके? निर्णय किया गया है कि भगवान्का स्वरूप ऐसा नहीं है जो बन्धनमें आ सके.

५.'जगत्' शब्दका अर्थ जन्म लेना और लय पाना है यदि भगवान् इससे पूर्व न होते तो इसका जन्म न होता और अन्तमें न होते तो इसका लय न होता. जिससे 'जगत्' शब्दकी व्युत्पत्ति ही व्यर्थ हो जाती. लेख.

६.जो आप ही अपनेको बान्ध सकता है तब तो दूसरी बन्धन करनेवाली वस्तुकी आवश्यकता नहीं अतः वह लानी ही व्यर्थ है.

वैसे भगवान्‌को, जो मनुष्य, लौकिकके समान समझता है उसका प्रयास व्यर्थ होता है इस प्रकार शुकदेवजी उस(यशोदा)को मानो दोष देते हैं उसके अज्ञानका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

तं मत्वात्मजमव्यक्तं मर्त्यलिङ्गमधोक्षजम् ।।
गोपिकोलूखले दाम्ना बबन्ध प्राकृतं यथा ।।१४।।

उस अव्यक्त(जो प्रकट नहीं है), मनुष्यके चिह्नवाले अर्थात् मनुष्य आकृतिवाले नेत्रादि इन्द्रियोंसे जिसको जाना वा देखा नहीं जाता है वैसे भगवान्‌को अपना पुत्र समझकर, प्राकृत बालकके समान उसको यशोदाने रज्जुसे ऊखलके साथ बान्धा।।१४।।

उस पुराण पुरुषोत्तमको अपने शरीरसे उत्पन्न पुत्र समझकर रज्जुसे बान्ध दिया इस प्रकार सम्बन्ध है. यशोदाका देह तो प्राकृत है उस(प्राकृत देह)से उत्पन्न निश्चयसे प्राकृत होता है.

कभी यों भी देखा गया है कि महत्पुरुष तथा देवता भी प्राकृत माताओंसे पुत्र होकर जन्म लेते हैं. इससे लोकमें कारणसे कार्यकी विलक्षणता भी देखनेमें आती है. उत्पन्नकर्त्ता(कारणरूप) माता और पितासे उत्पन्न(कार्यरूप) पुत्र पृथक् प्रकारका होता है. तो यशोदाने इनको अपनी देहसे उत्पन्न समझा तो कौनसा दोष है? इसके उत्तरमें मूल श्लोकमें 'अव्यक्त' शब्द दिया है जिसका आशय है कि जिसको यशोदा पुत्र समझती है वह किसी भी अंशसे उत्पन्न(प्रकट) नहीं होता है. जो महत्पुरुष होते हैं वे अपने धर्मोंको प्रकट करते हैं जैसे भरतादिकोंने अपने धर्म प्रकट किये हैं. भगवान् तो अपने धर्म इस प्रकार जन्म लेकर प्रकट नहीं करते हैं. इस कारणसे लोगोंकी बुद्धि दृढ़ आकृत होती है अर्थात् लोग समझते हैं कि यह प्राकृत बालक है. मध्यम कोटिके पुरुष ही अपने धर्म प्रकटकर दिखाते हैं न कि वे जो उच्च-कोटिवाले हैं.

पुनः जो भगवान् गुप्त होकर चुप रहे, तो भी सन्देह(यह ईश्वर है वा कौन है) होता है इस अवस्थामें लोक, अन्य पुरुषोंके वचनोंसे, माहात्म्य ज्ञान प्राप्त करें. किन्तु यहां भगवान् विपरीत धर्मोंको प्रकट करते हैं तो उस(भगवान्)की प्रतीति कैसे होगी? यह 'मर्त्यलिंग' शब्दमें कहा गया है कि अत्यन्त प्राकृत धर्मके

चिह्न(स्वरूप गुण और क्रियाके) दिखाते हैं.

इस प्रकार होनेपर भी जैसे अत्यन्त चतुर लोक, नट किसी भी भेषमें हों, तो उसको पहचान लेते हैं, वैसे ही सबसे विलक्षण, अनन्तगुणवान् और आनन्दमय होनेसे क्यों नहीं जाना जा सकता है? इसके उत्तरमें श्लोकमें 'अधोक्षजं' विशेषण दिया है, भगवान् वा उनके गुण किसीकी भी इन्दियों द्वारा देखनेमें नहीं आते हैं. आप अपनेमें अपनेसे विरुद्ध धर्म(मर्त्य धर्म)का प्रदर्शन करते हैं इससे ज्ञात होता है कि अपने स्वरूप गुणोंके जतानेकी भगवान्की इच्छा नहीं है और यह यशोदा अत्यन्त प्राकृत रूपवाली है. इस कारणसे अनभिज्ञ (अनजान) है वह कैसे जान सकेगी? कि भगवान् ऊखलके ऊपर चरणारविन्द धरकर क्रीड़ा कर रहे हैं और यह ऊखल अग्निकी नाभि है? किन्तु यह ऊखल गोकुलमें है अतः मेरा आश्रय स्थान है इस तत्त्वको बतानेकेलिये अपनेको ऊखलके साथ बन्धवाया और यशोदाकी बुद्धि भी दूसरी वस्तुमें न जाय इसलिए भी बन्धवाया. रज्जु पशुओंको बान्धती है. ऊखल, रज्जु और हस्तमें स्थित देवता चुप क्यों रहे? इसके उत्तरमें कहते हैं कि भगवान्ने उनकी बुद्धि प्राकृत जैसी बना दी थी अतः वे प्राकृत जैसे हो गये थे ।।१४।।

यह देहकी आकृतिवाले ही सच्चिदानन्दरूप भगवान् हैं यह 'गुणोपसंहारन्याय' (थोडेमें ही गुण बता देना)से न अन्दर न बाहिर आदि स्वल्प गुणोंसे उनके धर्म बतानेकेलिये तथा उनके बांधनेका उपाय भी कहकर भगवान् आधे ही बांधे गए हैं इसका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

तद् दाम बध्यमानस्य स्वार्भकस्य कृतागसः ।।
द्व्यङ्गुलोनमभूत् तेन सन्दधेऽन्यच्च गोपिका ।।१५।।

अपने अपराधी पुत्रको जब बान्धने लगी तब वह रज्जु दो अंगुल कम हो गई(यह देख) गोपिका(यशोदा)ने उसके साथ दूसरी रज्जु जोड दी।।१५।।

रज्जु भगवान्को कैसे बन्धनमें लाई? इसका स्पष्टीकरण करते हुए आचार्यश्री आज्ञा करते हैं कि भगवान्ने अपनेमें दो दोष दिखाए:

१.एक तो उस(यशोदा)का पुत्रपना, और २.उस(माता)का अपराध (मटुकी फोड़ तक्र बहाना, मक्खन बंदरोंको बांटना). जब भगवान्ने ये दो दोष प्रकट किये तब रज्जुको ज्ञान हुआ कि भगवान्के वे गुण(भगवत्व अन्दर बाहिर स्थिति) तिरोहित हो गये हैं(वा भगवान्ने छिपा दिए हैं) अब भगवान्को मैं बांध

सकूंगी यों समझकर उसके ही स्थित और अन्तःस्थित भगवान्को बान्धा. यदि रज्जुको इस प्रकारका ज्ञान न होता तो रज्जु भगवान्के बाहिर भी अपनेको न समझती[१] और न बान्ध सकती थी. यों करते हुए भी पूर्णतया बान्ध न सकी क्योंकि रज्जुके पूर्व(आदि) और अपरमें(अन्तमें) भगवान् ही हैं. अतः रज्जु दो अंगुल कम हो गई. लोकके परिमाण(नाप)में प्रथम नाप एक अंगुली है. प्रथम नाप(एक अंगुली)के अतिक्रमणका कुछ कारण न होते हुए भी स्वल्प विलक्षणताको भी महापुरुषोंकी योजना आश्चर्य उत्पन्न करती है जैसे कि दो अंगुल कमवाली रज्जुमें बड़ी रज्जु जोड़नेपर भी रज्जु फिर भी दो अंगुल कम हो गई रज्जुके आदि एवं अन्तमें जो भगवान् हैं उस भगवान्को ही लपेट लिया किन्तु इससे भगवान्से उनके(सर्वव्यापकत्व आदि) धर्म पृथक् न हुए थे. इस अपनी नित्य सर्वव्यापकताको दिखानेकेलिये ही तिरोभाव(का नाट्य) किया था. रज्जु स्थूल(बड़ी) हो रही थी किन्तु भगवान्का उदर वैसाका वैसा था. जैसे चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब जल आदिमें बिम्ब जितना ही दीखता है भगवान्की विलक्षणताका ज्ञान न होनेसे दूसरी भी उसमें जोड़ती गई. 'च' अक्षरका भाव बताते हैं कि और बड़े-बड़े रज्जु भी उसमें जोडी. जब दो ही अंगुल न्यून होता तो दूसरी बड़ी-बड़ी क्यों जोड़ने लगी? इसपर आचार्यश्री कहते हैं कि शुकदेवजीने इसलिए ही 'गोपिका' शब्द देकर इसकी मूर्खताको प्रकट किया है ।।१५।।

१.टिप्पणी: रज्जुने यह समझा कि भगवान्ने अपने वे धर्म तिरोहित कर दिये हैं अतः अब यहां भगवान् नहीं हैं इसलिए मैं इनको बान्ध लूंगी. यह रज्जुका ज्ञान अपूर्व था इस प्रकारके ज्ञान होते हुए भी वह भगवान्को बान्ध नहीं सकती थी फिर भी भगवान्को बान्ध सकी इसका कारण बताते हुए प्रभुचरण आज्ञा करते हैं कि भगवान् जो लीला यहाँ कर रहे हैं, वे भक्ताधीन होकर करते हैं; अतः जिस प्रकार मर्यादा मार्गमें भक्त होकर भी यदि भगवान्का अपराध करता है तो उसको भगवान्के अधिकारी कालादि दण्ड देते हैं. उसी प्रकार पुष्टिमार्गमें यह नियम है कि भगवान् भक्तका अपराध करें तो उन(भगवान्)को भक्ताधीन होके; भक्तेच्छानुकूल लीला करनी पडती है. यहां भजनके विरोधि भावोंको उत्पन्न करना ही अपराध है. ऐसा होनेपर ही भगवान्ने पुत्रपना स्वीकार किया, तो साथमें उस(पुत्रपने)के धर्म भी आ गए, इससे माताका नियामकत्व भी आपने अंगीकार किया. रज्जुकी स्वामिनी माता है अतः माताकी वस्तु रज्जुको भी इस प्रकारके सामर्थ्यका सामर्थ्य प्रदान किया जिससे वह बान्ध सकी.

इसके पश्चात् क्या हुआ ? उसका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

यदासीत् तदपि न्यूनं तेनान्यदपि सन्दधे ।।
तदपि द्व्यङ्गुलं न्यूनं यद्–यद् आदत्त बन्धनम् ।।१६।।

अन्य रज्जुओंके जोडनेसे जो रज्जु बनी वह भी जब छोटी हो गई तब दूसरी तीसरी जोडी तब भी दो अंगुल छोटी हुई. तात्पर्य यह है कि जितनी उनसे भी वह रज्जु जोडी दो अंगुल ही छोटी रही ।।१६।।

दो रस्सियोंके जुड़नेपर वह रस्सी एक हो गई तब भी पूर्ववत् दो अंगुल ही कम हुई. उस बड़ी हुई रस्सीके छोटी होनेपर यशोदाने दूसरी रज्जु उसमें जोड़ी किन्तु वह भी उसी प्रकार दो अंगुल ही कम हो गई तो पुनः तीसरी बार और रज्जु जोड़ी तो वह तब भी उतनी ही न्यून हुई ''त्रिसत्या: हि देवाः'' इस श्रुतिके अनुसार 'देवता त्रिसत्य है'. तीन बार रज्जु सम्मिलित होते हुए भी दो ही अंगुलि न्यून हुई. इसका भावार्थ यह है कि भगवान् जगत्के आदिमें हैं(जगत् प्रकट नहीं हुआ था तब भी भगवान् थे) तथा जगत्के अन्तमें भी हैं(जगत् लीन हो जाएगा तब भी भगवान् रहेंगे. अर्थात् भगवान्ने तीनों बार यह दिखा दिया कि सारा जगत् मेरे भीतर है तो जगत् अन्तःपाती रस्सी मुझे कैसे बान्ध सकेगी. इतना प्रभाव देखती हुई भी यशोदाने मानुष स्वभावके कारण पुनरपि(फिर भी) जितनी रस्सियां मिल सकीं वे मिलाती गईं किन्तु फिर भी वही दो अंगुल कम ही रही ।।१६।।

एवं स्वगेहदामानि यशोदा सन्दधत्यपि ।।
गोपीनां सुस्मयन्तीनां स्मयन्ती विस्मिताभवत् ।।१७।।

इस प्रकार यशोदा अपने घरकी सब रस्सियोंको स्वयं ला ला कर जोडने लगी, तो भी भगवान्को बांध न सकी, पहले तो रोष था, जब दो बार जोडनेसे तीन रस्सियां पूरी न हुई, तब कुछ गर्वित हो, बहुत रस्सियां मिलाने लगी, तब भी कार्य पूरा न हुआ, तो अचम्भेमें पड गई, इसको देखनेकेलिए आई हुई गोपियां यह देखकर बहुत गर्विष्ठ हो गईं, क्योंकि उनके मनमें यह विचार आया कि भगवान् हमारी भुजाओंसे तो बन्धनमें आते हैं किन्तु इतनी रस्सियोंमें नहीं, इसलिए हम भाग्यशाली हैं, अतः गर्विष्ठ हुईं ।।१७।।

रज्जुके परस्पर जोडनेका कार्य यशोदा आंगनमें कर रही थी, सब गोपीजन भी दर्शनार्थ आ गईं, उनका भी अब तक पूर्ण निरोध नहीं हुआ था. अतः वे यशोदा का यह कार्य देखकर हंसने लगीं अथवा गर्ववती भी हुईं और उनके

मनमें उस समय यह भाव उत्पन्न हुए कि यशोदा रस्सीसे बांधना चाहती है इतनी रस्सियोंको जोडनेपर भी बन्धनमें नहीं आए. हम तो इनको भुजाओंसे बांध लेंगी, इसलिए विशेष गर्विष्ट हुईं. यशोदाने अपने गृहके सर्व दाम(रस्सी) जोड दिये तो भी दो अंगुल ही न्यून होनेसे, विस्मित हुई(यशोदाका गर्व टूट गया). यशोदा अपने घरकी ही सब रस्सियां लाई, किन्तु अन्य घरोंसे न ला सकी इसका कारण आचार्यश्री बताते हैं कि भगवान् यशोदाके घरकी रस्सियोंमेंसे तिरोहित(छिप) हो गए थे अतः घरकी रस्सियां यशोदा ला सकी अन्य घरों(गोपियोंके)की रस्सियां नहीं ला सकी कारण कि गोपियोंके अन्तःकरणसे भगवान् तिरोहित नहीं हुए थे. इसलिए उन(गोपियों)की यशोदा जैसी वृत्ति नहीं हुई, जो वे घरकी रस्सियां लाकर अब भी देवें. यशोदाके इस कार्यसे यशोदाके नामकी सार्थकता प्रकट होती है ''ये ददाति वा द्यति'' दूसरे(भगवान्)को यश देती है और अपना यश गवांती है. भगवान्ने दोनों ही अपराध यशोदाजीके घरमें किये थे : '१.पुत्रत्व स्वीकार और २.तक्र बहाना'. जब यशोदाने देखा दूसरी कोई सहायता नहीं करती है तब विस्मित(गर्वरहित) यशोदा आग्रह पूर्वक रज्जुओंके ढूंढनेका प्रयास करने लगी।।१७।।

जब यशोदाने भगवान्को बांधनेमें अपनेको सामर्थ्यहीन समझा, तब गोपियोंके सामने लज्जित होने लगी. मनके संकल्प(विचार) नष्ट होनेसे मृतप्राया (मरी हुई जैसी) हो गई. तब परमदयाल भगवान्ने ऐसे दोषयुक्त भक्तोंपर भी सद्बुद्धिसे जो कार्य करना(भगवान्का बन्धनमें आना) योग्य नहीं था, वह भी किया. जिसका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

स्वमातुः स्विन्नगात्राया विस्रस्तकबरस्रजः ।।
दृष्ट्वा परिश्रमं कृष्णः कृपयासीत स्वबन्धने ।।१८।।

परिश्रमसे आए हुए पसीनेसे भरपूर शरीरवाली और चोटीसे जिसके पुष्प गिर रहे हैं ऐसी अपनी माताको देखकर कृपासे श्रीकृष्ण भगवान् बन्धनमें आ गए।।१८।।

तदनन्तर भगवान् कृपाकर स्वयं अपने बन्धनमें आ गए इस प्रकार वाक्योंका सम्बन्ध है. भगवान्का बन्धनमें आना, इसके तीन कारण बताते हैं: (१) अपनी माता है. (२) पसीनेसे तर हो गई है. (३) चोटीसे फूल गिर गए हैं.

माताको प्रसन्न करना पुत्रका प्रथम कर्तव्य है क्योंकि शास्त्रमें 'मातृदेवो

भव' माताको अपना देव समझ, न केवल इतना ही समझ किन्तु माता देवताओंसे भी बढ़कर समझ जैसा कि कहा है 'एभ्यो माता गरीयसी'. भगवान्ने ऐसी माताकी दशा देखकर सोचा, कि माताके दूसरा बेटा भी नहीं है जो दुःख निवारण करे इसलिए इसका यह दुःख मुझे ही निवारण करना चाहिए कारण कि यह अपनी ही माता है. अतः मातापन प्रकटकर उसके दुःखको सहन नहीं कर सके, जिससे वैसा किया(बन्धवाया) और जो गोकुलवासियोंके दुःख दूर करनेकेलिये प्रकटे हैं वे सर्वांगमें पसीनेवाली अपनी माताका परिश्रम कैसे न दूर करें?(दूर करना ही चाहिये) अतः दूर किया और जो गोकुलवासियोंको सौभाग्यदान करनेकेलिये प्रकटे हैं वे चोटीसे पुष्प गिरनेसे जिसके सर्व प्रकारके आभूषणोंका तिरोभाव हो गया है इस प्रकार यहां वहां आना जाना, हृदयकी घबराहट, पसीनेका होना, मुख सूक जाना आदिसे टूटे हुए हृदयवाली माताको आप कैसे सौभाग्यदान न करें. उसपर भी यह भगवान् श्रीकृष्ण सदानन्द[१] हैं. दुःखका कभी भी अनुभव नहीं किया है और दुःखियोंके सामने उपस्थित नहीं होते हैं. दूसरोंका दुःख भी नहीं देख सकते हैं. इस समय यशोदाका ऐसा दुःख जैसा कि आपने पूर्व देखा ही नहीं वह देखके कृपासे पूर्ण हो गए. पसीनेवाली, मालाके अभाववाली, माताकी प्रसन्नताकेलिये आप स्वयं ही अपनेको बान्धनेकेलिये तीन अंगुलकी रस्सीरूप हो गए. जिससे वह रस्सी जो दो अंगुल कम थी वह बान्धनेके योग्य हो गई और एक अंगुल बढ़ी जिससे गांठ बांधी गई. तब आप इस प्रकार स्वयं ही अपने ही से बन्धनमें आ गए. प्रकरणसे आप बन्धनमें आए. यह यों कहने योग्य न होनेसे नहीं कहा गया है।।१८।।

१.भगवान् कृष्णमें आनन्द, धर्मरूपसे सदैव रहता है अतः आपको आनन्दका अभावरूप दुःख, कभी भी अनुभवमें नहीं आता है. जैसे सूर्य जहां है वहां अन्धकार नहीं रहता है अतः सूर्यको कभी भी अन्धकारका अनुभव नहीं होता है तात्पर्य जहां श्रीकृष्ण विराजते हैं वहां दुःख रह नहीं सकता है. लेख.

भगवान् इतना कर फिर आप रस्सीरूप होके स्वयं बन्धनमें क्यों आए? इस शंकाको निम्न श्लोकमें निवारण करते हैं.

एवं सन्द(प्रद!)र्शिताह्यङ्ग हरिणा भक्तवश्यता।।
स्ववशेनापि कृष्णेन यस्येदं सेश्वरं वशे।।१९।।

हे राजन्! जिनके ईश्वर(लोकपाल और देवता आदि) सहित यह सर्व

जगत् वशमें है उन्होंने स्वतन्त्र होते हुए भी इस प्रकार अपनी भक्तवश्यता प्रकट की है।।१९।।

जो मनुष्य, भगवान् मेरा है वा मैं भगवान्का हूं केवल इस प्रकार भगवान्के साथ स्वकीय भाव सम्बन्धवाला है वह भगवान्का अपकार भी कर देता है तो भी प्रभु उस स्वकीय भक्तके ऊपर कृपा ही करते हैं अतः यहां ऐसी अभूतपूर्व(आगे किसीपर भी न की हुई) कृपाकर अपनी भक्तवश्यता दिखाई है. भक्तवश्यता दिखानेका प्रयोजन बतानेकेलिये श्लोकमें भगवान्का नाम 'हरि' है. वे सर्व दुःखहर्ता हैं किन्तु सम्बन्ध बिना यदि सर्वके दुःखोंका हरण करें तो अतिप्रसंग हो जाय(यह नियम सर्वके साथ जोड़ा जाए) जिससे संसार लोप हो जाए अतः आप सम्बन्धवालोंपर(सम्बन्ध प्रदर्शन करते हुए) ही कृपा करते हैं. कृपा सर्व धर्म और धर्मियोंसे बलवाली है यह प्रमाणित करनेकेलिये श्लोकोंसे 'भक्तवश्यता' यह दिया है.

शंका यदि भक्तिसे धर्म और धर्मीका उपमर्दन(दबा देना) होता है तो भगवान्के स्वरूपकी हानि होनेसे फल भी प्राप्त नहीं होगा और कृपा दिखाई वह भी व्यर्थ होगी?

समाधान: श्लोकमें इस शंकाके मिटानेकेलिये ही 'स्ववशेन' यह कृष्णका विशेषण दिया है जिसका तात्पर्य है कि वह किसी अन्यके वश नहीं है. अतः इनको कोई दबा नहीं सकता अर्थात् इनको स्वरूपसे च्युत(गिरा) नहीं सकता है. इससे यह बताया कि फल देनेवाले आप ही हैं. 'कृष्णेन' पद देकर बताया है कि फलरूप आप ही हैं.

शंका यों करनेको अन्य ब्रह्मादि नहीं मानेंगे तो उनका(श्रीकृष्णका) माहात्म्य कम हो जायेगा तो फल रूपता भी न होगी.

समाधान इस शंकाके निवारणको मिटानेकेलिये श्लोकमें 'यस्येदं सेश्वरं वशे' पद दिया है. जिसका भावार्थ है पृथक् पृथक् पदार्थोंके जितने भी देवतागण हैं उन समेत सारा जगत् कृष्णके वशमें है अतः किसीमें भी इतनी सामर्थ्य नहीं है जो अपने ईश्वरकी सामर्थ्यको अन्यथा(कमती) कर सके. (सारांश यह है कि कृष्ण देवताओं सहित समग्र जगत्के ईश्वर स्वतन्त्र स्वामी हैं) इसलिए जो भी आपको अपना करता है उसके दोषोंपर ध्यान न देकर उसपर कृपा ही करते हैं।।१९।।

इस प्रकारका भाव पहले भी सिद्ध हुआ है जो शास्त्रोंमें प्रसिद्ध ही है फिर उसके प्रदर्शन करने(दिखाने)की क्या आवश्यकता थी इस शंकाका निवारण निम्न श्लोकसे करते हैं.

नेमं विरञ्च्यो न भवो न श्रीरप्यङ्गसंश्रया ।।
प्रसादं लेभिरे गोपी यत् तत् प्राप विमुक्तिदात् ।।२०।।

मोक्षदाता(भगवान्)से जिस प्रकारका प्रसाद(कृपा) गोपी(यशोदा)ने प्राप्त किया वैसा भगवान्के अंगको आश्रय कर रही लक्ष्मीजीने, ब्रह्मा और शंकरने भी नहीं प्राप्त किया।।२०।।

इस प्रसादको आगे किसीने भी प्राप्त नहीं किया है इसको तो भक्त ही पा सकते हैं. क्योंकि वे सबसे महान् हैं. भक्तोंमें भक्ति और स्वरूपसे महान् भक्त तीन ही हैं:

१) ब्रह्मा भक्त हैं जो भगवान्का पुत्र भी है. और प्रवृत्ति मार्गके सर्व धर्मोंके प्रवर्तक हैं तथा सब कारणरूप(सबकी रचना करनेवाला) है.

२)महादेव पौत्र है सर्व निवृत्ति धर्मके प्रवर्तक, प्रलयकर्ता, गुणावतार और भगवदर्थ सर्वका त्यागकर तपस्या कर रहे हैं.

३) उससे भी विशेष लक्ष्मीजी हैं जो भार्या है एवं ब्रह्मानन्दरूप है और जिसने भगवान्के उरस्थलपर बिराजनेका सौभाग्य प्राप्त किया है तथा जगत् जननी है एवं नित्य भगवच्चरणारविन्दकी सेवामें परायण है.

वैसे इन तीनोंने भी जब इस प्रकारकी कृपा प्राप्त नहीं की है तो दूसरा कौन है जो प्राप्त कर सकेगा?(कोई नहीं है जो प्राप्त कर सके)

इन तीनोंने पृथक् पृथक् वा मिलकर भी इस प्रसादको नहीं पाया. यह भी शंका नहीं करनी कि इनमें कोई दोष होगा? ये तो निर्दोष होनेसे तीनों ही भगवान्के श्रीअंगका सदैव आश्रय करते हैं.

एक(लक्ष्मीजी) वक्षस्थलका, दूसरा ब्रह्मा नाभिकमलका, तीसरा महादेव चरणोंका आश्रय करते हैं. इन तीनों[४] गुणावतारोंको जो दुर्लभ है वह दूसरोंकेलिये तो निश्चयपूर्वक दुर्लभ ही होगा. वह कौनसी कृपा है? जो कृपा ऐसे इन तीनोंपर भी नहीं हुई है उसका वर्णन 'गोपी यत् तत् प्रापेति' पदसे किया है. जो गोपी जातिसे और स्वरूपसे भी हीन है उसको ही वह प्रसाद प्राप्त हुआ यह प्रसिद्ध है. किसीने इसका निरूपण भी नहीं किया है यह निश्चय है कि जो कोई

सबको छुड़ाता है वह अपनेको बन्धनमें नहीं डालता है. माताका दुःख ज्ञान देकर अथवा मोक्ष देकर भी मिटाया जा सकता है तो फिर अपनेको बन्धनमें डालनेकी क्या आवश्यकता थी इससे समझा जा सकता है कि यह ही 'प्रसाद'(कृपाकर आपहीका बन्धनमें आना) प्रसिद्ध है दूसरा कोई भी वैसा प्रसाद(कृपा) नहीं है।।२०।।

१.प्रकाशकार कहते हैं कि लक्ष्मीका गुणावतार 'माया' है जिसको (भाग.पुरा. १०।२६।३९)में भगवान्की सात्त्विकी शक्ति कहा गया है लक्ष्मीने भगवान्की आज्ञासे 'माया'का रूप धारण किया.

वे(ब्रह्मा, शंकर और लक्ष्मीजी) महान् हैं और यह(यशोदा) मूढके अनुरोधसे(अभिलाषा पूर्ण करनेकी इच्छा) किए हुए कार्यको कृपा कैसे कही जाय. इस शंका निवारणार्थ निम्न श्लोक कहा है.

नायं सुखापो भगवान् देहिनां गोपिकासुतः ।।
ज्ञानिनां चात्मपोतानां यथा भक्तिमतामिह ।।२१।।

यह यशोदानन्दन भगवान् यहां जिस प्रकारसे सरलतापूर्वक भक्ति करनेवालोंको प्राप्त होते हैं उस प्रकार देहधारियोंको तथा आत्माको नौका बनाकर पार जानेवाले ज्ञानियोंको सरलतासे नहीं मिलते हैं।।२१।।

यहां भगवान्ने अपनेको आप ही बन्धनमें डाला इस प्रकारका जो वर्णन है उसका तात्पर्य यह है कि भगवान्को अपनी वश्यता(मैं भक्ति करनेवालेके, वश हो जाता हूं) दिखलानी थी. वह वश्यता(आधीन होना) भक्ति करनेवालोंके अतिरिक्त किसीको भी सिद्ध नहीं होती है. भक्ति करनेवालोंके अतिरिक्त अन्य हैं, (१)कर्म करनेवाले और (२)ज्ञानी. वे दोनों दोष युक्त हैं कर्मिष्टों(यज्ञादि कर्म करनेवाले)में देहाभिमानका दोष रहता है इस दोषसे उनपर इन जैसी भगवत् कृपा नहीं होती है. और ज्ञानी निरभिमान होनेसे निरपेक्ष(किसीकी भी आशा या भरोसा) दोषवाले होते हैं. वे समझते हैं कि हम आप ही आत्मरूप नौकासे पार पहुंचेंगे. हमको भगवद्भक्ति या आश्रयकी आवश्यकता नहीं है. जैसे मनुष्य नावसे समुद्रके पार तो पहुंच जाते हैं किन्तु वहां उनको महाराजाके दर्शन प्राप्त नहीं होते हैं वैसे ही ज्ञानी भी केवल संसारके पार जा सकते हैं किन्तु उस रसेशके दर्शनादिका आनन्द नहीं पाते हैं. भक्तिवालोंको तो वह रसेश यहां भी सुलभतासे प्राप्त हो जाता है. यहां ही उनको क्यों सुलभतापूर्वक प्राप्त होता है इसकी

पुष्टि(समर्थन) श्लोकमें 'गोपिकासुतः' कहकर की है. भगवान् भक्तिके कारण ही, यशोदाके पुत्र बन उसके वश हुए हैं. इससे यह शिक्षा दी है कि आप सब भक्ति करो और सच्चे भक्त बनो. इस अवतारमें जैसे मैंने भक्तिसे वश्यता दिखलाई है. श्लोकमें 'भक्तिमताम्' पद कहकर यह बताया है कि भगवान् भक्ति करनेवालोंके वशमें होते हैं न कि भक्तोंके वशमें होते हैं. इसका तात्पर्य यह है कि प्रेम बिना केवल क्रिया मात्र, सेवा करनेवाले भक्तको नहीं मिलता हूं ।।२१।।

इस प्रकार अपने मनोरथ पूर्ण होते ही बहिर्मुख गोपिकाएं अपने-अपने घर गईं भगवान् गए नहीं किन्तु उसी अवस्थामें(ऊखलसे बन्धी हुई अवस्थामें) जो बडा कार्य किया उसका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

कृष्णस्तु गृहकृत्येषु व्यग्रायां मातरि प्रभुः ।।
अद्राक्षीदर्जुनौ पूर्वं गुह्यकौ धनदात्मजौ ।।२२।।

माता घरके काममें लग गई कृष्णने तो दो अर्जुन वृक्षोंको देखा. वे(वृक्ष) पहले गुह्यक(देवयोनि)में कुबेरके पुत्र थे।।२२।।

श्लोकमें आए हुए 'तु' शब्दसे पूर्व कथाकी पृथक्ता दिखलाते हैं. यह कृष्ण बन्धनमेंव्यग्र(व्याकुल) नहीं है क्योंकि आप सदानन्दरूप हैं. बन्धन तो नाम मात्र बन्धन है आप स्वेच्छासे अपनी लीला कर सकते हैं. वह(यशोदा) यदि भगवान् मेरे वशीभूत हो गए हैं यों समझकर वहां ही ठहर जाती तो भगवान् दूसरा कार्य न करते, कारण कि समझ जाते, कि इसे निरोध सिद्ध हो गया है किन्तु देख लिया कि यह फिर गृह कार्यमें लग गई है इससे उसका पूर्ण निरोध नहीं हुआ है. अतः इसकी(यशोदाकी) प्रपञ्चमें, जो अब तक आसक्ति है वह छुड़ानी चाहिए. इसलिए सामने स्थित, यमलार्जुन वृक्षको देखा, देखते ही विचार आया कि इनको गिरा दूं. इनके गिरनेके शब्दसे इसका प्रपञ्च विस्मरण करूंगा. इस प्रकारसे निरोध करनेकी अति आग्रहकी क्या आवश्यकता है? इस आवश्यकताको बतानेकेलिये श्लोकमें माता कहा है यशोदाजी भगवान्की माता थीं माता होनेके नातेसे भगवान्को अत्याग्रह करना पड़ा. इस अवस्था 'बाल्यकाल'में अथवा ऊखलमें बन्धनकी अवस्थामें पेड़ोंको कैसे गिरा सकेंगे? इस शंकाको मिटानेकेलिये श्लोकमें 'प्रभु' विशेषण दिया है जिसका अर्थ है सदैव सामर्थ्यवान् हैं. अर्थात् बन्धे हुए हो, चाहे बालक हो, तो भी, पेड़ोंको गिरानेमें समर्थ हैं. अर्जुन नामवाले एक प्रकारके वृक्ष होते हैं जिनको 'सखा'[१] भी कहते हैं. इस वृक्षोंने कोई अपराध

नहीं किया है. तब गोपीके(यशोदाके)लिये इनको बिना अपराध क्यों गिराया जाता है? इस शंकाको मिटानेकेलिये कहते हैं कि ये वृक्ष नहीं हैं किन्तु पहले जन्ममें ये देवयोनिमें थे. अब वृक्ष हुए हैं यह वृक्षपनेमें प्रसन्न नहीं हैं. बिना प्रयोजन और बिना सम्बन्धके क्यों वृक्षयोनिसे छुड़ाए? इस शंकाके उत्तरमें कहा है कि 'धनदात्मजौ' भक्त कुबेरके ये पुत्र हैं ।।२२।।

१.अर्जुन भगवान्के सखाका नाम है अतः इन अर्जुन नामवाले वृक्षोंको सखा नामसे पुकारते हैं.

ये भक्त कुबेरके पुत्र इतने महान् होकर पेड कैसे बने? इस शंकाको मिटानेकेलिए निम्न श्लोक कहा है.

पुरा नारदशापेन वृक्षतां प्रापितौ मदात् ।।
नलकूबरमणिग्रीवाविति ख्यातौ श्रियान्वितौ ।।२३।।

ऐश्वर्यवान् नलकूबर और मणिग्रीव नामसे प्रख्यात इन्होंने मदके कारण नारदजीके शापसे वृक्षयोनि प्राप्त की है।।२३।।

पूर्वकालमें नारदजीके शापसे ये वृक्ष हुए थे किन्तु नारदजीने इनको शाप क्यों दिया? इस शंकाकेमिटानेके लिये श्लोकमें 'मदात्' शब्दसे यह बताया है कि ये श्रीके मदसे मस्त हो गये थे. इस कारणसे नारदजीने इनको शाप दिया जिससे ये वृक्ष हुए हैं. इस प्रकार(वृक्ष) होनेके योग्य थे तो इनको इस योनिसे क्यों मुक्त किया? इसके उत्तरमें कहते हैं कि नल सुन्दर होते हुए भी वह आगेसे कुबड़े जैसा था, इसलिए एकका नाम नलकूबर और दूसरा मणियुक्त ग्रीवावाला था. इनके नामकी प्रशंसा अब तक प्रसिद्ध हो रही है इसलिए इनको वृक्ष योनिसे मुक्त करना योग्य है और ये 'श्री'से भी युक्त हैं अब तक भी श्रीने इनको छोड़ा नहीं है. अतः कीर्ति और श्री वालोंका उद्धार करना योग्य ही है ।।२३।।

इति श्रीमद्भागवत दशमस्कन्धकी श्रीवल्लभाचार्यविरचित सुबोधिनी टीकाके तामस प्रकरणके 'प्रमाण' अवान्तर प्रकरणके ज्ञान निरूपक अध्याय ५वां (स्कन्धानुसार अध्याय ९) का हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण.

अध्याय १०

गोकुलसे वृन्दावन जाना तथा वत्सासुर और बकासुरका उद्धार

एवं तु नवमाध्याये भक्तिरुक्तातिदुर्लभा ।।
कृष्णसेवकसख्यस्य हेतुर्दशम उच्यते ।।का.१।।

कारिकार्थ : इस प्रकार नवम अध्यायमें अति दुर्लभ भक्तिका वर्णन किया. दशम अध्यायमें श्रीकृष्णके भक्तकी मैत्रीका कारण कहते हैं.

प्रथम कारिकामें नवम और दशम अध्यायकी संगति बतानेकेलिए कहा है कि नवम अध्यायमें राजाके(१०।७।२)में किए हुए, जिस श्रवण करनेसे भगवान्में भक्ति हो, उस प्रश्नका उत्तर दिया है और दशम अध्यायमें कृष्णके सेवककी मैत्रीका हेतु(वैराग्य) बताकर दोनोंकी संगति दिखाई है. यमलार्जुन (नलकूबर और मणिग्रीव)को भगवान्के दर्शन हुए जिससे उनका मोक्ष भी हुआ, यह भगवद्भक्त नारदजीके अनुग्रह रूप शापसे हुआ. अतः इस चरित्रके श्रवणसे भगवद्भक्तोंसे कैसी भी मैत्री हो तो वह हितकर होती है. श्रीकृष्णके भक्तोंका दर्शन ही मुक्ति देनेवाला है, उसमें उन(भगवद्भक्तों)की कृपारूपी वाक्योंसे तो भगवान्की भी कृपा होती है जिससे सब बन्धन छूट जाते हैं इस प्रकारका ज्ञान होते ही जीव उनसे मैत्री करनेका यत्न करेगा।।१।।

वैराग्यं भगवद्धर्मः षड्गुणोत्र निरूप्यते ।।
गुणानां भगवत्त्वाय स एव हि यतोऽभवत् ।।का.२।।

कारिकार्थ : इस दशम अध्यायमें षड्गुणवाले 'वैराग्य' धर्मका निरूपण करते हैं. गुण भी भगवान् ही हैं क्योंकि निश्चयसे भगवान्ने ही गुणोंके रूप धारण किए हैं.

नवम अध्यायमें अविद्याको नाश करनेवाले और भगवान्को वशमें करनेवाले ज्ञानरूपी भगवान्के धर्मका निरूपण किया है इस दशम अध्यायमें बताते हैं कि भगवान्के सर्वगुण भगवद्रूप हैं अर्थात् जो कुछ भगवान् करते हैं वे सब उनके गुण भी कर सकते हैं क्योंकि उनने ही गुणोंका रूप धारण किया है इसलिए षड्गुणवाले 'वैराग्य' धर्मका वर्णन इस अध्यायमें किया गया है इससे इस कारिकासे स्कन्धके अर्थ(निरोध)से भी संगति बताई है और यह भी बताया है कि जैसे सर्प गोलाकार आदि कोई भी रूप धारण करता है तो भी प्रत्येक

आकार(रूप)में वह एक ही सर्प होता है वैसे ही गुण भी भगवान्का ही रूप है।।२।।

वैराग्यनिवर्त्यं तु भगवद्वाक्यतो भवेत् ।।
विशेषतस्तु यद्वाक्यं न निवर्तेत केनचित् ।।का.३।।

कारिकार्थ : अविनाशी वैराग्य तो भगवान्के वचनोंसे होता है जो वचन(वैराग्य) कोई भी अन्यथा नहीं कर सकता है ऐसी इसमें विशेषता है.

वैराग्य दो प्रकारके होते हैं एक नाशवान और दूसरा अविनाशी. भगवान्के भगवद्भक्तोंके वचनोंसे जो वैराग्य होता है वह अविनाशी होता है जो सदैव बना रहता है और दूसरे प्रकारका वैराग्य, जो गृहस्थ कुटुम्बियों द्वारा अथवा धन-नाश आदि द्वारा दुःखसे जो वैराग्य उत्पन्न होता है वह सुख मिलनेपर मिट जाता है तथा(वैसे) नित्य और अनित्य वस्तुके विवेकसे जो वैराग्य उत्पन्न होता है वह भी स्थिर नहीं रहता है. नलकूबर और मणिग्रीवको नारदजीके शापसे अविनाशी वैराग्य हुआ था. भगवान् एवं भगवद्भक्तोंके वाक्य अन्यथा नहीं होते हैं अतः नारदजीका दिया हुआ शापरूप वाक्य, वैराग्यजनक था जिससे वह वैराग्य अविनाशी हुआ. भक्तके शब्द भगवान्के ही शब्द होते हैं।।३।।

तादृशं शापरूपं स्याद् भक्तानामेव तादृशम् ।।
अतो वैराग्यकथने शापो मोक्षावधिर्मतः ।।का.४।।

कारिकार्थ : इस प्रकारका वैराग्य भक्तोंके शापसे ही होता है. अतः यह शाप तो मोक्षकी अवधिवाला होता है और वैराग्य सदैव अविनाशी होता है.

भगवद्भक्तका शाप भी हितकारी होनेसे शापितका हित साधक ही होता है और वह शाप सदैव नहीं रहता है शापितका हित करके मिट जाता है जैसे नलकूबर और मणिग्रीवका मोक्ष कराकर शाप मिट गया।।४।।

शापोद्यमस्तथा हेतुः शापश्चापि प्रसादभाक् ।।
वाक्यस्यापि फलं शीघ्रं स्तुतिश्चानुग्रहस्तथा ।।का.५।।
षड्भिर्द्वादशभिश्चैव त्रिभिः षड्भिस्तथैव च ।।
दशभिः पञ्चभिश्चेति षडर्थाः क्रमतो मताः ।।का.६।।

कारिकार्थ : शापका उद्यम, शापका कारण, अनुग्रहरूप शाप, वाक्यका फल भी शीघ्र होना, स्तुति और प्रसाद ये षट् अर्थ क्रमशः श्लोकोंमें इस प्रकार कहे गए हैं :

१.शापका उद्यम छः श्लोकोंमें, २.शापके कारण द्वादश श्लोकोंमें, ३.अनुग्रह रूप शाप तीन श्लोकोंमें, ४.फलकी शीघ्रता छ श्लोकोंमें, ५.स्तुति दश श्लोकोंमें, ६.कृपा, पांच श्लोकोंमें।।५-६।।

इन दो कारिकाओंमें कौनसे और कितने श्लोकोंमें किस किस चरित्रका वर्णन है उसका विश्लेषण किया गया है।।५-६।।

अपूर्वत्वाच्छ्रोतुमिच्छा तेन प्रश्नः परीक्षितः ।।
स्वस्यापि तादृशत्वेन तद्वन्मोक्षाशया पुनः ।।का.७।।

कारिकार्थ : यह अपूर्व होनेसे इस प्रसंगके(चरित्र) श्रवणकी इच्छा हुई. अतः परीक्षितने प्रश्न किया है क्योंकि आप भी वैसे ही थे अर्थात् इन(परीक्षित)को भी मोक्षकी इच्छा थी इसलिए भी प्रश्न किया है.

परीक्षितको इस चरित्रको सुननेकी इच्छा इसलिए हुई कि यह एक नवीन एवं विचित्र बात है कि देव भी पाप करते हैं और ऋषि तथा भक्त भी क्रोध करते हैं. परीक्षितको इस कथाके पूछनेका यह भी कारण था कि वह स्वयं भी ऋषि द्वारा शापित था. इस चरित्र श्रवणसे मुझे(परीक्षितको) भी निश्चय हो जाय कि महान् पुरुषोंका शाप भी आशीर्वाद है उससे कल्याण ही होता है।।७।।

नवम अध्यायके अन्तमें कुबेरके पुत्र नारदजीके शापसे यमलार्जुन (वृक्षरूप) हुए. यह सुनकर परीक्षित् अब इस निम्न श्लोकमें प्रश्न करता है कि भगवान्ने इनका उद्धार किस प्रकार किया.

श्रीराजोवाच

कथ्यतां भगवन्नेतत् तयोः शापस्य कारणम् ।।
यत् तद् विगर्हितं कर्म येन देवऋषेस्तमः ।।१।।

राजाने कहा हे भगवन् ! उनके शापका वह कारण कहो कि इनने कौनसा निंदित कर्म किया था जिससे ऋषि नारदजीको क्रोध आ गया।।१।।

राजा परीक्षित् शुकदेवजीको 'भगवन्' यह विशेषण इसलिए देता है कि भगवान्ने जैसे यमलार्जुनका दुःख दूर किया था वैसे ही आप भी मेरे दुःख दूर करनेकी सामर्थ्यवाले हो इससे मेरेलिये भगवान् हो. श्लोकके 'एतद्'(यह) शब्दका भाव बताते हैं कि परीक्षितके हृदयमें शापका कारण बाधक हो रहा था (दुःख दे रहा था) अर्थात् शापसे क्या होगा? इसलिए पूछता है कि इन दोनों (नलकूबर और मणिग्रीव)को एक ही प्रकारके शापका कारण कहिए. इस एक ही

शापके प्रश्नसे शेष इससे सम्बन्ध रखनेवाले चार विषयोंका अभिप्राय अर्थात्– १.शापका विस्तार, २.मोक्ष, ३.स्तुति और भगवत्प्रसाद निकल जाएगा. इसलिए इन चारोंसे अधिक दो ही प्रश्न पूछते हैं. इस प्रकारके शापका हेतु जो कर्म है वह अवश्य निन्दित ही है. इसलिए प्रश्न करते हैं कि ऐसा निन्दित कर्म देवताओंने कैसे किया. देवता तो पाप(निन्दित) कर्म करे यह सम्भव नहीं है और जिस कर्मके करनेसे देवताओंमें भी जो ऋषि(मन्त्रद्रष्टा) हैं वैसे नारद ऋषिको क्रोध आ गया. इस प्रकार कहनेसे यह स्पष्ट कर दिया कि उन्होंने ऐसा पाप कर्म किया है जिससे ऋषिको इनके प्रति शाप देना आवश्यक हो गया था. निन्दित कर्मके कारण, नारदजीने शापका उद्यम किया. निन्दित कर्म करनेपर सब शाप देनेका उद्यम करते हैं. किन्तु ये देवोंमें भी ऋषि हैं, अतः साधारण पाप कर्म होता तो ये शाप नहीं देते इसलिए इनने जो शाप दिया उसमें कोई विशेष कारण होगा वह विशेष कारण कृपा कर कहिए।।१।।

निम्न श्लोकसे लेकर छ श्लोकोंमें विशेष करके निंदित कर्म करनेसे शापके उद्यमका वर्णन करते हैं.

श्रीशुकः उवाच

रुद्रस्यानुचरौ भूत्वा सुदृप्तौ धनदात्मजौ ।।
कैलासोपवने रम्ये मन्दाकिन्यां मदोत्कटौ ।।२।।

श्रीशुकदेवजी बोले, श्रीमहादेवजीके सेवक महान् अहंकारी जो कुबेरके पुत्र थे मदोन्मत्त होकर श्रीगंगाजीके समीप कैलासके सुन्दर उपवनमें फिर रहे थे।।२।।

उन्मादश्च प्रमादश्च निन्दिताचरणं तथा ।।
महत्स्वपि तथा धाष्ट्र्यसिद्ध्यर्थं महतां दृशिः ।।का.१।।
धाष्ट्र्यं तयोर्न सङ्घस्य ततश्चोद्यम ईर्यते ।।

कारिकार्थ : छ श्लोकोंमें शापके उद्यमका वर्णन है अब किस श्लोकमें नलकूबर और मणिग्रीवके किस कर्मका वर्णन है वह इस डेढ कारिका द्वारा बताते हैं. उन्माद(दूसरे श्लोकमें) प्रमाद(तीसरे श्लोकमें) निन्दिताचरण(चौथे श्लोकमें) नारदादि महापुरुषोंसे भी धृष्टता की. महापुरुषोंका दर्शन(नलकूबरके कर्मोंको देखना) (पांचवें श्लोकमें) सब स्त्रियोंने धृष्टता नहीं की केवल इन दोनोंकी धृष्टता(अविनय) (छठे श्लोकमें) इसके पश्चात् पापकेलिये उद्यमका वर्णन

(सातवें श्लोकमें) किया है.

पहले तो महान् पुरुषोंको इस प्रकारके कर्म करनेवाला होना योग्य नहीं है. इस प्रकारके निन्दित कर्म करनेवालोंकी महत्ता दिखाते हैं कि रुद्रके अनुचर हैं. रुद्रका अर्थ है, जो रोगों(भवरोगों)का नाश करते हैं. ऐसोंके सेवकोंको रोगसे सम्बन्ध करना अनुचित[१] है. 'अनुचर' पदका भाव बताते हैं कि उसको अणुमात्र भी विपरीत कर्म करना दोष है. उसे पूर्ण रीतिसे स्वामीके अनुसार कर्तव्य करने चाहिए. महादेवजीके अनुचर होकर भी धनके कारण ये दोनों मन्दोमत्त थे कारण कि कुबेर[२] के पुत्र थे. जो सबको धन देता है उसके पुत्र धनी होते ही हैं इसमें संशय ही नहीं है. इस प्रकारकी क्रीड़ा, दो की साथमें नहीं होनी चाहिए क्योंकि साथ करना निन्दित है किन्तु दोनों दुष्ट हो गये थे इसलिए न केवल दोनोंने मिलकर क्रीड़ा ही की परन्तु जहां क्रीड़ा नहीं करनी चाहिये थी ऐसे स्थल जो महादेवजीका निवास स्थान कैलास है उसके रम्य(सब दोष रहित) उपवन जिसमें पुष्प फल आदि लगे हुए हैं उसमें क्रीड़ा करने लगे. महादेवजी स्वभावसे विरक्त हैं और उनके स्थानमें विरक्त(त्यागी) ही रहते हैं. उसमें भी उपवनमें जहां योगीजन भगवद् चिन्तन करते हैं. उससे भी विशेष रम्य-स्थान भगवान्की कृपाके होनेका स्थान, इससे भी अधिक दोष बताते हैं कि मन्दाकिनी(श्री भागीरथी गंगाजी) जिसमें किसी प्रकारका भी दोष[३] नहीं है उसके समीपके स्थानोंपर इन्होंने जो क्रीड़ा की, उसका कारण धनके मदसे दुष्ट हो गये थे. मदिरा(शराब) पानादि दोषोंके मदका आगे वर्णन करेंगे।।२।।

१.लालूभट्टजी योजनामें लिखते हैं कि अनुचरका तात्पर्य है पीछे चलनेवाला अर्थात् जैसे स्वामी करे वैसे ही सेवकको भी शुद्ध आचरण रखने चाहिए 'शिव वेद है वेद शिव है' इस श्रुत्यनुसार शिव वेदरूप है इसलिए शिवके सेवकोंको वेदानुसार अपना व्यवहार रखना चाहिए. इन्होंने वैसा नहीं किया अतः यह अनुचित है.

२.कुबेर देवताओंके कोषाध्यक्ष (खजाञ्ची) हैं.

३.श्रीपुरुषोत्तमजी 'प्रकाश'में इसका स्पष्टीकरण(खुलासा) करते हैं कि महादेवजीके उपवनमें जो गंगाजी हैं वे दोष-रहित इसलिए हैं कि वहां कोई भी मनुष्य स्नान नहीं करता है अतः वहाँकी गंगाजी पाप-रहित हैं अन्यत्र मनुष्य स्नान करते हैं उनका पाप गंगाजी ले लेती हैं तो वहां गंगाजी सर्व दोष-रहित नहीं कही जाती है.

इससे पूर्वके श्लोकमें महान् पुरुषके स्वरूपके दोष कहे, अब निम्न श्लोकमें आगन्तुक(दुष्ट कर्म करनेसे आनेवाले) दोषोंका वर्णन करते हैं.

वारुणीं मदिरां पीत्वा मदाघूर्णितलोचनौ ।।
स्त्रीजनैरनुगायद्भिश्चेरतुः पुष्पिते वने ।।३।।

वारुणी पीनेसे उत्पन्न मदसे घूर्णित(घूमती हुई) नेत्रवाले वे पुष्प-वाटिकामें फिर रहे थे. जिनके पीछे गाती हुई स्त्रियां भी फिर रही थीं।।३।।

दो कारणोंसे उत्पन्न दोषको मिटाना कठिन हो जाता है, यह बताकर दोनों श्लोकों(दूसरे-तीसरे)का सम्बन्ध बताया, दूसरे श्लोकमें धनमद बताया है यहां तीसरेमें वारुणी मद बताते हैं. अतः इस प्रकार दो दोष हो गये जिन्हें वे स्वतः मिटा नहीं सकते थे. 'वारुणी' शब्दका अर्थ है जो वरुण(समुद्र)मेंसे पैदा हुई है और अमृतके साथ उत्पन्न हुई है अतः दैत्य-भावको बढ़ानेवाली है. उसपर भी फिर मदिरा मादक(नशा लानेवाली) होनेसे आसुर भावसे भी अधिक दोष पैदा करनेवाली है. ऐसी मदिराको पीनेसे उत्पन्न मद करके वे घूर्णित नेत्रवाले हो गये अर्थात् विरुद्ध ज्ञानवाले(अज्ञानी) हो गये न केवल इतना ही था किन्तु पीछे गाती हुई स्त्रियां भी संगमें थीं. संगका दोष, मोहका कारण है अर्थात् संगसे ही मोह(अज्ञानता, बेसमझी) होता है और स्त्रियोंसे सम्बन्ध भी बताया है. पुष्पवाटिकामें फिरने लगे. जो रजोगुण युक्त होनेसे उसमें फिरनेवालोंमें भी रजोगुण[१] बढ़ता है. 'मन्दाकिन्या'[२] का अर्थ है गंगाजीके समीप. जहां ऐसे दोषयुक्त वे घूम रहे थे वहां कैलाशका उपवन था एवं समीपमें गंगाजी भी बह रही थी. इन दोनों पवित्र स्थानोंके होते हुए भी मदान्धन(घमंडमें अन्धे) हो रहे थे. अतः रजोगुण युक्त पुष्पवाटिकाके कारण भी इनमें दोषकी विशेषता दिखानेमें किसी प्रकारका विरोध नहीं है।।३।।

१.रजोगुण: विषयोंमें आसक्त करता है. अनुवादक.

२.मन्दाकिन्या व्याकरणानुसार यह सप्तमी विभक्ति अधिकरण अर्थमें भी होती है यदि यह अर्थ किया जाता तो लक्षणा करनी पड़ती. लक्षणा करना आचार्यश्रीको अभीष्ट नहीं है. अतः यहां सप्तमीका अर्थ सामीप्यमें किया गया है. अनुवादक.

इस चतुर्थ श्लोकमें दूसरा दोष दिखाते हैं.

अन्तः प्रविश्य गङ्गायामम्भोजवनराजिनि ।।
चिक्रीडतुर्युवतिभिर्गजाविव करेणुभिः ।।४।।

कमल वनकी पंक्ति युक्त गंगाजीके मध्यमें प्रवेशकर हस्ती(हाथी) जैसे हस्तिनियोंसे क्रीडा करते हैं वैसे वे भी स्त्रियोंसे क्रीडा करने लगे।।४।।

श्रीगंगाजीमें इस प्रकारकी क्रीड़ा करनेका शास्त्रोंने निषेध किया है. जैसे कि कहा गया है ''गंगा पुण्यजलां प्राप्य त्रयोदश विवर्जयेत्'' पुण्य जलवाली गंगापर जाकर तेरह कार्य छोड़े. जिनमें गंगाजीके भीतर क्रीड़ाका भी निषेध है. इन्होंने गंगाका जल नदीसे लाकर, बाहिर जलमें क्रीड़ा नहीं की, किन्तु गंगाके भीतर जलके मध्यमें कीड़ा की. वह क्रीड़ा भी कहां की, कि जहां कमलके वनकी पंक्तियां लग रही थीं, वहां सदैव भगवत्सान्निध्य रहता है अर्थात् भगवान् वहां विराजते हैं. उस स्थानपर इन कमलोंसे गंगाजी भगवान्की पूजा करती है. गंगाजीमें भी ऐसे स्थलपर, जो क्रीड़ा की, वह क्रीड़ा भी हाथी, हथनियोंके समान लज्जाका त्यागकर करने लगे।।४।।

इस प्रकार दोनों(नलकूबर और मणिग्रीव)के विषय(चरित्र)का निरूपणकर, अब निम्न श्लोकमें शापकेलिए देवर्षि नारदजीके पधारनेका वर्णन करते हैं.

यदृच्छया च देवर्षिभगवांस्तत्र कौरव ।।
अपश्यन्नारदो देवौ क्षीबाणौ समबुध्यत ।।५।।

हे कौरव ! वहां देवर्षि भगवान् नारदने उन दोनों देवोंको अचानक देखा और समझ गए कि ये दोनों मत्त(मस्त) हैं।।५।।

आचार्यश्री कहते हैं कि श्लोकमें नारदजीको देवर्षि इसलिए कहा है कि नारदजीको भविष्य(आगे होनेवाला)का ज्ञान है और उनमें देवताओंपर कृपा करनेका गुण है. तथा भगवान् कहकर यह बताया है कि नारदजीमें भगवान्के समान सर्व सामर्थ्य भी है. ऋषि वा पार्षदादिमें भगवान् जैसी सर्वसामर्थ्य आदिकी शक्ति[१] भगवान्की कृपासे आती है. गंगाजीके मध्यमें क्रीड़ा करनेकी भूल महान् कुल(देव कुल)में उत्पन्न होकर(जन्म लेकर) भी कर रहे हैं? राजाको कौरव विशेषण इसलिए दिया है कि राजा अपने दृष्टान्त[२]से इसके तत्त्व(उपदेश)को समझ लो. नारदजीने पधारते ही पहले ही देवोंको देखा उसके पीछे उनको मदयुक्त(अहंकारी) जाना क्योंकि उनको चाहिये था कि आए हुए ऋषिका वे प्रमाणादिसे सन्मान करते, जो उन्होंने नहीं किया अतः ऋषिने समझ लिया कि ये मदयुक्त हैं।।५।।

१.श्रीपुरुषोत्तमजी प्रकाशमें इसका स्पष्टीकरण करते हैं कि ऐश्वर्यादि गुण भगवान्में नित्य है जो उनके ही रूप है. दूसरोमें नित्य नहीं है भगवान्की कृपासे कभी वे गुण

उनमें उत्पन्न होते हैं सदैव नहीं. इसलिए श्री सुबोधिनीमें उनको 'कार्य भगवनित्वा' कहा गया है अथवा जितनी भगवान्की इच्छा हो उतने ही गुण उनको देते हैं.

२.राजा परीक्षित् भी महत्कुलमें उत्पन्न हुआ है और उसने भी ऋषिके गलेमें साँप डालनेकी भूल की है. मदयुक्तकेलिये श्लोकमें 'क्षीबाणौ' शब्द दिया है यह शब्द अकारान्त 'क्षीब' भी है और नकारान्त 'क्षीबन्' भी है.

नारदजी आए और इनको मदयुक्त अवस्थामें क्रीडा करते हुए देखा उसके पीछे जो कुछ हुआ उसका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

तं दृष्ट्वा व्रीडिता देव्यो विवस्त्राः शापशङ्किताः ।।
वासांसि पर्यधुः शीघ्रं विवस्त्रौ नैव गुह्यकौ ।।६।।

नग्न देवियोंने नारदजीको देखके लज्जित होकर, शापके भयसे शीघ्र वस्त्र धारण करलिए परन्तु नंगे गुह्यकोंने वस्त्र नहीं पहने।।६।।

नग्न देवियों(अप्सराएं)ने नारदजीको देखकर अपनेमें और नारदजीमें एक एक धर्म जान गई. देवियोंको स्त्रीत्वके कारण लज्जा आई और काम जगनेसे अनिष्ट होगा, जिससे शापकी शंका मनमें हुई और यह विचार भी आया कि लज्जाकी रक्षा तथा पापसे अभय हो जाय इसलिए जो विलम्ब करेंगी तो नारदजीके मनमें क्षोभ होगा और वे शाप दे देंगे. अतः शीघ्र कपड़े पहन लिये. गुह्यक भी नंगे थे नग्नदर्शन अमंगलकारी है तथा निषिद्ध है और स्त्रीके संगसे तो मनमें क्षोभ(घबराहट) करनेवाला है. 'गुह्यक'[१] पदका तात्पर्य बताते हैं कि जिनको अपना शरीर वस्त्रोंसे ढक लेना चाहिये था ऐसे नामवाले होनेपर भी कपड़े नहीं पहने।।६।।

१.श्रीपुरुषोत्तमजी प्रकाशमें कहते हैं कि 'क'का अर्थ विषय भी होता है किन्तु विषयोंका कपड़ोंसे आच्छादान हो नहीं सकता है शरीरका हो सकता है अतः यहां 'क'का अर्थ आचार्यश्रीने शरीर किया है.

इस प्रकारकी दशा देखकर नारदजी शाप देनेका प्रारम्भ करने लगे उसका वर्णन निम्न श्लोकसे करते हैं.

तौ दृष्ट्वा मदिरामत्तौ श्रीमदान्धौ सुरात्मजौ ।।
तयोरनुग्रहार्थाय शापं दास्यन्निदं जगौ ।।७।।

मदिराके मदसे मतवाला और लक्ष्मीके मदसे अन्धे उन देवके कुमारोंको देखकर, उनपर अनुग्रह करनेकेलिए शाप देते हुए नारदजीने ये वचन बोले।।७।।

देवकुमार होकर असुरों जैसा कार्य मदिरा पानकर मदमत्त हो गये हैं और लक्ष्मीके मदसे अन्धे बन गये हैं इससे मनुष्यदोष भी उनमें आ गये हैं. इस प्रकार आसुर और मानुषदोष दोनों दोष आनेका फल महापुरुषोंकी सन्निधिमें ही मिलता है. ''अत्यन्तनिन्दितैर्दोषैर्जन्तुः स्थावरतां व्रजेत्'' अर्थ विशेषनिन्दित दोषोंसे जीव स्थावर योनिको प्राप्त होवे. शास्त्रके इस वचनानुसार इन दोनोंको स्थावरत्व(जड़पना–वृक्षादि योनि) ही योग्य है यों विचारते हुए कि यह सब कर्मसे ही प्राप्त होता है ऐसा निश्चयकर कृपायुक्त देवर्षि उनपर अनुग्रहार्थ शाप देते हुए ये वचन कहने लगे कि जैसे कोई बालक किसी अन्यका अपराध करता है तो उसका पिता अपने बालकको कर्मानुसार फल देता है वह फल अनिष्ट(बुरे या अपराधी) बालकको वा दूसरोंको अच्छा न लगता हो तो भी विशेष दुःखदायी नहीं होता है कारण कि वह फल कर्मानुसारी है और बालकके शिक्षार्थ अनुग्रहरूप है. वैसे ही नारदजीने भी कर्माधिकारी जब तक दंड देवे उससे पहले ही शाप दे दिया. महापुरुषकी दृष्टिसे कर्मने फल दिया इस कारणसे वे स्थावर(वृक्ष) तो हुए किन्तु ऐसे वृक्ष हुए जिस वृक्षयोनिसे मुक्ति मिलती है. जैसा कि शास्त्रोंमें कहा है कि नर्मदाके तीरपर उत्पन्न सरल और अर्जुनके पेड़ नर्मदा[१]के जलके स्पर्शसे परमगति(मोक्ष)को प्राप्त होते हैं. उसमें भी ये जो गौओंकी अपनी छायासे सेवा करनेवाले और नन्दरायजीको समाचार कहनेवाले होंगे जिससे इनको उत्कृष्ट(बहुत उत्तम) फल मिलेगा अतः कर्मफलसे शाप श्रेष्ठ है।।७।।

१. नर्मदा तीर सञ्जातां सरलार्जुनपादपाः, नर्मदातोयसंस्पर्शाद् यान्ति ते परमां गतिम्.

पूर्व श्लोक (७)में नारदजीके शापका वर्णन किया गया इसपर यह शंका होती है कि जैसे इन्होंने अब ये दुष्कर्म किए वैसे ही कभी उत्तम कर्मोंका होना भी सम्भव है जिनसे पाप क्षयकर मुक्तिकी प्राप्ति कर लेते, अथवा सत्संग होनेसे भक्ति उत्पन्न हो जाती तो शापकी क्या आवश्यकता थी, जो नारदजीने शाप दिया इस शंकाको निम्न १२ श्लोकोंसे निवारण करते हुए कहते हैं कि इन दोनों लक्ष्मी मदवालोंको 'सत्कर्म और सत्संग' दुर्लभ है.

श्रीनारदः उवाच

न ह्यन्यो जुषतो जोष्यान् बुद्धिभ्रंशो रजोगुणः ।।
श्रीमदादाभिजात्यादिर्यत्र स्त्रीद्यूतमासवः ।।८।।

श्रीनारदजी बोले लक्ष्मीके मदसे उत्पन्न स्त्री संग, द्यूत(जुआ) और

मदिरा पान दोष जिस प्रकार विषयोंका उपभोग करनेवालोंकी बुद्धिका नाश करता है, वैसे उत्तम कुलमें जन्म आदिसे उद्‌भूत अन्य दोष(मद वा रजोगुण) बुद्धिका नाश नहीं करते हैं।।८।।

सन्मार्गपर चलना और सत्संग करना ये दोनों कार्य सद्‌बुद्धि[१]से होते हैं. जिनमें लक्ष्मीका मद होता है उनमें सद्‌बुद्धि नहीं होती है. लक्ष्मी मदके अतिरिक्त दूसरे दोष, विषयोंका उपभोग करनेवालोंकी बुद्धि[२]का भ्रंश(नाश) नहीं करते हैं. सतोगुणसे ज्ञान उत्पन्न होता है इस वचनानुसार यहां कही हुई बुद्धि सात्त्विकि है. उस सद्‌बुद्धि[३]के तीन प्रकार बाधक[४] हैं १.विरुद्ध गुण[५], २.आश्रय[६]को नाश करनेवाले,३.आश्रयके विरुद्ध ज्ञान[७] उत्पन्न करनेवाले.

ये तीनों बाधक लक्ष्मीके मदसे उत्पन्न होते हैं विषयोंका ध्यान करनेवालोंका मन विषयोंसे आकृष्ट(खिंची हुई) इन्द्रियों द्वारा विक्षिप्त होता है वह बुद्धिकी चेतना(समझ)का हरण कर लेता है जैसे नाली बड़े जलाशय (तालाब)से जल खेंच लेती है.

यद्यपि किसी भी विषयके सेवनसे बुद्धिका नाश होता है तो भी बाह्य और आन्तर दोषोंके भण्डाररूप लक्ष्मीके मदसे जैसा बुद्धिका नाश होता है वैसा दूसरे किसीसे नहीं होता है. अन्य प्रकारसे उत्पन्न विषयोंके अनुभवमें द्वन्द्वपन(दो दोषोंके होने)का अभाव है, इसलिए उन विषयोंका त्याग किया जा सकता है. किन्तु लक्ष्मी मदसे उत्पन्न विषयोंका अनुभव नहीं छोड़ सकते हैं कारण कि इससे अन्दरके[८] और बाहरके[९] दोष उत्पन्न हो जाते हैं जिसका वर्णन श्लोकमें 'आभिजात्यादि' पदसे किया गया है.

विद्यामदो धनमदस्तथैवाभिजनो मद ।।

एते मदा मदान्धानां त एव हि सतां दमाः ।।का.।।

कारिकार्थ : विद्याका मद, धनका मद, उत्तम वंशमें जन्म होनेका मद तो मदसे अन्धे हो गए पुरुषोंकेलिए है. सत्पुरुषोंकेलिए ये मद नहीं है, किन्तु उनके लिए दम[१०] है.

उपरोक्त कारिकामें तीन प्रकारके मदोमें, धनका मद मध्यमें दिखाया है जिसका तात्पर्य यह है कि दूसरे मदोंका जनक(पैदा करनेवाला) भी धन मद ही है. जैसे बीचके घरके जलनेपर दोनों बाजूवाले घर भी उसके संसर्ग(संग)से जलने लगते हैं. उत्तम कुलमें जन्मके कारण उत्पन्न मदकी आदि भी मूल लक्ष्मीका मद

है यह लक्ष्मीका मद उच्च-कुलमें जन्मके मदसे भी विशेष अनर्थकारक है; कारण कि दूसरे मद दुष्ट विषयोंको उत्पन्न नहीं करते हैं किन्तु लक्ष्मी मद दुष्टविषयोंका जनक है वे दुष्ट विषय हैं १.स्त्री(संसर्ग), २.द्यूत, ३.मदिरा. इनके अतिरिक्त शेष दूसरे भी कहेंगे. इससे पहले ये तीन दोष कहे हैं जो अपरिहार्य(मिट नहीं सकते) हैं. प्राणियोंको सर्व प्राप्तिके तीन कारण, 'काया', 'वाणी' और 'मन' हैं. ये तीनों यदि स्वस्थ हैं तो प्राणी सब प्रकारसे उन्नत हो सकता है. यदि ये अस्वस्थ हैं तो प्राणीकी अवनति होती है इसको स्पष्ट समझाते हैं कि ये तीन किस प्रकार प्राणीका नाश करते हैं. प्रथम 'स्त्री' कायाका नाश करती है, दूसरी द्यूत वाणीका नाश करता है क्योंकि द्यूत खेलनेमें पुनः पुनः असत्य बोला जाता है जिससे वाणी अपवित्र होकर नाश करती है और तीसरी 'मदिरा' इसके पीनेसे बुद्धि-ज्ञान नाश होता है. जूआ मदिरा-पान और स्त्रियां ये तीन अधर्मके चरण हैं अर्थात् अधर्म इनके द्वारा ही चलता और बढता है. श्लोकमें प्रथम 'स्त्री' कहनेका तात्पर्य कहते हैं कि इन तीनोंमें भी 'स्त्री' विशेष अनर्थकारिणी है जैसे कहा है कि "**न तथास्य भवेन् मोहो बन्धश्चान्यप्रसंगतो, योषित्संगाद् यथापुंसो यथा तत्संगि-संगत**" क्योंकि पुरुषोंको स्त्रियोंके संसर्गसे अथवा स्त्रीसंगियोंके संसर्गसे जिस प्रकार मोह और बन्धन होता है वैसा दूसरे किसीसे नहीं होता है. इस वाक्यसे बताते हैं कि स्त्रियोंमें विशेष दोष होता है. जिसको लक्ष्मीका मद होता है उसके पास जो स्त्रियां रहती हैं वे असती[११] ही होती हैं।।८।।

१.जिस बुद्धिसे ज्ञान उत्पन्न हो उसे सद्बुद्धि कहते हैं. लेख.

२.असद्बुद्धिकी वृत्तिको 'मन' और सद्बुद्धिकी वृत्तिको 'चित्त' कहते हैं. जिसमें सद्बुद्धि नहीं है उसका चित्त(सोया हुआ) है और मन जागृत (जागा हुआ) है. जब तक चित्त-वृत्ति नहीं जागती है तब तक सद्बुद्धि उत्पन्न नहीं होती है. मन असद्बुद्धि उत्पन्नकर अध:पात करता है. लेख.

३.चित्तका आश्रय करनेवाली सद्बुद्धिका ज्ञान. लेख.

४.बाधा या रुकावट डालनेवाले. लेख.

५.निषिद्ध विषय चित्तमें रहकर ज्ञानबुद्धिमें रुकावट डालते हैं विषय भोगमें मुख्य स्त्री है अत: श्लोकमें 'स्त्री' शब्द दिया है. लेख.

६.आश्रय-ज्ञानका आश्रय चित्त है अर्थात् ज्ञान चित्तमें रहता है. उस चित्तका नाश हुआ तो ज्ञानका नाश हुआ. चित्तका नाश करनेवाला द्यूत है. तात्पर्य यह है कि जुआ ज्ञानका नाश करता है. लेख.

७.चित्तमें ज्ञान विरुद्ध अन्य विचार(अज्ञान मोहादि) उत्पन्न करनेवाला आसव(मदिरा) है. लेख.

८.विद्यामदको अन्दरका दोष कहते है.

९.उच्चकुलमें होनेके मदको बाहिरका दोष कहते हैं. लेख.

१०.संयम अर्थात् इन्द्रियोंको अपने वशमें करना.

११.प्रकाश: धर्मके आचरण करनेके वास्ते 'स्त्री'से विवाह किया जाता है यदि स्त्री अनर्थकारी दुष्ट है तो उससे धर्मके आचरणार्थ विवाह कैसे किया जाता है. इसके समाधानार्थ ही आचार्यश्रीने आज्ञा की है कि पुरुष, धनके मदसे, जिन स्त्रियोंको रखते हैं वे स्त्रियां ही असली अनर्थकारिणीयां होती हैं अन्य स्त्रियां नहीं.

लक्ष्मी मदसे होनेवाले दूसरे दोषोंका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

हन्यन्ते पशवो यत्र निर्दयैरजितात्मभिः।।
मन्यमानैरिदं देहमजरामृत्यु नश्वरम् ।।९।।

इस क्षणभंगुर(पलमें टूट जानेवाले) देहको(लक्ष्मीके मदसे) अजर(बूढा न होनेवाला) और अमर माननेवाले अजितेन्द्रिय(इन्द्रियोंको वशमें न कर सकनेवाले) और निर्दय होके पशुओंको मारते हैं।।९।।

जहां लक्ष्मी मद होता है वहां प्रतिदिन अपने उदरपूरणार्थ तथा जिह्वाके स्वादकेलिये पशु मारे जाते हैं, क्योंकि उनमें दया नहीं रहती है, जिससे वे निर्दयी हो जाते हैं. निर्दयी होनेसे बाल-पशु(छोटे-छोटे बच्चों)को भी मारते हैं कारण कि उनका माँस कोमल होता है और मद करके वे अपनी इन्द्रियोंको वशमें नहीं रख सकते हैं जिससे इन्द्रियाधीन होकर अन्य पाप भी करते हैं. जैसा कि कहा है कि "**नूनं प्रमत्तः कुरुते विकर्म यदिन्द्रिय प्रीतय आघृणोति**" मदमत्त, इन्द्रियोंको प्रसन्न करनेकेलिये, दुष्कर्म निश्चयसे करता है. अपने इष्ट(प्रिय) पदार्थ किस साधनसे प्राप्त होते हैं इस प्रकारके ज्ञानवाले होकर भी अनिष्ट फलदायी साधन(कर्म)में प्रवृत्ति क्यों करते हैं? इस शंकाका समाधान श्लोकके उत्तरार्ध द्वारा करते हैं कि विषय भोग, स्वभावसे सुख देनेवाला समझा जाता है किन्तु अन्तमें परलोकमें दुःखदाता होता है. वह परलोक तो इस देह छूटनेके पीछे मिलता है. वे धनके मदसे वस्तुके तत्त्वको नहीं जान सकते हैं. अतः वे इस क्षणभंगुर देहको भी जरा मृत्यु रहित समझते हैं।।९।।

देवोंको तो शास्त्रोंमें 'अजर अमर' कहा गया फिर यहां उनको(उनकी देहोंको) नश्वर(नाश होनेवाले) कैसे कहा जाता है इस शंकाका समाधान निम्न

श्लोकमें करते हैं.

देवसंज्ञितमप्यन्ते कृमिविड्भस्मसंज्ञितम् ।।
भूतध्रुक् तत्कृते स्वार्थं किं वेद निरयो यतः ।।१०।।

यह देह, देवनाम धारण करनेवाली होनेपर भी, जो अन्तमें सडे तो कृमिरूप(कीडा) है, खाया जाय तो विष्ठारूप और जलाया जाय तो भस्मरूप होनेवाला है ऐसी देहकेलिये जीवोंसे द्रोह करनेवाला पुरुष क्या अपने स्वार्थ(हित)को जानता है? अर्थात् नहीं जानता है क्योंकि भूतोंके द्रोह करनेसे नरककी प्राप्ति होती है।।१०।।

निश्चयसे देवोंको अजर-अमर कहा गया है, किन्तु वह कहना वास्तविक अजरत्व और अमरत्वका प्रतिपादन करनेवाला नहीं है; किन्तु जैसे बकरीको 'अजा' कहा जाता है, वास्तवमें वह अजा नहीं है किन्तु जन्म लेती है, इस प्रकार देव भी अजर-अमर कहे जाते हैं किन्तु है नहीं यह कहना रूढिमात्र है. इसको दो दृष्टान्तोंसे समझाते हैं १.'अजा' बकरी जन्म लेनेपर भी जो 'अजा' कही जाती है उसका कारण यह है कि परमात्माने किसी समय सोम लानेकेलिये 'अज' बकरेका रूप धारण किया था उसके साथ रूपकी सादृश्यता होनेसे बकरेको अज और बकरीको अजा कहते हैं तथा २.जैसे किसीसे पूछा जाय कि अमुक पुरुष सोता है? जवाबमें वह कह दे कि नहीं सोता है उसका तात्पर्य यह नहीं है कि वह नींद लेता ही नहीं है. उसके कहनेका तात्पर्य इतना ही है कि यह पुरुष सबके पीछे सोता है और सबसे पहले जागता है इसलिए कहा जाता है कि यह नहीं सोता है. इस प्रकार मनुष्योंके जरा(बुढापा) वा मृत्युके समयसे देवोंका जरा और मृत्युका काल विशेष देरीसे आता है. अतः वे अजर और अमर कहे गये हैं. वास्तविक तो यह है कि जिसका नाम देह है वह देव कही जाय तो भी अन्तवाली ही है. देवोंकी भी देह होती है. देहका परिणाम तीन प्रकारसे होता है १.जलाई जाती है, २.खाई जाती है और ३.सड़ जाती है. सड़नेपर उसमें कीड़े पड़ जाते हैं. खानेसे विष्टाका रूप धारण करती है और जलनेपर भस्म बनती है. यह देह पहले 'देव' नाम धारण करके भी अन्तमें कीड़े विष्टा और भस्म नामवाली हो जाती है. जब देह ऐसी है तो उस देहके पोषणार्थ, जो भूतों(जीवों)की हिंसा करते हैं, क्या वे अपना स्वार्थ समझते हैं? अर्थात् नहीं समझते हैं. यदि समझते होते तो भूतोंका द्रोह(बुरा) नहीं करते. क्यों? वैसा(भूत द्रोह) करनेसे नरककी प्राप्ति

होती है. विशेषतासे यहां हिंसा कही गई है क्योंकि जहां धन मद होता है वहां हिंसा अवश्य होती है. इस दृष्टान्तसे यह भी बताया है कि स्त्रियोंके सेवक(विषयी पुरुष) भी अपने स्वार्थ(हित)को किस कर्म करनेमें है इसको नहीं समझते हैं. अतः स्वार्थको न समझनेसे और धर्म तथा सत्संगके अभावकी अवस्थामें उन देवोंको शाप देना उचित ही था. इससे यह भी जता दिया कि ऐसी देहके सुखकेलिये प्रयत्न नहीं करना चाहिए।।१०।।

देहके सुखार्थ प्रयत्न नहीं करना चाहिए इसका अन्य शास्त्र विरोध करते हैं. जैसे कि कहा है कि स्त्रियोंसे और धनसे भी पहले, देहकी रक्षा करनी चाहिए. इसी देहके वधसे सर्व पुरुषार्थोंका वध होता है. इन शास्त्रवचनोंके अनुसार देहकी रक्षा अवश्य करनी चाहिए. इस शंकाके उत्तरमें निम्न श्लोक कहते हैं.

देहः किम् अन्नदातुः स्वं निषेक्तुर्मातुरेव वा ।।
मातुःपितुर्वा क्रेतुर्वा बलिनोग्नेः शुनोऽथ वा ।।११।।

यह देह किसकी है? क्या अन्नदाताकी है? वा पिताकी है? अथवा माताकी है? या नानेकी है? वा बलसे अपने पास ले जावे उसकी है? या खरीददारकी है? वा अग्निकी है? अथवा कुत्तोंकी है? ।।११।।

देहके रक्षार्थ जो वचन कहे गये हैं वे पूर्ण विचारकर नहीं कहे गये हैं. विचार करके देखा जाय तो निश्चय-पूर्वक कह सकते हैं कि देहकी रक्षाके प्रयत्न नहीं करने चाहिए. उन्होंने पहले यह निश्चय ही नहीं किया है कि देह किसकी है? इस श्लोकमें देह विषयक जो-जो सन्देह हैं कि देह किसकी मानी जाय वे दिखाये गये हैं जैसे कि देह किस सम्बन्धके कारण सम्बन्धवाली होती है प्रथम इसका विचार करना चाहिए देह आत्मा नहीं है क्योंकि थोडा भी विचार किया जाय तो समझमें आ जाता है कि देह और आत्मामें भेद पृथक्त्व(भिन्नता) है. अपनापन तो होता है वह अपनापन किसका है और कैसा है? यह देखना है कारण कि एक ही देहमें बहुतोंका अपनापन भिन्न-भिन्न प्रकारसे होता है. शरीरकी उत्पत्ति दो प्रकारकी है: १.पहले जन्म समयकी और २.नित्यकी उत्पत्ति(नित्य शरीरका बढ़ना) नित्यकी उत्पत्तिसे जाना जाता है कि यह देह अन्नदाताकी है क्योंकि देह अन्नसे बनता और बढ़ता है इसलिए शास्त्रोंमें देहको अन्नमय कहा गया है. पहली जन्म समयकी उत्पत्तिसे, वीर्य दाता पिताकी यह देह होती है. लोकमें

प्रत्यक्ष उत्पत्तिसे देह माताकी होती है. परलोकके साधक[१](हित करनेवाला) होनेसे नानेकी होती है कारण कि पुत्रीका पुत्र दौहित्र परलोक सुधार सकता है यों शास्त्र कहते हैं. यह स्थिति स्वरूपसे कही जाती है. दूसरे प्रकारसे कहते हैं कि खरीददारकी हटात्(जबरदस्ती) उठाके ले जानेवालेकी होती है यह वैषयिक (सांसारिक सम्बन्धकी) स्थिति है. देहकी अन्तिम अवस्थाका विचार किया जाये तो देह अग्नि वा कुत्तोंकी होती है जो देहमें कीड़े पड़ जावें तो किसीका भी स्वत्व(अपनापन) नहीं रहता है।।११।।

१.प्रकाश: पुत्र न होनेपर पुत्रीका पहला पुत्र नानेका पुत्र होकर पिण्डदान कर नानेका उद्धार करता है.

देहके विषयमें इतने पक्ष करनेसे क्या परिणाम निकला? इसके उत्तरमें निम्न श्लोक कहते हैं.

एवं साधारणं देहमव्यक्तप्रभवाप्ययम्।।
को विद्वानात्मसात्कृत्वा हन्ति जन्तून् कृतेऽसतः ।।१२।।

इस प्रकार साधारण देह जिसकी उत्पत्ति अव्यक्तसे है और लय भी उसमें है उस देहको अपना(वा अपना रूप) समझकर मूर्खके(अज्ञानी) अतिरिक्त कौन विद्वान् है जो ऐसी देहकेलिए भूतोंका(जीवों, प्राणियों) वध करता है।।१२।।

इस प्रकार देहका सबके साथ साधारण सम्बन्ध है उस देहको अपना (रूप) समझकर कौन है जो जीवोंकी हत्या करे, इस प्रकार अन्वय(सम्बन्ध) है. उसमें भी विद्वान् तो हत्या नहीं कर सकता है क्योंकि वह समझता है कि यह देह, साधारणतया सबसे सम्बन्ध रखनेवाली है, सचमुच तो यह देह ऊपर कहे हुए व्यक्तियोंमेंसे किसीकी भी नहीं है. कारण कि यह देह प्रकृतिसे उत्पन्न होती है और उसमें ही लीन हो जाती है. यदि कहो, कि ऐसा व इतना होते हुए भी, लोकमें बहुत हिंसक देखे जाते हैं, श्लोकमें इसका उत्तर 'असतः' शब्दसे दिया गया है कि हिंसक देखे जाते हैं वे असत्पुरुष हैं. लोकमें जिसको देव वा सत्पुरुष कहते हैं वे इस प्रकारके(हिंसक) नहीं होते हैं।।१२।।

ऐसी अवस्थामें क्या करना चाहिए? ऐसी आकांक्षाके उत्तरमें निम्न श्लोक कहते हैं.

असतः श्रीमदान्धस्य दारिद्र्यं परमाञ्जनम्।।
आत्मौपम्येन भूतानि दरिद्रः परमीक्षते ।।१३।।

लक्ष्मीके मदसे अन्धे बने असत्(मूर्ख व दुष्ट) पुरुषकेलिए दारिद्र्य (गरीबी) उत्तम अंजन है. दरिद्री ही दूसरोंको अपने समान देखता है जिससे वह किसीका द्रोह नहीं करता है।।१३।।

असत्का लक्षण बताते हैं कि यहां लक्ष्मीके मदसे अन्धेको असत् कहा गया है. भगवान् जिसपर कृपा करते हैं उसीका धन नाश करते हैं क्योंकि धनसे मद होता है अहंकारीसे भगवान् दूर रहते है अतः अहंकार न हो इसलिए धनका हरणकर उसपर अनुग्रह[१] करते हैं तब वह भगवान्से प्रेम करने लगता है. तात्पर्य यह है कि लक्ष्मीके द्वारा उत्पन्न मदसे मनुष्य अहंकारी व अन्धा बन जाता है. भगवान्ने उसकी औषधि दरिद्रता बनाई है. नारदजीने भी यही औषधि योग्य समझकर ऐसा शाप दिया है. जैसे मोतिया बिन्दु वा कामलादि[२]से अन्धेकी औषधि अन्जन है अन्जन लगानेसे फिर सब दिखने लगता है. स्वभावसे(जन्मसे) अन्धेकेलिये अन्जन कुछ नहीं कर सकता है. ये जन्मसे सुर हैं असुर नहीं हैं, केवल लक्ष्मीके मदसे असत् बन गये हैं. अतः इनकेलिये लक्ष्मीका अभाव ही अन्जन है जो कि दारिद्रता है. दारिद्रताका तात्पर्य है खराब प्रारब्धके साथ दारिद्र्य. लक्ष्मी मदको नाश करनेकेलिये दूसरे भी अन्जन हैं किन्तु दारिद्रता उत्तम अन्जन है कारण कि दारिद्रता केवल दोषोंको ही नाश नहीं करती है, किन्तु गुणोंको भी प्रकट करती है. गुणोंको बताते हैं कि सबको अपने समान समझकर उनसे अपने जैसा वर्ताव करते हैं जैसे अपने सुखकेलिये और दुःखकी निवृत्तिकेलिये प्रयत्न करता है वैसे ही दूसरोंको सुख प्राप्त हो और उनका दुःख निवृत्त उनकेलिये भी प्रयत्न करता है।।१३।।

१.''यस्यानुग्रहमिच्छामि हरिष्ये तद्धनं शनैः''(१०।८५।८)श्रीमद्भागवत.

२.कामला रोगमें सबकुछ पीला दीखता है.

जिस प्रकार दीन दूसरोंको अपने समान समझता है उसी तरह दूसरे(धनवाले) नहीं समझते हैं. इसको दृष्टांत देकर निम्न श्लोकमें समझाते हैं.

यथा कण्टकविद्धाङ्गो जन्तोर्नेच्छति तां व्यथाम् ।।
जीवसाम्यं गतो लिङ्गैर्न तथाविद्धकण्टकः ।।१४।।

जिस पुरुषको कांटा लगा हो वह दूसरेको कांटा लगनेकी इच्छा नहीं करता है, वह मनमें विचारता है कि कांटा लगनेसे मुझे जैसा दुःख हुआ है वैसा दुःख दूसरेको भी होगा और जिसको कांटा न लगा हो उसको ऐसा अनुभव न

होनेसे ऐसा विचार नहीं आता है।।१४।।

दरिद्रता सब दुःखोंका कारण है, जो दरिद्री होता है वह सब प्रकारके दुःखोंका अनुभव कर सकता है. धनाढ्य नहीं करता है क्योंकि धनके होनेसे वह दुःखोंको मिटानेके सब उपाय कर सकता है. जिसको कांटा लगा है, वह उससे हुए दुःखके अनुभवसे चाहता है कि दूसरोंके भी कांटे न लगे. यदि किसी दूसरेको काँटा लग भी जाय तो उसको झट निकालनेका प्रयत्न करता है. क्योंकि इससे उसमें जीवोंमें समभाव आ गया है जिसको काँटा नहीं लगा है उसमें समानताका भाव उत्पन्न नहीं होता है।।१४।।

दरिद्रतासे उत्तम फलकी प्राप्ति होते हुए भी दारिद्र्य दुःख रूप होनेसे उसका स्वरूप अनिष्टरूप है अतः उसकी प्रशंसा कैसे की जाती है? इस शंकाका निवारण निम्न श्लोकसे करते हैं.

दरिद्रो निरहंस्तम्भो मुक्तः सर्वमदैरिह ।।
कृच्छ्रं यदृच्छयाप्नोति तद्धि तस्य परं तपः ।।१५।।

सर्व प्रकारके मदसे मुक्त और अहंकार रूप–स्तम्भसे रहित, दरिद्री पुरुष इस इच्छासे(अचानक) जो कष्ट पाता है तो वह कष्ट ही, उसकेलिए बडा तप हो जाता है।।१५।।

दारिद्रता मोक्ष देनेवाली है. इसलिए स्वरूपसे दुःखरूप होनेपर भी, चाहने योग्य है. क्योंकि वह तपरूप है. दारिद्र मोक्ष साधक है इसको समझाते हैं कि दरिद्र अहंकाररूप थम्भेवाला नहीं होता है अहंकाररूप थम्भा मोक्षका प्रतिबन्धक है. मोक्षकी प्राप्तिमें अहंकारका अभाव ही साधन है. श्लोकमें केवल 'अहं' पद न देकर 'अहं'के साथ 'स्तम्भ' देनेका तात्पर्य बताते हैं कि 'अहं' शब्दका अर्थ 'ब्रह्म' भी होता है इसलिए साथमें स्तम्भ देकर यह समझा दिया है कि यहां अहंका अर्थ ब्रह्म नहीं है किन्तु मोक्षमें रुकावट डालनेवाला अहंकार समझना चाहिए, कारण कि अज्ञानरूपी गृहकी पूर्ण रीतिसे स्थिरता(मजबूती) अहंकाररूप थम्भेसे होती है. दरिद्रमें उसके न होनेसे उसमें अज्ञान नहीं रहता है जिससे उन दीन पुरुषोंके दूसरे मद भी नष्ट हो जाते हैं. उसको अचानक जो विशेष कष्ट प्राप्त होते हैं वे ही उसके तप होते हैं. तपस्या करनेमें इन्द्रियोंको रोकना आदि कष्ट साध्य है, वह इन्द्रियदमन तब इसका स्वतः स्वभावसे ही हो जाता है. तपस्या विधि अनुसार होनी चाहिये वह नियम यहां प्रयोजक(लागू)[१] नहीं होता

है।।१५।।

१.श्रीपुरुषोत्तमजी 'प्रकाश'में कहते हैं कि भगवान्ने गीतामें 'देवद्विगुरुप्राज्ञ' श्लोकमें इन्द्रियनिग्रहकर भगवच्चिन्तनादि करनेकी आज्ञा दी है. वह यहां स्वभावसे सिद्ध है. और यह तप विधिपूर्वक नहीं है उसके उत्तरमें कहते हैं कि ''येन केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत्'' किसी प्रकारसे भी मन कृष्णमें लगाये. इस न्यायानुसार पदार्थकी सिद्धिमें ही तात्पर्य है विधिमें नहीं है. विधि विहीन होती हुई भी अहंकारके अभावसे एवं इन्द्रियजय स्वतः होनेसे सत्फलकी प्राप्ति होती है.

योग शास्त्रमें मोक्षकी प्राप्तिकेलिए इन्द्रियोंको जीतना कहा है और सांख्यशास्त्रमें अहंकारका अभाव बताया है. दीनतामें इन्द्रिय-जय स्वभावसे ही हो जाता है इसको नीचेके श्लोकमें कहते हैं.

नित्यं क्षुत्क्षामदेहस्य दरिद्रस्यान्नकाङ्क्षिणः ।।
इन्द्रियाण्याशु शुष्यन्ति हिंसापि विनिवर्तते ।।१६।।

भूखसे दुर्बल देहवाले और नित्य अन्नकी चाहनावाले दरिद्रीकी इन्द्रियां निर्बल हो जाती हैं जिससे हिंसा भी निवृत्त हो जाती है।।१६।।

गीताके ''विषया विनिवर्त्तन्ते निराहारस्य देहिनः'' आहारके अभावसे देहधारीका विषय निवृत्त हो जाता है इस वचनानुसार यहां भी कहा जाता है कि भूखके कारण दुर्बल देहवाले और अन्नको चाहनेवाले दरिद्रीकी इन्द्रियां शीघ्र ही शुष्क हो जाती हैं(सूख जाती हैं), कारण कि दरिद्री शरीरका पोषण करनेमें असमर्थ होता है. कर्म इन्द्रियां शिथिल हो जानेसे हिंसा करनी भी छूट जाती है और ज्ञानेन्द्रियोंमें भी प्रतिभा(पूर्ण ज्ञान) न रहनेसे और विषयोंके अभावसे उनकी कारण भूत तृष्णा भी मिट जाती है।।१६।।

इन्द्रियोंकी शिथिलतासे विषय भोगका अभाव हो जाता है तो भी मनोरथ रूप तृष्णा तो अवशिष्ट(शेष) रहती है दरिद्रीकी वह भी निवृत्ति हो जाती है यह निम्न श्लोकमें कहते हैं.

दरिद्रस्यैव युज्यन्ते साधवः समदर्शिनः ।।
सद्भिः क्षिणोति सन्तर्षं तत आराद् हि सिध्यति ।।१७।।

सम दृष्टिवाले साधुओंका समागम भी दरिद्रीको ही होता है और उनके संसर्गसे उसकी तृष्णा क्षीण हो जाती है जिससे वह शीघ्र ही निर्मल(पवित्र) हो जाता है।।१७।।

दरिद्रकी वह(मनोरथरूप) तृष्णा भी साधुओंके संगसे मिट जाती है वे भगवान्की प्रेरणासे लोकोंके उद्धारकेलिये चारों तरफ भ्रमण करते रहते हैं. उन दरिद्रोंके द्वार सदैव साधुओंकेलिये खुले रहते हैं. इसलिए साधुजन दीन मनुष्यके ही घरमें जाते हैं. वे साधुगण वेदके दोनों(पूर्व और उत्तर) काण्डोंको यथार्थ समझकर समदर्शी हो गये हैं तो भी दीन जन ही सदाचारी होते हैं इस विश्वाससे, दीनकेघर ही जाते हैं उन साधुओंके पधारनेपर, वे दीनजन उनसे सत्संगकर तृष्णाको मिटाते हैं. अच्छे सत्कर्म करनेकेलिये(तीर्थ यात्रा आदिकेलिये) जो तृष्णा हो तो वह भी मिट जाती है उसके मिट जानेसे शीघ्र ही उसका फल(मोक्ष) सिद्ध हो जाता है।।१७।।

जहां भक्षणार्थ भोजनादि सामग्रीका अभाव है वैसे दरिद्रके गृहमें साधुगण क्यों जाते हैं? इसके उत्तरमें निम्न श्लोक हैं.

साधूनां समचित्तानां मुकुन्दचरणैषिणाम् ।।
उपेक्ष्यैः किं धनस्तम्भैरसद्भिरसदाश्रयैः ।।१८।।

सबमें सम चित्तवाले, मुकुंद भगवान्के चरणोंकी चाहनावाले साधुजनोंको नीचोंके उपासक और स्वयं भी नीच तथा धनके कारण स्तम्भ जैसे बने हुए अहंकारी पुरुष उपेक्षा करने योग्य हैं।।१८।।

साधुओंके और धनवालोंके धर्म परस्पर विरुद्ध होते हैं अर्थात् दोनोंके धर्म समान नहीं होते हैं जैसे कि साधुजन सदाचरणवाले, और वे(धनवान) असत् आचरणवाले होते हैं. साधु पुरुष सबमें समान दृष्टिवाले और धनी विषम (भेदभाव) दृष्टिवाले होते हैं. अतः समदृष्टिवालोंकेलिये विषम दृष्टिवाले उपेक्षा करने योग्य हैं. साधु पुरुष मोक्षदाता मुकुन्द भगवान्के चरणोंके ढूंढनेमें ही तत्पर रहते हैं दूसरे वे(असत्पुरुष) नीचोंके आश्रय करनेवाले होते हैं कारण कि धन नीचोंके पास ही रहता है उनको धनकी ही चाह होती है जिसकेलिये वे उनका(नीचोंका) आश्रय ढूंढते रहते हैं, और उनका ही आश्रय करते हैं. अतः धनसे मदान्ध स्तम्भ जैसे बने हुए अनम्र(उद्दंड, कठोर स्वभाववाले) तथा घरके भारका वहन करनेवाले असत्पुरुषोंसे साधुओंका कोई(किसी प्रकारका) सम्बन्ध नहीं है।।१८।।

तदहं मत्तयोर्माध्व्या वारुण्या श्रीमदान्धयोः ।।
तमो मदं हरिष्यामि स्त्रैणयोरजितात्मनोः ।।१९।।

मैं माध्वी(मधुसे बनी हुई शराब) वारूणीसे(शराब) उत्पन्न हुए, धनके मदसे अन्धे हुए, स्त्रियोंके अधीन हुए, इन्द्रियोंसे जीते हुए इनका वह अज्ञान मद हरण करूंगा।।१९।।

धनाढ्य और साधुओंमें कोई भी अंश समान नहीं है. अतः श्रीमदसे अन्धे बने हुए इन(नल कूबर और मणिग्रीव) दोनोंका लक्ष्मी मद नाश करनेके अर्थ इनको दरिद्र बनाना चाहिए. इनके निन्दित कर्मसे इनको जड़ता प्राप्त होनी चाहिए. मद दूर करना सत्पुरुषोंका आवश्यक धर्म है. साधु पुरुषोंकी दृष्टि ब्रह्मज्ञानके समान दोषोंको नष्ट करनेवाली होती है यदि साधुजन दोषोंको नाश करें तो त्रिदोष युक्त होनेके कारण धनवान् नाशको प्राप्त हो जावेंगे अर्थात् अधोगति(नीच गति) पाएँगे. उन दोनों(नलकूबर और मणिग्रीव)के दोषोंकी गणना करते हैं. मधुसे बनी हुई मदिरासे मत्त हुए थे. यह मदिरा मधुसे बननेके कारण, उसमें रस विशेष होनेसे वह छोडी नहीं जा सकती है. उसके पीनेका फल तो नाश करनेवाला होता ही है. वारुणी होनेसे दैत्य बना देती है. ये दोनों लक्ष्मीके मदसे अन्धे और स्त्रियोंमें आसक्त(लिप्त, लम्पट) बन गये हैं. अतः इनके तीनों दोष (१.अज्ञात, २.मद और ३.इन्द्रियोंके वशमें होना) दूर करूंगा।।१९।।

इस प्रकार शापके कारणोंका निरूपणकर निम्न तीन श्लोकोंसे प्रसाद पर्यन्त शापका वर्णन करते हैं.

यदिमौ लोकपालस्य पुत्रौ भूत्वा तमःप्लुतौ ।।
न विवाससमात्मानं विजानीतः सुदुर्मदौ ।।२०।।

जो, ये दोनों लोकपालके पुत्र होकर, अज्ञानसे पूर्ण अत्यन्त मदवाले हो गए हैं जिससे अपना नग्न होना भी नहीं जानते हैं।।२०।।

दोषानुवादः शापश्च प्रसादश्चेत्यनुक्रमात् ।।

कारिकार्थ : पूर्व कहे हुए दोषोंका अनुवाद शाप देना और प्रसाद ये तीनों विषय क्रमसे २०,२१ और २२वें श्लोकमें कहे हैं.

इस श्लोकमें दोषोंका अनुवाद करते हुए कहते हैं कि रक्षा कार्यकेलिये प्रतिष्ठित लोकपाल, कुबेरके पुत्र और उसकी गद्दीपर बैठनेके योग्य ये दोनों इतने अज्ञानसे भरपूर हो गये हैं और अत्यन्त दुष्ट मदवाले हुए हैं जो अपने वस्त्र रहित होनेको भी नहीं समझ सकते हैं।।२०।।

इस कारणसे(तीन दोषवाले होनेसे) ये शुद्ध तामसयोनि, जो स्थावर

होती है उसके योग्य हैं. कारण कि कर्मका फल इस प्रकारका ही है इस योनि (वृक्षयोनि)को पाएंगे तो क्या होगा? इसका उत्तर देते हैं कि स्थावर बननेसे परिणाम(नतीजा) यह होगा कि ये पुनः ऐसे दुष्ट मदवाले अज्ञानी नहीं होंगे.

अतोऽर्हतः स्थावरतां स्यातां नैव यथा पुनः ।।
स्मृतिः स्यान् मत्प्रसादेन तत्रापि मदनुग्रहात् ।।२१।।

इसलिए ये स्थावर(वृक्ष) होनेके योग्य हैं जिससे फिर ऐसे मदान्ध न हो जाए, यह मेरे प्रसादसे इन्हें स्मरण रहेगा और इनपर मेरा अनुग्रह वहां भी होगा।।२१।।

ज्ञाननाशः क्रियानाशो भोगनाशस्तथैव च ।।
दुःखं शीघ्रं चानिवृत्तिर्वृक्षत्वे हि भवन्ति वै ।।का.१।।

कारिकार्थ : स्थावर होनेपर क्या होता है? उसका वर्णन इस कारिकामें करते हैं. १. ज्ञानका नाश २.क्रियाका नाश और ३.भोगका नाश ४.दुःख ५.दुःखसे छुटकारा शीघ्र न होना, ये पांच वृक्ष योनि प्राप्त होनेपर होते हैं.

जब कर्मके फलसे स्वतः वृक्षयोनि प्राप्त होती है तो नारदजीकी कृपा कैसी? वहां कहते हैं कि यद्यपि वृक्षयोनि जड़ है जड़योनिमें सत्त्वगुणका अंश नहीं है अतः उस योनिमें किसी प्रकारकी स्मृति नहीं रहती है किन्तु मैं(नारद) भगवत् कृपासे सर्वभावको प्राप्त होनेसे सर्वत्र हूँ, इसलिए उन गुह्यकोंकी इस वृक्षयोनिमें मेरा अंश अग्निके समान गुप्तरूपसे रहेगा. जिससे वृक्षयोनिमें भी इनको पूर्वजन्मके कृत्योंकी और मेरे शापसे वृक्ष होनेकी स्मृति रहेगी. यह मेरे प्रसादका फल है. नारदजी कहते हैं कि यदि मैं प्रसन्न हो जाऊं अर्थात् विशेष सत्त्वगुण धारण करूं तो मेरा अंश वहां भी प्रकट होगा जिससे इस जन्म और उस जन्म(दोनों जन्मों)में भी स्मृति रहेगी और विशेष अनुग्रह भी करता हूँ. श्लोकमें 'प्रसाद' और 'अनुग्रह' दोनों शब्द एक ही अर्थवाले हैं किन्तु दो बार कहनेसे उनके भाव पृथक्-पृथक् हैं उसको आचार्यश्री समझाते हैं प्रसाद कहनेका भाव है अपना धर्म उसमें प्रकट करना जैसे नारदजीने अपना धर्म-सतोगुण वृक्षोंमें गुप्तरूपसे धरा है. अनुग्रह कहनेका तात्पर्य है कि दूसरोंके दोष स्वयं ग्रहण कर[१] उन दोषोंके कर्मका फल भोग कर लेना।।२१।।

१.नारदजीने इन गुह्यकोंके शेष दोष ग्रहण किये हैं.

वासुदेवस्य सान्निध्यं लब्ध्वा दिव्यशरच्छते ।।

वृत्ते स्वलोकतां लब्ध्वा लब्धभक्ती भविष्यथः ।।२२।।

दिव्य सौ वर्ष बीतनेके अनन्तर भगवत्सान्निध्य प्राप्तकर(भगवान्के दर्शन पाकर) स्वलोकको प्राप्त करोगे उस योनिमें भगवान्की भक्तिवाले होवो।।२२।।

मनुष्य यदि वैसे कर्म करे जिनसे वृक्षयोनिको पावे तो वह मनुष्य मनुष्योंकी सौ वर्ष आयु जितनी वृक्षयोनि भोगकर उससे छूट जाता है. ये देव हैं इसलिए इनको यह वृक्षयोनि देवताओंके सौ वर्ष तक भोगनी है. जब देवताओंके सौ वर्ष पूरे होंगे तब आपको भगवान्के दर्शन होंगे और देवयोनिकी प्राप्ति होगी. और भगवान्की स्वाभाविकी रतिरूपा स्थिर-भक्तिकी प्राप्ति होगी. जिनमें भक्ति नहीं है वे साधनों द्वारा भक्ति प्राप्त करते हैं, वह भक्ति स्थिर नहीं रहती है आपकी तो स्थिर रहेगी।।२२।।

ब्राह्मणका वचन टल नहीं सकता है इस प्रकारके वचनोंका उच्चारणकर नारदजी वहांसे रवाने हो गए इसका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

श्रीशुकः उवाच

स एवमुक्तो देवर्षिर्गतो नारायणाश्रमम् ।।

नलकूबरमणिग्रीवावासतुर्यमलार्जुनौ ।।२३।।

श्रीशुकदेवजी बोले कि ऐसे कहकर देवर्षि नारदजी नारायणके आश्रमको गए नलकूबर और मणिग्रीव यमलार्जुन हो गए।।२३।।

नारदजी देवताओंके गुह्य कार्य करनेवाले हैं, वे इस प्रकार कहकर गुह्यकोंके[१] जो दोष नारदजीने लिये थे, उन दोषोंको मिटानेकेलिये नारायणके आश्रममें गये. वहां दोष मिटेंगे यह उनने कैसे जाना इसलिए श्लोकमें नारदजीको देवर्षि कहा गया है. ऋषि त्रिकालज्ञ[२] होते हैं ये तो देव और साथमें ऋषि भी हैं इसलिए इनको यह ज्ञान पहले ही था. वहां जो देव स्त्रियां और नारदजी इकट्ठे हुए थे उनमेंसे नारदजी चले गये. अब नलकूबरके सम्बन्धमें कहते हैं कि वे अर्जुन वृक्षकी योनिको प्राप्त हुए. उसका प्रकार बताते हैं कि जड़ तो एक थी और ऊपर दो पेड़ हो गये थे इसलिए साथमें उत्पन्न होनेसे 'यमलार्जुन' नामसे प्रसिद्ध हुए हैं।।२३।।

१.'उक्त' शब्दमें 'क्त' प्रत्यय कर्तरि प्रयोगमें कहा है.

२.भूत, वर्तमान और भविष्यका ज्ञानवाले.

इस प्रकार शाप देनेवाले(नारदजी)ने प्रायश्चित्त किया(नारायणाश्रम तीर्थपर गए) और जिन नलकूबर मणिग्रीवको शाप मिला उसका फल उन्होंने पाया यह वर्णनकर, स्मरण भी नारदजीके प्रसादसे होगा उसको न कहकर, उनको अनुग्रहका फल भगवान्का सान्निध्य हुआ. इसका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

ऋषेर्भगवतस्तस्य सत्यं कर्तुं वचो हरिः ।।
जगाम शनकैस्तत्र यत्रास्तां यमलार्जुनौ ।।२४।।

वे भगवान् देवर्षिके वचन सत्य करनेकेलिए जहां यमलार्जुन थे वहां हरि(श्रीकृष्ण) धीरे-धीरे पधारे।।२४।।

उन नारदजीने इस प्रकारके वचन 'वृक्षयोनि'में भी आपको भगवत्सान्निध्य होगा,' 'भगवानकी भक्ति सिद्ध होगी' 'स्मरण रहेगा' कैसे कहे? इस शंकाको मिटानेकेलिये श्लोकमें ऋषि विशेषण देकर बताया है कि वे(नारदजी) भावी(आगे होनेवाले) अर्थ(कार्य)को जाननेवाले हैं इसलिए उन्होंने ऐसे वचन कहे और भगवान्ने अपनी कृपाकर उन(नारदजी)में अपना भगवत्व स्थापित किया है इसलिए श्लोकमें उनके लिये दूसरा विशेषण 'भगवतः' दिया है. उन(नारदजी)का भगवत्त्व(भगवान्पन) ऋषित्व(ऋषिपन) और वाणी सत्यकृत्व (वाणीकी सत्यता) सिद्ध करनेकेलिये एवं आप भी 'हरि' सर्व दुःखहर्ता(सब दुःखोंको मिटानेवाले) हैं इसलिए जहां वे(यमलार्जुन) थे वहां आप पधारे. कैसे पधारे? इस प्रकार धीरे-धीरे गये कि थोड़ासा शब्द(खटका) न हो, शब्द होगा तो वहां स्थित स्त्रियां चली आयेंगी, उन(स्त्रियों)का आना भगवान्को अभीष्ट(इच्छित, पसन्द) न था कारण कि भगवान्ने सोचा कि जो स्त्रियां मुझे भी बन्धनमें डालती हैं वे इनको बन्धनमें कैसे नहीं डालेंगी. अतः भगवान्ने धीरे-धीरे जानेकी क्रियासे उनको स्त्रीदर्शन नहीं कराये और इससे यह शिक्षा दी कि स्त्रियोंका संग नहीं करना चाहिए. जहां वे(वृक्ष) थे वहां आप(हरि) गये क्योंकि वे जड़ थे आ नहीं सकते थे।।२४।।

भगवान्की भगवद्भक्तोंपर ऐसी कृपा होती है जो भक्तोंके वचन सत्य करनेकेलिए आप वहां गए और इससे यह शिक्षा दी कि सबको मेरे भक्तोंकी इच्छाके अनुसार कर्तव्य करने चाहिए. यहां शंका होती है कि नारदजीने उनको भगवान्के समीप होने और भगवान्की भक्तिको पानेका अनुग्रहरूप वरदान दिया था जिससे सान्निध्यमात्रसे इस(वृक्ष) शरीरको छोडकर पुनः उस देवयोनिमें

नलकूबर बन जाते और भगवान्‌की भक्ति पालते. तब भगवान्‌ने जो वृक्ष तोड देनेका कर्म अनुचित किया? इसके उत्तरमें भगवान्‌के अभिप्रायको कहते हैं.

देवर्षिर्मे प्रियतमो यदिमौ धनदात्मजौ ।।

तत् तथा साधयिष्यामि यद् गीतं तन् महात्मना ।।२५।।

देवर्षि नारद मेरे परम प्रिय हैं, और ये दोनों कुबेरके पुत्र हैं, वह उसी प्रकार सिद्ध करूंगा जिस प्रकार उस महात्माने कहा है।।२५।।

यहां शेष(बाकी) एक संशय रहता है वह यह है कि उनको स्मरण हुआ या नहीं? इसको प्रकट करना चाहिए. नारदजीने जो वृक्षयोनिमें इनको स्मरण होनेका कहा है वह मर्यादा रहित है क्योंकि स्मरण तो मनुष्य योनिमें भी जब विशेष सतोगुण बढता है तब होता है यह वृक्षयोनि तामस है उसमें स्मरण कैसे होगा? इसलिए यह नारदजीका कहना झूठ होगा, कारण कि नारदजीने विचार करके नहीं कहा है. इस प्रकारकी शंका मिटानेकेलिये भगवान्‌ने कहा है कि नारदजी मेरे प्रिय नहीं, किन्तु प्रियतम(अत्यन्त प्यारे) हैं. यदि नारदजीके वचन मिथ्या होंगे तो आर्षज्ञान(ऋषि त्रिकालज्ञ होते हैं वे जो भी कहते हैं वह सत्य ही होता है) की मर्यादा नष्ट हो जायगी और नारदजी मेरे भक्त हैं, भक्तोंने जो कहा और किया वह मैंने ही किया. अत्यन्त प्रीतमकेलिये स्नेह होता है, स्नेहके कारण भक्तोंके सर्व कार्य, पूर्ण करने ही चाहिए यदि न किये जायेंगे तो स्नेहकी मर्यादा न रहेगी. इसके अतिरिक्त ये कुबेरके पुत्र हैं. कुबेर पूर्ण भक्त है अतः इनकी(नलकूबर और मणिग्रीवकी) जड़ शुद्ध है. इसलिए इनमें जो धन मदका अंश है उसको नष्ट कराके उस स्थानपर भक्तिका अंश(भाव) प्रकट करके उसमें स्वयं प्रवेशकर दोनोंको शुष्क करके अपने आधिदैविक भावसे उनको(वृक्षोंको) गिराकर उस(वृक्षत्व)मेंसे उन दोनोंका उद्धारकर उनको दृढ़ भक्तिवाले बनायेंगे. तब नारदजीके वचन सत्य प्रमाणित होंगे. इसलिए मैं वैसा ही कर्म(लीला) करूँगा जैसा कि उन्होंने(नारदजीने) कहा है. दूसरोंकेलिये इतना उद्यम क्यों? इसके उत्तरमें श्लोकमें कहा है कि, 'महात्मना'. देवर्षि नारदजी महान् आत्मा हैं. महान् आत्मा वह है जिस आत्मामें भगवान्‌ने प्रवेश किया हो. अतः भगवान्‌के प्रवेश होनेसे नारदजी महान् आत्मा हैं।।२५।।

इस प्रकार विचार करके भगवान्‌ने दोनों वृक्षोंके बीचमें प्रवेश किया.

इत्यन्तरेणार्जुनयोः कृष्णस्तु यमयोर्ययौ ।।

आत्मनिर्वेशमात्रेण तिर्यग्भूतमुलूखलम् ।।२६।।

इस प्रकार विचार करके श्रीकृष्ण यमलार्जुन वृक्षके बीचमेंसे निकलने लगे, आत्माके प्रवेशमात्रसे ऊखल टेडा हो गया।।२६।।

यमलार्जुनके बीचमें श्रीकृष्ण गये. श्लोकके 'तु' अक्षरका भाव बताते हैं कि भगवान् केवल बाहिर ही उपस्थित नहीं हुए किन्तु भीतर गये क्योंकि आप सदानन्द[१] रूप हैं उन(भगवान्)के प्रवेशसे वृक्षोंके दोष और दुःख उसी समय निवृत्त हो गये भगवान्से बन्धा हुआ ऊखल[२] लकडीका था. इसलिए अपनी जाति काष्ठ(वृक्ष)[३]के उद्धारार्थ भगवान्का वृक्षोंके बीचमें प्रवेश होते ही ऊखल टेढा हो गया यदि टेढा न होता और सीधा ही रहता तो वह ऊखल भी वृक्षोंसे निकल जाता जिससे वृक्षोंका उद्धार न होता तो भगवान्से सम्बन्धवाला होकर भी अपनी जातिवालेको यदि न छुड़ावे तो उनका आधिदैविकत्व व्यर्थ हो जाता।।२६।।

१.पुरुषोत्तमजी प्रकाशमें कहते हैं कि भगवान्ने यह विचार किया कि यदि मैं कुछ न करूंगा तो नारदजीके वचन सिद्ध न होंगे.

२.गो.पुरुषोत्तमजी 'प्रकाश'में कहते हैं कि पद्मपुराणके वचनानुसार श्रीकृष्णको ऊखलमें जब बान्धा तब वे २८ मासके थे और वह दिन मार्ग शीर्ष सुदि प्रतिपदा थी.

३.लेखकार गो.वल्लभलालजी 'लेख'में कहते हैं कि श्रीकृष्ण सद्रूप है उन सद्रूपके प्रवेशसे वृक्षोंके दोष नष्ट हुए और श्रीकृष्ण आनन्दरूप भी है उस आनन्दरूपके प्रवेशसे वृक्षोंके दुःख दूर हो गये.

इस प्रकार जब ऊखल टेडा हो गया तब भगवान्ने जो कुछ किया उसका वर्णन इस निम्न २७वें श्लोकमें करते हैं.

बालेन निष्कर्षयतान्वगुलूखलं तद् दामोदरेण तरसोत्कलताङ्घ्रिबन्धौ ।।
निष्पेततुः परमविक्रमितातिवेपस्कन्धप्रवालविटपौ कृतचण्डशब्दौ ।।२७।।

टेढे ऊखलको बालरूप भगवान् दामोदरके खेंचते हुए उन वृक्षोंकी जडें उखड़ पड़ीं और उन दोनों वृक्षोंके तने, पत्ते और शाखाएँ परम पराक्रमवालोंके समान अतिशय काँपने लगी और प्रचण्ड(घोर) शब्द करते हुए वे वृक्ष गिर पडे।।२७।।

भगवान्से सम्बन्ध होते हुए भी पृथ्वीमें सात्त्विक भाव आनेसे उसकी शुष्कता(सूखापन) मिट गई और उसमें आर्द्रता(गीलापन) आ गई जिससे जड़से लेकर सर्वभाग ढीले पड गये. अतः बालरूप दामोदर भगवान्के टेढे ऊखलको

खेंचते ही वे(वृक्ष) भी पीछे-पीछे खिंच आये और बहुत शीघ्र ही उनकी जड़ें उखड पड़ीं और स्वयं दोनों वृक्ष गिर पड़े. भगवान्का दामोदर नाम सार्थक था, क्योंकि उस समय भगवान्का उदर(पेट) रज्जु(रस्सी)से बान्धा हुआ था. इस लीलासे यह बताया कि यह बालक साक्षात् भगवान् है कारण कि बालकके उदरसे खेंचान छोटे पदार्थकी हो सकती है पर यहां तो स्थूल(भारी) ऊखलको खींचना था, रज्जु भी पतली थी जो कि जोरसे खींचनेसे वह टूट जाती ये सब कारण बालकका साक्षात् भगवान् होना प्रमाणित करते हैं. इतने बड़े वृक्ष तो जड़से उखड़कर टूट गये किन्तु न रज्जु टूटी और न ऊखल फूटा(यह विशेष आश्चर्यकारक हुआ) उपपत्ति(सिद्धान्त या प्रमाण) बताते हैं कि रज्जु साधारण रज्जु नहीं थी किन्तु भगवान् स्वयं रज्जुरूप हो गये थे इसलिए रज्जु टूटी नहीं. ऊखलकी भी भगवत्स्पर्श होनेसे आधिभौतिकता नष्ट हो गई थी और उसका आधिदैविक रूप हो गया था जिससे वह फूटा नहीं अतः इनके द्वारा वृक्षोंका गिर पड़ना योग्य ही है. भगवान्ने अपनी अल्प(थोड़ीसी) ही क्रिया शक्ति प्रकट की, जिससे इतना महत् कार्य सम्पन्न हुआ उसका वर्णन वृक्षोंके इन दो विशेषणोंसे प्रकट करते हैं. अतिशय सामर्थ्यवाले भीम अथवा हनुमानके चलने जैसा कम्पन हो वैसा कम्पन, जिनके तनों पत्तों और शाखाओंमें हो रहा था. पेडके तनेका चलना अति कठिन है उससे भी पत्तोंका उनसे पृथक् होकर चलना आश्चर्यकारक है और दोनोंसे इकट्ठी शाखाएं भी हिल रही थीं. इस प्रकार कांपते हुए वृक्ष गिर पड़े जिनके गिरनेका महान् शब्द हुआ अथवा भगवान्के सान्निध्यसे उनका जो आसुर भाव नष्ट हुआ उस आसुर भावके अभिमानी देवताका यह महान् शब्द था. इस प्रकार इस श्लोकमें आसुर भावको नाश करनेवाली भगवान्की क्रिया शक्तिका माहात्म्य कहा है।।२७।।

इस प्रकार उनके दोषोंके नाशका वर्णनकर अब निम्न श्लोकमें गुणोंका वर्णन करते हैं.

तत्र श्रिया परमया ककुभः स्फुरन्तौ सिद्धावुपेत्य कुजयोरिव जातवेदाः ।।
कृष्णं प्रणम्य शिरसाखिललोकनाथं बद्धाञ्जली विरजसाविदमूचतुः स्म ।।२८।।

वहां इन दोनों वृक्षोंमेंसे मूर्त रूप अग्निकी तरह प्रकट होकर दिशाके प्रकाशसे शोभित दोनों सिद्धोंने लोकोंके नाथ श्रीकृष्णके पास आकर मस्तकसे प्रणाम किया और निर्दोष होनेसे हाथ जोडकर प्रार्थना करने लगे।।२८।।

विशेष श्रीसे(प्रकाश या तेजसे) दश दिशाएं प्रकाशित हो गईं वे दोनों भी यमलार्जुन वृक्षमेंसे तेज युक्त प्रकट होकर श्रीकृष्णके पास गये और निम्न प्रकारसे कहने लगे. दिशाके सम्बन्धवाला तेज बिजलीमें दृष्टिगोचर होता है इस कारण ही उसको परम शोभावाला कहा है. जैसे दामोदर मुक्त करते हैं, वैसे गुह्यक भी पीताम्बरके समान तेज सम्पादन करते हैं यह भगवान्का अद्भुत चरित्र कहा है.

वृक्षमेंसे निकलनेके पूर्व जैसा रूप चाहते थे वैसा ही रूप प्राप्त हुआ. इसलिए श्लोकमें इनको 'सिद्धौ' विशेषण दिया है जिसका तात्पर्य यह है कि इन्होंने अपना कार्य सिद्ध कर लिया. दोनों वृक्षोंसे प्रकट होकर सीधे भगवान्के पास आये थे. पूर्वसे पहचाननेवालोंको भी इनके इस प्रकार तेजयुक्त रूपसे भ्रम-सा हो गया कि ये वे नलकूबर-मणिग्रीव हैं या काई दूसरे हैं? क्योंकि इनका रूप वैसा प्रकाश स्वरूप देखनेमें आया, जैसे कि अरणी(एक प्रकारकी लकडी)के संघर्ष(रगडनेसे)से उत्पन्न यज्ञकी प्रकाश स्वरूप अग्नि हो. वहां भगवान्के समीप आनेके पश्चात् प्रथम भगवान्को मस्तकसे प्रणाम करने लगे. मस्तकसे प्रणाम करनेका आशय यह है कि उनका पूर्व ज्ञान दृढ़ था, वह नष्ट नहीं हुआ था. पृथ्वीपर स्थिति हो साष्टांग नमस्कारकर हाथ जोड़के निम्न प्रकारसे प्रार्थना करने लगे. देव दूसरोंको नमस्कार नहीं करते हैं और न पृथ्वीपर पदार्पण करते हैं(पैर रखते है). इन दोनों कार्योंका इन्होंने इसलिए तिरस्कार कर दिया कि भगवान् सर्वलोकोंके अधिपति हैं और हम तो एक लोकके अधिपतिके पुत्र हैं. शाप मुक्त हो गये हैं, तो भी भगवान्की स्तुति करने और आज्ञा लिये बिना कैसे चले जावें अर्थात् नहीं चलना चाहिए. इनकी आज्ञाके बिना चलनेसे उस लोकमें भी स्थिति नहीं होगी. जब वहां ही स्थिति न होगी, तो भक्तिकी प्राप्ति तो दूर रही. हाथ जोड़नेका भाव यह है कि हमारा कहना केवल कहना नहीं है किन्तु प्रार्थना है. ऐसे अहंकारियोंको भगवान्की स्तुतिका अधिकार कैसे प्राप्त हुआ? इस शंकाको मिटानेकेलिये श्लोकमें 'विरजसौ' विशेषण दिया है जिसका तात्पर्य है कि इनमेंसे रजोगुण निकल गया है अतः ये अब निरहंकारी(दीन) हो गये हैं अतः इनको स्तुति करनेका अधिकार है. विशेषमें श्लोकमें 'स्म' शब्द देकर यह भी बता दिया है कि इसमें किसी प्रकारकी असम्भावना नहीं करनी चाहिये क्योंकि इनका अहंकार नष्ट हो गया है इनमें दीनता आ गई है यह बात प्रसिद्ध है गुप्त नहीं है।।२८।।

१.श्लोकमें 'स्फुरत्' शब्द पुल्लिंग और द्विवचन है इसकेलिये आचार्यश्री आज्ञा करते हैं कि इस 'स्फुरत्' शब्दके लिङ्ग और विभक्तिका परिवर्तन करनेसे दिशा वाचक 'ककुभ्' शब्दसे भी उसका सम्बन्ध हो सकता है. इसलिए उसके दो प्रकारसे अर्थ होते हैं: जैसा कि १.प्रकाशमान होती हुई दिशा, अथवा २.तेजसे सम्बन्धित दिशाओंके कारण तेजसे शोभित. एक जगह 'ककुभः' प्रथमाका बहुवचन और दूसरी जगह 'ककुभः' षष्ठीका एक वचन होता है.

दशभिः प्राणभृच्छ्लोकैश्चक्रतुः स्तोत्रमुत्तमम् ।।
ज्ञानवैराग्ययोरत्र निर्णयः समुदीरितः ।।का.१।।

कारिकार्थ : नलकूबर और मणिग्रीव अपने देव रूपको प्राप्त होकर भगवान्की दश श्लोकोंसे स्तुति करते हैं. आचार्यश्री उनका भावार्थ कारिकाओं द्वारा संक्षेपमें बताते हैं.

प्राण दश हैं इसलिए इन्होंने दश श्लोकोंसे स्तुति की है कारण कि किसीका यह मत है कि वृक्षयोनिमें प्राण(यहां प्राण शब्द-इन्द्रियोंका वाचक समझना चाहिए) नहीं है अतः उनकी प्राप्त्यर्थ यह प्रार्थना होनेसे दश श्लोकोंमें स्तुति की गई है. यहां(नवम तथा दशम अध्यायकी संगति बतानेकेलिए) ज्ञान और वैराग्यका निर्णय अच्छे प्रकारसे किया गया है।।१।।

मूलरूपो भवान् पूर्वं जगद्रूपस्तथैव च ।।
मध्यरूप इति त्रेधा ज्ञानरूपो निरूपितः ।।का.२।।

कारिकार्थ : स्तुति करने(प्रथम श्लोक अर्थात् २९वें)में मूलरूप आप हो यह वर्णन किया गया है. वैसे ही आप जगत्रूप(देह-इन्द्रियादि रूप भी) हो इसका वर्णन ३०वें श्लोकमें किया है. इसी प्रकार मध्यरूप(महत्तत्व और प्रकृति आदि रूप) भी आप हो जिसका वर्णन ३१वें श्लोकमें करनेमें आया है. इसी प्रकार ज्ञानरूप भगवान् तीन तरहसे वर्णित किये गए हैं: १. मूलरूप २. जगद्रूप और ३. मध्यरूपसे. सद्रूपके वर्णनसे चिद्रूपका भी निरूपण किया है।।२।।

माहात्म्यज्ञापनार्थाय दुर्ज्ञेयत्वं च वर्णितम् ।।
सर्वरूपोपि सर्वस्मिन् गृह्यमाणैर्न गृह्यते ।।का.३।।

कारिकार्थ : इस कारिकाके पहले अर्धमें ३२वें श्लोकके उतरार्धका अर्थ कहा गया है कि भगवान् दुर्ज्ञेय(जिसको समझना कठिन हो) है यह उनका दुर्ज्ञेयपन माहात्म्य जतानेकेलिए कहा है. कारिकाके उत्तरार्धमें ३२वें श्लोकमें पूर्वार्धमें योगी भी भगवान्को ग्रहण नहीं कर सकते हैं इसका आशय बताते हुए

कहा है कि भगवान् सर्वरूप हैं और सबमें हैं तो भी सर्व पदार्थ ग्रहण होते हुए भी आपको कोई ग्रहण नहीं कर सकता है।।३।।

आध्यात्मिकस्ततो नायं भौतिकोपिततो न हि ।।
दैविकत्वेन सर्वः स्यात् द्वयं तस्माच्च जायते ।।का.४।।

कारिकार्थ : सर्व पदार्थ तो ग्रहण किये जा सकते हैं किन्तु पुरुषोत्तमको ग्रहण नहीं कर सकते हैं इस कारणसे यह(श्रीकृष्ण पुरुषोत्तम) न आध्यात्मिक है और न आधिभौतिक है ये दोनों आध्यात्मिक और आधिभौतिक उस आधिदैविकसे प्रकट होते हैं. अतः आध्यात्मिक और आधिभौतिक भिन्न वस्तु नहीं हैं किन्तु आधिदैविक रूपसे ही सब है. यह ३०वें श्लोकमें कहा है, ३१वें श्लोकमें आध्यात्मिक रूपका कर्ता भी वही है और ३२वे श्लोकमें आधिभौतिकका कर्ता भी इसको ही कहा है।।४।।

अतः सर्वत्वकर्तृत्वे ज्ञानभक्ती फलिष्यतः ।।
अतो ज्ञानं निरूप्यादौ भक्तिमाहतुरुत्तमाम् ।।का.५।।

कारिकार्थ : पुरुषोत्तम, सर्व रूप और सर्व आधिभौतिक और आध्यात्मिक के कर्ता हैं इनसे ज्ञान और भक्तिकी प्राप्ति होगी. इसलिए पहले ज्ञानका निरूपणकर पश्चात् उत्तम भक्तिको कहते हैं. ३०वें श्लोकका यह तात्पर्य है कि एक ब्रह्मके ज्ञानसे सबका(सब पदार्थों और रूपोंका) ज्ञान हो जाता है. ३१वें व ३२वें श्लोकोंमें कहे गए अर्थके ज्ञानसे भक्तिकी प्राप्ति होती है. इन श्लोकोंसे भगवान्के स्वरूपका निर्णय हुआ है. भगवान्का(आधिदैविक) स्वरूप सर्व(आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक) रूपोंसे लिप्त होनेके कारण प्रकाशित नहीं होता है क्योंकि आधिभौतिक और आध्यात्मिक रूप सद्रूप हैं तो भी ज्ञानको आच्छादन करते हैं. ज्ञानके आच्छादित होनेसे आधिदैविक स्वरूपका दर्शन नहीं हो सकता है. भगवान् कालरूपसे ईश्वररूपसे अथवा प्रकृतिरूपसे कर्ता हैं और अक्षर रूपसे सर्वरूप हैं. कर्तृरूपसे भक्ति एवं अक्षररूपसे ज्ञान प्राप्त होता है।।५।।

अनेनैव च वैराग्यं ज्ञानाजनकता यदि ।।
तदा सर्वं परित्याज्यमन्यथा स्याद् विनाशनम् ।।का.६।।

कारिकार्थ : ज्ञानके वर्णन करनेसे वैराग्यका भी निरूपण किया गया है. भगवान् सर्वरूप हैं यदि इससे ज्ञान उत्पन्न न होवे तो सर्वका त्याग करना चाहिए,

अर्थात् सबसे राग(प्रेम) निकाल लेना चाहिए. जो ज्ञानके अभावमें सबमेंसे आसक्ति भी नहीं निकाली तो नाश(अधःपतन) होता है।।६।।

भक्तिसिद्ध्यै तु यज् ज्ञानं श्लोके षष्ठे निरूप्यते ।।
अन्यथाभावशंकाया व्यावृत्त्यर्थं भवान् परः ।।का.७।।

कारिकार्थ : भक्तिकी सिद्धि हो उसकेलिए, जिस ज्ञानकी आवश्यकता है उसका वर्णन इस स्तोत्रके छठे श्लोक(१०वें अध्यायके ३४वें श्लोक)में किया गया है. श्लोक ३५वेंमें श्रीकृष्ण मनुष्य नहीं हैं किन्तु ब्रह्म ही हैं इसको 'पर' विशेषणसे सिद्ध किया है. जिससे इस प्रकारकी(कृष्णके मनुष्यत्वकी) शंकाको निर्मूल बना दिया है।।७।।

भगवन्तं नमस्कृत्य गमनप्रार्थना कृता ।।
तदयुक्तं भक्तिमतामिति भक्तिस्तु षड्गुणा ।।का.८।।

कारिकार्थ : इस कारिकामें श्लोक ३६वें, ३७वें व ३८वेंमें वर्णित विषयका सार बताया है जैसा कि ३६वें श्लोकमें भगवान्को नमस्कार की है, ३७वें श्लोकमें जानेकेलिए प्रार्थना की है और ३८वें श्लोकमें भक्तिके प्रकार(छ अंग) एवं उसकी प्राप्तिकी प्रार्थना की है, (अर्थ)भगवान्को नमस्कारकर, जानेकी प्रार्थना की है. भक्तिवालोंको यों करना योग्य नहीं है इस प्रकारकी शंकाको मिटानेकेलिए कहा है कि भक्ति छ गुणवाली है इसलिए यों करना भक्ति मार्गमें अयोग्य नहीं है।।८।।

भक्तैः सहैव सा कार्या परोक्षेणैव सिध्यति ।।
गुप्तो रसस्तदोद्बुद्धो रसतां याति नान्यथा ।।का.९।।

कारिकार्थ : भक्तिकी सिद्धिके(प्राप्ति)लिए, वह छः गुणवाली भक्ति, भक्तोंके साथ और भगवान्के परोक्षमें करनी चाहिए. जब इस प्रकार भक्ति की जाती है तब गुप्त रस जाग्रत् होकर रसिकताको प्राप्त होता है, अन्य प्रकारसे (भगवान्के सान्निध्यमें वा भक्तोंके संग बिना अकेला भक्ति करनेसे) नहीं।।९।।

गुणप्रधानभावत्वमेकत्र हि विरुध्यते ।।
अतोत्र भगवांल्लीलां स्वयं कर्तुं समुद्यतः ।।का.१०।।
स्वस्यैव रसभोगार्थं परार्थं वेत्यनिर्णयः ।।
ताभ्यां विमोचनं नैव शक्यं पक्षद्वयेपि हि ।।का.११।।

कारिकार्थ : इन दोनों कारिकाओंमें बताते हैं कि भगवान् दो प्रकारसे

लीला करते हैं. एक लीलामें भक्तोंकी प्रधानता होती है. दूसरी लीलामें भगवान्‌की प्रधानता होती है. भगवान् गोकुलमें जो लीला करते हैं उन लीलाओंमें भगवान्‌की गौणता और भक्तोंकी प्रधानता है. एक ही स्थलपर दो प्रकारकी(गौण और प्रधान) लीला करनेमें विरोध होता है अतः नलकूबर गोकुलकी लीलाके अधिकारी न होनेसे व्रज भक्तोंके साथ भक्ति नहीं कर सकते थे इसलिए उन्होंने जानेकी प्रार्थना की है. यहां(गोकुलमें) भगवान् अपनेलिए ही अपने रसभोगार्थ अथवा दूसरोंको(व्रज भक्तोंको) रस दान करनेकेलिए लीला करनेका स्वयं उद्यम करते हैं इसका निर्णय वे(नलकूबर और मणिग्रीव) नहीं कर सकते थे. दोनों पक्ष ग्रहण करनेसे भी वे भगवान्‌को ऊखलसे मुक्त नहीं कर सकते थे इन कारणोंसे भगवान्‌को ऊखलमें बन्धा हुआ ही छोड कर चले गए।।१०-११।।

नलकूबर और मणिग्रीवको पूर्वकी स्मृति है? वा नहीं, इस प्रकारका सन्देह था, उस सन्देहके निर्णयार्थ भगवान् स्वयं वृक्षोंके पास पधारे. उनकी वह स्मृति सर्व लोकमें प्रसिद्ध रहे इसलिए ज्ञानी मुझे अत्यन्त प्यारे हैं. २५वें श्लोकमें कहे हुए इस वाक्यके अनुसार वे दोनों निम्न श्लोकमें बताते हैं. कृष्णके स्वरूपका ज्ञान हमें है यह यदि नहीं बतावें तो सकल स्तुतिका विरोध दीखनेमें आवे.

नलकूबर-मणिग्रीवौ ऊचतुः

कृष्ण! कृष्ण! महायोगिन्! त्वम् आद्यः पुरुषः परः ।।
व्यक्ताव्यक्तम् इदं विश्वं रूपं ते ब्रह्मणो विदुः ।।२९।।

नलकूबर व मणिग्रीवने कहा, हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महायोगी ! आप आद्य तथा पुरुष एवं पर हो, ज्ञानीजन प्रकट तथा अप्रकट यह विश्व आपका रूप हैं, यों वेदसे जानते हैं।।२९।।

प्रारम्भमें ही कहते हैं कि आप स्वरूपसे सदानन्द हो, इसलिए कृष्ण हो और वही सदानन्द स्वरूप आप कृष्ण नामधारी बने हो. इस भावको बतानेकेलिये श्लोकमें कृष्ण! कृष्ण! दो बार कहा है और आदर भाव दिखानेकेलिये भी कृष्ण दो बार कहा गया है. अथवा आपके नाम और स्वरूपका हमको ज्ञान है इसको बतानेकेलिये कृष्ण कहा है. श्लोकमें कहे हुए 'महायोगिन्'का भाव प्रकट करते हैं कि आपकी आकृतिका आकार और चेष्टा करनी मनुष्यों जैसी दीखती है तो भी हमको यह भ्रम नहीं होता है कि आप ब्रह्म नहीं हो और मनुष्य हो. क्योंकि आप योगी नहीं हो किन्तु महायोगी हो. जब लौकिक योगी भी अनेक प्रकारकी क्रिया

करते हुए हीन भावको प्राप्त नहीं होते हैं तो आप फिर दोषरहित पूर्ण गुणाकृति महायोगी कैसे हीन भावको प्राप्त होंगे कदापि नहीं. अतः आपके स्वरूप और गुण वर्णनमें नाम और रूप किसी प्रकार बाधक नहीं हो सकते हैं. आप सबसे प्रथम हो अर्थात् आदि हो यह मूलभूतपना ही आपका महत्त्व है. प्रत्येक यह जानता है कि जो हमारा आदि मूल है वह हमसे महान् है इस प्रकार जानना ही चाहिए. किसीके सिद्धान्तमें जीव भी आद्य है, किन्तु जीव आद्य(मूल) नहीं है इसलिए 'पुरुष' कहकर जीवके आद्य होनेका निषेध किया है. 'पुरुष' शब्दसे कोई सांख्य सिद्धान्तमें कहे हुए पुरुषके समान आप यह कृष्ण हैं इस शंकाको मिटानेकेलिये कहा है कि आप 'साङ्ख्याप्रोक्त' पुरुष नहीं हो. किन्तु 'पर' हो अर्थात् पुरुषोत्तम हो. 'पुरुष' पदका दूसरे प्रकारसे भाव बताते हैं कि कोई कहते हैं कि भगवान् निराकार है किन्तु भगवान् निराकार नहीं है साकार है इसकी पुष्टि करनेकेलिये 'पुरुष' पद दिया है. यदि भगवान् साकार होंगे तो विकारी होंगे. इस भ्रमके निवारणकेलिये 'पर' पद दिया है कि वे 'पर' होनेसे कालादिकोंके भी नियामक हैं जिससे कालादिकृत विकार उनमें नहीं आ सकते हैं. इस प्रकार भगवान्के मूलरूप(आद्य-कारणरूप)का वर्णन किया. कोई भी तत्त्व कारणरूप तब हो सकता है जब उसका कार्यरूप भी हो और यदि कार्य कारणसे अन्य प्रकारका(विकारी, झूठा वा पृथक्) हो तो कारणरूप(मूलरूप) भी वैसा ही होना चाहिये, यों नहीं है. जैसा कारण वैसा ही कार्य है कारण आप हो और कार्य(विश्व) आप ही हो यह बतानेकेलिये श्लोकमें कहा है कि यह प्रकट और अप्रकट विश्व(जगत्-कार्यरूप) आपका ही रूप है. इस समग्र जगत्के दो रूप हैं. १.व्यक्त (प्रकट) २.अव्यक्त (गुप्त) जिस रूपको कालने घेर लिया है वह व्यक्त है और जिसको कालने नहीं घेरा है वह अव्यक्त है. कोई कहते हैं कि आकाश और परमाणु आदि भी व्यक्त हैं. तब तो समग्र जगत् कालसे लेकर तिनके पर्यन्त व्यक्त और अव्यक्त होगा. अथवा यहां भिन्न-भिन्न कहा है. दोनों प्रकार[१]का होते हुए भी यह सारा जगत् आपका ही रूप है. नलकूबर व मणिग्रीव अपने कथनका प्रमाण देते हैं कि इस प्रकार वेदसे सब जानते हैं अथवा ब्राह्मण जानते हैं कि यह जगत् ब्रह्मका रूप है. इससे यह कहा है कि सर्व श्रुतियां प्रमाण हैं. रूपका अर्थ है स्वरूप अथवा निरूपण किया जा सकनेवाला है।।२९।।

१. लेख: दो मत हैं पहिले मतमें जगत् किसी समय व्यक्त और किसी समय अव्यक्त

होता है, दूसरे मतमें कहा गया है कि जगत्के कितने ही पदार्थ तो व्यक्त हैं और कितने ही अव्यक्त हैं. दूसरे मतके अनुसार व्यक्त और अव्यक्त इक्ट्ठा करनेके बिना भी ये सर्व व्यक्त और अव्यक्त आपके ही रूप हैं.

इस प्रकारके सब भगवान्के ही रूप हैं यह निरूपणकर अब आधिदैविक प्रकारसे भी वे(परमात्मा श्रीकृष्ण) सर्व रूप हैं यह निम्न श्लोकमें कहते हैं.

त्वमेकः सर्वभूतानां देहास्वात्मेन्द्रियेश्वरः ।।
त्वमेव कालो भगवान् विष्णुरव्यय ईश्वरः ।।३०।।

आप एक ही सर्व भूतों(प्राणीमात्र)का देह, प्राण, अन्तःकरण, इन्द्रियां तथा जीव हो भगवान् काल, विष्णु, अव्यय और ईश्वर भी आप हो।।३०।।

पदार्थ पृथक्-पृथक् हैं अतः उनके आधिदैविकरूप भी भिन्न-भिन्न होंगे इस शंकाको मिटानेकेलिये कहते हैं कि 'त्वमेकः' सबोंका आधिदैविकरूप एक आप ही हैं. देवता उत्तम हैं. अतः उनके आधिदैविक भले आप भगवान् हो किन्तु कृमि कीटादिकोंका तो आधिदैविकरूप भगवान् नहीं हो सकते हैं? इसपर श्लोकमें कहते हैं कि ('सर्वभूतानां') सब भूतोंका अर्थात् ब्रह्मासे लेकर तिनके पर्यन्त जितने भी जो कुछ हैं उनके देह, प्राण, अन्तःकरण, इन्द्रियां, ईश्वर जीव अथवा स्वात्मा 'इन्द्रिय' पदसे प्राण व अन्तःकरण समझने चाहिए. 'ईश्वर'पदसे अन्तर्यामी समझना, आधिभौतिकादिकोंके ईश्वर अथवा दोनों देहसहित[१] जीवको ईश्वर समझना चाहिए(ये सब रूप आप ही हो). जिस मतमें ईश्वरको नियामक माना जाता है और काल आदिको आपसे(भगवान्से) पृथक् समझकर ईश्वर कहा जाता है. वह मत अपूर्ण है क्योंकि कालरूप भी आप ही हो. कोई कहते हैं कि 'काल' भगवान्की चेष्टा रूप है(इच्छाका रूप है) वास्तविक तो वह चेष्टारूप काल भी आप ही हो क्योंकि आप भगवान् हो. सबोंमें जो कुछ ऐश्वर्य देखनेमें आता है वह कालने ही किया(दिया) है. अतः काल ही ईश्वर है. सबोंमें जो बल है वह भी काल-दत्त है जैसा कि बल युवावस्था(जवानी)में ही होता है. तपस्या और योगादिसे भी बल तब प्राप्त होता है जब काल भगवान् उसको सफलता देता है. यशकी प्राप्ति भी काल-द्वारा होती है यदि काल द्वारा न होती हो तो यश सदैव रहना चाहिए. वह सदा किसीका भी नहीं रहता है. इसी प्रकार दूसरे गुण भी(श्रीज्ञानादि भी) काल-कृत हैं. काल अन्वय[२] और व्यतिरेक[३]से ऐश्वर्यादि षड्गुणोंका कारण है.

यदि यह शंका हो कि जो सबको अपना ग्रास बनाता है वह काल है, और वह सर्वव्यापक हो तब ही बन सकता है इसलिए 'विष्णु' जो सर्वव्यापक है वह काल है. यह 'श्रीकृष्ण' नहीं है क्योंकि यह(श्रीकृष्ण) सर्वव्यापक नहीं है इस शंकाको मिटानेकेलिये श्लोकमें श्रीकृष्णकेलिये तीन विशेषण १.विष्णु, २.अव्यय और ३.ईश्वर दिये हैं. 'विष्णु' विशेषण देकर यह समझाया है कि वह व्यापक विष्णु यज्ञरूप, पालकरूप तथा सतोगुणी आधिदैविक आप ही हो, यदि वह(विष्णु) आप(श्रीकृष्ण) न हो तो वह आपसे पृथक् अन्य कोई होता तो उसका आपके ऊपर आधिपत्य होना चाहिये था. वह तो है नहीं आप स्वतन्त्र हो अतः विष्णु भी आप ही हो. इतना ही नहीं किन्तु आप इस मनुष्याकृति धारण करते हुए भी अव्यय(अविकारी) अक्षररूप हो, जो अक्षररूप आप न होते तो सबका समवायिकारण भी न हो सकते थे. प्रकृति और पुरुष अक्षररूप आपसे ही प्रकट हैं. वे ही जगत्के समवायिकारण हैं. दूसरे प्रकारसे सबमें व्याप्त होकर रहते हो इसलिए सर्वरूप भी आप हो (भगवद्गीता ११-४०) ''सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः'' पदार्थ परिच्छेद(सीमा)वाले होते हैं इसको सब वादी नहीं मानते हैं अतः भगवान् ही अक्षर हैं. भगवान्के ही अन्तर्यामीरूपसे तथा दूसरे रूपसे ईश्वररूपका भी अधिकारीरूपसे वर्णन किया गया है और उस(ईश्वररूप)का असाधारण धर्म ऐश्वर्य है।।३०।।

१.देह, स्थूल शरीर, इन्द्रियां सूक्ष्म शरीर 'स्वात्मा' यहां जीवको ईश्वर कहते हैं. लेख.

२.अन्वय: जिसके होनेसे वह वस्तु हो उसको अन्वय कहते हैं.

३.व्यतिरेक: जिसके न होनेसे वह वस्तु न हो उसको व्यतिरेक कहते हैं. यहां कालके होनेसे ऐश्वर्य आदि गुण हो तो वह अन्वय है, कालके न होनेसे वे नहीं हों तो वह व्यतिरेक है.

इसी प्रकार आप ही आधिदैविक काल आदि रूप हो इसका वर्णनकर, आध्यात्मिक और आधिभौतिकत्व भी आप हो. इसको सिद्ध करनेकेलिए मध्यम भाव(आध्यात्मिक तथा आधिभौतिक रूप धारण करने)केलिए आधिदैविकने कौन कौन रूप धारण किये यह भाव मध्यम भाव है उसका निम्न श्लोकमें वर्णन करते हैं.

त्वं महान् प्रकृतिः सूक्ष्मा रजःसत्त्वतमोमयी।।
त्वमेव पुरुषोध्यक्षः सर्वक्षेत्रविकारवित्।।३१।।

आप ही महान्, प्रकृति, सूक्ष्म(प्रकृति) और रजोगुण, सतोगुण एवं तमोगुणवाली प्रकृति हो. आप ही पुरुष, अध्यक्ष और समस्त क्षेत्रोंके विकारोंको जाननेवाले हो।।३१।।

समस्त जगत्का अंकुररूप महान् महत्तत्त्व है. प्रकृति उस(महत्तत्त्व)का क्षेत्ररूप है. सूक्ष्म प्रकृति योनिके समान कार्यके उत्पत्तिका साधारण रूप है, उस सूक्ष्म प्रकृतिकी मूल(जड़) सत्त्वादि तीन गुण हैं उन गुणोंवाली आधिदैविकी प्रकृति और गुण आप ही हैं. इस प्रकार भगवान्(श्रीकृष्ण)के मध्यम भावमें पंचरूपपना दिखाया है. ये पांचोरूप योनिरूप(कारणरूप) कहकर अब बीजरूप (मूल कारण) कहते हैं. आप ही पुरुषरूप हैं, उस प्रकृतिमें इतनी शक्ति(उत्पत्ति आदि कार्य करनेकी सामर्थ्य)का सम्पादन आप ही हैं. जो अध्यक्ष(साक्षी) है वह भी आप ही हो साक्षी[१]रूप पृथक् है. यद्यपि देह(क्षेत्र)का अभिमानी होनेके कारणसे जीवको क्षेत्रज्ञ कहा जाता है किन्तु 'क्षेत्रज्ञ' शब्दका अर्थ क्षेत्रके स्वरूपको जो जानता है वह मुख्य-क्षेत्रज्ञ आप हो. आप ही सर्व पदार्थोंके आधिदैविक आध्यात्मिक आधिभौतिक रूप हो. इसलिए जहां किसी भी प्रकारसे शास्त्रके प्रमाणकी प्रवृत्ति है वह ही आप हैं. अर्थात् शास्त्र प्रमाणानुसार सब कुछ आप ही हैं।।३१।।

१.शरीरमें जो सात्त्विक रूप है वह अन्तर्यामी है. प्रकाश.

सर्व महान् प्रकृति आदि भगवान्(आप) ही हैं इसका प्रमाण श्रुति है न कि प्रत्यक्ष प्रमाण है, क्योंकि भगवान् अलौकिक हैं. अलौकिकका ज्ञान प्रत्यक्षादिसे नहीं हो सकता है. यह निम्न श्लोकमें वर्णन करते हैं.

गृह्यमाणैस्त्वमग्राह्यो विकारैः प्राकृतैर्गुणैः ।।
कोन्विहार्हति विज्ञातुं प्राक् सिद्धं गुणसंवृतः ।।३२।।

इन्द्रियोंसे जो ग्रहण किये जा सकते हैं ऐसे प्राकृत विकारवाले गुणोंसे वा पदार्थोंसे आपका ग्रहण नहीं हो सकता है. क्योंकि गुणों करके आवृत्त कौनसा मनुष्य है जो सबकी उत्पत्तिसे प्रथम स्वतः सिद्ध(आपको) जान सके? (कोई नहीं जान सकता है.)

घट पट आदि सर्व पदार्थ आपके ही रूप हैं. चक्षुसे उनका तो ज्ञान हो जाता है किन्तु आपका ज्ञान उनके साथ नहीं होता है और न पृथक् भी होता है. नियम तो यह है कि जिन धर्मोंका जो आश्रय होता है जैसे आप इन धर्मोंका

आश्रय हो, तो उन पदार्थों(धर्मों)का धर्मी और आश्रयके साथ ज्ञान हो जाता है. उस नियमके विरुद्ध भगवान्का ज्ञान नहीं होता है उसका कारण बतानेकेलिये श्लोकमें 'विकारैः' पद दिया है. वे पदार्थ विकारी हो गये हैं अतः उनके साथ पृथक् आपका ज्ञान नहीं होता है. इसको दृष्टान्त देकर समझाते हैं कि जिस प्रकार मनुष्यको जब सन्निपातका रोग होता है तब उसकी प्रकृतिका ज्ञान नहीं होता है. वहां(विकार होनेसे) प्राकृतका तिरोभाव हो जाता है अर्थात् स्वभाव छिप जाता है.

जिस प्रकार ज्ञान, विषयोंके साथ प्रकाशित होता है उसी प्रकार, जिससे अपने विषयोंका प्रकाश होता है, वैसा ही ज्ञान जड़ पदार्थोंके साथ भासता है. तथा भगवान् भी विषयोंको प्रकाश करते हुए विषयोंके साथ क्यों नहीं भासते हैं? इस शंकाको मिटानेकेलिये श्लोकमें 'प्राकृतैः' पद दिया है जिसका आशय है कि प्रकृति जड़ है. वह पुरुषका आच्छादन करती है. प्रकृतिमें प्रविष्ट(जड़के भीतर गये) पुरुषको प्रकाशित नहीं करती है. वैसे ही प्राकृत पदार्थोंमें स्थित भगवान्को भी वे पदार्थ आच्छादितकर देते हैं इसमें भगवान्का ग्रहण नहीं हो सकता है. ज्ञान तो दूसरोंमें रहता है. प्रज्ञानका पदार्थोंसे संयोग अथवा समवायिसम्बन्ध न होनेसे पदार्थ उनको आच्छादित नहीं कर सकते हैं.

भगवान् पुरुष हैं, प्रकृति स्त्री है तो भगवान् उसको दबाकर क्यों नहीं प्रकाशित होते हैं इस शंकाको मिटानेकेलिये श्लोकमें 'गुणैः' शब्द दिया है. गुण बन्धन-कर्ता और प्रेम करनेवाले होते हैं. इस कारणसे जो प्रकृतिमें प्रविष्ट होता है उसको प्रकृतिके गुण प्रेमसे वश कर लेते हैं जिससे उनके साथ प्रकाशित नहीं होते हैं.

गुण तो अब उत्पन्न हुए हैं और भगवान् तो सबसे पहले ही होनेसे मूल भूत हैं. तब तो गुणोंके क्षोभ(हलचल)से पहले ही जीवको भगवान्का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये था और सदैव उसकी अनुवृत्ति(अभ्यास) करना चाहिये था. इस शंकाको मिटानेकेलिये आचार्यश्री कहते हैं कि भगवान् इसी प्रकार करते हैं. क्योंकि इसी प्रकार करनेवाले(भगवान्) भक्तिमार्गके प्रवर्तक हैं. जिसको उत्तरार्धसे समझाया गया है कि जगत्में पीछे उत्पन्न हुआ ऐसा कौन है जो गुणक्षोभसे पहले विद्यमानको पूर्ण रीतिसे जान सके? कोई भी ऐसा नहीं है.

दूसरे उनको नहीं जान सके, किन्तु जीव तो अनादि आत्मा है, अब

उत्पन्न नहीं हुआ है, वह क्यों नहीं उसको जाननेके योग्य है? इस शंकाके निवारणार्थ श्लोकमें 'गुण संवृतः' 'गुणोंसे आवृत'(ढका हुआ) होनेसे वह भी नहीं जान सकता है. क्योंकि गुण पूर्वबुद्धि(पहले ज्ञान)को हटाकर स्वरूपको भी आच्छादन कर देते हैं. अतः ज्ञान(जीव) और ज्ञेय(भगवान्)में आवरण(बीचमें अज्ञानका पड़दा) हो जानेसे ज्ञान नहीं होता है।।३२।।

१.प्रकृतिका अर्थ स्वभाव है. जल स्वभावसे स्वच्छ होता है परन्तु जो उसमें मिट्टी आदिसे विकार हो जाय तो नदीका तल(पैंदा) देखनेमें नहीं आता है, स्वच्छ हो तो देखनेमें आ जावे. लेख.

इसी प्रकार पदार्थ, घट पट, नेत्र आदि विकृत होनेसे नजर नहीं आते हैं, उसी प्रकार भगवान्का ज्ञान नहीं होता है. अनुवादक.

जो इस प्रकार है तो भगवान्का ज्ञान हो नहीं सकेगा, यदि भगवान्का ज्ञान न हुआ तो जीवकी मुक्ति कैसे होगी? इस शंकाके निवारणार्थ निम्न श्लोकमें कहते हैं.

तस्मै तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे ।।
आत्मद्योतैर्गुणैश्छन्नमहिम्ने ब्रह्मणे नमः ।।३३।।

स्वयं प्रकाशित गुणोंसे आच्छादित महिमावाले वासुदेव जगत्कर्ता आप परब्रह्मको हम नमस्कार करते हैं।।३३।।

मुक्तिका साधन केवल आपके उस[१] सर्व दुर्ज्ञेयस्वरूप(जिस स्वरूपको कोई नहीं जान सकता है) और नाना प्रकारसे विनोद(लीला) करनेवाले आप[२]को नमस्कार ही है.

''त्वमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति'' इस श्रुतिमें कहा है कि उस(परमात्मा) को जानकर ही जीव मुक्ति पा सकता है तो फिर उसके जाने बिना मुक्ति कैसे होगी? इस शंकाके निवारणार्थ श्लोकमें 'भगवते' शब्द कहा है. जिसका आशय है कि भगवान्के गुणोंके ज्ञानसे भगवान्का ज्ञान हो जाता है. बिना ज्ञान हुए भी अपने प्रमेय बलसे इस संसारसे वे छुड़ाते हैं इस छुड़ानेमें भक्ति ही प्रेरक वा जुटानेवाली है. जिसने कहा है मैंने ब्रह्मको नहीं जाना है उसने जान लिया है, जो कहता है मैंने ब्रह्मको जान लिया है उसने नहीं जाना है इस श्रुतिके अनुसार, अज्ञात ब्रह्म ही ज्ञात होता है अर्थात् न जाना हुआ ब्रह्म ही जाना जाता है. अतः भगवान् ईश्वरको कौन जान सकता है और प्रमाण बलसे नहीं जाना गया भी स्वतः

जाना जा सकता है. क्योंकि यह आप वासुदेव हैं. शुद्ध सतोगुणमें आप प्रकट हो जाते हैं. प्रकट होनेपर आपको सब ही जान सकते हैं. भगवान् साधनोंसे प्राप्त नहीं हो सकते हैं ऐसी समझ, साधनोंकी उत्पत्ति और शुद्ध सतोगुणका आविर्भाव ये सब ही कैसे होंगे? इस शंकाको मिटानेकेलिये श्लोकमें 'वेधस्' शब्द दिया है. जिसका भावार्थ यह है कि वह(वेधस्) ही सब कुछ कर सकता है. अर्थात् पार भी पहुँचा सकता है. यदि वह(वेधस्) पार न पहुँचावे तो उनका प्रकट किया हुआ भक्ति मार्ग व्यर्थ हो जायेगा.

''नमो धीमहि इति वा'' ऐसा पाठ लिया जाय तो हृदयमें भगवान् प्रत्यक्ष विराजते हैं उस भगवान्के चरणाविन्दोंमें शिर धरकर मनःपूर्वक नमन करना और विभूषित स्वरूपका ध्यान धरना यह अर्थ होगा. इससे यह जाना जाता है कि भगवान् हृदयमें प्रत्यक्ष हैं किन्तु बाहर प्रत्यक्ष नहीं हैं. यदि बाहिर प्रत्यक्ष नहीं हैं तो मान लेना चाहिये कि भगवान् बाहर है ही नहीं. इस शंकाको मिटानेकेलिये श्लोकमें ''आत्मद्योतैर्गुणैश्छन्नमहिम्ने' भगवान्का विशेषण दिया गया है.

जिसके देनेका तात्पर्य यह है कि जैसे मेघोंको सूर्य प्रकट करता है वे ही मेघ सूर्यको छिपा लेते हैं वैसे ही भगवान्के द्वारा प्रकाशित(प्रकटित) गुणोंने भगवान्की महिमाको आच्छादित कर दिया है. जिससे भगवान् बाहर प्रत्यक्ष देखनेमें नहीं आते हैं. सचमुच तो सर्वत्र(सब जगह सब पदार्थोंमें) आप विद्यमान ही हैं. भगवान् अन्दर बाहर सर्वत्र हैं इसका कारण बतानेकेलिये श्लोकमें 'ब्रह्मणे' पद दिया है. जिसका भावार्थ यह है कि सबसे बड़े होनेसे सब आपमें समाये हुए हैं अतः आप बाहर भीतर सब जगह तथा सर्व पदार्थोंमें स्थित हो किन्तु भीतर प्रकाशित होते हो बाहिर नहीं होते हो।।३३।।

१.'उस' शब्द परोक्ष जो देखनेमें नहीं आता है उसकेलिये कहा जाता है जिसका तात्पर्य 'दुर्ज्ञेय' कठिनाईसे जाननेमें आने योग्य है.लेख.

२.'आप' शब्द प्रत्यक्ष(आंखोंसे देखनेमें आवे उस)केलिये कहा जाता है. अतः विनोद करनेकेलिये आप अपनी इच्छासे प्रत्यक्ष हुए हो. लेख.

जो भगवान बाहर प्रकाशित नहीं होते हैं तो अवतार लेकर बाहर कैसे प्रकाशित होते हैं? इस शंकाके उत्तरमें यह निम्न श्लोक है.

यस्यावतारा ज्ञायन्ते शरीरेष्वशरीरिणः।।
तैस्तैरतुल्यातिशयैर्वीर्यैर्देहिष्वसंगतैः।।३४।।

जिस बिना देहवालेके अवतार शरीरोंमें जाने जाते हैं उनका कारण यह है कि जो उनके पराक्रमोंके आगे देहधारियोंके पराक्रमोंकी समानता तो नहीं है किन्तु हीनता है।।३४।।

मत्स्य आदि शरीरोंमें प्रायः अलौकिक भाव देखनेमें नहीं आते हैं क्योंकि अलौकिक भाव भगवद्धर्म है, जीव धर्म नहीं है, अतः जहां अलौकिक भाव देखनेमें आते हैं वे शरीर भगवान्ने अवतारोंमें धारण किये हैं. जैसा कि भगवान्ने मत्स्यरूपसे अवतार लिया तो उस मत्स्यमें अलौकिक भाव प्रकट हुए जैसे वह मत्स्य-शरीर बढ़ता ही गया इसी प्रकार अन्य मत्स्य नहीं कर सकते हैं जिससे यह निश्चय होता है कि भगवान् उस मत्स्य आकृतिमें केवल दर्शन देते हैं किन्तु वह आकृति देह नहीं है. यदि देह होती तो बढ़ती नहीं उसको बढ़नेकेलिये कालकी आवश्यकता पड़ती है. भगवान् तो अपने वीर्य धर्मसे कालका उल्लंघनकर सकते हैं अतः कालका विचार न कर अपने वीर्यसे बढ़ते ही गये. जाना जाता है कि यह भगवान्का अतुल्य और अतिशय वीर्यका प्रदर्शन है. वह वीर्य प्रदर्शन आपने एक प्रकारसे नहीं अनेक प्रकारसे अपने अवतारोंमें प्रकट किया है. क्षणमें विश्वरूप हो जाते हैं, क्षणमें वामन बन जाते हैं. कभी दृश्य और कभी अदृश्य होते हैं बाहरसे और भीतरसे परिच्छेदवाले बन जाते हैं तथा कभी व्यापक होते हैं. इससे समझमें आता है कि इस प्रकारके पराक्रम किसी देहधारियोंमें नहीं है और न ऐसे पराक्रमोंसे देहधारियोंका सम्बन्ध है. अतः ऐसे अलौकिक वीर्यवाले भावोंको प्रकट करनेसे निश्चय होता है कि यह भगवान् ही हैं. अपनी आंखोंसे केवल उन आकृतियोंको देखनेसे यह निश्चय नहीं किया जा सकता है कि यह भगवान् हैं. जो अलौकिक भाव कभी-कभी हो अथवा किसी न किसी प्रकारसे उस (अलौकिक भाव)का ज्ञान हुआ हो, किन्तु यदि हमेशा जो वाणी तथा मनसे जिनका ध्यान न हो सके ऐसे पराक्रम सदा देखनेमें आते हों तो कैसे न कहा जाय कि यह भगवान् है. यह तात्पर्य श्लोकके उत्तरार्ध 'तैस्तैः'से कहा है. इस प्रकार अवतारोंमें भगवान्का ज्ञान(ये अवताररूप भगवान्के हैं) अनुमान किया जाता है प्रत्यक्ष से नहीं होता।।३४।।

इस समय तो भगवान्(आप श्रीकृष्ण) इसकेलिए(हमारे उद्धारकेलिए और हमको दर्शन देनेकेलिए) प्रकट हुए हो इसका ज्ञान नारदजीके शब्द तथा कृपासे हुआ है इसका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

स भवान् सर्वलोकस्य भवाय विभवाय च ।।
अवतीर्णोंशभागेन साम्प्रतं पतिराशिषाम् ।।३५।।

सर्व लोकके कल्याण और मोक्ष देनेकेलिए सर्व सुखोंके पति वह आप अंश और भागसे अवतीर्ण हुए हो।।३५।।

सर्व प्रमाणोंसे जानने योग्य लौकिक जिसको नहीं जान सकते हैं, अन्तःकरणमें जो प्रत्यक्ष होते हैं और जो अवतारी हैं वह आप चतुःरूप(चार रूपोंवाले) हो. इस कारणसे ही आप अब सर्व लोगोंके कल्याण तथा ऐश्वर्य केलिये अंश और भाग्यसे अब अवतार धारण कर पधारे हो. क्योंकि आप आशिषों (धर्मादि चार पुरुषार्थ)के पति हैं. आप स्वरूपसे चार रूपोंवाले हो यह वर्णन प्रकारसे आगे किया है. उससे भी विशेष यहां(आपमें) गुण हैं. सब लोकोंको उत्पन्न[1] करना है. उसके पीछे उनको अपने समान ऐश्वर्यादिक देने हैं. भगवदीय शुद्धसत्त्व गुणसे ही आविर्भूत[2] होते हैं उसका कारण यह है कि भगवान् उनमें अंशरूपसे प्रकट होते हैं. भगवान् उन(भगवदियों)में किस भावांशका प्रकाश करते हैं? आचार्यश्री उसपर प्रकाश डालते हैं कि भगवान्की इच्छा है कि सब दासभावसे प्रकट होवें इसलिए लोकों(भगवदीयों)में दासभाव रूप अंशका प्रकाश करते हैं. यदि अन्य अंशोसे भी उनमें विराजे तो सेवा भजन आदि नहीं हो सके. कारण कि प्रलयकी अग्निका सेवन कोई भी नहीं कर सकता है. 'भाग' शब्दका आशय कला है. भगवान्ने भागसे(कलारूपसे) अवतार लिया है. कलारूपसे अवतार लेनेका कारण यह है कि जब कलाओंका मूल रूप(बीज) प्रकट होवे तब ही सब कलाओंका विकास हो और सबोंमें सर्व कलाकौशल्य (कारीगरी) हो. तब ही सर्व कलाएं पूर्ण विकसित होती हैं. नलकूबर और मणिग्रीवने यह अपने उपयोगकेलिये कहा है क्योंकि उनका भी वैष्णवरूपसे जन्म हुआ है. उसमें ही भक्ति कलाएं पूर्ण होंगी. ये ही आशीर्वचन हैं जो आगे प्रार्थना करेंगे. भगवान् लोगोंमें भक्तिकी स्थापनाकेलिये भक्तोंको उत्पन्नकर उनके साथ मनुष्य भावसे अनेक प्रकारकी क्रीड़ा करते हैं।।३५।।

१.उत्पन्नका तात्पर्य यह है कि जो लौकिकमें आसक्त हैं उनको अलौकिक बनाना है. अनुवादक.

२.श्रीकृष्ण अवतारी पूर्ण स्वरूप है. यहां अंशसे और भागसे अवतार लिये. इस कहनेसे परस्पर विरोध दृष्टि गोचर होता है इस शंकाको मिटानेकेलिये आचार्यश्रीने

सुबोधिनीमें यह कहा है कि श्रीकृष्ण भगवदियोंमें अपने अंश–भागसे पधारे हैं. आप तो पूर्णरूपसे प्रकटे हैं. प्रकाश.

कुछ प्रार्थना करनेकेलिए वे दोनों श्लोकमें भगवान्‌को नमस्कार करते हैं.

नमः परमकल्याण नमस्ते विश्वमङ्गल ।।

वासुदेवाय शान्ताय यदूनां पतये नमः ।।३६।।

हे परम कल्याण रूप ! आपको नमस्कार है. हे विश्वमंगल रूप ! आपको नमस्कार है. हे परम शान्त यदुवंश शिरोमणि आपको बार–बार हम प्रणाम करते हैं।।३६।।

आदिमध्यावसानेषु नमनं मनआदिभिः।।का.।।

कारिकार्थ : आदि, मध्य और अन्तमें मन आदिसे[१] प्रणाम करते हैं.

आदि(आरम्भ)में कायासे नमन करते हैं जिसका फल यह है कि शरीरके उपभोगोंकेलिये(शरीरसे सेवा लेनेकेलिये अथवा उसको आनन्द देनेकेलिये) कल्याणोंका भण्डाररूप भगवान् स्वयं प्रकट होते हैं. लोकमें पुत्र जन्म आदि शुभ फल कल्याण नामसे प्रसिद्ध हैं और भगवान् ही परम कल्याण अर्थात् परमानन्द नामसे विख्यात हैं.

मध्यमें वाणीसे नमस्कार करते हैं. यह श्लोकमें आये हुए 'नमस्ते' पदका भाव है. वाणीसे नमस्कारका फल(विश्वमङ्गल) रूप है. विश्वके कल्याणकेलिये भगवान्‌ने वेद प्रकट किये हैं उन वेदोंसे प्राप्त स्वरूप(विश्वमङ्गल) है अर्थात् विश्वका मङ्गल करनेवाला स्वरूप वाणी द्वारा नमस्कार करनेसे फलरूप(प्रकट) होता है.

अन्तमें मनसे नमस्कार करते हैं. मनसे नमस्कार करनेसे भगवान् मनमें प्रकट होते हैं यह बतानेकेलिये श्लोकमें 'वासुदेवाय' पद दिया है. केवल मनमें प्रकट होनेसे नारदजीके समान कोई लाभ नहीं है, जब तक कि उसका ज्ञान न हो, अतः 'शान्ताय' पद देकर बताया है कि आप लय और विक्षेप–रहित ज्ञान स्वरूपसे भी(मन द्वारा नमस्कार करनेसे) प्रकट होते हैं. 'यदूनां पतये' यादवोंके 'स्वामी' शब्दसे यह बताया है कि आप फलरूप तब होते हैं जब स्वामीरूपसे प्रकट होते हैं जिस प्रकार यादवोंके पति(स्वामी) होकर प्रकटे हैं।।३६।।

१. 'आदि शब्दसे काया और वाणी समझनी चाहिए जिसको' श्रीसुबोधिनीजीमें स्पष्ट कर दिया है.

इस प्रकार नमस्कारकर निम्न श्लोकमें प्रार्थनाकर वहाँसे जानेकी आज्ञा मांगते हैं.

अनुजानीहि नौ भूमंस्तवानुचरकिङ्करौ ।।
दर्शनं नौ भगवता ऋषेरासीदनुग्रहात् ।।३७।।

श्लोकार्थ : हे भूमन् ! आपके अनुचरोंके किंकर(नौकर) हम दोनोंको जानेकेलिए आज्ञा दीजिए. भगवान् ऋषिके अनुग्रहसे आपके दर्शन हुए।।३७।।

हम दोनोंको आज्ञा दो. भगवान्केलिये 'भूमन्' विशेषण देकर यह प्रकट किया है कि हम यहां रहनेके योग्य नहीं हैं. क्यों योग्य नहीं हैं तो उसके उत्तरमें कहते हैं कि हम आपके सेवक नारदजीके सेवक हैं. हम आपके सेवकके सेवक बननेके ही योग्य हैं न कि आपके सेवक बननेके योग्य हैं. कारण कि आप महान् हैं. महान्की सेवा छोटे नहीं कर सकते हैं. जब आप मेरे दर्शन करनेके योग्य हुए हो तो सेवाके योग्य भी हो यह तो स्वतः सिद्ध है ही, तो आप कैसे अयोग्य हो ? इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि आपके दर्शन हमको हमारी योग्यताके कारण नहीं हुए हैं. किन्तु भगवान् ऋषि नारदजीके अनुग्रह(कृपा)से हुए हैं. महाराजका नौकर कभी अपने सेवकको महाराजके स्थानपर ले जाता है जिससे वह सेवक महाराजकी सेवाके योग्य नहीं बन जाता है. महाराजके दूसरे प्रकारसे दर्शन हो नहीं सकते, इससे कोई सेवाकी योग्यता नहीं आ जाती है. नारदजीकेलिये भगवान् और ऋषि दोनों पद साथ देनेसे यह बताया है कि गुरु और देव एक ही हैं।।३७।।

इस प्रकार जानेकेलिए आज्ञा प्रदान करनेकी प्रार्थना की अब निम्न श्लोकमें वहां जाकर रहनेवाले हमको आपकी भक्ति स्थिर रहे यह प्रार्थना करते हैं.

वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः ।।
स्मृत्यां शिरस्तव निवासजगत् प्रणामे दृष्टिः सतां दर्शनेस्तु भवत्तनूनाम् ।।३८।।

हे निवास जगत्!(जिसका जगत् निवास-स्थान है) हमारी वाणी आपके गुणानुवादमें(गुणोंके कीर्तनमें), कर्ण आपकी कथा सुननेमें, हाथ आपकी सेवा करनेमें, मन आपके चरणोंके स्मरणमें, मस्तक आपको प्रणाम करनेमें और दृष्टि आपके स्वरूप भूत भक्तोंके दर्शनमें तत्पर रहे।।३८।।

वाक् श्रोत्रे च करौ चित्तं शिरश्चक्षुस्तथैव च ।।
षडेते भगवत्कार्ये यदि सक्ताः कृतार्थता ।।का.१।।

कीर्तने श्रवणे चैव गुणानां रूपदास्यके ।।
स्वरूपस्मरणे नत्यामवतीर्णस्य दर्शने ।।का.२।।

कारिकार्थ : मनुष्यके अंगोंमें छे अंग मुख्य हैं. वे छे वाणी, कान, हाथ, चित्त, मस्तक और नेत्र हैं. ये छे अंग यदि भगवान्के कार्य(सेवा)में लगे रहें तो उनकी सार्थकता है.

वाणी भगवान्के गुणोंके कीर्तनमें, कान गुणोंके श्रवणमें, हस्त स्वरूपकी दासतामें, चित्त स्वरूपके स्मरणमें, शिर प्रणाम करनेमें, नेत्र अवतार स्वरूपके दर्शन करनेमें लगे रहें तो इन ६की सार्थकता है.

पहली कारिकामें मुख्य छे अंग, दूसरीमें उनके कार्य(सेवा)को बताकर यह कहा है कि इस प्रकार यदि ये अंग सेवामें तत्पर रहते हैं तो उनका होना सफल है नहीं तो वे अंग निष्फल हैं.

विवाह संस्कार द्वारा दान की हुई कन्या वरके अतिरिक्त दूसरेके पास नहीं जाती है, उसकेलिये दूसरा पुरुष मांग भी नहीं कर सकता है और वह पतिके भयसे दूसरेसे किसी प्रकारका सम्बन्ध भी नहीं कर सकती है वैसे ही हमारी वाणी भी भगवान्के गुणों(उत्कर्षता बतानेवाले धर्मों)के कीर्तन करनेमें तत्पर रहे, दूसरी तरफ न जावे. इसी प्रकार कान भगवान्की कथामें, हाथ आठों पहर भगवान्के सब कार्योंमें लगे रहें. श्लोकमें आये हुए 'च' शब्दसे यह भाव बताते हैं कि पैर भी मन्दिरमें जाने आदि कार्योंमें लगे रहें. इसकेलिये विशेष हेतु देते हैं कि यदि पैरोंसे मन्दिरमें जानेकी सेवा न ली जाय तो हाथोंसे मन्दिरमें जाकर सेवा बन नहीं सकेगी. अतः दोनों(हाथ और पैर) एकरूप समझने चाहिए. आपके चरणोंके स्मरणमें हम सब लोगोंका मन लगा रहे इससे यह बताया कि स्मरण भक्तोंके साथ मिलकर करना चाहिए. आपके इस(श्रीकृष्ण) स्वरूपसे अन्य स्वरूपमें हमारा मन न लगे इसलिए 'पादयोः' यह द्विवचन दिया है. दूसरे स्वरूपमें इसका अभाव है. मस्तक आपको प्रणाम करनेमें लगा रहे. श्रवण, कीर्तन, स्मरण और पाद सेवन इस चार प्रकारसे की हुई प्रणामरूप भक्तिसे भगवान्की सर्वमें स्थिति और सर्वान्तरत्व(सबके भीतर भगवान् हैं)की स्फूर्ति होती है. अतः निवास 'जगत्' यह सम्बोधन देकर बताया है कि आपका निवास-स्थान जगत् है जिससे आपके सर्वमें स्थिति और सर्वान्तरत्वकी सिद्धि हो जाती है, भगवान्के दर्शनकी प्रार्थना तो ढीठपनसे नहीं दी है. भगवद्भक्त सत्पुरुषोंके दर्शनकी प्रार्थना इसलिए की है

कि वे भगवान्के शरीर हैं अर्थात् भगवान् उनमें सदैव बिराजते हैं. उनके दर्शनसे स्वतः भगवान्के भी दर्शन हो जायेंगे. जिस प्रकार लोहेके गोलेमें अग्नि और गंगाके खात(तह)में जल रहता है उसी प्रकार भगवान् उनमें रहते हैं जिससे वे(भक्त सन्त) वैसे (भगवान्के समान) ही है।।३८।।

उनकी जानेकी आज्ञा और भक्तिकी प्राप्तिकी प्रार्थनापर भगवान्ने सोचा कि यदि इनको सर्वथा(पूर्ण) भक्ति दे दूंगा तो इनका शीघ्र ही लय हो जाएगा. यह मुझे इष्ट नहीं है. अतः कुछ मोह उत्पन्न करानेको कुछ दूं उसका वर्णन श्रीशुकदेवजी निम्न श्लोकमें करते हैं.

श्रीशुकः उवाच

इत्थं संकीर्तितस्ताभ्यां भगवान् गोकुलेश्वरः ।।
दाम्ना चोलूखले बद्धः प्रहसन्नाह गुह्यकौ ।।३९।।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि रस्सीसे ऊखलमें बन्धे हुए गोकुलेश्वर भगवान् ऐसी उनकी स्तुति सुन, हंसकर उन दोनों यक्षोंको कहने लगे।।३९।।

यक्षने जब भगवान्के प्रसन्न होने तक स्तुति की तब भगवान् हँसकर उनको कहने लगे. आचार्यश्री प्रकट करते हैं कि यह स्वरूप सब कुछ करने और सर्व प्रकारके दान देनेमें सामर्थ्यवान् है इसलिए श्लोकमें 'भगवान्' नाम दिया है. भगवान् गोकुलमें अब जो लीला जिनसे कर रहे हैं उस लीलामें दूसरेका अथवा दूसरे प्रकारकी लीलाका प्रवेश होगा जो भगवान्को अभीष्ट(प्रिय) नहीं है. इस भावको प्रकट करनेकेलिये श्लोकमें 'गोकुलेश्वरः' नाम दिया है. वह लीला गोकुलवासियों के ही योग्य है न कि दूसरोंके योग्य है. अतः इन(नलकूबर मणिग्रीव)की शीघ्र मुक्ति नहीं करनी चाहिए इसलिए इनको अब पूर्ण भक्ति दान नहीं करना है, पूर्ण भक्ति दानसे इनकी यहां ही मुक्ति हो जायेगी. इसलिए जब तक गोकुलमें क्रीड़ामें क्रीड़ा चल रही है तब तक इनको मोहित कर देना ही योग्य है. और भगवान् अब तक रस्सीसे ऊखलमें बन्धे हुए हैं इससे भगवान् बताते हैं कि अब मैं गोकुलमें होती हुई लीलाके रस भोगार्थमें गौण हूँ. और गोकुलवासी अथवा उनको विशेष रसकी सिद्धि करनेकेलिये उनके आधीन हूँ. यह शंका भी नहीं करनी कि गोकुलमें देव आये(नलकूबर मणिग्रीव देवरूपसे वहां प्रकट हुए) और उनका किसी प्रकारका सन्मान(पूजा) न हुआ. क्योंकि उस समय गोकुलका ईश्वर रस्सीसे बान्धा हुआ था. वास्तविक रीतिसे ईश्वर ही है और यों लौकिक

दृष्टिसे भी तो नन्दके पुत्र होनेसे ईश्वर ही है. वह(ईश्वर) जहां बन्धा हुआ हो वहां तब किसका सन्मान होगा. गोकुलमें देव, वृक्ष[१] हुए हैं यह उचित है. इस प्रकार गोकुलवासियोंका वृत्तान्त स्मरणकर भगवान् हँसते हुए गुह्यकोंको निम्न प्रकारसे कहने लगे. आप दोनों जो मांगते हो वह मेरे अधिकारीने आपको दे दिया है अब कुछ मांगना तो रहा ही नहीं हैं. दो पुरुषार्थ हैं १.मुझमें भक्ति और २.प्रेम, ये दोनों निरोधके रूप हैं. प्रपञ्चकी विस्मृति(मुक्ति) है वह आपको पहले ही प्राप्त हुई है. इसका वर्णन करते हैं।।३९।।

१.देवोंका यहां वृक्ष होना इसीलिए उचित है कि यह गोकुलकी भूमि भगवान्की कृपासे सर्व भूमिओंसे उत्तम है. प्रकाश.

श्रीभगवानुवाच

ज्ञातं मम पुरैवैतदृषिणा करुणात्मना ।।
यच्छ्रीमदान्धयोर्वाग्भिर्विभ्रंशोनुगृहः कृतः ।।४०।।

भगवान् कहते हैं कि दयालु ऋषिने, तुम जो लक्ष्मीके मदसे अन्धे हो गए थे उनपर अपनी वाणीसे(शाप देकर) पात(पदवीसे गिराने) रूप अनुग्रह किया है यह मैंने पहले ही जाना है।।४०।।

मैंने वह पहले ही जान लिया है कि लक्ष्मीके मदसे अन्धे बने आप दोनोंका दयालु ऋषिने देव योनिसे आपका पात किया है. यह भी विचार नहीं करना कि सेवक अपनी इच्छासे जैसा चाहे वैसा भी कभी कभी करते हैं. वैसे ही नारदजीने भी किया होगा, यदि आपको ऐसा विचार हो तो योग्य अथवा सत्य नहीं है क्योंकि इसका मुझे पहलेसे केवल ज्ञान न था, किन्तु मेरी ही यह इच्छा थी अथवा इस प्रकार करना मेरा अभीष्ट था. यों कहनेसे ऋषिकी प्रशंसा की है. इससे यों समझना कि यह मैंने ही किया है इसलिए मांगनेकेलिये शेष कुछ बचा ही नहीं है.

किसीका जब अपकार किया जाता है तब वह शाप देता है. नारदजीने अपकारके कारण शाप नहीं दिया है किन्तु आपके ऊपर दया करके शाप दिया है, क्योंकि धन मदसे जो आप मदिरापानादि असत्कर्म कर रहे थे जिसका फल आपको दुःख भोगना पड़ेगा यह जानकर वे दुःखी हुए जिससे उनके चित्तमें दया आई, उस दयासे इस प्रकारका शाप देकर महान् दुःख भोगनेसे आपको बचा लिया. नारदजीने होनेवाले दुःखरूप फलको पहले ही कैसे जान लिया? इसके

उत्तरमें नारदजीके लिये 'ऋषि' विशेषण दिया है. ऋषि यह है जिसको आगामीका भी ज्ञान होता है. श्लोकमें आपकेलिये श्री मदसे अन्धे बने हुए जो कहा है उससे आपको अन्धतम नरककी प्राप्ति होती यह जानकर इस नरकसे इनका उद्धार अवश्य करना चाहिए. नारदजीने तो केवल वाणीसे ही कह दिया, उस वाणीको कार्यरूपमें तो मैं लाया हूँ. अतः वाणीसे जो नारदजीने आप दोनोंका पात(देव योनिसे वृक्ष योनिमें गिराकर)कर ज्ञान दिया वह उनका अनुग्रह ही समझना चाहिए।।४०।।

इस प्रकार यदि अवश्य होनेवाला ही था, तो नारदजीने वाणीसे क्यों कहा? इससे तो उनको मौन धारण करना ही योग्य था? इस शंकाका निवारण निम्न श्लोकसे करते हैं.

साधूनां समचित्तानां सुतरां मत्कृतात्मनाम् ।।
दर्शनान्नो भवेद् बन्धः पुंसोक्ष्णोः सवितुर्यथा ।।४१।।

जैसे सूर्यके उदय होते ही नेत्रोंकी देखनेकी रुकावट नष्ट हो जाती है वैसे ही समान चित्तवाले ज्ञानी, मुझमें पूर्ण रूपसे अर्पित आत्मावाले साधुओंके दर्शनसे पुरुषका बन्धन नहीं रहता है।।४१।।

वे(साधुजन) इसी प्रकार ज्ञानसे भरे हुए हैं जैसे लोहेका गोला आगसे पूर्ण होता है. जैसे उस गोलेके स्पर्शसे अग्निसे भी विशेष दाह होती है वैसा ही ब्रह्म ज्ञानसे भी विशेष शीघ्र बन्धकी निवृत्ति साधुओंके दर्शनसे होती है. सदाचरणवाले साधु हैं और समान चित्तवाले ज्ञान हैं. ज्ञान और कर्मसे सद्भाव होनेके कारण ऐसे साधुओंमेंसे भेदभाव निकल जाता है. इसलिए ये मुक्त हैं वा ये अमुक्त हैं इस प्रकारका उनका वैलक्षण्य(विचित्रता) ज्ञान उनके समदर्शीपनेमें बाधक नहीं होता है. वे भी वैसे नहीं करते हैं अर्थात् स्वयं मुक्त नहीं कराते हैं, किन्तु उनका दर्शन ही मुक्तिका साधक(देनेवाला) है. और जिन साधुओंने मुझमें आत्माका समर्पण कर दिया है अथवा जिनकी आत्मा मेरे लिये ही है उनमें कर्म, ज्ञान और भक्ति तीनों ही सिद्ध होनेसे सर्व प्रकारसे बन्ध नहीं होता है. उनमें बन्धकारक तीनों गुण नहीं रहते हैं. कर्मसे तमोगुणकी निवृत्ति हो जाती है, ज्ञानसे रजोगुण[१] निवृत्त हो जाता है और भक्तिसे सतोगुण[२] जाता रहता है. इससे बन्धका कोई अंश नहीं रहता है. अतः पूर्ण कर्मवाले वसुभावको प्राप्त होते हैं उनसे विशेष ब्रह्मवेत्ता ज्ञानी सनकादिकोंके समान होते हैं. उनसे भी अधिक भक्त जन, मेरे भावको प्राप्त करते

हैं ऐसे साधुओंके दर्शनसे 'पुरुष' मर्यादाधिकारीका बन्धन निवृत्त हो जाता है. अर्थात् जो मोक्षके अधिकारी हैं उनके बन्धन दर्शनसे कट जाते हैं. जो मोक्षके अधिकारी नहीं हैं उनके बन्धनोंको काटनेवाले हम हैं.

नलकूबर व मणिग्रीवने मोक्ष मांगा नहीं तो भी मोक्ष कैसे दिया? इस शंकाका उत्तर देते हैं कि जैसे नेत्रोंकी प्रार्थना बिना सूर्यके उदयसे आंखोंका बन्धन(न देखना) वा अन्धकार स्वतः छूट जाता है और नेत्र देखने लगते हैं।।४१।।

१.ज्ञानसे रजोगुणके नाश होनेसे सतोगुण उदय होता है वह पुरुष सतोगुणसे ज्ञानवान् बनता है. ''सत्वात् संजायते ज्ञानं'' अतः सनकादिक ज्ञानी सतोगुणी हैं. लेख.

२.भक्तिसे सतोगुणके नाश होनेसे भक्त निर्गुण होते हैं.

कारण कि वस्तुकी शक्ति प्रार्थनाकी अपेक्षा नहीं रखती है इससे मोक्ष तो पहले ही सिद्ध था शेष रही भक्ति जो भी सिद्ध हो गई है उन्होंने जो प्रार्थना की उसका उत्तर नीचेके श्लोकमें देते हैं.

तद् गच्छतं महाभागौ नलकूबरसादनम् ।।
सञ्जातो मयि भावो वामीप्सितः परमोभवः ।।४२।।

हे नलकूबर ! इस कारणसे महाभाग्यवाले तुम दोनों घर जाओ. आप दोनोंका इच्छित अन्तिम जन्मरूप भाव मेरेमें हुआ है।।४२।।

अनन्त करोड़ जन्मोंमें आपने पाप और पुण्य इकट्ठे किये थे सौ दिव्य वर्ष मेरे दर्शनकी प्रतीक्षा करनेके भावसे आपके पाप तो नष्ट हो गये, अब शेष पुण्य रहे हैं जिनका फल भक्तिकी प्राप्ति है, इसलिए आप बड़े भाग्यशाली हो. दोनोंका मन मिलकर एक हो गया है अत: भाव भी एक होनेसे यहां केवल एक नलकूबर संबोधनसे दोनोंपर ही अनुग्रह कहा है. गृहकेलिये श्लोकमें 'सदन' शब्द न देकर 'सादन' दिया है. आचार्यश्री उसका आशय बताते हैं कि आप अपने घर जाओ किन्तु आपकी वहां जानेपर घरमें आसक्ति न होगी क्योंकि वहां आपने कष्ट पाया है अथवा वहांसे आपका नाश हुआ है. मेरेमें तो आपका मेरे सम्बन्धवाला प्रेमरूप भाव हो ही गया है इससे ही श्रवणादिक स्वतः हो जायेंगे. इस प्रकारके भावकी तो प्रार्थना नहीं की है इससे जाना जाता है कि हमको यह इष्ट नहीं है? इसके उत्तरमें श्लोकमें 'ईप्सितः' शब्द देकर यह बता दिया है कि आपको इष्ट है उसका कारण बतानेकेलिये 'परमत्वं' शब्द दिया है. यह भाव ही

अन्तिम जन्मरूप है. इस भावके होनेके पीछे दूसरा जन्म नहीं होता है अनेक जन्मोंसे जो दुःखी हैं वे सब मेरेमें यह भाव मांगनेके योग्य है अर्थात् मांगते(चाहते) ही हैं. अतः आप दोनोंको भी यह इष्ट होनेसे सम्यक्(अच्छे) प्रकारसे यह भाव हुआ है।।४२।।

भगवान्ने उनको जो कुछ ऊपर कहा, वह सुनकर वे जाने लगे. जानेसे पहले जो कुछ उनको करना योग्य था वह उन्होंने किया उसका वर्णन नीचेके श्लोकमें शुकदेवजी करते हैं.

श्रीशुकःउवाच

इत्युक्तौ तं परिक्रम्य प्रणम्य च पुनः पुनः ।।
बद्धोलूखलमामन्त्र्य जग्मतुर्दिशमुत्तराम् ।।४३।।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि ऊखलमें बन्धे हुए भगवान्से इस प्रकार कहे हुए वचन सुनकर उन दोनोंने उन(ऊखलमें बन्धे हुए)की बार बार परिक्रमा और नमस्कार कर और आज्ञा लेकर वें उत्तर दिशामें गए।।४३।।

श्लोकमें 'तं' शब्द इसलिए दिया है कि वे बालक नहीं थे अर्थात् परब्रह्म थे इसलिए उनकी बार बार प्रदक्षिणा की. प्रत्येक प्रदक्षिणाके समय प्रणाम किये. श्लोकमें 'च' शब्द आया है उसका आशय बताते हैं कि प्रणाम अभिमानसे नहीं किये किन्तु दीनता प्रकटकर प्रणाम किये. लीला भावसे भी मोहित नहीं हुए, अर्थात् उस समय श्रीकृष्ण मनुष्यके बालकके समान ऊखलमें बन्धे हुए थे और डरने आदिकी चेष्टा कर रहे थे इसको देखकर भी भूले नहीं कि यह मनुष्य है इससे इनको प्रदक्षिणा और प्रणाम कैसे करें, मोहित न हुए इसीलिए प्रणामके पीछे उसी ऊखलमें बन्धे हुएसे ही जानेकी आज्ञा ली. आज्ञा लेकर अपने स्थान उत्तर दिशामें गये. इस लीलासे यह स्पष्ट दिखाया कि मैंने केवल गोकुलवासी चेतन्योंका ही निरोध नहीं किया है किन्तु गोकुलके जड़-वृक्षोंका भी निरोध किया।।४३।।

इति श्रीमद्भागवत दशमस्कन्धकी श्रीवल्लभाचार्यविरचित सुबोधिनी टीकाके तामस प्रकरणके 'प्रमाण' अवान्तर प्रकरणके वैराग्य निरूपक अध्याय ६ का (स्कन्धानुसार अध्याय १०) का हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण.

अध्याय ११

अघासुरका उद्धार

निरोधः सर्वभावेन वर्णनीयो हि गोकुले ।।
स्त्रीणां स चोक्तः पुंसां च नन्दप्राधान्यभावतः ।।का.१।।

कारिकार्थ : गोकुलमें सर्वभावसे जो निरोधका वर्णन करने योग्य है, वह स्त्रियोंका है और पुरुषोंका भी मुख्य कर नन्दजीके भावसे कहा.

गोकुलमें सर्वभावसे(सब प्रकारसे अथवा सर्व करणों(साधनों)से जिसके द्वारा भगवान्से सम्बन्ध हो जाए इसी प्रकारसे) निरोध करना है. दशम स्कन्ध 'निरोध स्कन्ध' है अतः उसमें गोकुलका, 'फल' पर्यन्त पूर्ण निरोध प्रथम कहा है. इससे पहली और दूसरी कारिकासे ग्यारहवें अध्यायका 'अर्थ' और प्रथम कहे हुएकी संगति कही है. इस अध्यायमें स्त्रियोंका निरोध और नन्दरायजीकी मुख्यतासे पुरुषोंके निरोधका भी वर्णन है।।१।।

एकादशे ततोध्याये पूर्वावस्थामशेषतः ।।
त्याजयित्वा तु नन्दस्य कृष्णभावो निरूप्यते ।।का.२।।

कारिकार्थ : इससे ११वें अध्यायमें पूर्वावस्था (पहली अवस्था)का पूर्ण रीतिसे त्याग कराके, नन्दरायजीके कृष्णके भावका निरूपण करते हैं.

यद्यपि नन्दरायजीके निरोधका वर्णन पूर्व हुआ है, किन्तु वह सामान्य था. क्योंकि उस समय नन्दरायजीसे प्रपञ्चकी आसक्ति नहीं छूटी थी. अब इस अध्यायमें वर्णन की हुई लीला द्वारा नन्दरायजीकी प्रपञ्चमें रही हुई आसक्तिका पूर्ण त्याग कराके, कृष्णमें आसक्तिरूप भाव उत्पन्न कराया जाएगा. जिससे नन्दरायजी का पूर्ण निरोध सिद्ध होगा उसका निरूपण इस अध्यायमें किया गया है।।२।।

मोचनं मुग्धलीला च स्थानान्तरपरिग्रहः ।।
तत्र लीला वत्सबकौ ज्ञानं चेति निरूप्यते ।।का.३।।
षड्भिस्त्रिभिः षोडशभिश्चतुर्भिः षड्भिरेव च ।।
नवभिः पञ्चभिश्चेति सप्तार्थाः सगुणो हरिः ।।का.४।।

कारिकार्थ : १.छुडाना(ऊखलमें बांधे हुए भगवान्को छुडाना), २.मुग्ध लीला, ३.दूसरे स्थानपर जाकर रहना, ४.वहां लीला करनी, ५.वत्सासुरका वध,

६.बकासुरका वध और, ७.ज्ञान लीला. इन सातोंका वर्णन क्रमशः निरूपण किया है जैसा कि १.छुडानेका छः श्लोकोंसे, २.मुग्ध लीलाका तीन श्लोकोंसे, ३.दूसरे स्थानपर जाकर रहनेका सोलह श्लोकोंसे, ४.लीला करनेका चार श्लोकोंसे, ५.वत्सासुरका वध छः श्लोकोंसे, ६.बकासुरके वधका नौ श्लोकोंसे, ७.ज्ञान लीलाका पांच श्लोकोंसे वर्णनकर यह बताया है कि छ गुणोंवाला 'ज्ञान रूप' धर्मी हरि इस ११वें अध्यायका 'अर्थ' है.

इन दो कारिकाओंसे यह बताया है कि इस अध्यायका अर्थ 'हरि' है. वह हरि ऐश्वर्यादि छः गुण और ७ वां आप धर्मी रूप होनेसे 'सगुण' कहा गया है।।३-४।।

स्वार्थंतु भगवान् कार्यस्तथात्वं ज्ञाप्यते पुनः ।।
सर्वस्वं हरिरेवेति तदर्थं त्याग ईर्यते ।।का.५।।

कारिकार्थ : भगवान् अपने रस भोगार्थ जो निरोध करते हैं वह निरोध भगवान् ही हैं अर्थात् वह निरोध भगवान्का ही रूप है. इस प्रकार फिर समझाते हैं कि सर्वस्व हरि ही है उस(हरि)केलिए त्याग कहा जाता है.

भगवान् दो प्रकारसे निरोध करते हैं. एक अपनेलिए, दूसरा अन्यों केलिए. अपनेलिए जो निरोध करते हैं वह लीलारूप निरोध भगवद्रूप (धर्मीरूप) है और अन्योंकेलिए जो निरोध करते हैं वह निरोध धर्मरूप है. पहले ६ अध्यायोंमें जो निरोध किया है वह धर्मरूप(गुणरूप) है. सातवें अध्यायमें जो दूसरोकेलिए पाँच प्रकारके निरोधका वर्णन किया है उनसे श्रोताओंकी भगवद्गुणानुवादमें रुचि उत्पन्न होती है जिससे भगवान्में उनकी आसक्ति होती है. पाँचवे अध्यायसे दसवें अध्याय तक ६ अध्याय गुणाध्याय हैं और यह एकादश(११) अध्याय रूपाध्याय हैं इसलिए इसमें रूपलीलासे निरोध करते हैं. इस रूपलीलासे निरोध दृढ हो जाता है.

भगवान् जिस प्रकार भक्तोंका निरोध अपनेमें कराते हैं वैसे ही अपना निरोध भक्तोंमें कराते हैं इस प्रकार दोनोंका परस्पर निरोध होनेसे निरोध परिपक्व होता है.

'स्वार्थ'का विशेष आशय यह भी है कि अपने मनमें जिस प्रकारकी भगवत्सेवा करनेकी इच्छा हो उसकी सिद्धिकेलिए भगवान्को अपने वशमें करना आवश्यक है यह भगवान्को ऊखलसे छुडानेकी प्रथम लीलासे बताया है. दूसरी

मुग्ध लीलासे भगवान् भक्तोंके वश होते हैं यह बताया है जिसका आशय है कि यह देखकर अन्य भी उस फलकी इच्छासे सेवा करेंगे।।५।।

वृन्दावने स्थितौ हेतुर्भगवत्तोषतः परम्।।
नास्तीति ज्ञापनायोक्ता प्रीतिर्लीलोपयोगिषु।।का.६।।

कारिकार्थ : वृन्दावनमें स्थितिका कारण भगवान्को प्रसन्न करनेके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है क्योंकि वृन्दावनमें लीलोपयोगी जो पदार्थ हैं उनमें भगवान्की प्रीति है.

गोकुल छोडकर वृन्दावनमें जाकर क्यों रहे उसका कारण केवल भगवान्की प्रसन्नता है. भगवान्को वृन्दावन अति प्रिय है क्योकि वहां लीलोपयोगी पदार्थ सुन्दर एवं विशेष हैं. अतः भगवान्की प्रसन्नताके अर्थ सब कुछ त्याग करना योग्य समझ अपना गोकुल गाँव छोडा है. ज्ञान मार्गमें 'आत्मा'केलिए सर्व त्याग किया जाता है वैसे ही इस भक्ति मार्गमें 'सर्वस्व' हरि होनेसे गोकुलका त्याग किया गया है।।६।।

वत्सचारणदोषस्य निवृत्तिर्वत्समारणम्।।
गोपालदोषव्यावृत्त्यै बकस्यापि विनाशनम्।।का.७।।

कारिकार्थ : वत्सासुरका वध, वत्सचारणके दोषोंकी निवृत्तिकेलिए किया है और गौ पालनके दोषोंका निवारण करनेके वास्ते बकासुरका वध किया है.

इस कारिकामें वत्सासुर वध और बकासुर वध क्यों किया? उसको बताया गया है. वत्सासुर वधका कारण भगवान्में वत्स चारणकी लीलासे, जो मनुष्यत्व बुद्धि रूप दोष, गोकुलवासियोंमें उत्पन्न हुआ था, उसका नाश किया. वह असुर, वत्सका रूप धारणकर, बछडोंमें मिल गया था, जिसको ईश्वरके अतिरिक्त कोई नहीं पहचान सकता था. कृष्णने अपना ईश्वरत्व प्रकट दिखानेकेलिए उसको पहचानकर उसका नाश किया जिससे दोष निवृत्ति हुई. दूसरा वत्सोंके चरानेसे कांटोंवाले और कंकरवाले स्थानोंपर वत्स जाते हैं जिससे उनको कष्ट होता है. उनसे उत्पन्न दोषोंको भी, वत्सासुर वधसे निवृत किया. वह दोषरूप असुर दुष्ट बुद्धिसे भगवान्के वत्सोंमें(भगवदीयोंमें) प्रविष्ट हुआ था. उसका फल यह हुआ कि वह स्वरूपसे नाश हो गया किन्तु भगवदीयोंके सम्बन्धसे उसको भगवान्के कर कमलका संस्पर्श हुआ जिससे उसकी दुष्ट बुद्धि

नष्ट हो गई.

इस लीलासे यह शिक्षा प्राप्त होती है कि भक्तोंका संग, दोष रहित बुद्धिसे करना चाहिए. यदि दुष्ट बुद्धिसे किया जाएगा तो वत्सासुरकी तरह नाशको प्राप्त होना पडेगा. भगवान् अपने भक्तोंका जब अनिष्ट दूर करते हैं तब लोक अथवा वेद मर्यादाकी अपेक्षा नहीं रखते हैं।।७।।

स्थानत्यागे हरीच्छैव कारणं न तु दुष्टता ।।
तद् ज्ञापयितुमत्रापि बकवत्सौ विनाशितौ ।।का.८।।

कारिकार्थ : स्थानके त्यागका कारण स्थानकी दुष्टता(दोषोंका होना) नहीं था किन्तु भगवान्की इच्छा थी यह बतानेकेलिए वहां भी असुर और वत्सासुरका वध किया है.

इस कारिकामें यह कहा है, कि किसीको यह भ्रम हुआ हो, कि गोकुल इसलिए छोडा है कि वहां पूतना आदि दैत्य आए उनको भगवान्ने मारा इसलिए यह गोकुल दोषयुक्त होनेसे दुष्टताको प्राप्त हुआ है इसलिए इसे छोडा है. इस भ्रम निवृत्यर्थ वृन्दावनमें भी बक और वत्सको मारा है. जिससे इस भ्रमकी पूर्णतया निवृत्ति की है. जो भगवान् अन्तःकरणमें सदैव विराजमान हैं, दम्भ(पाखण्ड) जो लोभ और असत्यको पैदाकर उनको(भगवान्को) तिरोहित करता है(छिपाता है) उस (दम्भ)ने बकका रूप धारणकर अपना दम्भरूप(दोष स्वरूप) प्रकटकर दिखाया था. दम्भरूप असुरने गोपालोंके अन्तःकरणमें प्रवेश किया था किन्तु यमुनाजलके पानसे वह दम्भ उनके अन्तःकरणोंमेंसे बाहिर निकल गया वहाँसे निकलकर उस असुरने अपने जैसे दम्भी बकका रूप धारण किया है. भगवान् जो अन्तर्यामी हैं उनने यह जानकर बकरूप असुरका नाश किया, जिससे गोपाल दम्भरूप दोषसे निश्चिन्त हो गए।।८।।

अतो विमर्शो गोपानामानन्दश्च निरूपितः ।।
तदर्थमेव च हरेर्बालभावो न चान्यथा ।।का.९।।

कारिकार्थ : अतः गोपके विचार करनेका और आनन्दका निरूपण किया है. हरिका बाल भाव इसलिए ही है, न कि अन्य किसी भावसे है.

गोकुल दोषयुक्त नहीं था इसलिए गोकुलका त्याग गोपोंने भगवान्की इच्छा जानकर किया है. अतः गोपोंने वृन्दावनमें निवास करनेकी मन्त्रणा(सम्मति सलाह) और आनन्दके अनुभवका वर्णन किया है. भगवान्की बाल-लीलाका

मुग्ध(भोलाभाला स्वभाव)भाव आनन्दकेलिए और नन्दादिकोंका सर्व भावसे निरोध करनेकेलिए था।।९।।

सम्पन्ने तु ततस्तस्य परित्यागोपि वर्ण्यते ।।का.।।

कारिकार्थ : उसके पूर्ण हो जानेके पीछे बालभावके त्यागका भी वर्णन है.

नन्दादिकोंका पूर्ण निरोध सम्पन्न होनेके अनन्तर बाल-भाव लीलाकी आवश्यकता न रही. अतः भगवान्के बालभावका त्याग करना युक्त था. जिसका वर्णन भी इस अध्यायमें किया है।।

एकादश अध्यायमें, प्रपञ्चके विस्मरणके साथ भगवान्में आसक्तिका वर्णन करनेकेलिए प्रथम गोपोंके उत्पन्न भयका और भगवान्को ऊखलसे नन्दजीने छुडाया उसका वर्णन पहलेसे लेकर छः श्लोक तक करते हैं.

श्रीशुकः उवाच

गोपा नन्दादयः श्रुत्वा द्रुमयोः पततो रवम्।।

तत्राजग्मुः कुरुश्रेष्ठ निर्घातभयशंकिताः ।।१।।

शुकदेवजी कहते हैं कि हे कुरुश्रेष्ठ ! वृक्षोंके गिरनेका शब्द सुनकर बिजलीके गिरनेकी शंकासे भयभीत हुए नन्दादिक गोप वहां आए।।१।।

पहलेसे छट्ठे श्लोक तककी लीला नन्दजीके निरोधकेलिये ही की है. वह बतानेकेलिये श्लोकमें नन्दजीका नाम पहले दिया है. गोपोंमें वहां अकेले जानेकी सामर्थ्य नहीं थी इसलिए नन्दजीको आगेवानकर उनके पीछे-पीछे गये यह बतानेकेलिये श्लोकमें 'गोपाः' शब्दका विशेषण नन्दादय(नन्द है आदिमें जिनके ऐसे गोप) दिया है. 'दोनों पेडोंके गिरनेका शब्द सुनकर' नन्दादि गोंपोको आश्चर्य हुआ, क्योंकि भगवान्की अद्भुत लीला थी. वृक्षोंके गिरनेका शब्द उन्होंने तब सुना जब वे(नलकूबर और मणिग्रीव) स्तुति करके चले गये थे. इस प्रकारकी यह लीला ईश्वर बिना दूसरा कोई नहीं कर सकता है. क्योंकि पेड़ गिरे वे देवरूप होकर प्रगटे और भगवान्की स्तुति की, तब तक गोपोंने न शब्द-ध्वनि सुनी और न कुछ जाना. उनके जानेके पीछे शब्द सुना यह ईश्वरकी अद्भुत लीला है और ईश्वरत्व है. इस लीलापर आपको विश्वास होगा और होना चाहिये क्योंकि आप 'कुरुश्रेष्ठ' हो. नन्दजीके अतिरिक्त अन्य गोपादिकोंके आनेका कारण बतानेकेलिये 'निर्घातभय-शंकिताः' पद श्लोकमें दिया है जिसका आशय

यह कि आकाशमें बादल नहीं है तो भी बिजली गिरी है यह उपद्रव है वह भावी(आगे आनेवाले) अनिष्ट(संकट)की सूचना देता है इससे उत्पन्न भयके कारण शंकाशील होकर सब वहां आ गये थे।।१।।

आए हुए नन्दादिकोंको जिस प्रकारका ज्ञान हुआ उसका वर्णन इस निम्न श्लोकमें करते हैं.

भूम्यां निपतितौ तत्र ददृशुर्यमलार्जुनौ ।।
बभ्रमुस्तदविज्ञाय लक्ष्यं पतनकारणम् ।।२।।

वहां पृथ्वीपर पडे हुए यमलार्जुनको देखा, पडनेका कारण प्रत्यक्ष होते हुए भी उसको न समझकर भ्रमित हो गए।।२।।

पृथ्वीपर पड़े हुए पेडोंको देखा. श्लोकमें दिये हुए 'तत्र'का भावार्थ बताते हैं कि यदि वे पेड कहीं दूर जाके गिरे होते और हमको देरीसे पता लगता तो देरी होना दोष नहीं था, किन्तु जहां खडे थे वहां ही गिरे हैं और गिरे हुएको विशेष समय भी नहीं हुआ है. बर्हिमुख होनेसे उनको पेड़ोंकी आर्द्रता भी देखनेमें नहीं आई. यदि उन्होंने गीलापन देखा भी हो तो भी उन(पेडों)को खेंचनेकी आवश्यकता थी. यहां कोई खेंचनेवाला नहीं देखकर, उनके गिरनेका कारण न जानकर भ्रममें पड़ गये. यदि प्रत्यक्षसे, कारणको नहीं जान सकें तो अनुमानसे कारणकी कल्पना कर लेते? इसके उत्तरमें श्लोकमें 'तद् अविज्ञाय लक्ष्यं' पद दिये हैं जिसका आशय है कि देखनेमें आते हुएको भी न समझ सके. जब देखा कि वृक्ष गिरे पडे हैं, तो अवश्य इनको किसीने गिराया होगा, ऐसा अनुमान लगाके कारणका पता लगा लेते यों भी उन्होंने नहीं किया. कारण कि वे बड़े नैयायिक थे. बड़े नैयायिक जिसका युक्तिसे बाध(झूठा सिद्ध होना) हो जाता है वैसा कोई प्रमाण नहीं मानते हैं. इससे किसीने गिराये हैं. इस प्रकारके ज्ञानका प्रमाण न होनेसे और उसके अनुमान करनेकी इच्छा न होनेसे एवं व्याप्ति[१]वाले किसी भी कारणके होनेसे उन्होंने समझ लिया कि अनुमानसे गिरनेके कारणका ज्ञान नहीं होगा।।२।।

१.एक वस्तुके ज्ञान होनेपर दूसरी वस्तुका ज्ञान व्याप्ति है. जैसे जहां धूम्र होता है वहां अग्नि होनी चाहिए.

वृक्षोंको गिरानेवाला भगवान् यहां है ही यह प्रत्यक्ष दिखता है इसमें किसी प्रकारसे संशय नहीं है तो भी उसको सत्य ज्ञान नहीं हुआ यह तीसरे

श्लोकमें कहते हैं.

उलूखलं विकर्षन्तं दाम्ना बद्धं च बालकम् ।।
कस्येदं कर्म आश्चर्यमुत्पात इति कातराः ।।३।।

(नन्दादि गोपोंने) रज्जुसे बंधे हुए बालकको, ऊखल खेंचते हुए देखा तो भी यह काम किसका है? आश्चर्य है ! यह कोई उत्पात है ऐसा समझ भयभीत हो गए।।३।।

जिस समय नन्दादि गोप वहां गये उस समय भी भगवान् ऊखलको खेंच रहे थे. खेंचते हुए वहां वृक्षोंके बीचमें ही स्थित थे. आगे न जानेका कारण यह था कि आप ऊखलसे बन्धे हुए थे. श्लोकके 'च' अक्षरका आशय बताते हैं कि गोपोंने यह प्रत्यक्ष देखा कि ऊखलके कारण पेड़ पड़े हैं क्योंकि ऊखल पेडोंके बीचमें टेढा हुआ वृक्षोंके पास पड़ा है. और ऊखलसे बन्धे हुए बालकको देखा. बालक होनेसे स्वयं ऊखलसे अपनेको नहीं छुडा सके.

भगवान् वृक्षोंके गिरानेका कारण है यह प्रत्यक्ष सिद्ध देखकर भी इस हेतुको उन्होंने नहीं माना, किसी दैत्यका यह उत्पात कार्य है ऐसा समझ उसको हेतु मान लिया. भगवान्के बन्धनका कर्म किसने? यहां 'कर्म' शब्दसे गोपोंने अपनी व्याकुलता प्रकट की है और भगवान्के बान्धनेका क्या कारण है? अचम्भा है! बालक ऊखलमें बन्धा हुआ है, वह पेंडोको गिरावे यह असम्भव है. अतः यह भी आश्चर्य है, और पेडोंका गिरना भी आश्चर्य है. कारणके बिना कार्यकी उत्पत्ति कैसे हुई? अर्थात् कारणके बिना पेडोंका पातरूप कार्य कैसे हुआ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि यह देव अथवा दैत्यों द्वारा किया हुआ उत्पात(उपद्रव) है और आनेवाले अनिष्टका सूचक है. सर्व प्रकारसे जो युक्तिसे बाधित(सिद्ध नहीं) हैं वह तो भगवान्ने नहीं किया है. कार्य(पेडोंका गिरना) और कारण(भगवान्का भाव) प्रत्यक्ष सिद्ध होनेपर भी हम वह नहीं मान सकते हैं. इससे ही कहा जाता है कि तर्क विरुद्ध बातको न माननेसे वे नैयायिक भ्रान्त(भ्रममें पड़े हुए) हैं. क्योंकि शास्त्रमें कहा है कि ''जो अलौकिक भाव हैं उनको तर्कसे सिद्ध नहीं करना चाहिए''. इस प्रकार युक्तियोंपर आधार रखनेका फल क्या हुआ? वृक्षोंके गिरनेको उत्पात समझा और उससे भावी आपदा आनेवाली है यों समझ भयभीत हुए।।३।।

महानैयायिक होनेसे ही बालकोंकी प्रत्यक्ष देखी हुई बातको भी नहीं

माना. इसका वर्णन ४वें ५वें दो श्लोकोंमें करते हैं.

बालाः प्रोचुरनेनेति तिरश्चीनमुलूखलम् ।।
विकर्षता मध्यगेन पुरुषावप्यचक्ष्महि ।।४।।

बालकोंने कहा कि पेडोंके बीचमें आए हुए इस(बाल कृष्ण)ने टेढ़े पड़े हुए ऊखलको खेंचा जिससे ये पेड गिर गए हैं और उनमेंसे निकले हुए दो पुरुषोंको भी हमने देखे हैं।।४।।

जो बालक अब तक बातकी बनावट करनेमें असमर्थ हैं उन्होंने जैसा देखा वैसा ही वे कहने लगे. उन्होंने कहा कि पेड़ इस बालकने गिराये हैं. इसने कैसे गिराये? तो कहने लगे कि इस टेढे ऊखलको खेंचते हुए गिरा दिये. यह ऊखल खेंचते हुए टेढा हो गया था, उसको जोरसे खेंचा तो पेड गिर गये. जोरसे क्यो खेंचा? तो कहने लगे कि बालक पेडोंके बीचमें स्थित था इसलिए क्या करे? बाहिर निकलनेकेलिये उसको जोरसे खेंचना आवश्यक था. जब ऊखलको जोरसे खेंचा तो पेड गिर गये. यह ज्ञान संशययुक्त(भ्रमवाला) न समझना क्योंकि पेडोंके गिरते हुए उनमेंसे दो पुरुष निकले वे भी हमने देखे हैं. बालकोंने जो कुछ लौकिक(ऊखलको खेंचना, उसका टेढा होना तथा पेडोंका गिरना) और अलौकिक(पेडोंसे दो देवरूप पुरुषोंका निकलना) देखा वह उनको कह दिया।।४।।

बालकोंके कही हुई दोनों बातें उन्होंने नहीं मानी.

न ते तदुक्तं जगृहुर्न घटेतेति तस्य तत् ।।
बालस्योत्पाटनं तर्वोः केचित् सन्दिग्धचेतसः ।।५।।

वृक्षोंको यह बालक जडसे उखेड दें यह हो नहीं सकता है, ऐसा समझकर बालकोंका कहना नहीं माना. कुछ गोपोंको संशय हुआ कि कदाचित् इसने इस प्रकारसे गिरा भी दिया हो।।५।।

उन गोपोंने जो कुछ बालकोंका कहना था उसको सत्यरूपसे ग्रहण नहीं किया क्योंकि बालकोंका कहना युक्तिसे बाधित था, अर्थात् युक्तिसे सिद्ध नहीं होता है कारण कि पेड इतने बडे और बालक इतना छोटा, वह छोटा बालक इतने युगल(जुडे हुए) पेडको कैसे गिरा सकेगा? अतः यह बालकोंका कहना युक्तियुक्त न होनेसे मानने योग्य नहीं है. बडे नैयायिको[१]ने तो इस प्रकार निश्चय कर लिया किन्तु उनमें कुछ आर्द्र नैयायिक[२] भी थे. उनको बालकोंके कहनेसे

मनमें संशय हुआ कि कदाचित् इस बालकने इस प्रकार टेढे ऊखलको खेंचते हुए गिरा भी दिया हो क्योंकि हमने देखा है कि इसने शकट तोडा था तृणावर्तको मारा था, संशय होते हुए भी उन्होंने किसी प्रकारका निश्चित निर्णय नहीं किया।।५।।

१. तर्कके आधारपर निर्णय करनेवाले.

२.तर्कपर ही पूरा विश्वास न करनेवाले.

नन्दरायजी संशयशील होते हुए भी इस विचारका परित्यागकर बालकको ऊखलसे छुडाने लगे इसका वर्णन इस श्लोकमें करते हैं.

उलूखलं विकर्षन्तं दाम्ना बद्धं स्वमात्मजम् ।।
विलोक्य नन्दः प्रहसद्वदनो विमुमोच ह ।।६।।

रस्सीसे बन्धे हुए ऊखलको खेंचते हुए अपने पुत्रको देखकर हँसित मुखवाले नन्दजीने उसकी रज्जु खोल दी(जिससे कृष्ण) बन्धन मुक्त हो गए।।६।।

नन्दरायजीने रस्सीको खोलनेकी इतनी शीघ्रता क्यों की? नन्दरायजीने देखा कि अब भी कन्हैया ऊखलको खेंच रहा है इससे थक गया होगा इससे रस्सी खोलनेकी शीघ्रता की. रज्जुसे बालकृष्ण बन्धा था यह छोडनेका निमित्त कारण था. नन्दजीने क्यों छोडा? तो कहते हैं कि अपना पुत्र है इससे स्वयं छोडना आवश्यक था. केवल आत्मज न कहकर 'स्व' शब्दसे नन्दजीकी व्याकुलता प्रकट की है अथवा 'स्व' पद देकर यह बताया है कि नन्दरायजी भगवद्भावको प्राप्त हो गये हैं. गोपोंको इस प्रकारका अज्ञान उनके बुद्धि दोषसे नहीं हुआ था किन्तु भगवान्ने ही उनमें यह अज्ञान उत्पन्न किया था. यह भी नन्दजीने भगवद्भावको प्राप्त होनेसे जान लिया था. भगवान्की धौर्त्यलीलाका स्मरण आते ही नन्दजी प्रसन्नवदन हो गये हैं. नन्दरायजीमें भी ज्ञानका अभाव[१] था. इससे कहा है. श्लोकमें 'मुमोच'के पूर्व 'वि' उपसर्ग दिया है जिसका अर्थ होता है विशेष रीतिसे छुडाना. वह विशेषतासे छुडाना क्या है? उसको समझाते हैं कि समग्र रज्जु जो जहां कहींसे लाकर गांठ देकर इकट्ठी की थी उन प्रत्येककी गाँठ खोलकर पृथक्-पृथक् करना विशेष छुडाना है. यह भी आश्चर्य है. भगवान् जो जीवको बन्धनमें डालते हैं उसको भगवान् ही छुड़ा सकते हैं दूसरा कोई नहीं छुड़ा सकता है उन ही भगवान्के बन्धनको नन्दजीने छुडा लिया यह भी आश्चर्य है।।६।।

१.प्रकाशकार कहते हैं कि नन्दजीको भी यशोदाने जो भगवान्का अपराध किया उसका

और भगवान्के स्वरूपका ज्ञान नहीं था.

गोपियोंके आधीन भगवान्की लीलाका तीन श्लोकोंसे वर्णन करते हैं.

गोपीभिः स्तोभितोऽनृत्यद् भगवान् बालकः क्वचित् ।।
उद्गायति क्वचिद् मुग्धः तद्वशो दारुयन्त्रवत् ।।७।।

गोपियोंके बढावा(झूठी प्रशंसा) देनेसे भगवान् किसी समय बालकके समान नृत्य करते, कभी मुग्ध होकर गाते और कभी तो काठकी पुतलीके समान उन(गोपियों)के आधीन हो जाते।।७।।

विद्योपजीविनां सेवां येनैव च सुखं भवेत् ।।
राजसीं तामसीं लीलां सात्त्विकीं च चकार ह ।।का.१।।

कारिकार्थः जिस चरित्रसे विद्याके द्वारा आजीविका करनेवालोंकी सेवा, और सुख हों वैसी राजसी, तामसी और सात्त्विकी लीला भगवान्ने की.

प्रथम राजसी लीलाका वर्णन करते हैं. गोपिकाएं भगवान्को अपने-अपने घरमें ले जाकर नचाने लगीं. उसका प्रकार बताते हैं कि घरमें ले जाकर श्रीकृष्णको कहती है कि हे कृष्ण! आप नृत्य करो तो आपको लड्डू देंगी. गोपियोंके वचन सुनकर भगवान् नृत्य करते हैं. जब भगवान् नाचते हैं तब विशेष नृत्य करानेकेलिये झूठी प्रशंसा करती है कि 'कृष्ण तो बहुत सुन्दर नृत्य करते हैं रामको तो नृत्य करना आता ही नहीं है'. यह झूठी बड़ाईका निरर्थक शब्द 'स्तोभ' है जैसे सामवेदमें 'भ भ भ' निरर्थक शब्द है. इस प्रकार गोपियोंकी झूठी प्रशंसासे भी नाचने लगे. किन्तु वह नृत्य प्राकृतोंके समान प्राकृत नृत्य नहीं था किन्तु तण्डु[१] और पार्वतीके नृत्यसे भी सहस्रगुणा विशेष नृत्य था. ऐसा उत्तम और इतना नृत्य पामरों(मूर्खों गोपियों)के सामने करना योग्य नहीं है. इस शंकाका समाधान करते हैं कि नृत्य करनेवाला बालक भगवान् था, भगवान् षडैश्वर्य गुणवाले हैं. अतः साधारण प्राकृत नृत्य तो कर नहीं सकते. भगवान् हैं और जब उनको ऐसा उत्तम नृत्य ही करना है तो इन गँवार गोपियोंके आगे तो नहीं करना चाहिए? इसके उत्तरमें कहते हैं कि भगवान् होते हुए भी उन्होंने अब गोकुलमें बाल-भाव धारण किया है इसलिए भगवान् कभी शास्त्रके अनुसार नृत्य करते हैं तो कभी बालकके समान केवल मुग्ध भाव प्रकट करनेकेलिये हाथ पैर ही चलाते हैं. यदि कोई गोपी कहती है कि हे कन्हैया! गान करो तो इस प्रकार कभी धीरे-धीरे और कभी जोरसे बालकृष्ण गाते हैं जिससे सबको हँसी आ जाती है. अथवा कभी शास्त्रके

अनुसार जोरसे गाते हैं तो कभी मुग्ध बालकके समान शास्त्र विरुद्ध वा मनमाने ढंगसे गाने लगते हैं. कभी गोपियां कृष्णको कहती हैं कि खडे रहकर गावो तो खड़े होकर गाते हैं, कभी कहती कि बैठकर गाओ तो बैठकर गाते थे यदि कहती सो कर गान करो तो सो कर गान करते थे. तात्पर्य यह है कि श्रीकृष्ण गोपियोंके ऐसे वशमें हो गये थे कि जैसे गोपियां कहती थीं वैसे ही वैसे आप काठकी पुतलीके समान सब कार्य गान नाच आदि करते थे।।७।।

१.प्रकाशकार कहते हैं कि शंकर भगवान्के तांडवनृत्य प्रारंभ करानेवाला 'तण्डु' है.

दूसरी लीलाका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

बिभर्ति क्वचिदाज्ञप्तः पीठकोन्मानपादुकम् ।।
बाहुक्षेपं च कुरुते स्वानां च प्रीतिमुद्वहन् ।।८।।

कभी गोपियोंसे शासन् प्राप्त, भगवान् चोकी, पायली(अनाज नापनेका साधन या बर्तन) और खडाऊं पकड़ अपने सम्बन्धी(भक्त)जनोंको प्रसन्न करनेकेलिये वा उनमें प्रेम उत्पन्न करनेकेलिये अपनी बांह ठोकते थे।।८।।

'क्वचित्' पद बहुत स्थानपर आया है अतः उसका आशय है कि कभी भगवान् कार्य करते हैं और कभी नहीं भी करते हैं. यदि इस प्रकार न हो और भगवान् सदैव उनकी आज्ञाके अनुसार काम करते ही रहें तो लीलामें आश्चर्य उत्पन्न न होवे. आश्चर्य उत्पन्न करना भगवान्का स्वभाव होनेसे अपनी इच्छाके अनुसार करते हैं. इस प्रकार आश्चर्य उत्पन्न न करें तो पुनः पुनः प्रार्थना भी नहीं हो. किसी समय गोपियां आज्ञा करती हैं कि 'चोकी ले आ, धान नापनेकी पायली उठा ला और खडाऊं ले आ'. वह आज्ञा पाकर भगवान् उन वस्तुओंके पास जाकर उनको पकड लेते हैं किन्तु उनको जब उठा नहीं सकते हैं तब प्राकृत बालकों जैसा दृश्य करते हैं कि मैं बालक होनेसे उठा नहीं सकता हूँ. वह वस्तु छोटी, बड़ी, उत्तम और निन्दित हो सबमें समान भाव दिखाया है. भगवान् बाहुओंको इस प्रकार ठोकते हैं जैसे कुश्ती लड़नेवाले ठोकते हैं. जिससे यह भाव प्रकट करते हैं कि मुझसे मलयुद्ध करो(कुश्ती लडो). मूलमें दिये हुए 'च' शब्दका भाव बताते हैं कि उनके ऊपर गिरते(बैठते) हैं. उनपर बैठकर अपने बलको आविर्भूत(प्रकट) कर मानो उनको चलाते हैं. श्लोकमें दिये हुए 'स्वानां'का भाव स्पष्ट करते हैं कि जिस कारणसे उनमें अपनेपनको स्थापित किया है इसी कारणसे ही उनमें प्रीति उत्पन्न कराते हैं उतना ही करते हैं जितनेसे उनकी प्रीति उत्पन्न हो

अधिक नहीं करते हैं।।८।।

दो लीलाएं विशेष प्रकारसे वर्णनकर अब साधारण प्रकारसे सब लीलाएं संक्षेपसे निम्न श्लोकमें कहते हैं.

दर्शयंस्तद्विदां लोक आत्मनो भृत्यवश्यताम् ।।
व्रजस्योवाह वै हर्षं भगवान् बालचेष्टितैः ।।९।।

लोकमें भगवान्के स्वरूपको जाननेवाले ज्ञानी-भक्तोंको अपनी भक्तवश्यता दिखाते हुए भगवान्ने बालचेष्टाओं(लीलाओं)से व्रजको आनन्दित किया।।९।।

बाल चेष्टाओं(लीलाओं)से भगवान्ने व्रजको आनन्दित किया. व्रज में जितने प्रकारके प्राणी थे उनको भी जिस जिस प्रकारसे हर्ष हो उस प्रकारसे उन सबको भगवान्नने हर्ष प्रदान किया. वह हर्ष उनमें ही स्थित होकर पुष्ट होगा जिससे वह पुष्ट हर्ष, भाररूप हो जायेगा जिसे वे अशक्त होनेसे धारण नहीं कर सकेंगे. इसलिए उनका हर्ष स्वयं भगवान् धारण करते हैं. वह(हर्षभार) विषयके ढंगपर नहीं किन्तु करणरूप(साधन)से भगवान्ने ग्रहण किया. यह आशय श्लोकमें आये हुए 'बालचेष्टितैः' पदसे समझा जाता है. जिस पदका अर्थ है बालकों जैसी चेष्टाओंसे धारण किया. अर्थात् भगवान् स्वयं बाल चेष्टाओंसे व्रजवासियोंके साथ आलिंगनादि कर उनकी अपनेमें आसक्ति कराते थे जिससे वे आनन्दित हो जाते थे. बालक होनेसे इस प्रकार कर रहे हैं यों समझ लोकनिन्दा भी नहीं कर सकते थे.

बालककी चेष्टाएँ स्वरूपसे फल नहीं देती हैं, किन्तु मोह करके सुख देती हैं. तब मोहसे उत्पन्न आनन्दमें भगवान् करण कैसे बन सकते हैं? अर्थात् नहीं हो सकते हैं. इसी शंकाके निवारणकेकिये 'भगवान्' शब्द दिया है जिसका आशय है कि भगवान्ने अपने करण-साधनरूप धर्मसे इस अयोग्यता(चेष्टाओंसे उत्पन्न मोहरूप अयोग्यता)को मिटा दिया था. जिससे बालककी चेष्टाएं भी स्वरूपसे फलदायिनी है यह बताया है. यहां स्थित प्राकृत जनों(जिनकी आध्यात्मिक अविद्या नाश नहीं हुई है उन)को वैकुण्ठमें न ले जाकर स्वयं वहां आकर अपना ईश्वर भाव छोड़कर इस प्रकार आनन्दके दान करनेका प्रयोजन था? इस शंकाका परिहार करनेकेलिये श्लोकमें 'तद्विदां' पद दिया है. जिसका तात्पर्य है कि भगवान्ने यहां आकर इसलिए आनन्ददान दिया कि भगवान्को

भगवत् स्वरूपको जाननेवालोंको अपनी भृत्यवश्यता(अपने सेवकोंके वशमें होना) दिखानी थी कि सेवक अपने स्वामीसे ही भरण पोषण करने योग्य हैं. केवल यह दिखावा नहीं करना है क्योंकि दिखावा तो कापट्यसे भी होता है. इसलिए श्लोकमें 'वै' कहा है कि निश्चयसे भरण योग्य है. जो भगवान् सर्वको वश और नियममें रखते हैं वे भगवान् वशमें कैसे हुए? इस शंकाके मिटानेकेलिये श्लोकमें भगवान्केलिये 'आत्मनः' शब्द दिया है जिसका आशय है कि भगवान् भक्तोंके वशमें होते हुए भी सबकी आत्मा होनेसे स्वतन्त्र हैं. जो इस तत्त्वको नहीं जानते हैं उन(असुरों)को भगवान्ने अपनी लीलाओंसे मोहमें डाल दिया है. जो इस तत्त्व 'भगवान् भक्तोंके वशमें हैं'को जानते हैं उनके ज्ञानका भक्तिमें उपयोग होता है अर्थात् उनका प्रेम भगवान्में बढकर आसक्तिका रूप लेता है. पृथक् पृथक् मार्गानुयाईयोंके अधिकारके अनुसार भगवान् उनको ग्रहण करते हैं और जो कोई ग्रहण योग्य नहीं है तो उनका त्याग करते हैं. इसलिए इसमें कुछ भी अयोग्य (युक्ति-रहित) नहीं है।।९।।

१.प्रत्येक व्रजवासीकी यह इच्छा थी कि भगवान् हमारे साथ मिलकर आलिंगनादिसे हमको आनन्द प्रदान करें, किन्तु भगवान् व्रजमें, व्रजके राजा नन्दजीके पुत्र थे इसलिए उनसे सर्व साधारण अपने अपने भावके अनुसार इस प्रकारका स्वयं व्यवहार नहीं कर सकते थे यह जानकर भगवान्ने उन सबकी भावनाके अनुसार बालक्रीडाओं द्वारा अपने करण बनकर उनको आनन्द दान दिया जिससे उनको प्राप्त हर्ष(आनन्द) भाररूप न हुआ यदि भगवान् करण(साधन) रूप होकर यों न करते तो व्रजवासियोंमें उत्पन्न उत्कट(उत्तम) भाव न जाने क्या कर देता. इसलिए भगवान्को करणरूप होना आवश्यक था.

उपरोक्त श्लोकोंमें बृहद् वनमें की हुई भगवान्की क्रीडाका वर्णनकर अब सब[१] देवताओंके स्थान वृन्दावनमें जाकर क्रीडा करनी है इसलिए भगवान्की प्रेरणासे गोपगण वहां जानेकेलिए मन्त्रणा(सलाह) करने लगे उसका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

१. श्रीप्रभुचरण टिप्पणीमें आज्ञा करते हैं कि वृन्दावनमें सर्व देवताओंने आधिदैविक रूपसे आकर भगवान्की लीलास्थलियोंको तैयार किया. भगवान्के पधारनेकी राह देख रहे हैं कि कब पधारते हैं. इससे वहां स्थित हैं.

उद्यमो मुख्यसम्पत्तिर्मन्त्रो हेतुस्त्रिभिस्ततः ।।
निर्धारितपरित्यागः स्थानान्तरगुणास्ततः ।।का.१।।

कृष्णाज्ञयेति कालस्य नापेक्षातोनिवारणम् ।।
पञ्चभिर्गमनं चैव रतिस्तत्र हरेः परा ।।का. २।।
एवं कलाभिर्भगवान् पूर्णो वृन्दावने बभौ ।।

कारिकार्थ : उद्यम, मुख्य सम्पत्तिकी प्राप्ति, मन्त्रणा, इसके पीछे तीन श्लोकोंसे कारण, निर्धारितका त्याग, दूसरे स्थानके गुण कृष्णकी आज्ञासे गमन, कालकी अपेक्षा नहीं होनेसे उसका निषेध, पांच श्लोकोंसे गमन, वहांका निवास भगवान्का उसमें विशेष प्रेम, इस प्रकार भगवान् वृन्दावनमें कलाओंसे पूर्ण सुशोभित हुए.

इन कारिकाओंमें ११वें अध्यायके श्लोक १०से श्लोक २५ तक जो लीलाएँ भगवान्ने की हैं उनका क्रमशः सूक्ष्म वर्णनकर समझाया है कि १० श्लोकमें वृन्दावनमें जानेकेलिए किए हुए उद्यमका वर्णन है. ११ श्लोकमें यह बताया कि किसी भी मन्त्रणाके समय सब बोलने लगे यह सम्भव[२] नहीं इसलिए मुख्य वक्ताकी प्राप्ति होनेसे वह बोलने लगे. १२वें श्लोकमें उसने जो गोकुल छोडनेकी सम्मति दी उसका वर्णन है, १३वें श्लोकमें पूतनाके उपद्रव, १४वें श्लोकमें तृणावर्तके विविध साधनों द्वारा उपद्रव और १५वें श्लोकमें यमलार्जुनके मध्यमें स्थिति भय, इन श्लोकोंमें गोकुलके उपद्रव और उनसे भगवान्ने रक्षा की यह वर्णन है. १६वें श्लोकमें इन कारणोंसे गोकुल छोडनेका निश्चय किया. १७वें श्लोकमें जहां जानेका विचार है उस(वृन्दावन)के गुणोंका वर्णन किया है. १८वें श्लोकमें श्रीकृष्णकी इच्छापूर्वक आज्ञासे सर्व गोपोंकी जानेकेलिए सम्मतिका वर्णन है. १९वें श्लोकमें सब गोपोंने एक होकर जानेकी तैयारी की, काल(शुभ मुहूर्त)की चिन्ता नहीं की. २४वें श्लोकमें वहां जानेका तथा निवासका एवं हरिका उससे विशेष प्रीतिका वर्णन है इन सबका वर्णन १६(१०से २५) श्लोकोंमें हुआ है जिसका भाव बताते हैं कि इससे वृन्दावनमें भगवान् १६ कलाओंसे पूर्ण शोभायमान दर्शन देने लगे.

प्रथम मन्त्रणा करनेकेलिए उद्यम करते हैं इसका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

गोपवृद्धा महोत्पातान् अनुभूय बृहद्वने ।।
नन्दादयः समागम्य व्रजकार्यम् अमन्त्रयन् ।।१०।।

गोपोंमेंसे वृद्ध नन्दादिक गोप, व्रजमें बडे-बडे उत्पात होते देखकर

इकट्ठे हुए और विचार करने लगे कि अब व्रजका हित कार्य कैसे किया जाय।।१०।।

गोपोंमें वृद्ध जो(आगे पीछे विचार करनेकी बुद्धिवाले) थे वे व्रजसे सम्बन्धित आवश्यक कर्तव्यकी मन्त्रणा करने लगे. हमारे इस वनका नाम बृहद्वन इसलिए पडा है कि इसमें कभी भी उत्पात नहीं हुए हैं. अब तो बड़े-बड़े उत्पात होने लगे हैं जैसे पूतना मरण आदि उपद्रव हुए हैं. मन्त्रणा 'प्रधान'के बिना नहीं होती है इसलिए सब इकट्ठे हुए. नन्दजी भी वृद्धोंके समान ही थे तो भी वहां प्रधान उपनन्द हुए।।१०।।

२. यदि सब बोलने लगे तो मन्त्रणा हो नहीं सकती है अतः एक सुज्ञ बोलकर समझावे तो मन्त्रणा योग्य होती है. अनुवादक.

मन्त्रणा करनेके समय सब बोलने लगे तो निर्णय पूरी मन्त्रणा(विचार)से नहीं हो सकता है इसलिए प्रधान(मुख्य वक्ता)का नाम निर्देश निम्न श्लोकमें करते हैं.

तत्रोपनन्दनामाह गोपो ज्ञानवयोधिकः ।।
देशकालार्थतत्त्वज्ञः प्रियकृद् रामकृष्णयोः ।।११।।

वहां(इकट्ठी हुई गोप सभामें) उपनन्द नामवाला गोप, जो कि देश और कालके तत्त्वको जाननेवाला, ज्ञानमें और अवस्थामें बडा और बलराम तथा श्रीकृष्णचन्द्रका प्रिय करनेवाला था वह कहने लगा।।११।।

'उपनन्द' नामके गोप नन्दजीके सम्बन्धी थे, इससे उनमें 'धर्म' प्रधान था. और वे ज्ञान और आयुमें वृद्ध होनेसे अनुभवी थे. जिस अनुभवके कारण वे इस तत्त्वको जानते थे कि किस देशमें वा किस कालमें क्या करना चाहिये जिससे अर्थ सिद्ध हो किसी प्रकारकी हानि न हो. ऐसा अनुभवी भी हो किन्तु यदि वह भगवान्का भक्त नहीं है तो उनका ज्ञान, वृद्धत्व और अनुभव सब व्यर्थ है अर्थात् किसी कामके नहीं हैं. उपनन्द भगवान्का भक्त भी था यह बतानेकेलिये श्लोकमें 'प्रियकृद् रामकृष्णयोः' पद दिये हैं जिनका अर्थ हे राम और कृष्णका प्रिय करनेवाला था. इससे बताया कि वह भक्त भी था. 'उपनन्द' नामसे यह बताया है कि वह नन्दजीको मन्त्रणा देनेवाला था इससे वह नन्दजीका मन्त्री था. गोप होनेसे उनका समावेश गोप जातिमें था इसलिए गोपोंका हित व अहित वह अपना ही समझता था. वैसा ही व्यक्ति मन्त्री होनेके योग्य है. ज्ञान(अनुभवसे होनेवाली

समझ) आयुसे प्राप्त होता है. यह तो आयु और ज्ञान दोनोंसे बडे थे. मन्त्रणाका यह भी मुख्य अंग है केवल शास्त्रोंके अर्थको जाननेवाला जिसको लौकिक ज्ञान(अनुभव) नहीं है वह मन्त्री होनेके योग्य नहीं हो सकता है. इसलिए श्लोकमें 'देशकालार्थतत्त्वज्ञः' पद दिया है. जिसका तात्पर्य है देश और कालका जिसको अनुभव हो. यह अनुभव उपनन्दको था. वृन्दावनमें जाना चाहिये यह उपनन्दका कहना यदि अपने स्वार्थकेलिये होता तो इसमें(वहां जानेसे) निरोधकी सिद्धि नहीं होती क्योंकि स्वार्थ निरोधका विरोधी है जहां स्वार्थ नहीं है वहां निरोध सिद्ध होता है. वृन्दावनमें जानेकी सम्मति उपनन्दने अपने स्वार्थकेलिये नहीं दी थी किन्तु भगवान् राम और कृष्णके प्रिय करनेकेलिये दी थी. राम और कृष्ण दो नाम कहे उसका भाव यह है कि यहां साधारण निरोध करना है. असाधारण निरोध तो श्रीकृष्ण ही करते हैं साधारण निरोध दोनों करते है।।११।।

क्या सम्मति दी वह निम्न श्लोकमें कहते हैं.

उत्थातव्यमितोस्माभिर्गोकुलस्य हितैषिभिः ।।
आयान्त्यत्र महोत्पाता प्रजानां नाशहेतवः ।।१२।।

गोकुलके हितकी चाहना करनेवाले हमको यहांसे दूसरे स्थानपर चलना चाहिए क्योंकि यहां प्रजाको नाश करनेवाले बडे-बडे उत्पात एकके पीछे दूसरे आ रहे हैं।।१२।।

इस स्थानके चारों तरफ यद्यपि गोष्ठ(गौओंके ठहरनेके अनेक स्थान) हैं वे रहें या न रहें तो भी यह स्थान(बृहद्वन-गोकुल) छोडना चाहिए. उपद्रवोंके कारण हम इसे छोडकर दूसरे स्थानपर चलें तो कोई विशेष लाभ नहीं है. कारण कि सब कुछ(सुख दुःख उत्पात आदिका आना) कर्मोंके आधीन है सर्वत्र जो होनहार है वह होगी ही, उसको कोई टाल नहीं सकता है. इसका उत्तर देते हैं कि जो गोकुलका हित चाहते हैं वे काल और कर्मके पक्षोंको(सब कुछ काल और कर्म करता है इस मन्तव्यको) छोडकर और जो लौकिक न्यायसे गोकुलके हितका चिन्तन करनेवाले हैं उनको तो अवश्य चलना चाहिए. भगवान्ने विचारकर कार्य करनेकेलिये जो ज्ञान और करण(साधन) दिये हैं उनसे विचारकर हम कार्य नहीं करेंगे तो वे(ज्ञान और करण) व्यर्थ हो जायेंगे अतः जहां दो[१] पक्षोंमें विरोध होवे वहां दूसरे प्रमाणको माननेकी आवश्यकता है. जहां विरोध न हो तो करणोंको ही मुख्य प्रमाण मानकर उसके अनुसार कर्तव्य करने चाहिए. यहांसे

दूसरे स्थानपर चलनेके कारण कहते हैं कि यहां महान् उत्पात्(उपद्रव) आ रहे हैं (हो रहे हैं).

अलौकिकोनिष्टहेतुरुत्पातः सर्वनाशकः ।।
महोत्पातो बुधैर्ज्ञेयो यत्र तत्त्यागमर्हति ।।का.१।।

कारिकार्थ : उत्पात अलौकिक अनिष्टका कारणरूप, सर्वनाशकर्त्ता है ज्ञानी जहां(जिस स्थानपर) महोत्पात देखें उस स्थानका तो त्याग करना ही योग्य है.

कौनसे महोत्पात हैं? उनको बताते हैं कि पूतनादिकोंका आना मरना आदि. इससे क्या? ये प्रजाओंके नाशका कारण हैं. इन उपद्रवोंका दैवादिकोंकी उपासनासे प्रतीकार करना चाहिए. इसके उत्तरमें कहते है कि ''प्रक्षालनाद्धि पंकस्य दूराद् अस्पर्शनः वरम्'' कीचडमें पैर डालकर फिर धोनेसे कीचडमें पैर नहीं डालना अच्छा है. इस न्यायानुसार प्रतीकार(उपाय) करनेसे उस स्थानका त्याग ही श्रेष्ठ उपाय है।।१२।।

१.एक पक्ष, 'जो होना होगा वह होगा ही'. दूसरा पक्ष, वैसे उपाय किये जाय जिनसे अनिष्ट नहीं होवे(टल जावे).

निम्न श्लोकमें राजस, तामस और सात्त्विक उत्पातोंकी गणना करते हैं.

मुक्तः कथञ्चिद् राक्षस्या बालघ्न्या बालको ह्यसौ ।।
हरेरनुग्रहाद् नूनम् अनश्चोपरि नापतत् ।।१३।।

बालकोंको मारनेवाली राक्षसीने यह बालक किसी प्रकारसे छोडा है. ईश्वरके अनुग्रहसे शकट ऊपर नहीं गिरा।।१३।।

उपाय सहित उत्पातोंका वर्णन करते हैं. यदि उपाय सहित वर्णन न हो, वा न करें तो उत्पातोंका नाश ही न हो अथवा उत्पात ही न हो इस कारणसे ही राक्षसी पूतनाने इस ही बालकको छोड दिया. छोड देनेका कोई कारण देखनेमें वा समझनेमें नहीं आया. अतः छोडनेका कारण अदृष्ट है ऐसी कल्पना की गई. क्योंकि कार्यका कारण होना आवश्यक है. 'राक्षसी और बालघ्नी'(बच्चोंको मारनेवाली) इन दो पदोंसे उनकी जाति और क्रियाके दोष कहे. श्लोकके 'असौ' शब्दसे यह प्रत्यक्ष(भगवान् हैं) मुक्तपना निश्चित है यह सिद्ध किया है. शकटका भंग और उसका ऊपर न पड़ना ये दोनों ही कार्य भगवान्के अनुग्रहसे हुए हैं. श्लोकमें 'नूनम्' पदसे यह बताया है कि निश्चयसे इसी प्रकार हुआ है क्योंकि मैंने

प्रत्यक्ष देखा था।।१३।।

तृणावर्तके पास लौकिक साधन बहुत थे इसका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

चक्रवातेन नीतोयं दैत्येन विपदं वियत्।।
शिलायां पतितस्तत्र परित्रातः सुरेश्वरैः।।१४।।

चक्रवात् नामवाला दैत्य इस(कृष्ण)को बहुत ऊपर आकाशमें ले गया वहांसे शिलापर गिराया वहां सुरेश्वरोंने सर्व प्रकारसे रक्षा की।।१४।।

'चक्रवात' प्रसिद्ध तृणावर्त कंसका नौकर था इससे उसको दैत्य कहा है. वह कृष्णको बहुत ऊपर जहां श्येनादि पक्षी भ्रमण करते हैं वहां आकाशमें ले गया. आचार्यश्री 'विपद' शब्दके दो अर्थ करते हैं, एक अर्थ 'वि' पक्षी उनका पद स्थान अर्थात् जहां तक आकाशमें श्येनादि पक्षी उडते हैं वह स्थान. दूसरा अर्थ 'विपद्' आपदा अर्थ कर समझाते हैं कि तृणावर्त कृष्णको नहीं ले गया किन्तु अपने नाशकेलिये 'आपदा'को ले गया, यह सरस्वती आशय प्रकट करती है क्योंकि सरस्वती जानती है कि भगवान्को भी तृणावर्त आपदामें डाल नहीं सकता है. 'विपत्' शब्दका यौगिक अक्षरार्थ करते हैं कि प्रतिक्षण 'व्ययं प्राप्नुवद्' क्षीणताको प्राप्त होनेवाला तृणावर्त(कृष्णको ले जा रहा था). इस प्रकार दोनों आकाशमें जा रहे थे उनमेंसे एक(तृणावर्त) शिलाके ऊपर आके पडा. वहां उसके ऊपर स्थित दूसरे(श्रीकृष्ण)की सुरोंके इश्वरोंने रक्षा की. यह रक्षाका कार्य केवल देव नहीं कर सकते थे. रुद्र तो घातक है उन घातकोंका मर्दन तो उनके ईश्वर ही कर सकते हैं. रुद्रोंका अधिपति सुरेश्वरोंके अनुकूल था. यहां वैसे बहुत रक्षक हैं ''बहूनां अनुग्रहो न्याय्यः'' बहुतोंका अनुग्रह न्याय है(उचित है) इससे किसी भी प्रकारसे रक्षा करनेमें बाधा न हुई।।१४।।

जिस(यमलार्जुन)का प्रसंग चल रहा है उसका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

यन्न म्रियेत द्रुमयोरन्तरं प्राप्य बालकः।।
असावन्यतमो वापि तच्चाप्यच्युतरक्षणम्।।१५।।

वृक्षोंके बीचमें आनेपर भी यह(कृष्ण) अथवा दूसरा कोई बालक न मरा, यह भी अच्युत भगवान्ने रक्षा की।।१५।।

इन गिरे हुए वृक्षोंके बीचमें बहुत बालक आ गये थे किन्तु किसीको भी

कोई चोट न आई. उन बालकोंमें यह भगवान् भी एक था. अथवा भगवान्के तो सर्वदा देव रक्षक(शरीर रक्षक) हैं ही इसलिए किसी साधारणकेलिये 'अन्यतम' शब्द श्लोकमें दिया होगा. साधारण, नीच वा निर्बलको भी कोई चोट नहीं आई. अमंगल शब्दका(चोट आना) उच्चारण स्नेह प्रदर्शनकेलिये किया गया है. प्राकृत(मूढ) पुरुषोंके प्राकृतपनेका ज्ञान दूसरे प्रकारसे नहीं हो सकता है जिनकी वाणी और मनकी कोई स्थिरता नहीं है वे अत्यन्त प्राकृत हैं. जिनकी केवल वाणी ही नहीं, किन्तु मन भी स्थिर है, वे अत्यन्त सत्पुरुष हैं. इस समय(पेडोंके बीचमें आ जानेके समय) रक्षा करनेवाला सर्व प्रकारसे च्युतिरहित अन्तर्यामी अच्युत भगवान् ही रक्षक हुआ है. इसका आशय यह है कि उस समय बालकोंको उत्पातवाले स्थानसे दूसरे स्थानपर ले गये।।१५।।

भगवान्ने तीन बार और देवताओंने तीन बार आपदासे रक्षण किए अब यदि कोई उत्पात हुआ तो उसका प्रतीकार न हो सकेगा अतः उत्पात होनेसे पहले ही यहाँसे रवाना होना योग्य है. यह निम्न श्लोकमें कहते हैं.

तावद् बालानुपादाय यास्यामोन्यत्र सानुगाः ।।१६।।

जब तक उत्पातसे उत्पन्न अशुभ फिर व्रजका अभिभव(हानी) न करें तब तक(उससे पहले ही) बालक और नौकरों सहित यहाँसे दूसरे स्थानपर हम चलकर पहुंच जाए।।१६।।

उत्पातसे उत्पन्न अरिष्ट(मरणादि अशुभ)में व्रजका अभिभव न हो उससे पहले ही अपने यहाँसे बालक, नौकर और समस्त परिवारको साथ लेकर दूसरे स्थानपर चलेंगे. यह कहना निर्धारित किया हुआ है. यहां जो उत्पात हुए हैं वे सब बालकोंके सम्बन्धवाले हैं अर्थात् बालकोंको ही कष्ट हुआ है इसलिए यहां श्लोकमें 'बालक' शब्द दूसरी विभक्तिमें दिया है।।१६।।

दूसरे रहने योग्य स्थलको ढूंढकर पीछे इस स्थानको छोडना योग्य है. इसलिए उस योग्य स्थलके गुणोंका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

वनं वृन्दावनं नाम पशव्यं नवकाननम् ।।
गोपगोपीगवां सेव्यं पुण्याद्रितृणवीरुधम् ।।१७।।

वृन्दावन नामवाला वन, पशुओंके अनुकूल और नया वन है गोप गोपियां और धेनुओंके सेवन करने योग्य हैं. इसमें पवित्र, पर्वत, तृण और लताएं सब अच्छे हैं।।१७।।

भगवान्ने जालन्धरके वधकेलिये जिस मधुकी पुत्री वृन्दाको स्वीकार किया था, उसके नामसे यह नूतन वन वृन्दावन कहलाता है. इस वनमें स्त्रीका प्राधान्य है इसलिए इस वनमें दैत्य प्रवेश नहीं करते हैं क्योंकि दैत्य स्त्रियोंके स्थानमें नहीं आते हैं कारण कि दैत्य, स्त्रियोंकी रक्षा मुख्य कर्म समझते हैं. वह देवताओंके रहनेका(भगवान्ने वृन्दाको स्वीकार किया इसलिए) स्थान हो गया है. अतः देव और दैत्य दोनोंका यह स्थान बहुत प्रिय है. इससे उसमें उत्पात होनेकी शंका करनेका भी अभाव है. यह वृन्दावन नवीन वन है और(गुणोंके कारण) प्रसिद्ध भी है. वहां कोई शुष्क वृक्ष नहीं है तथा शृगाल(गीदड) और सर्प आदि भी नहीं रहते हैं. इससे इस वनमें सर्व गुण हैं दोष कुछ भी नहीं है. लौकिक गुण तो है ही किन्तु अलौकिक गुण भी सुन्दर है वे बताते हैं. १.पशु जाति, अरण्योंपर ही जीती है तो यह अरण्य पशुओंके योग्य पात्र हैं इसमें सर्व प्रकारसे पशुओंका हित है. इस वनमें तीन प्रकारकी भूमि है १.अतिगुप्त, २.अतिप्रकट, ३.तृणादि(घास आदि)से भरपूर. इसलिए गोप, गोपियों और धेनुओंके सेवन (रहने) योग्य है. इनके अतिरिक्त अन्य नन्द, पुरोहित और प्रामाणिक पुरुषकेलिये भी सेवन योग्य है, क्योंकि पवित्र पर्वत गोवर्द्धनपर घास, मयूर-बर्हि सोमलता करीर आदि पदार्थ पुष्कल हैं. अतः यह स्थान, तामस, राजस और सात्त्विक तीनोंके रहने योग्य है।।१७।।

इस प्रकार स्थानकी प्रशंसा सुनते ही सब गोपाल कहने लगे उसका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

तत् तत्राद्यैव यास्यामः शकटान् युंक्त मा चिरम् ।।
गोधनान्यग्रतो यान्तु भवतां यदि रोचते ।।१८।।

इससे वहां आज ही चले चलें, इसलिए तुम सब ही रुचि हो तो गाडे जोडो, देरी मत करो, गोधनको प्रथमसे आगे चलने दो।।१८।।

आपके कहे हुए कारणोंसे यदि वृन्दावन ऐसा है तो आज ही हम वहां चलेंगे. इसी प्रकार सबका संकल्प देखकर मुख्य उपनन्दादिक कहने लगे कि गाडे जोतो, देरी मत करो. जानेका साधन बताते हैं कि गाडोंके साथ बैलोंको जोडो. देरी नहीं करनेका कारण कहते हैं कि फिर कहीं कोई उत्पात्त न आ जाय।।१८।।

इस प्रकार उपनन्दादिने ठहरनेमें शंका और जानेके साधन कहे, तब गोपोंने जो कुछ किया उसका वर्णन नीचेके श्लोकमें करते हैं.

तच्छ्रुत्वैकधियो गोपाः साधुसाध्वितिवादिनः ।।
व्रजान् स्वान् स्वान् समायुज्य ययू रूढपरिच्छदाः ।।१९।।

यह सुनकर सब गोप एक मत होकर वाह ! वाह ! बहुत अच्छा कहके अपने अपने गाडे जोड उनपर सब सामान लादके रवाने हुए।।१९।।

उनमें किसीकी भी सम्मति भिन्न नहीं थी सब एक मतवाले थे क्योंकि गोप सब एक जैसे थे. वैसा उपनन्दजीका कहना उनको बहुत प्रिय था. जाते हुए 'साधु' 'साधु' कहते थे जिससे उस उपनन्दके मन्त्रणा और वचनोंकी प्रशंसा हुई. वे सब गोप पृथक् पृथक् व्रज(गोवाडे)के अधिपति थे सबकी गौ अलग-अलग थीं तो भी इस समय वत्स और गौओंका विभाग न कर साथमें ही मिलाकर और आगे रवानाकर अपना सब सामान गाडोंमें धरकर सब गोप वहाँसे रवाने हुए।।१९।।

जो वहांसे रवाने हुए वे तामस, राजस, सात्त्विक और निर्गुण होनेसे चार प्रकारके थे. उनका क्रमवार एक एक श्लोकमें वर्णन करेंगे इस श्लोकमें तमोगुणियोंका वर्णन करते हैं.

वृद्धान् बालान् स्त्रियो राजन् सर्वोपकरणानि च ।।
अनस्स्वारोप्य गोपाला यत्ता आत्तशरासनाः ।।२०।।

हे राजन् ! वृद्ध, बालक और स्त्रियोंको गाडोंमें बिठाकर तथा सब सामानको गाडोंमें भरकर गोपालोंने कवच बान्ध एवं धनुष धारण किए।।२०।।

वृद्ध, बालक और स्त्रियां अत्यन्त प्राकृत हैं. आपको भी कभी सकुटुम्ब तीर्थ यात्रापर जानेके समय आपके सम्बन्धियोंकी भी इस प्रकार रवानगी हुई होगी. अथवा आपने अपने आश्रितों वा सम्बन्धियोंको देशान्तर जानेकी आज्ञा दी होगी तो उनकी भी इस प्रकारकी रवानगी हुई होगी. इनका आपको अनुभव है ही. इसको बतानेकेलिये श्लोकमें 'हे राजन्' यह सम्बोधन दिया है. सब सारा सामान गाडोंमें लादकर सब गोप पैदल कवच बांध हाथोंमें धनुष लेकर(रवाने हुए) तामस होनेसे राजससे(धनुष) सम्बन्ध हुआ[१]।।२०।।

१.टिप्पणी: २०वें श्लोकमें अपने सबसामानकी रक्षा करनेवाले तामस गोपोंका वर्णन है. २१ वें श्लोकमें अपने अपने गोष्ठके अधिपति होनेसे और साथमें कर्मठ ब्राह्मणोंके साथ होनेसे राजस गोपोंका वर्णन है. २२ वें श्लोकमें सात्त्विक गोपियोंका वर्णन है.

इस प्रमाण प्रकरणमें यशोदा और नन्दके निरोधका मुख्य वर्णन होनेसे यह तारतम्य बताकर गोपियोंका सात्त्विक होना सिद्ध किया है.

योजना: जिस प्रकार सर्गलीलामें ब्रह्मा समय समयपर भिन्न भिन्न गुणोंको धारण करते हैं वैसे ही यहां भी चार प्रकारके गुणोंका धारण करना काल भेदसे कहा है.

इस श्लोकमें राजसोंका वर्णन करते हैं.

गोधनानि पुरस्कृत्य शृङ्गाण्यापूर्य सर्वतः ।।
तूर्यघोषेण महता ययुः सह पुरोहिताः।।२१।।

गोधनको आगेकर चारों ओर सींग बजाते और तुतारीका बडा शब्द करते पुरोहितोंको साथ ले(वृन्दावन) गए।।२१।।

गौओंको आगे कर निर्भय हो, सींग बजानेवालोंने सींग बजाकर चारों तरफ महान् शब्द किया, वैश्योंके कर्म करानेवाले ब्राह्मण और गोष्ठोंके प्रभु(राजा) तुरीके घोष करते हुए निकले।।२१।।

गोपियां सात्त्विक और भगवद् भोग्य(भगवान्को रस देनेवाली) थी इसलिए वे गोपोंके साथ न होकर भिन्न प्रकारसे निकलीं.

गोप्यो रूढरथा नूत्नकुचकुङ्कुमकान्तयः ।।
कृष्णलीलां जगुः प्रीता निष्ककण्ठ्यः सुवाससः ।।२२।।

स्तनोंपर चर्चित नवीन केसरसे सुशोभित, सुन्दर वस्त्र पहने, गलेमें सोनेकी कण्ठिओंको पहने रथमें बैठी हुई सब गोपियां प्रसन्न चित्त हो कृष्णकी लीला गाने लगीं।।२२।।

गोपियां जिन रथोंमें बैठकर रवाना हुईं वे रथ उत्तम थे रथोंमें घोड़े अथवा बैल जोड़े थे. गोपियां स्तनोंपर लगाई हुई नवीन केसरकी कान्तिसे सुशोभित हो रही थीं. 'स्तन' शब्द देकर यह बताया है कि गोपियां वय(अवस्था)से, भगवान्को रस देने योग्य हैं. 'नवीन केसर' शब्दसे यह बताया है कि गोपियोंके पास भगवान्को रस देनेके साधन भी हैं; 'कान्ति' शब्दसे गोपियां अपनी शोभासे यह बताती हैं कि हम भगवान्के भोग योग्य हैं. गोपियां भगवान्के ही भोग योग्य हैं. गोपियोंकी यह उत्कट अभिलाषा है कि भगवान् हमारा भोग करें इसलिए वे उन(श्रीकृष्ण)के ही गुणोंको ही गाती हुई निकली. श्लोकमें 'कृष्णलीला' यह पद एकवचन क्यों किया? श्रीकृष्णकी लीलाएं तो बहुत ही हैं. एकवचनका आशय कहते हैं कि गोपियोंने वह लीला गाई जो लीला गोपियोंके उपयोगकी थी. 'कृष्ण'

नाम देनेका तात्पर्य समझाते हैं कि वह लीला(जो लीला गा रही थी) केवल निरोध करनेवाली नहीं थी किन्तु आनन्दमयी[२] भी(आनन्दसे भरपूर आनन्दरूप) थीं गोपियां उस समय प्रसन्न चित्त थीं. गोपियोंने गलेमें सोनेकी कण्ठी आभूषणोंसे और सुन्दर वस्त्रोंसे देहोंको परिष्कृत किया था(सजाया था), तथा भगवद्गुण गानसे वाणीको परिष्कृत किया था. रथ[३] तो गोपियोंके ही थे अतः भगवान् उनके (गोपियोंके) हृदयमें विराजमान थे उनके साथ रथमें बैठ जाते थे।।२२।।

१. योजना: गोप तो जैसे वस्त्रादि धारण किये थे उन वस्त्रोंसे ही छकडोंमें बैठकर निकले, किन्तु गोपीजन आभूषण वस्त्र आदिसे सुसज्जित होकर रथोंपर बैठकर निकलीं इसलिए आभासमें कहा है कि 'भिन्नतयैव' भिन्न प्रकारसे गोपोंसे अलग होकर ही निकलीं.

२.योजना: 'कृष्ण' नामसे यह बताया है कि ''स्त्रीभावो गूढः पुष्टिमार्गे तत्त्वमिति कृष्णपदार्थ'' गूढ स्त्री भाव पुष्टिमार्गमें तत्त्व है. स्त्री भावसे युक्त भगवान्को 'कृष्ण' कहा जाता है वह स्वरूप विशेष रसवाला(दाता) होनेसे आनन्दमय कहे जाते हैं अतः उनकी लीला भी आनन्दमयी है.

३.लेख: 'तो' अक्षरका भाव बताते हैं कि भगवान् गोपियोंके हृदयमें स्थिर स्थित रहते हैं यशोदाकी गोदीमें सदैव स्थिर नहीं रहते हैं थोड़ी देर बैठकर फिर चले जाते हैं पुनः आ जाते हैं.

यशोदा और रोहिणी भगवान्से सम्बन्ध होनेके कारण गुणातीत(निर्गुण) हो गई थीं इसलिए उनका जाना पृथक् हुआ. उसका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

तथा यशोदारोहिण्यावेकं शकटमास्थिते ।।
रेजतुः कृष्णरामाभ्यां तत्कथाश्रवणोत्सुके ।।२३।।

वैसे ही कृष्णकी कथा सुननेकी इच्छावाली यशोदा तथा रोहिणी एक छकडेमें श्रीकृष्ण तथा बलरामजीको साथमें लेकर बैठी हुई शोभित हो रही थी।।२३।।

तीन प्रकारकी सवारीकी गाड़ी होती है. उनमें शकट(छकड़ा) मध्यम अतः छोटी गाड़ी निकृष्ट(अधम) है और रथ उत्तम है. श्लोकमें 'तथा' शब्दसे बताया है कि सौन्दर्य और भगवान्का गुणगान यहां भी है. जहां यश देनेवाली यशोदा हो वहां सौन्दर्य और यश दोनों ही रहते हैं इसी प्रकार जहां भगवान् विराजते हैं वहां भी सौन्दर्य और यश होते ही हैं. इस रथमें स्थित यशोदा एवं

गोदीमें विराजमान भगवान्के कारण दोनों(सौन्दर्य और गुण यश) यहां भी हैं कारण कि यशोदा शकटमें बैठी थी और भगवान् मुख्य थे. उसकी गोदीमें विराजमान थे क्योंकि उस समय भगवान् अढ़ाई वर्षके थे. वैसे राम भी थे. राम और श्रीकृष्ण दोनोंके साथ होनेसे वे(यशोदा-रोहिणी) सुशोभित हो रही थीं. वे गोपियोंके पास गईं, कारण कि उन दोनों(यशोदा-रोहिणी)को भगवद्गुण श्रवण करनेकी उत्सुकता थी. इससे यह बताया कि उनकी भगवान्की नाम लीलामें विशेष प्रीति थी।।२३।।

निम्न श्लोकमें कहते हैं कि वे केवल वृन्दावनमें गए ही नहीं किन्तु उन्होंने वृन्दावनको अपना वासस्थान बना लिया.

वृन्दावनं सम्प्रविश्य सर्वकालसुखावहम्।।
तत्र चक्रुर्व्रजावासं शकटैरर्धचन्द्रवत्।।२४।।

सब समयमें सुख देनेवाले वृन्दावनमें प्रवेशकर, वहां शकटोंसे अर्धचन्द्रके समान व्रजका(गोधन गोष्ठ) आवास बना दिए।।२४।।

भागवतमें जिस कल्पकी, श्रीकृष्णकी लीला कही गई है उस कल्पमें वृन्दावन तथा गोवर्द्धन यमुनाजीके उत्तर भागमें थे, आकरके स्थानपर जानेकेलिये जहां यमुनाजी पार करनी पड़ती थीं वहां यमुनाका प्रवाह स्वल्प(थोडा) था परन्तु ह्रद(गड्ढे) अगाध(बहुत गहरे) थे. नन्दजीका स्थान भी वहां ही था. इस कल्पमें तो अधिष्ठातृदेव अपने अपने अधिष्ठात(स्थान) भिन्न भिन्न बनाकर रहते हैं अतः प्रदेश भी अलग अलग हो गये हैं. इसलिए इस प्रकारके वर्णनमें किसी प्रकार अयोग्यताकी शंका नहीं है. गोप यमुनाजीको पार करके वृन्दावन पहुंचे थे उसका वर्णन क्यों नहीं किया? इस शंकाका निवारण यह है कि यदि उस कल्पमें भी गोकुलसे वृन्दावन जाते हुए बीचमें यमुनाजी थी ऐसा मान लिया जाय और उसको पारकर गोप वृन्दावनमें गये थे तो भी वहां यमुनाका प्रवाह स्वल्प था जिसको मनुष्य पैदल ही पार कर सकते थे इसलिए उत्तरण(पार करने)का वर्णन नहीं किया है कारण कि यमुनाका प्रवाह[१] केवल वर्षाकालमें ही बढता है. उस समय पार नहीं जा सकते, गोपादि गोकुलवासियोंने गोकुल छोड़कर वृन्दावनमें समीचीन(अच्छे उत्तम) प्रकारसे प्रवेशकर उस(वृन्दावन)को शकटोंसे अर्धचन्द्रके समान व्रजका आवास बना दिया. किस प्रकार बनाया उसको समझाते हैं कि, बीचमें गौओंके रहनेके स्थान बनाये, उनके चारों तरफ वाड़की

जगह शकटोंको रखा जिनको अपने घर किये. इनमें मुख्य तो धेनुओंके रहनेके स्थान थे. इस प्रकार सब सजानेके पश्चात् सुख पूर्वक निवास करने लगे. वास स्थानको अर्धचन्द्राकार इसलिए बनाया गया था कि बाहिरके दरवाजेसे अपने स्थानपर आनेमें किसीको रुकावट न हो वहां शकटोंसे पृथक् अन्य घरोंके बनानेकी आवश्यकता नहीं थी कारण कि वृन्दावन सर्व समयमें सुख देनेवाला था. वासस्थान शकटों(छकडे)से अर्धचन्द्रके समान बनाया था. छकड़ोंसे इसलिए बनाया था, कि रथ क्रीड़ाके काममें आयेंगे और गाड़े काष्ठ(लकडियां) आदिको लानेके काममें आयेंगे. महादेव पशुपति हैं उनका चिह्न अर्धचन्द्र है उसमें आप(महादेव) विराजते हैं अतः यह वास स्थान अर्धचन्द्राकार होनेसे महादेवके विराजनेका स्थान होनेसे वे यहां बिराजेंगे जिससे पशुओंके सुख समृद्धि(सम्पत्ति)की वृद्धि होगी।।२४।।

१.प्रकाशकार पद्मपुराणका प्रमाण देकर बताते हैं कि गोप गोकुलमें वृन्दावन मार्गशीर्ष शुक्ल ५को गये हैं. उस समय वर्षा नहीं थी.

वहां(वृन्दावनमें) भगवान्ने जो सामान्य चरित्र किये उनका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं:

वृन्दावनं गोवर्धनं यमुनापुलिनानि च ।।
वीक्ष्यासीदुत्तमा प्रीती राममाधवयोर्नृप ।।२५।।

हे राजन् ! वृन्दावन, गोवर्द्धन और श्रीयमुनाजीके तट देखकर, राम और कृष्णको उत्कट(अधिक) आनन्द हुआ।।२५।।

राजस वृन्दावन, सात्त्विक गोवर्द्धन और यमुनाजीके तट देखकर(राम और श्रीकृष्णको) बहुत हर्ष हुआ. अतः हर्षयुक्त होकर पूर्वमें कहे हुए प्रकारसे लीला करने लगे. हे नृप! यह सम्बोधन परीक्षितको बतानेकेलिये दिया है कि देखनेसे हर्ष होना यह भगवान्की राजलीला है।।२५।।

सामान्य लीलाके पीछे जिस लीलामें स्त्रियोंकी आवश्यकता नहीं है ऐसी बाललीलाका वर्णन इस श्लोकसे लेकर अध्याय समाप्ति पर्यन्त करते हैं. उसमें पहले वत्सचारण(बछड़े चराने) लीलासे प्रारम्भ करते हैं.

एवं व्रजौकसां प्रीतिं यच्छन्तौ बालचेष्टितौ ।।
कलवाक्यौ स्वकालेन वत्सपालौ बभूवतुः ।।२६।।

बालकोंके समान चेष्टावाले, मधुर और अव्यक्त(तोतले) शब्द

बोलनेवाले वे दोनों(राम-कृष्ण) व्रजवासियोंको हर्षित करते थे. जब वत्स चरानेकी आयुवाले हुए तब वत्सपाल हुए. (बछडे चराने लगे)।।२६।।

व्रजवासियोंको पूर्वोक्त प्रकारसे हर्ष देते हुए ही आधिदैविक काल सेवाकेलिये आ गया. जिससे आप वत्सपाल(बछड़ोंको पालनेवाले गोप) होनेके योग्य आयुवाले(तीन वर्षसे बड़े) हो गये. उस समय वहां(वृन्दावनमें) देश अथवा कालादिके उपद्रवोंका अभाव था कारण कि दोनोंने अपने बालचेष्टाओं और मधुर तथा धीमी वाणीसे उपद्रवोंका अभाव कर दिया था. भगवान् मनसे तो गोपोंको हर्ष देते ही थे किन्तु बाल क्रीड़ाओं द्वारा कायासे और मधुर तथा अव्यक्त शब्दों द्वारा वाणीसे भी गोपादिकोंमें हर्ष उत्पन्न करते थे. व्रजवासियोंमें जो हर्ष(निरोध) उत्पन्न किया था वह चालू रहे इसलिए ये(बाल चेष्टाएं और कलरवकी) लीलाएं करने लगे. भगवान्में योग्यता और फलका पृथक् निरूपण न कर 'वत्सपालकौ' पदसे दोनों(योग्यता और फल) बता दिये जैसे कि भगवान्में बछड़ोंको चरानेकी योग्यता है और उनका पालन करनेकी सामर्थ्य भी है।।२६।।

दोनोंने जो वत्सोंको पालते हुए क्रीडाएँ की हैं उनका वर्णन २७वें श्लोकसे २९वें श्लोक तक करते हैं.

अविदूरे व्रजभुवः सह गोपालदारकैः ।।
चारयामासतुर्वत्सान् नानाक्रीडापरिच्छदौ ।।२७।।

क्रीडामें अनेक साधनवाले दोनों भाई ग्वाल बालोंके साथ व्रजभूमीके सान्निध्यमें बछडे चराने लगे।।२७।।

यहां भी क्रीड़ा तीन[१] प्रकारसे की है. उन तीन प्रकारकी लीलाओंमेंसे प्रथम प्रकारकी लीलाका वर्णन करते हैं कि [१]साधारण लीला व्रज-भूमिके समीप की है सामीप्य(निकटता) भी ऐसा कि जहां खड़े हुए व्रजको देख सकते थे और व्रजमें स्थित उन क्रीड़ाओंको और उनको भी देख सकते थे. जहां सामीप्यमें खेलते थे वह भूमि व्रजभूमिसे विशेष घासवाली होनेसे विलक्षण थी. गोपबालक समान वयवाले थे उनको कृतार्थ करनेकेलिये और बहुतोंके साथ क्रीड़ा उत्तम(रसवाली) हो इसलिए साधन भी साथ ले गये थे. ऐसे सरस क्रीड़ा करते वे दोनों बछड़े चराते थे. क्रीड़ाके साधन जो ले गये थे वे बताते हैं. फिरानेकेलिये चक्र, छोटा दण्ड, काष्टका टुकड़ा, बनावटी रथ, बाजे, आकर्षण(वृक्षोंसे फल गिरानेकेलिये लम्बे बांसके साथ बांधा हुआ लोहेका कांटा) आदि साधन थे

उनको लेकर ही आते और जाते थे. इस श्लोकमें इस प्रकार सामान्य क्रीड़ाका वर्णन किया है इस क्रीड़ामें वत्सोंका पालन और छोटे गोपोंसे मित्रता मुख्य है।।२७।।

१.'प्रकाशः १.साधारण क्रीडा, २.असाधारण क्रीडा और ३.निरोधमें विघ्न करनेवाले दैत्योंका नाश. इस प्रकारकी तीन लीलाएं कीं.

नन्दके साथ हिलमिल रहनेवालोंका निरोध करनेकेलिए, यहां दोनों (वत्स और गोपों)के निरोधका वर्णन करना है. अतः साधनोंसे होनेवाली क्रीडाका वर्णन पहले करते हैं.

क्वचिद् वादयतो वेणून् क्षेपणैः क्षिपतः क्वचित्।।
क्वचिद् पादैः किंकिणीभिः क्वचित् कृत्रिमगोवृषैः ।।२८।।

कभी मुरली बजाते, कभी गोफन चलाते, कभी घुँघरूवाले चरणोंसे नृत्य करते और कभी बनावटी मृत्तिकाके दोनों तरफ पहियेवाले खिलोनेसे क्रीडा करते थे।।२८।।

१.प्रथम दोनों कभी बंसरियोंको बजाते थे. बंसरियां बहुवचनमें इसलिए कही गई हैं कि बंसरीके अवान्तर भेद बहुत हैं, बहु छिद्रवाले वंश(बांस)को बंसरी कहते हैं. अनेक प्रकारकी बंसुरी बजानेसे मस्तककी क्रिया बताई है. २.हस्तकी क्रिया बतानेकेलिये दोनों भाई गोफनोंको(रस्सी आदिसे बने हुए होते हैं जिनमें बीचमें लोहे वा पाषाणके ढ़ेले रखकर दूर दूर फेंके जाते हैं उनको गोफन कहते हैं वे भी अनेक प्रकारके होते हैं) घुमाते घुमाते लोष्ठादि(पत्थर इत्यादि) ढेलोंको दूर दूर फेंकते थे. फेंककर राम कहते थे कि देखो मेरा ढेला कितना दूर गया है फिर श्रीकृष्णजी फेंककर कहते थे कि दाऊ! देखो तो सही मेरा ढेला आपसे भी कितना दूर गया है यह क्रीड़ा सावधानीसे कभी इस प्रकार करते जैसे किसीको किसी प्रकारकी चोट लगनेकी शंका न हो. कभी पैरोंमें किंकिणी(घुंघरू) बान्धकर नाच करते थे अथवा लोष्ठादिके ढेलोंको उन पैरोंसे दूर फेंकते थे, कभी मृत्तिकासे बनाये हुए गो वृषोंपर बैठकर घूमते थे अथवा गोप गो वृष बन जाते थे उनपर सवार होकर घूमते थे. अथवा उनसे युद्ध करते थे. अथवा परस्पर एक दूसरेपर गिरा देते थे. कभी उनपर चढ़कर गिरा देते थे।।२८।।

ऊपरके श्लोकमें शिर, बाहु, पाद और युद्धके साधनोंसे चार प्रकारकी लीलाका वर्णन कर अब इस श्लोकमें श्रीकृष्णने जो लीला की उसका वर्णन करते हैं.

वृषायमाणौ नर्दन्तौ युयुधाते परस्परम् ।।
अनुकृत्य रुतैर्जन्तूंश्चेरतुः प्राकृतौ यथा ।।२९।।

आप(श्रीकृष्ण) स्वयं वृष बनकर नाद(गरजते) करते तो अन्य भी वैसे ही करते और परस्पर लडते थे. कभी मयूर आदिकोंकी वाणीका अनुसरण करते प्राकृत बालकोंके समान फिरते थे।।२९।।

स्वयं ही बनावटी वृषरूप बनते थे और उनके समान शब्द भी करते थे. परस्पर लड़ते भी थे. इससे काया, वाणी तथा मनकी लीला बताई है. युद्ध कायाकी और वाणीसे बिजारे(बैल) जैसी ध्वनि. इस प्रकार करनेमें मनोधर्म प्रबल होता है जिससे मनसे भी लीला हुई. पूर्वार्धमें स्वतः की हुई तीन प्रकारकी लीलाएं कहकर उत्तरार्धमें अनुकरणसे जो आपने लीलाएँ कीं उनका वर्णन करते हैं. मण्डूक(मेंढ़क) तथा मयूर आदि जन्तुओंके रूप बनकर उनके साथ मिलके वैसी ही बोली बोलकर उनको भी भ्रममें डालते थे, वे भी समझ नहीं सकते थे कि ये बनावटी मेंढ़क वा मयूरादि हैं. इस प्रकारकी बहुत लीलाएं करते थे. ये लीलाएं अपना ऐश्वर्य प्रकट करनेकेलिये की थीं ऐसी शंका हो तो उसको मिटानेकेलिये श्लोकमें 'प्राकृतौ' शब्द दिया है जिसका भाव यह है कि ये लीलाएं प्राकृतोंके समान प्राकृत साधनोंसे ही करके उनका अनुकरण किया था. भगवान्ने ये लीलाएं सब प्रकारके बालकोंके दोष[1] दूर करने, मनोरञ्जन करने तथा निरोध करनेकेलिये की हैं. जीव दो[2] प्रकारके थे इसलिए दोनों[3]ने ऐसी लीलाएं कीं।।२९।।

१.टिप्पणीमें श्रीप्रभुचरण कहते हैं कि: गोपोंमें यह दोष था कि वे भगवान्को अलौकिक समझते थे लीलाके समय भी समझना दोष है इस दोषको निवृत्त करनेकेलिये ही परमात्मा(भगवान्)ने प्राकृतकी तरह प्राकृत साधनोंसे लीलाकर गोपोंका यह दोष मिटा दिया.

२.लेखकार कहते हैं कि: एक प्रकारके जीव जो श्रीकृष्ण और बलरामजी दोनोंको समान समझते थे वे प्रमाणमें निष्ठावाले साधारण जीव हैं. दूसरे प्रकारके जीव जो केवल श्रीकृष्णमें ही निष्ठावाले थे, वे असाधारण जीव हैं.

३.प्रकाशमें श्रीपुरुषोत्तमजी कहते हैं कि: 'दोनोंने' बलराम और भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकारसे सब लीलाएं कीं.

इस प्रकार भगवान्ने जो लीलाएं कीं उनका वर्णनकर अब बछडोंके दोष रूप वत्सासुरके वधका चरित्र छः श्लोकोंसे वर्णन करते हैं.

कदाचिद् यमुनातीरे वत्सांश्चारयतोः स्वकैः ।।

वयस्यैः कृष्णबलयोर्जिघांसुर्दैत्य आगमत्।।३०।।

किसी समय यमुनाजीके तटपर अपने समान वयवाले साथियोंके साथ बछडे चरानेवाले राम और कृष्णको मारनेकी इच्छावाला एक दैत्य अचानक आ गया।।३०।।

वह दैत्य उस वक्त आया जिस समय भगवान्ने बछड़ोंके निरोध करनेका विचार किया था. जब यमुनाजीके तटपर दोनों भ्राता बछड़ोंको चरा रहे थे उस समय वह दैत्य आया इस प्रकार अन्वय है. प्राकृत पुरुष ही दोषवाले बछड़ोंको चराते हैं जो भगवान् निरोध करनेकेलिये प्रकट हुए हैं वे सदोष बछड़ोंको कैसे चराएंगे? इस शंकाको मिटानेकेलिये ही कहते हैं कि सब बछड़ोंका सम्मिलित जो आसुर भाव था वह वत्सासुरके रूपमें वहां आया था इसलिए भगवान्ने उसका वधकर बछड़ोंको प्रथम निर्दोष बनानेकी लीला की है. बछड़े तो यमुनाजल पान करनेके कारण शुद्ध थे. दैत्य वहां क्यों आया? उसका कारण यमुनाजी यमकी बहिन हैं[१]. भगवान् जिन समान वयवालोंके साथ क्रीड़ा करते थे वै कौन थे? आचार्यश्री उसका स्पष्टीकरण करते हैं कि समान वयवाले वयस्य वे थे जिनको बालक भगवान्ने पहले(पूतनाका स्तन पान करते समय) अपने अन्दर स्थापित किये थे, उनको बाहिर प्रकट कर खेलते थे, अन्तः स्थित होनेसे वे भगवद्भावको प्राप्त हुए थे. जिससे भगवान्के समवयस्क होनेसे मैत्रीके योग्य भी थे. इसलिए श्लोकमें केवल 'वयस्या'(मित्र) न कहकर 'स्वकैः'(अपने) कहा. क्योंकि 'अन्तःस्थ'(हृदयमें रहनेवाले) ही अपने कहे जाते हैं. 'जिघांसु' कहनेसे बताया है कि वह दैत्य, घातक और क्रूर था. उसका नाम इसलिए नहीं दिया है कि वह पालने योग्य बछड़ोंके दोषोंका रूप था. आया अर्थात् खेलके स्थानपर आयेगा।।३०।।

१.यमुनाजीके तीरपर क्रीडा हो रही थी वहां दैत्य आया. यमुनाजी यमकी बहिन हैं उसका आश्रय जो करता है उसको यमयातना भोगनी नहीं पड़ती है, उसके सर्वदोष दूर हो जाते हैं, मुकुन्द भगवान्में रति होती है. यहां आनेसे इसकी भी ऐसी गति होनी है. इसलिए यहां आया. अनुवादक.

उस(वत्सासुर)को भगवान्ने पहचानकर पकड़ लिया उसका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

तं वत्सरूपिणं वीक्ष्य वत्सयूथगतं हरिः।।

दर्शयन् बलदेवाय शनैर्मुग्ध इवासदत् ।।३१।।

बछड़ेके रूपवाले उसको बछड़ेके टोलेमें मिले हुए देख, बलरामजीको उसे दिखाकर भगवान्ने अनजानके समान बन धीरे धीरे वहां जाकर उसको पकड लिया।।३१।।

प्रसिद्ध दोष[1] रूप वह असुर बछड़ेका रूप धारणकर बछड़ोंके यूथ (टोले)में मिल गया था. यदि वह पृथक्(अकेला) खड़ा होता तो उसको कोई भी पहचान सकता था किन्तु बछड़ोंके समूहमें वत्सरूप होकर मिल जानेसे पहचानना अशक्य(कठिन) था. भगवान्को तो उसके उद्धारकेलिये उसको मारना था क्योंकि यह भगवान् सर्वके दुःखोंका हरण करनेवाले हैं. भगवान्ने बलदेवजीको दिखा दिया कि यह बछड़ा असुर[2] है. यदि इस प्रकार कहकर न दिखाते तो निन्दा होती कि कृष्ण भी इसको पहचान न सके और बछड़ेको मार दिया. इस निन्दाके निवारणकेलिये बलरामजीको पहचान करा दी. क्या बलदेवजी उसको न पहचान सके? इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि उस समय बलदेवजीको अन्य धर्म[3]से सम्बन्ध था अतः उन्होंने पहचाना नहीं. जिस समय भगवान्ने बलरामजीको कहा कि यह वत्स असुर है उस समय भगवान्के सत्त्व भाव उदयसे असुरने अपना असुरत्व प्रकटकर दिखाया. यदि भगवान् बलदेवको यों न दिखाते तो वह अदृश्य हो जाता. भगवान्के दिखानेसे बलदेवजीने उसके असुरत्वको जान लिया. भगवान् उसको पकड़नेकेलिये धीरे धीरे इसलिए गये कि वह न जान सके कि मुझे पकड़नेकेलिये आ रहे हैं यदि जान जायेगा तो वह अपना असुरपना बाहिर भी प्रकट कर देगा. अतः धीरे धीरे तथा मुग्ध भावसे जा रहे थे जिससे वह समझ जाय कि किसी दूसरेको पकड़नेको जा रहे हैं. भगवान्ने अपना मुग्धभाव प्रकट करते हुए पहले किसी दूसरे वत्सको क्रीड़ाकेलिये पकड़ते हुए इसको भी पकड़ लिया. पकड़ते ही वह शक्ति हीन वा क्षीण हो गया. भगवान्ने जिस गतिसे दौड़कर दूसरेको पकड़ा था उसी प्रकार दौड़कर इसको भी पकड़ लिया. पूर्ण रीतिसे पकड़ लेने तक इस(वत्सासुर)को अज्ञानमें रखनेकेलिये भगवान्ने मुग्ध भाव प्रकट किया था।।३१।।

१.'कृष्णोपनिषद'में लिखा है कि लोभादिदोष आसुर बनके आये हैं? अतः यह असुर दोषरूप है. योजना.

२.बलदेवजी वेदरूप हैं इसलिए उनकी सम्मति लेनेकेलिये उनको दिखाया. योजना.

३.अन्यधर्म अर्थात् 'प्राकृत धर्म'. प्रकाश.

पकडनेके अनन्तर भगवान्ने उसको मार डाला यह कहते हैं.

गृहीत्वापरपादाभ्यां सह लाङ्गूलमच्युतः ।।
भ्रामयित्वा कपित्थाग्रे प्राहिणोद् गतजीवितम् ।।३२।।

भगवान्ने पूंछके साथ पीछेके पादोंको पकडकर इस प्रकार घुमाया जिससे उसके प्राण वहां ही निकल गए अनन्तर कैथ वृक्षके पास फेंक दिया।।३२।।

वह असुर महा बलवान् था, भगवान् केवल पूंछ पकड़कर फिराते थे तो कदाचित् पैरोंसे भगवान्का अपराध करता. यह अपराध इससे न हो, इसलिए भगवान्ने पूंछ सहित इसके पीछेके पांव भी पकड़ लिये. भगवान्के मनमें यह तो शंका थी ही नहीं कि यह असुर मुझे मारेगा क्योंकि भगवान् 'अच्युत'(अमर) हैं. घुमाकर कैथ वृक्षपर इसलिए फेंका कि पेडसे फल गिरे. भगवान्की एक क्रिया अनेक कार्योंको सिद्ध करती है. कैथके फल गिराने और उसकी मुक्ति न हो तदर्थ उस पेड़पर इसको फेंका था. भगवान्के हाथका सम्बन्ध होनेसे उसके प्राण पृथ्वीपर न गिरने पर न गये और न वृक्षपर गिरनेके समय गये किन्तु अन्तरिक्षमें ही प्राण चले गये थे. इसलिए श्लोकमें 'गतजीवितम्[१] प्राहिणोत्' कहा है जिसका आशय है प्राण अन्तरिक्ष(बीचमें)में जानेके अनन्तर उसको फेंक दिया।।३२।।

१.'गतजीवितम्' यह क्रियाका विशेषण है. इसलिए इसका अर्थ इस प्रकार किया गया है. प्रकाश.

भगवान्ने वत्सासुरको जिस समय घुमाया और कैथके पेडपर फेंका उस समय बालकोंने उसको देखा ही नहीं जब वह कैथके फलोंके साथ गिरा तब उसको देखा. इसका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

स कपित्थैर्महाकायः पात्यमानैः पपात ह ।।
तं वीक्ष्य विस्मिता बालाःशशंसुः साधुसाध्विति ।।३३।।

गिरते हुए कैथोंके साथ वह महाकाय दैत्य भी गिरा उसको देखकर आश्चर्यमें पडे हुए बालक 'वाह वाह' कहकर प्रशंसा करने लगे।।३३।।

कैथके फलोंको गिराता हुआ वह महाकाय(वत्सासुर) भी उनके (फलोंके) साथ पृथ्वीपर गिरा. श्लोकमें आये हुए 'ह' कहनेका भावार्थ बताते हैं कि बालकोंने समझा कि स्थूल कैथके फल वा बड़ी शाखा गिरती है किन्तु उनके

साथ वत्सासुरका गिरना एवं उसकी स्थूलता देखकर अचम्भेमें पड़ गये और कहने लगे कि अत्यन्त आश्चर्य है यह इतना बड़ा दैत्य कहांसे आया और कैसे गिरा? विचारान्तर जान गये कि भगवान्ने गिराया है, तब प्रशंसा करते हुए बहुत अच्छा, बहुत अच्छा शब्दकी ध्वनि करने लगे. भगवान्ने इसको पहचाना, पकड़ा, फेंका और मारा, प्रत्येक क्रियाकी प्रशंसा करने लगी इसलिए 'बहुत अच्छा बहुत अच्छा' दो बार कहें अथवा बालकोंको अपने आश्चर्य प्रकट करनेकी इच्छा हुई इसलिए 'बहुत अच्छा' दो बार कहें. इससे यह भी बता दिया कि वत्सासुर हननसे(मारनेसे) लोकमें निन्दा नहीं हुई है. किन्तु यश ही हुआ है।।३३।।

पर इस लोकमें भी निन्दा न होकर यश हुआ है जिसकी साक्षी देते हैं कि देवताओंने भी प्रसन्न होकर अभिनंदन(हर्ष) प्रकट किया. उसका वर्णन नीचेके ३४वें श्लोकमें करते हैं.

देवाश्च परिसन्तुष्टा बभूवुः पुष्पवर्षिणः ।।
वत्सासुरं हतं श्रुत्वा व्रजे गोप्यश्च विस्मिताः ।।३४।।

देव भी प्रसन्न होकर फूल बरसाने लगे और व्रजमें वत्सासुरका मरना सुनकर गोपियां विस्मित हो गईं।।३४।।

दैत्यवधसे देवगण भी 'बहुत अच्छा बहुत अच्छा' कहकर प्रशंसा करने लगे और सर्व प्रकारसे सन्तुष्ट(प्रसन्न) हुए क्योंकि वत्सोंमें देव और दैत्योंको भोग करनेका अधिकार है अर्थात् दोनों उनका भोग कर सकते हैं. अब दैत्यके मर जानेसे केवल देवगण ही वत्सोंका भोग(सुख) ले सकेंगे अतः देव सब प्रकारसे प्रसन्न होकर पुष्प वर्षा करने लगे इस प्रकारकी क्रिया(कार्य करने)से देवोंने वाणीसे प्रशंसा की मनसे सन्तोष प्रकट किया और कायासे पुष्प वर्षा की है[१]।।३४।।

१.इस ३४वें श्लोकके पूर्वार्धपर आचार्यश्रीने टीका की है और उत्तरार्धकेलिये लिखा है कि यह आधा श्लोक मूल भागवतमें नहीं है. अतः केवल उसका शब्दार्थ दिया है वत्सासुर मारा गया यह सुनकर व्रजमें गोपीजन आश्चर्यमें पड़ गई. अनुवादक.

यह वत्सासुर तो मरा किन्तु पुनः अचानक दूसरा कोई असुर आ जाएगा तो हम वत्स चरानेकेलिए कैसे जावें? इसी प्रकारका भय गोपोंको अथवा भगवान्को न हुआ इसलिए बछडे चराने गए उसका वर्णन करते हैं.

तौ वत्सपालकौ भूत्वा सर्वलोकैकपालकौ ।।

सप्रातराशौ गोवत्सांश्चारयन्तौ विचेरतुः ।।३५।।

सकल लोकोंके, अकेले मुख्यपालक, वे दोनों भ्राता, वत्स पालक बनकर प्रातः कालमें(जिस समय बछडे माताके दूधको पीते थे उस समय) भोजन करके, बछडोंको चराते फिरते थे।।३५।।

यद्यपि वे दोनों भ्राता सकल लोकोंके अकेले ही पालक हैं तो भी अब वत्सपाल बनकर फिरने लगे. कभी कभी बछड़े नहीं चराते थे किन्तु जैसे ग्वाले जो गौओंसे वृत्ति(आजीविका) करनेवाले हैं उनके समान सतत गौओंको चराने लगे. जिससे आप अब 'वत्सपाल'(गोप व ग्वाल) नामसे प्रसिद्ध हुए, सर्व लोकोंके अकेले पालककी तो पूर्वसे प्रसिद्धि थी. एक शब्दसे यह बताया है कि आप प्रधान(मुख्य) पालक हैं. श्लोकमें 'भूत्वा' पद 'वत्सपालकौ' और 'सर्वलोकैक-पालकौ' दोनों पदोंके बीचमें देनेसे यह बताया है आप 'वत्सपाल' और 'लोकपाल' दोनों नामोंसे प्रसिद्ध ही हैं. वेदसे लोककी प्रसिद्धि दुर्बल है. श्लोकमें 'वत्सपाल' पद इसलिए दिया है कि कदाचित् 'वत्सपाल' यह नाम प्रसिद्ध न हो तो पहले देकर इस नामकी प्रसिद्धि की जाय. प्रातःकाल बछड़ोंके साथ(जिस समय वे गायके थनसे दूध पीते थे उस समय) भोजन इसलिए कर आते थे कि सन्ध्या तक बछड़ोंके साथ उनको चराते हुए फिरना है. कारण कि गौओंके बछड़े धर्मके उपयोगमें आते हैं. अतः बछड़ोंकों चराते हुए आप भी सन्ध्या तक फिरते रहते थे।।३५।।

इस प्रकार बछडोंका दोष निकालकर, अब गोपोंके दोषोंका परिहार (त्याग) करनेकेलिये, दम्भरूप बकको भगवान्ने मारा. इसका वर्णन निम्न श्लोकोंमे करते हैं.

स्वं स्वं वत्सकुलं सर्वे पाययिष्यन्त एकदा ।।
गत्वा जलाशयाभ्यासं पाययित्वा पपुर्जलम् ।।३६।।

एक दिन सब गोप बालक अपने बछडोंके समूहको इकट्ठाकर, पानी पिलानेकेलिए, जलाशयके पास ले गए बछडोंको जल पिलाके आपने भी पीया।।३६।।

यमुनाजलपानेन दोषः सर्वो विनिर्गतः ।।
एकीभूतो बकः प्रोक्तो जलपानात् स दृश्यते ।।का.१।।

कारिकार्थ: यमुनाके जल पानसे सम्पूर्ण दोष बाहिर निकल वह दोष

बकरूपमें इकट्ठा हो गया. जलके पानसे वह देखनेमें आया.

अतः पानं दर्शनं च तेनोपद्रव एव च ।।
ततः सर्वापराधश्च तद्वधोपाय एव च ।।का.२।।
तद्वधश्च स्तुतिर्देवैर्गोपानां तोष एव च ।।
तथैव गोकुलस्थानां नव प्राणा हि शोधिताः ।।का.३।।

कारिकार्थः इससे पीना, दर्शन, उसका किया हुआ उपद्रव, सर्वका अपराध, उसके मारनेका उपाय, उसका वध, स्तुति, संतोष, गोकुलवासियोंका संतोष, इस प्रकारकी लीलासे नौ प्राण शुद्ध किये हैं.

प्रथम कारिकामें गोपोंने बछडोंको जल पिलाकर अनन्तर स्वयंने भी यमुनाजीका जल पीया, उस यमुना जलपानसे गोपोंमें जो दोष थे वे बाहिर निकल गए और वे निर्दोष बन गए. उन दोषोंने मिलकर बकका रूप धारण कर लिया. उसको गोपोंने देखा और पहचान लिया कि यह बक हमारे दोषोंका रूप है. यमुना जलके पान करनेसे ही उनको पहचान सके थे।।१।।

द्वितीय तृतीय कारिकामें ३६ श्लोकसे ४४ वें श्लोक तकके प्रत्येक श्लोकमें वर्णन की हुई लीलाको कहा है जैसे कि ३६ वें श्लोकमें यमुना जल पान, ३७ वें श्लोकमें, अपने दोषोंका रूप यह बक है इसका देखना(समझना), ३८ वें श्लोकमें बकका किया हुआ उपद्रव, ३९ वें श्लोकमें सबका बकने जो अपराध किये, ४० वें श्लोकमें बकके वधका उपाय, ४१ वें श्लोकमें उसका वध, ४२ वें श्लोकमें, देवताओंने भगवान्की जो स्तुति की है, ४३ वें श्लोकमें गोपोंका सन्तोष, ४४ वें श्लोकमें गोकुलवासियोंका सन्तोष. इन नौ लीलाओंसे गोकुल वासी गोपोंके नौ प्राणोंकी शुद्धि की हुई है।।२-३।।

इस श्लोकमें कहा है कि गोपोंको बक देखनेमें आवे, इसलिए प्रथम, यमुनाके पास चरते हुए बछड़ोंको यमुना जल पिलाकर आपने भी पीया. 'वत्सकुलं' पदका भावार्थ कहते हैं कि प्रत्येक गोपके पास बहुत वत्स थे इसलिए सब गोप जल पिलानेकेलिये गये. यदि सब न जाते तो सबोंको बक देखनेमें न आता केवल जानेवालोंको ही देखनेमें आता. यह बक सबोंकेलिये समान था, इसलिए सबकी क्रिया समान होनी चाहिए अतः सबने जलपान किया. किसी समय अर्थात् जब भगवान्की इच्छा हुई कि बालकोंके दोष निवृत्त करने चाहिए तब जलके पास जाकर बछड़ोंके समूहोंको जल पिलाकर आप सबने भी जल

पीया।।३६।।

१. दम्भरूप दोष बाहिर निकला इससे वे गोप निर्दोष हो गए. ये गोप जो बाहर स्थित थे वे पहले सदोष थे अब निर्दोष हुए. शेष बालक जो भगवान्ने अपनमेंसे बाहर निकाले थे वे पहले ही निर्दोष थे.

बछडोंको जल पिलाया, आपने भी पीया तदनन्तर दोषरूप बकको देखा. उसका वर्णन नीचेके श्लोकमें करते हैं.

ते तत्र ददृशुर्बाला महासत्त्वमवस्थितम् ।।
तत्रसुर्वज्रनिर्भिन्नं गिरेः शृङ्गमिव च्युतम् ।।३७।।

वहां उन बालकोंने व्रजसे टूटकर गिरे हुए पर्वतके शिखरके समान बैठा हुआ एक बडा जीव देखा और घबराए।।३७।।

उन सब गोपोंने जलके निकट एक भयानक प्राणीको देखा जो मारनेकेलिये निकट खड़ा था, उसको देखनेके अनन्तर डर गये. क्योंकि वे(गोप) बालक थे. डरे, किन्तु भगवान्की कृपासे उन्होंने उसको मरा हुआ समझा. यदि मरा हुआ न समझते तो इस महाभयसे उनके प्राण-पक्षी उड़ जाते. इसलिए श्लोकमें कहा है कि उन्होंने व्रजसे टूटकर गिरे हुए पर्वतके शिखरके समान इसको देखा जिसका आशय बताया कि गोपोंने इसको मरा हुआ समझा. जगत्को पीड़ा करनेवाले कंसको भगवान्ने व्रजसे मारा[१] ही है. उस(कंस)का यह(असुर) शृङ्गरूप है वह भी यहां आ पड़ा है. 'शृङ्ग' शब्दका भाव प्रकट करते हैं कि वह यहांसे भागकर जायेगा ऐसी शंका ही नहीं करनी चाहिये अर्थात् वह जायेगा नहीं, कारण कि इसका यहां पड़ना, क्रीडाकेलिये ही है, न कि पीड़ा देनेकेलिये हुआ है. गोप, बालक होनेसे उसको देखकर केवल भयको प्राप्त हुए हैं।।३७।।

१.व्रजसे कंसको मारा ही है, का स्पष्टीकरण करते हैं कि भगवान्ने कंसको आकाशवाणीरूप व्रजसे पहले ही मार दिया है. प्रकाश.

उन सब बालकोंका भगवान्ने प्रपञ्च छुडा दिया था अर्थात् उनको निर्दोष बना दिया था. उन(बालकों)का यह दोष बक बनकर भगवान्का अपकार(अनिष्ट) करने लगा. इसका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

स वै बको नाम महानसुरो बकरूपधृत् ।।
आगत्य तरसा कृष्णं तीक्ष्णतुण्डोग्रसद् बली ।।३८।।

वह बकरूप धारण करनेवाला, महान् असुर, नामसे 'बकासुर' दैत्य था.

तीखी चोंचवाला यह बलवान् असुर शीघ्र आकर श्रीकृष्णको निगल गया।।३८।।

'बक' नामकी प्रसिद्धिसे ही उसका दोष(रूप) स्पष्ट समझनेमें आ जाता है. यह असुर महान् है 'महान्' शब्दका आशय है कि यह वत्सासुरसे भी बड़ा दैत्य है. क्योंकि वत्सासुर तो बछड़ोंका दोषरूप था यह भगवदीय गोपोंका दोषरूप है इस कारणसे ही इसने बकरूपको ग्रहण किया है. इन(बकासुरों)की उपास्य देवता भी बकरूपा मायादेवी भगवान्का रूप प्रसिद्ध ही है. उस अपने देव(बकरूपिणी मायादेवी)के अनुग्रहसे यह महान् है. इस कारणसे ही लोभ और अनृत(झूठ)रूप चोंचवाले और मुख्य क्रिया शक्तिवाले उस(दोषरूप महान् दैत्य बकने शीघ्र आकर सदानन्द(श्रीकृष्ण)को निगल लिया. लोभसे[१] आनन्द और अनृतसे सत्य निगला जाता है. ''तं यथा यथोपासते'' इस श्रुतिके अनुसार उस(भगवान्)की जिस भावसे जीव उपासना करता है उस भावके अनुसार भगवान् भी उस (भगवान्)के वशमें होते हैं. तात्पर्य यह है कि भगवान् लीलार्थ–अपने ही स्वरूपके वश होते हैं. भगवान्ने गोपोंको प्रेमके स्वरूपका ज्ञान करानेकेलिये यह लीला की है।।३८।।

१.लेखकार गो.श्रीवल्लभलालजी कहते हैं कि जहां लोभ है वहां दुःख उत्पन्न होता है, दुःख होते ही सुख तिरोहित हो जाता है.

इसके अनन्तर नीचेके श्लोकमें गोपोंका भगवान्में जो प्रेम है उसका वर्णन करते हैं.

कृष्णं महाबकग्रस्तं दृष्ट्वा रामादयोर्भकाः ।।
बभूवुरिन्द्रियाणीव विना प्राणैर्विचेतसः ।।३९।।

बलराम आदि सब बालक श्रीकृष्णके बकासुरसे निगले जानेको देखकर प्राणरहित इन्द्रियोंके समान अचेत हो गए।।३९।।

बकासुरके उपास्य महाबकसे श्रीकृष्णको निगलते देखकर राम आदि सब अचेत हो गये. क्योंकि श्रीकृष्ण ही इनके प्राण थे. उस(प्राणरूप श्रीकृष्ण)के जानेसे इनकी क्रिया और ज्ञानकी शक्ति चली गई. कैसे चली गई वह दृष्टान्त देकर समझाते हैं कि जैसे प्राणोंके जानेसे इन्द्रियोंकी क्रिया और ज्ञान नष्ट हो जाता है. लोकमें एक प्राण दृष्टान्तमें नहीं कहा जाता है अतः 'प्राण' शब्द बहुवचनमें दिया है।।३९।।

निगले जानेपर भगवान् उसके कण्ठ(सरस्वतीके स्थान)में स्थित हो गए.

चोंचोंके बीचमें नहीं ठहरे, कारण कि उसकी चोंच लोभरूप है और दूसरी अनृतरूप है इससे भगवान्ने यह बताया कि जहां लोभ और अनृत है वहाँसे मैं तिरोहित हो जाता हूँ अर्थात् वहां नहीं ठहरता हूं, मैं तो वहां ठहरता हूँ जहां वेद प्रमाणका स्थान है अर्थात् वेदानुकुल आचरण है. इसलिए आपने सरस्वतीके स्थान कण्ठमें स्थिति की है. उसको जलाने लगे जिसका तात्पर्य था कि बक आपको भीतर न निगल सके और बाहिर उगल दे. मिरच आदिसे जलन होती है किन्तु वह जलन सहने जैसी होती है यह जलन असह्य थी इसलिए अग्नि जैसी कहा है. ऐसी असह्य जलनके कारण बकने भगवान्को उगलकर बाहिर निकाल दिया. इसका वर्णन निम्न श्लोकोंमें करते हैं.

तं तालुमूलं प्रदहन्तमग्निवद् गोपालसूनुं पितरं जगद्गुरोः ।।
चच्छर्द सद्योतिरुषाक्षतं बकस्तुण्डेन हन्तुं पुनरभ्यपद्यत ।।४०।।

अग्निके समान तालुके मूलको जलानेवाले गोपाल(श्रीनन्दरायजी)के पुत्र और ब्रह्माके पिताको बकने उगल दिया. उसको बिना घात हुए(देख) बहुत गुस्सेमें आकर चोंचसे मारनेकेलिए एकदम पुनः उसके पास आया।।४०।।

तालुका मूल अर्थात् कण्ठ–स्थान. श्लोकमें 'दहन्तं' के साथ 'प्र' शब्द दिया है उस 'प्र' के देनेका आशय यह है कि इस प्रकार जलाने लगे जिससे वह उस(कृष्ण)को निगल न सका. भगवान्(कृष्ण) पापरहित हैं उनका तालु मूलसे सम्बन्ध नहीं होना चाहिये वह कैसे हुआ? इस शंकाके निवारणकेलिये 'गोपाल सूनु' नाम देकर बताया है कि नन्दजीके पुत्रका भाव प्रकट करनेकेलिये उससे(तालु मूलसे) सम्बन्ध भी किया है.

पापरहितपना और तालुमूलसे सम्बन्ध ये दोनों एक समयमें कैसे दिखाये? इस शंकाके मिटानेकेलिये श्लोकमें आप(कृष्ण)केलिये 'पितरं जगद्गुरोः' कहा है, गोपाल(श्रीनन्दरायजी)का पुत्र साथमें उसी समय ब्रह्मका पिता भी है वह सबको उपदेश देते हैं कि 'तत्त्वमसि' तू वह(अक्षर ब्रह्म) है किन्तु यह कहना बन नहीं सकता है इसलिए असम्भावना[१] समझ कोई इस बातको मानता नहीं है. उसको यह सिखानेकेलिये भगवान्ने ये दो ही कार्य साथमें कर दिखाये हैं इससे भगवान्का महत्त्व भी सूचित होता है और ऐसे महान् असुरको कैसे मार सकेंगे यह शंका भी इससे मिटा दी है. और साधारण ब्राह्मणको गरुड़ने खाया तो उसने भी गरुड़के तालुको जला दिया तो ब्रह्माके पिता परब्रह्मने बकका

कण्ठ जलाया तो इसमें क्या आश्चर्य है? अतः जलनेसे बकने भगवान्को बाहिर निकाल दिया. यदि न निकालता तो जल ही जाता था. बाहिर निकालकर स्वयं रवाना हो जाता तो बच भी जाता किन्तु क्रोधमें आ गया क्योंकि देखा कि कृष्णको कुछ भी घाव नहीं हुआ है इसलिए बिना घाववाले भगवान्को सम्मिलित(दोनों चोंचोको इकट्ठीकर) चोंचसे पीड़ा देनेकेलिये फिर उन(भगवान्)के पास आ गया. विशेष क्रोधके कारण बकमेंसे बकका देवता निकलके चला गया, शेष अकेला बक रह गया।।४०।।

१.'तत्त्वमसि' वाक्यमें जीव और भगवान्का अभेद बताया है सर्वज्ञ भगवान्के साथ अल्पज्ञ जीवका अभेदमें असम्भावना दोष प्रतीत होता है इसलिए इस उपदेशको लोक नहीं मानते हैं इस दोषको मिटानेकेलिये भगवान्ने अपनेमें नन्दपुत्रत्व और ब्रह्मका पितृत्व दोनों विरुद्ध धर्म दिखाकर जैसे मैं दोनों हूँ उसी प्रकार जीव भी जीव होते हुए ब्रह्म भी है. योजना.

प्रभुचरण टिप्पणीमें कहते हैं कि जैसे नन्दजीका पुत्र ब्रह्माके पिताके कारण परब्रह्म ही है वैसे ही प्राकृत संघात होते हुए भी जीव अक्षररूप है, इसको सिखानेकेलिये यों किया है.

देवताके चले जानेपर अकेला स्वयं बक अपनी सामर्थ्यसे भगवान्को मारनेकेलिए आया तब भगवान्ने दूरसे ही उसको मार दिया. इसका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

तमापतन्तं स निगृह्य तुण्डयोर्दोर्भ्यां बकं कंससखं सतां गतिः ।।
पश्यत्सु बालेषु ददार लीलया मुदावहो वीरणवद् दिवौकसाम् ।।४१।।

सत्पुरुषोंके आश्रय और देवोंको आनन्द देनेवाले उस(भगवान् श्रीकृष्ण)ने इस आते हुए कंसके मित्र बकासुरकी चंचुओंको दोनों हाथोंसे पकडकर बालकोंके देखते देखते तूलीके समान उसको चीर डाला।।४१।।

चारों ओरसे सरकते हुए आनेवाले उस बकको सबके दुःखोंको दूर करनेवाले भगवान् कृष्णने पकड़ लिया, अनन्तर उसकी मिली हुई दोनों चंचुओंको पृथक्-पृथक् पकड़कर चीर डाला. उसको मारनेका कारण क्या था? इस शंकाके निवारणकेलिये श्लोकमें 'कंससखं' बकका विशेषण दिया है. जिसका आशय यह है कि वह(बक) कंसका मित्र था इसको मारे बिना कंस भी नहीं मर सकता था इसलिए इसको मारा. यदि कहो कि कंसको मारनेकी क्या आवश्यकता थी? अथवा कौनसा प्रयोजन था? इस शंकाको मिटानेकेलिये इस

श्लोकमें भगवान् कृष्णका 'संता गतिः' विशेषण दिया है. जिसका तात्पर्य है कि वह भगवान् कृष्ण ही सत्पुरुषोंका रक्षक हैं. यदि श्रीकृष्ण कंसको नहीं मारे तो सत्पुरुषोंकी रक्षा ही न होवे. यह बकासुर बालकोंके दोषोंका रूप है. इसलिए बालकोंके देखते हुए उस(बकको) चीर डाला.

कितने ही कहते हैं कि बकको महादेवजीने वरदान दिया था कि तुझे वह मार सकेगा, जो तेरेमेंसे बाहिर निकलेगा. इसलिए भगवान्ने इसके भीतर(मुखमें) प्रवेश किया, मुखमें प्रवेशकर बाहिर न निकलते और यों ही मार देते तो महादेवजीका दिया हुआ वर असत्य हो जाता. इसपर आचार्यश्री अपनी सम्मति देते हैं कि यदि यह कथा सत्य भी हो तो भी किसी कल्पान्तर[१] की होगी.

भगवान्ने हाथोंसे चोंचोंको पकडकर उसको चीरा था, इसमें भगवान्को श्रम हुआ होगा? इस शंकाको मिटानेकेलिये कहा है कि 'लीलया' भगवान्ने खेल करते हुए चीर डाला, अतः भगवान्को कोई श्रम नहीं हुआ. उपासना करनेवालोंकी मृत्युसे उसके उपास्य देवोंको दुःख हुआ होगा? इस शंकाको मिटानेकेलिये श्लोकमें 'दिवौकसां मुदावहः' कहा है जिसका आशय है कि बकके मरनेसे उसके उपास्य देव अप्रसन्न नहीं हुए किन्तु प्रसन्न हुए, कारण कि बकके जो दो टुकडे किये थे उनको नीचे मुख करके स्थापित कर दिया था जिससे उत्तम स्वर्गमें स्थित देवोंका यहां(भगवान्के पास) आनेपर सुन्दर कोमल आसन जैसा बन गया इसलिए श्लोकमें 'वीरणवत्' पद देकर बताया कि जैसे 'वीरण' नामक घाससे आसन बनते हैं वैसे ही यह भी देवोंकेलिये आसन जैसा बन गया था. इसकी मृत्युसे देवोंका हित ही हुआ है क्योंकि लोभ, अनृतके साथ दम्भ(पाखण्ड)के नाश हो जानेसे देवगण पृथ्वीपर पधारकर प्रेमसे यज्ञकी हविको ग्रहण कर सकेंगे।।४१।।

१.भागवतमें जिस कल्पकी कथा है, उस कल्पकी यह कथा नहीं है. क्योंकि भगवान्ने केवल कण्ठ तक ही प्रवेश किया है. यदि महादेवजीके वरको सत्य करनेकेलिये प्रवेश किया होता तो उदर तक प्रवेश करते अतः कथा दूसरे किसी कल्पकी होगी. लेख.

इस प्रकार उस(बक)के अधिष्ठाता देवोंके सन्तोषका वर्णनकर अब इस नीचेके श्लोकमें सर्व स्वर्गवासी देवोंको भी इससे सन्तोष हुआ, उसका वर्णन करते हैं.

तदा बकारिं सुरलोकवासिनः समाकिरन् नन्दनमल्लिकादिभिः ।।
समीडिरे चानकशंखसंस्तवैस्तद् वीक्ष्य गोपालसुता विसिस्मिरे ।।४२।।

उस समय स्वर्गमें रहनेवाले देवोंने बकके शत्रुपर नन्दनवनके मल्लिका आदि पुरुषोंकी वृष्टि की और दुंदुभि(नगारे) तथा शंख नादके साथ स्तोत्रोंसे स्तुति की. जिसको देख ग्वालबाल विस्मित हुए(आश्चर्यमें पड़ गये)।।४२।।

सकल वेद और ब्राह्मणोंके पक्षपाती बकके अरि(शत्रु) (श्रीकृष्ण)के ऊपर सब स्वर्गवासी देवतागण नन्दनवनमें उत्पन्न मल्लिका आदि पुष्प बरसाने लगे. इसका वर्णन इसीलिए किया है कि गोपोंको भगवान्के महत्त्वका ज्ञान हो जाये. गोप, भगवान्के महत्त्वको केवल पुष्पोंकी वर्षासे नहीं समझ सकेंगे अतः स्तुति की और साथमें बाजे बजाये. कौनसे बाजे बजाये और किस प्रकार स्तुति की इसको बतानेकेलिये कहते हैं कि नगारे और शंखोंके नाद सहित स्तोत्रोंसे सम्यक्(उत्तम) प्रकारसे स्तुति की. स्तुति करनेमें अशक्त राजस और तामस भी साथमें थे इसे बतानेकेलिये दो वाद्यक[१] हैं. यह सब देखकर अति मूढ़(अनजान) गोप बालक श्रीकृष्णको अपने समान ग्वाला समझते थे वे अत्यन्त विस्मयको प्राप्त हुए।।४२।।

१. सात्त्विकोंने तो स्तोत्र द्वारा स्तुति करके अपना हर्ष प्रकट किया किन्तु जो स्तोत्र करनेमें राजस व तामस असमर्थ थे उन्होंने नगारे और शंखोंकी ध्वनिसे स्तुतिकर हर्ष प्रकट किया. अनुवादक.

प्रथम तो केवल कृष्णके माहात्म्यको जाना था अब तो देवताओंकी, की हुई पुष्पवृष्टि देखकर आश्चर्ययुक्त भी हुए. तदनन्तर व्रजमें आकर उसका माहात्म्य वर्णन करने लगे वह निम्न श्लोकमें कहते हैं.

मुक्तं बकास्यादुपलभ्य बालका रामादयः प्राणमिवैन्द्रियो गणः ।।
प्रत्यागतं तं परिरभ्य निर्वृताः प्रणीय वत्सान् व्रजमेत्य तद् जगुः ।।४३।।

जैसे इन्द्रियां प्राणोंको पाकर सुखी होती हैं वैसे ही बकासुरके मुखसे मुक्त होकर आए हुए भगवान्से मिलकर बलराम आदि सब बालक प्रसन्न हुए अनन्तर बछडोंको इकट्ठाकर व्रजमें आए वहां वे समग्र लीलाकी कथा सबको सुनाने लगे।।४३।।

जो वचन कहने होते हैं वे हृदयमें ऊपर आकर स्थित हो जाते हैं जिससे उन वचनोंको रोका नहीं जा सकता है. गोपोंको भगवान्की प्राप्तिकी अत्यन्त

इच्छा थी, इसको जतानेकेलिये वह चरित्र कहे कि जब भगवान्की प्राप्तिमें प्रतिबन्धकवाले दुष्ट निमित्त नष्ट होते हैं तब भगवान्की प्राप्ति होती है. भगवान् स्वयं विघ्नोंको दूरकर हमको प्राप्त हुए हैं यह 'बकके मुखके निकले हुए भगवान्को प्राप्तकर' शब्दोंका भाव प्रकटकर बताने लगे. जिसका आशय यह है कि भगवान् जीवकृत साधनोंसे प्राप्त नहीं होते हैं किन्तु आप कृपाकर विघ्नोंको हटाकर मिलना चाहते हैं तब मिलते हैं. इन चरित्रोंसे गोपोंमें भगवान्के प्रति प्रेम ही जागृत हुआ, न कि माहात्म्य ज्ञानसे भय उत्पन्न हुआ. क्योंकि गोप बालक थे. बलराम तो बालक नहीं थे? कहते हैं कि वह भी इस समय बालक थे इसलिए श्लोकमें 'रामादयः' रामसे लेकर सब गोप बालक कहे गये हैं कारण कि राममें भी उस समय गौण-भाव होनेसे उनकी बालकोंसे समानता थी. भगवान्का बकके मुखमें प्रवेश होते ही वे बालक अचेतसे हो गये थे अतः कहा है कि भगवान् बकके मुखसे मुक्त होकर नहीं पधारे तब तक रामादि बालक नहीं थे. जैसे प्राणके बिना इन्द्रियां केवल अपने गोलकमें रहती हैं किञ्चित् भी प्रकट क्रिया नहीं कर सकती हैं इसी प्रकारकी दशा गोप बालकोंकी उस समय हो गई थी. किन्तु अचेत अवस्थामें होते हुए भी भगवान्की लीला द्वारा इनका निरोध करना था इसलिए इनमें इतनी चेतनता भगवान्ने प्रकटकर रखी थी कि जिससे लीला देख उनको विस्मय हो सका. भगवान्ने बकको मार डाला, उसके अनन्तर भी भगवान्के पास न जा सके कारण कि मूर्छावस्थामें अति खेदसे वहां ही पड़े थे खड़े नहीं हुए. भगवान् ही उनके पास जब लौटकर आ गये तब उन्होंने सदानन्दका आलिंगनकर सर्व प्रकारसे उनसे सम्बन्ध किया जिससे आनन्दको प्राप्त हुए. तब जहां तहां बिखरे हुए बछड़ोंको इकट्ठाकर व्रजमें आये. आकर बकवध आदि लीलाएं सुनायीं।।४३।।

इसके पश्चात् जो कुछ हुआ वह नीचेके श्लोकमें कहते हैं.

श्रुत्वा तद् विस्मिता गोपा गोप्यश्चातिप्रियादृताः ।।
प्रेत्यागतमिवौत्सुक्यादैक्षन्त तृषितेक्षणाः ।।४४।।

यह चरित्र सुनकर गोप और गोपियां विस्मित हुए और गोपियोंने अतिप्रिय(भगवान्)से आदर पाया. परलोकसे लौटकर आए हो, वैसे(समझ) अत्यन्त प्रेमके कारण वे अतृप्त नेत्रोंसे दर्शन करने लगी।।४४।।

वह बकके वधकी लीला सुनकर गोप और गोपियां अचम्भेमें पड़ गये.

गोपोंसे गोपियोंकेलिये विशेष कहते हैं कि, भगवान्ने गोपियोंका आदर सत्कार किया. इससे गोपियां भगवान्का परम प्रेमपूर्वक दर्शन करने लगीं. गोपियां किस प्रकार अपने अतिप्यारेको देखने लगीं? इसको बतानेकेलिये श्लोकमें 'औत्सुक्यात्' शब्द दिया है, जिसका अर्थ उत्कण्ठा(प्रियके मिलनेकेलिये अन्तःकरणमें बेचैन रहे ऐसी चाहना)से देखने लगीं जिससे नेत्र अतृप्त ही रहे. यह प्रेमकी पराकाष्ठा(सबसे ऊँची सीमा या हद) है जिसमें किसी प्रकारकी मर्यादा उस समय नहीं रहती है. इस प्रकारका कहना अश्लील(असभ्य) होते हुए भी शुकदेवजीने पामरों(अधम)की बुद्धि इस प्रकारकी होती है इसको बतानेकेलिये कहा है. उस समय गोपियोंके प्रेमकी पराकाष्ठा हो गई थी, जिससे उन्होंने सबका त्याग कर दिया था अतः पति आदि क्या कहेंगे इस प्रकारकी शंकाको मनमें न लाकर देखती गई. यह उनकी देखनेकी वृद्धि किसी कारणसे नहीं हुई थी किन्तु स्वाभाविकी थी, इसलिए कहा है कि नेत्रोंकी तृप्ति नहीं हुई।।४४।।

यह सुनकर विचार करनेवाले नन्दादिकोंके विचार हुए उनका निम्न तीन श्लोकोंमें वर्णन करते हैं.

अहो बतास्य बालस्य बहवो मृत्यवोभवन्।।
अप्यासीद् विप्रियं तेषां कृतपूर्वं यतो भयम्।।४५।।

अहो ! अरे ! खेद है कि इस बालकके ऊपर बडी बडी बहुत घातें आईं. परन्तु जो जो घात करने आए उनका ही अनिष्ट हुआ क्योंकि पहले उन्होंने दूसरोंको भय उत्पन्न किया।।४५।।

इस श्लोकमें तामसोंके विचार कहे हैं. तामस कहते हैं कि आश्चर्य है कि एक ही बालकको इतने उपद्रव प्राप्त हुए हैं. यह दुःखकी बात है. अपने पूर्वकृत कर्मोंसे बनी अदृष्ट ही इन दुःखोंका कारण है. इस प्रकार पुनः पुनः दुःख होनेके कारणकी कल्पना करते हैं कि जिन पूतनादि दैत्योंने इस बालकके अनिष्टकी पहले इच्छा की, उनका ही अनिष्ट हुआ. इस बालकका तो कुछ अनिष्ट नहीं हुआ. ''यो हन्ति स हन्यते'' जो पहले किसीको मारना चाहता है वही मारा जाता है! इस न्यायानुसार, भय(बुराई) तो पूतनादिकोंने प्रथम किया इससे उस बुराईने उनको ही नाश किया. स्वयं जो दूसरेकेलिये करता है तो वह स्वयं ही भोगता है. भगवान् तो किसीकेलिये भय नहीं करते हैं वे जो करते हैं तो उनको ही भय होना योग्य है।।४५।।

राजस अपनी सम्मति देने लगे, उनका अपकार केवल उनके कर्मोंसे नहीं होता है किन्तु भगवान्के माहात्म्यसे होता है. इसका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

अथाप्यभिभवन्त्येनं नैव ते घोरदर्शनाः ।।
जिघांसयैनमासाद्य नश्यन्त्यग्नौ पतङ्गवत् ।।४६।।

यद्यपि वे(दैत्य) घोर दर्शन(जिनके दर्शनमात्रसे भय होता है) थे तो भी इस बालकको हरा नहीं सके. मारनेकी इच्छासे इसके पास आए किन्तु जैसे पतंग दीपकको बुझाने आते हैं, किन्तु स्वयं ही नष्ट हो जाते हैं वैसी दशा इन दैत्योंकी भी हुई अर्थात् स्वयं नष्ट हो गए।।४६।।

यद्यपि प्रथम जो भय करते हैं उनको ही भय होता है. यों है तो भी यदि वह प्रयत्न अयोग्यों(जिसका हम नाश नहीं कर सकते हैं ऐसे तेजस्वीओं)केलिये किया जाता है तो उनका नाश न कर वे स्वयं नष्ट हो जाते हैं. जो ऐसा न हो तो भगवान्के पास आनेसे पहले वे नाश क्यों न हो जाते? इससे भी देखनेमें आता है कि भगवान्का पराभव करनेकेलिये आये हुए वे उस(भगवान्)का पराभव नहीं कर सकते हैं. वे कम शक्तिमान थे यों भी नहीं था, क्योंकि वे भयार्थ आये हुए पूतनादि प्रसिद्ध बलवान् थे. उनका बल तो दूर रहा किन्तु उनकी आकृति ऐसी घोर थी जिसके देखनेसे ही भय उत्पन्न हो जाता था. यहां दृष्टान्त देकर समझाते हैं कि जैसे पतंग(पंखवाले छोटे कीडे) अपनेको बड़ा बलशाली समझकर कहते हैं कि मनुष्य मूर्ख हैं अग्निको तेजवाला समझ उसकी क्यों पूजा करते हैं हम तो इसके प्रकाशका नाश कर देंगे. इस प्रकार बड़ेका तिरस्कार करते हुए उसको बुझानेकेलिये उसके पास जाते हैं तो वे(पतंग) स्वयं नष्ट हो जाते हैं जल जाते हैं, अग्निका कुछ बिगाड़ नहीं कर सकते हैं. वैसे ही ये दैत्य भगवान्को मारनेकी इच्छासे उसके पास आकर स्वयं ही नष्ट हो जाते हैं. इस प्रकार अति तेजस्वी यह भगवान् उनको मारते हैं यह योग्य है।।४६।।

अन्य नन्दादिक, जो यों समझते थे कि यह बात तो प्रमाण सिद्ध है इसमें कोई अति आश्चर्यकी बात नहीं है वे प्रमाणकी ही स्तुति करने लगे उसका वर्णन निम्न श्लोकमें करते हैं.

अहो ब्रह्मविदां वाचो नासत्याः सन्ति कर्हिचित् ।।
गर्गो यदाह भगवानन्वभावि तथैव तत् ।।४७।।

अहो! ब्रह्मवेत्ताओंकी वाणी कभी भी असत्य नहीं होती है. भगवान् गर्गजीने जो कहा था वैसा अनुभवमें आ रहा है।।४७।।

'अहो' आश्चर्य वाचक यह शब्द इसलिए कहा गया है कि ब्रह्मवेत्ता भविष्यमें होनेवाली बातको पहले ही जान लेते हैं. यह आश्चर्य है वे पहले ही कैसे जान लेते हैं, उसको समझाते हैं कि श्रुति कहती है कि जिस(ब्रह्म)को जाननेसे यह सब जान जाता है अर्थात् समग्र जगत्के भूत भविष्यका ज्ञान हो जाता है. ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मको जाननेसे ब्रह्मरूप हो जाते हैं, उनको सब प्रकारका ज्ञान पूर्व ही हो जाता है जिससे उनके वचन असत्य नहीं होते हैं. श्लोकमें आये हुए 'सन्ति' पदका भावार्थ है कि उनके मुखसे सत्य वचन ही निकलते हैं. झूठे कभी भी नहीं निकलते हैं ब्रह्म-वेत्ताओंके कौनसे वचन हैं? इसके उत्तरमें कहते हैं कि गर्गजीने जो कुछ कहे उसमें कारण देते हैं कि गर्ग साधारण नहीं थे किन्तु 'भगवान्' थे. क्योंकि शास्त्रमें कहा है कि ''ब्रह्मविदो हि ब्रह्मैव भवन्ति'' ब्रह्मको जाननेवाले ब्रह्म ही होते हैं. ब्रह्मको जाननेसे गर्गजी ब्रह्म थे अतः श्लोकमें गर्गका विशेषण 'भगवान्' दिया है. उनके वाक्य प्रमाणरूप होनेके कारण जैसा उन्होंने कहा वैसा ही अनुभव हो रहा है.

वेद-वादिओं(मीमांसको)का कहना है कि जो होनेवाला है उसको वेद नहीं कहता है किन्तु वेद आज्ञा करनेवाला है. अतः वेद ही ईश्वर है. उसकी आज्ञानुसार ही फल होता है, इस (वेद)के अतिरिक्त फलदाता कोई ईश्वर नहीं है. इस सिद्धान्तको ही नन्दजी प्रमाणमार्गी होनेसे प्रमाण मान कर कहते हैं कि गर्गजीने कहा है कि यह बालक गुणोंसे 'नारायण'के समान है; इसके द्वारा ही आप सर्व अड़चनोंको पार कर सकेंगे. अतः उनके वचनसे ही इस बालकमें ये गुण आये हैं. इस श्लोकका यह भाव है।।४७।।

इस प्रकार नन्दादिकोंके तीन प्रकारके ज्ञानका तीन श्लोकमें निरूपण किया. इस श्लोकमें उसके फलका वर्णन करते हुए भगवान्के किये हुए निरोधको पुनः कहकर इस प्रकरणका उपसंहार करते हैं.

इति नन्दादयो गोपाः कृष्णरामकथां मुदा।।
कुर्वन्तो रममाणाश्च नाविन्दन् भववेदनाम्।।४८।।

इस प्रकार हर्ष पूर्वक श्रीकृष्ण और बलरामजीकी कथा करते हुए अर्थात् लीलाका वर्णन करते हुए रमणका आनन्द लेते हुए नन्दादिक गोप संसारकी

वेदनाको भूल गए।।४८।।

नन्द आदि गोप, भावसे श्रीकृष्ण और रामकी कथा फल समझकर स्वतन्त्रतासे करते थे. उस कथासे जो अत्यन्त आनन्द प्राप्त होता था उस आनन्दमें ही रमण(आनन्दानुभव) करते थे. श्लोकमें आये हुए 'च'(और) पदका भावार्थ बताते हैं कि उस आनन्दमें रमणके कारण देहका भान भी उनको न रहता था. अथवा आत्मा और अक्षरब्रह्मके स्वरूपकी एकताका अनुभव करते थे जिससे सर्व प्रपञ्च भूलकर भगवान्में आसक्त हो गये यही उनका फलात्मक निरोध हुआ. 'सर्व प्रकारसे प्रपञ्च भूल जाना और इसके साथ भगवान्में आसक्ति हो जावे' इसको निरोध कहते हैं. इससे भगवान्ने जो कार्य(लीला) किये उसका फल नन्दादिकोंको मिला।।४८।।

इस प्रकार भगवान्ने बाल्य-भावसे जो निरोध किया वह नन्दरायमें स्थित हुआ अर्थात् नन्दरायजीका निरोध सिद्ध हो गया. जिस अवस्थामें आधिदैविक काल प्रकट होकर यह कुमार लीला सिद्धि कराता था, उस कालमें, जो थे, उनका भी निरोध सिद्ध हो गया. भगवान्ने विचारा कि आधिदैविक कालका जो प्रयोजन था वह पूर्ण हो गया है अतः अब इस काल(कुमार अवस्था)की आवश्यकता नहीं है. इसलिए इसको छोड देना चाहिए यों विचारकर उस कालका(कुमार अवस्थाका) त्याग किया जिसका वर्णन निम्न श्लोकमें है.

एवंविहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे ।।
निलायनैः सेतुबन्धैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः ।।४९।।

इस प्रकार छिप जाना, पुल बांधना, बानरकी तरह कूदना इत्यादि कुमार अवस्थाके खेलोंसे इन दोनों भ्राताओंने उस कुमार अवस्थाको व्रजमें बिता (छोड) दिया[१] है।।४९।।

इसके पूर्वोक्त प्रकारसे(पहले कहे हुए ढंगसे) दोनों भ्राताओंने काल लीलारूप साधनोंसे कुमार अवस्थाका त्याग[२] किया. विजातीयलीला(दूसरे प्रकारकी पौगण्ड लीला)से कुमारावस्थाकी निवृत्ति कैसे हुई? इस शंकाका निवारण दृष्टान्त देकर करते हैं कि कुमार अवस्थाकी निवृत्ति विजातीय(पौगण्ड) लीलाओंने नहीं की है किन्तु जैसे अरणिसे उत्पन्न अग्निसे अरणि शान्त हो जाती है वैसे ही कुमारावस्थासे उत्पन्न लीलाओंसे ही कुमारावस्था शान्त हो गई (छूट

गई) इसलिए श्लोकमें 'विहारैः'का विशेषण 'कौमारं' दिया है जिसका सीधा अर्थ होता है कुमार अवस्थामें उत्पन्न कालकी क्रीडाओंसे कुमार अवस्थाका त्याग किया.

वे भगवान्के चरित्र तीन प्रकारके हैं, इन तीन प्रकारकी लीलाओंसे ही कुमारावस्था बिताई. अतः भगवान्ने व्रजमें ही कुमार और कुमारीरूप धारण किये हैं. अतः आगे[३] 'कुमारीआं कृष्णमें संलग्न चित्तवाली हैं' कहनेमें आयेगा और उस स्वरूपसे लीलाएँ करेंगी. वे कुमारियां वेलाके बने हुए गृहोंमें छिपकर भगवान्को वश करनेमें प्रयत्नशील होंगी और गृहस्थ धर्मकी मर्यादाओंका उल्लंघन करनेवाली होंगी, भगवान् कुमारावस्थामें छिप जानेकी क्रीड़ाएं करते हैं. परमानन्द स्वरूप भगवान् अपनेको छिपाकर रखनेकेलिये अर्थात् मुझे कोई (जीव) जान(पहचान) न सके इसलिए अपनी मायासे जीवोंकी ज्ञान-शक्तिको तिरोहित कर देते हैं, जिससे जीव भगवान्को न देखकर उनको ढूंढते रहते हैं. वैसे ही यहां भी उसी प्रकारकी लीलाकर दिखाते हैं. जैसे कि गोपादिकोंके नेत्रोंको हाथोंसे बन्द करते(वा वस्त्रोंसे बन्द कराते हैं) फिर आप छिप जाते हैं वैसे ही अन्य गोपाल भी करते हैं.

जहां जहां जल बहता है वहां वहां पुलोंको बांधते हैं. रामावतारमें एक ही पुल बांधा था और एक ही सीता थी. यहां तो यमुनादिपर अनेक पुल बांधते हैं कारण कि उन पुलोंसे यमुना पारकर पुलिनोंपर जाकर रमणकी सिद्धि करते और बन्दरोंके समान एक वृक्षसे दूसरे वृक्षपर कूदकर एक शाखापर बैठकर सब शाखाओंके फलोंका उपभोग करते हैं. एक शाखासे दूसरी शाखापर कूदनेकी उनको आवश्यकता नहीं पड़ती. श्लोकमें 'आदि' शब्दका भाव बताते हैं कि इसी प्रकार आप कभी मण्डूककी तरह भी कूदकर फल भोग करते थे.

भगवान् ब्राह्मण भी बनते हैं क्षत्रिय भी होते हैं. सब रसको एक ही स्थानमें स्थित होकर ग्रहण करते हैं. भगवान्को इस प्रकार स्वच्छन्द लीला करनेमें मर्यादा प्रतिबन्ध नहीं कर सकती है. इस प्रकार जिन जिन भावोंसे जो जो गोकुलवासी स्वीकार करनेके योग्य थे उन सब विहारों(खेलों-लीलाओं)को भगवान्ने किया. मूलरूप लीला, जगद्रूप लीला और वेदरूप लीला इन तीन लीलाओंको परिचयार्थ कहा है. इसके अनन्तर कुमारावस्थाका कार्य नहीं रहा है, इस कारणसे इन लीलाओंके साथ कुमार अवस्थाका भी त्याग किया।।४९।।

१. 'जहतुः'(बिता दी छोड दी)का भाव प्रकट करते हैं कि जैसे राजा सैन्यको बाहिर छोडके वनमें गया. इस वाक्यमें 'छोडके' शब्दका अर्थ 'स्थापित' करके होता है वैसे ही यहां भी कुमार अवस्था व्रजमें 'स्थापित' की यह अर्थ है.

२.दूसरे स्थान(मथुरा आदिमें) भगवान् कुमार वा कुमारीरूप नही हैं वे रूप व्रजमें ही सदा विद्यमान हैं. अतः कहा गया है कि ''व्रजं परित्यज्य पादमेकं न गच्छति'' अनुवादक.

३.श्रुतिके अनुसार पति और स्त्रीरूप भगवान् बनते हैं तदनुसार व्रजमें कुमार और कुमारीरूप भगवान् हैं. २१ वें अध्यायमें कृष्णमे चित्तवाली आधिदैविक कुमारियां भगवद्रूप हैं. योजना.

इति श्रीमद्भागवतमहापुराण दशमस्कन्धकी श्रीवल्लभाचार्यविरचित सुबोधिनी टीकाके तामस प्रकरणके 'प्रमाण' अवान्तर प्रकरणका धर्मी निरूपक अध्याय ७ का (स्कन्धानुसार अध्याय ११) का हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण.